

**DUE DATE SLIP****GOVT COLLEGE, LIBRARY**

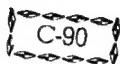
KOTA (Raj )

Students can retain library books only for two  
weeks at the most

BORROWER S No	DUE DTATE	SIGNATURE

# संस्कृत के सन्देश काव्य

मेघदूत और उसकी परम्परा का एक अध्ययन



संस्कृत

डा० रामकुमार आचार्य, एम० ए०, पीएच० डी०,

संस्कृत प्राध्यापक, गवर्नेमेन्ट कालेज, अजमेर

~~मूल्य २०-००~~

परिवर्धित मूल्य २५-००

लेखक तथा प्रकाशक

डा. मकुमार आचार्य, एम० ए०, पीएच०डी०,

व्याकरणाचार्य,

वर्तमान जला,

प्राध्यापक, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,

गर्गमेन्ट कालेज, अजमेर

१०७, गुजानन्द नगर,  
गोपालपुर रोड, जय

आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स० १९५७ में

पीएच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत शोधग्रन्थ

S 8211.1  
R165  
807

सर्वाधिकार लेखक द्वारा स्वरचित

All Rights Reserved by the Author

~~मूल्य २०-००-००~~

प्रारम्भित मूल्य २२-००

स० १९६३ ई०

— मुद्रक —

श्री रामलाल गोयल  
मैनेज्ड, आदर्श प्रेस,  
अजमेर

सन्देशकाव्यान्यतिभाजपूर्णा--  
न्यतीन माधुर्यभृतानि सन्ति ।  
तेषा यदालोचनमेतदस्ति  
समर्प्यते सस्कृतभागजनेभ्यः ॥

यदत्र वैगुण्यमधिष्ठितं स्यात्  
तन्नैव विद्वद्भिरवेक्षणीयम् ।  
ये चात्र सौन्दर्य कणाः विकीर्णाः  
ते प्रीत्ययेयुः विदुषा मनांसि ॥

ये प्राक्तनाः सस्कृत काव्यकाराः  
वियोग वार्ता रम कोविदाः वै ।  
सन्देशकाव्यानि प्रणीतवन्तः  
तेभ्यो मयेयं कियते नमस्कृतिः ॥



प्रस्तुत ग्रन्थ आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स० १९५७ में पीएच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत हो चुका है। इस ग्रन्थ में संस्कृत के सन्देशकाव्यों के उद्गम और विकास का वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्रथम अध्याय में विस्तृत भूमिका दी गई है। इस भूमिका में सन्देश काव्यों के उद्गम, साधारण स्वरूप, शिल्पविधान, विभिन्न प्रवृत्तियाँ तथा अन्य संबद्ध विषयों का विवेचन किया गया है। यह भूमिका प्राचीन संस्कृत साहित्य के गम्भीर अध्ययन तथा विभिन्न सन्देश काव्यों के आलोचनात्मक परीक्षण द्वारा प्रस्तुत की गई है।

अन्य अध्यायों में ३४ प्रतिनिधि सन्देश काव्यों का विशिष्ट विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचन में सन्देश काव्य के रचयिता तत्कालीन विशेषता का काल तथा जीवनवृत्त, काव्य की कथा और साहित्यिक समालोचना प्रस्तुत की गई है।

कवियों का कालनिर्णय संस्कृत साहित्य के विभिन्न इतिहासों तथा काव्यों की भूमिकाओं पर आधारित है। यहाँ स्वतन्त्र अनुसंधान भी किया गया है।

सन्देश काव्यों की साहित्यिक आलोचना संस्कृत साहित्य शास्त्र में निश्चित किये गये आलोचनासिद्धान्तों पर आधारित है। प्रत्येक सन्देशकाव्य की स्वतन्त्र आलोचना के अतिरिक्त मेघसन्देश के साथ उसकी तुलनात्मक आलोचना भी की गई है। इस तुलनात्मक आलोचना में प्रत्येक सन्देशकाव्य की मेघसन्देश से समान तथा भिन्न बातों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। प्रायः प्रत्येक सन्देश-काव्य में मेघ-सन्देश के प्रभाव को खोज निकालने का भरपूर प्रयास किया गया है और इस तरह तत्कालीन विशिष्ट पद्य, पंक्ति तथा वाक्यांश का मूल स्रोत खोज निकाला गया है।

संस्कृत साहित्य में यह सन्देशकाव्य बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। संस्कृत साहित्य के विभिन्न स्वरूपों का प्रथम निदर्शन खोज निकालना बड़ा ही दुष्कर है। महाकाव्यों और नाटकों तक का प्रथम निदर्शन निश्चित करना सरल नहीं है। लेकिन सन्देश काव्यों के सग्रन्थ में ऐसी दात नहीं है। कालिदास का मेघसन्देश प्रथम सन्देश काव्य है। कविकुलगुरु की किसी अन्य रचना ने संस्कृत साहित्य को इतना प्रभावित नहीं किया जितना कि उनके मेघसन्देश ने और इस दृष्टि से मेघ-सन्देश नितान्त ही विलक्षण है। इस काव्य के अनुकरण पर समग्र देश में परवर्ती

कवियों द्वारा लगभग १०८ सन्देश काव्य लिखे जा चुके हैं। इस प्रकार मेघ सन्देश ने संस्कृत साहित्य में एक नई परम्परा को ही जन्म दिया है। संस्कृत साहित्य के इस सुन्दर विस्तृत उपेक्षित अंग का व्यवस्थित अध्ययन नितान्त आवश्यक था। इसी लक्ष्य की धारा में रर कर, संस्कृत के सन्देश काव्यों का ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस कार्य के लिये ३४ प्रमुख सन्देश काव्यों को चुना गया है। इनमें से बहुत से तो अप्राप्य ही हैं। सारे देश भर में निरन्तर खोज के बाद उपलब्ध हो सके हैं।

इन ३४ सन्देशकाव्यों में, दो तो मूल सन्देशकाव्य हैं, दो मेघसन्देश के उत्तराख्यात हैं, आठ सन्देशकाव्य जैनियों की साहित्यिक परम्परा से लिये गये हैं और अश्विष्ट २२ सन्देशकाव्य साहित्यिक, धार्मिक तथा अन्य हिन्दु परम्पराओं से सयद्ध हैं। जैन सन्देशकाव्यों पर विचार करते हुये, इन काव्यों में मेघसन्देश की जो समस्यापूर्ति पाई जाती है, उसका भी यथोचित विवेचन किया गया है।

लेखक आशा करता है कि इस ग्रन्थ से संस्कृत के सन्देश काव्यों के व्यवस्थित तथा समीचीन अध्ययन में संस्कृत-जगत् को पर्याप्त प्रेरणा मिलेगी, संस्कृत साहित्य में सन्देश काव्यों को उचित आदर का स्थान प्राप्त होगा और साथ ही सन्देशकाव्यों की तरह उनका यह ऐतिहासिक तथा समालोचनापरक विवेचन भी संस्कृतानुसरियों के लिये शाश्वत आनन्द का स्रोत रहेगा।

आभारणीय गुरुभर्य डा० सत्यनारायणजी पारडेय, एम० ए०, पीएच० डी०, अध्यक्ष, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, बी० एस० एस० डी० कालेज, कानपुर के प्रति लघक अतीव कृतज्ञ है। श्रद्धेय पारडेयजी की प्रेरणा तथा सपरामर्श से ही यह शोधग्रन्थ पूर्ण हो सका है।

स्वच्छ तथा शुद्ध मुद्रण के लिये आदर्श प्रेस, अजमेर के प्रबन्धकर्ता श्री रामलाल गोयल तथा अन्य कर्मचारिजन मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। यद्यपि पुस्तक के मुद्रण में थोड़ी सावधानी रक्खी गई है, फिर भी, समय है कि स्थान २ पर कुछ अशुद्धियों दृष्टिगोचर हों। आशा है कि विद्य पाठकों के रसास्वादन में इन अशुद्धियों से कोई व्याघात न होगा और वे अपनी उदारतावश इन्हें उपेक्षित ही कर देंगे।

गवर्नमेंट कालेज,  
अजमेर

रामकुमार आचार्य

१० मार्च, १९६३

# विषयानुक्रमिका

## प्रथम अध्याय

### सन्देश-काव्यों का साधारण परिशीलन

पृष्ठ १-४६

- सन्देश काव्यों का साहित्यिक स्वरूप-एकदशकाव्य तथा गीतिकाव्य—  
 सन्देश काव्य अथवा दूत काव्य—  
 पशुपत्ती तथा अन्य जड़ और चेतन पदार्थों का दूत कार्य में उपयोग—  
 प्राचीन साहित्य में सन्देश काव्यों के प्रारम्भिक तत्त्व-ऋग्वेद-रामायण—  
 महाभारत-भागवत गौड़-जातिक—  
 सन्देश काव्य का शिल्प विधान—  
 सन्देश-काव्यों पर प्राचीन साहित्य शास्त्रियों की सम्मति—  
 सन्देश काव्यों का शृंगारिक स्वरूप—  
 जैन सम्प्रदाय में सन्देश काव्यों का धार्मिक रूप—  
 उत्तरकालीन भक्तिपरक तथा दार्शनिक सन्देश काव्य—  
 सन्देश काव्यों से देश का भौगोलिक तथा सामाजिक परिचय—  
 सन्देश-काव्यों की भाषा, शैली और छन्द—  
 मेघ सन्देश का विशिष्ट साहित्य पर प्रभाव—  
 मेघ सन्देश का भारतीय साहित्य पर प्रभाव—  
 सन्देश काव्यों में मानवता के लिये शुभ सन्देश ।

## द्वितीय अध्याय

### प्रथम भाग—मूल सन्देश काव्य

पृष्ठ ५१-१५५

- |                                |        |
|--------------------------------|--------|
| १ घट कर्पूर-कवि का सन्देशकाव्य | ५२-५६  |
| २ कालिदास का मेघसन्देश         | ६०-१३१ |

### द्वितीय भाग—मेघ संदेश के उत्तराख्यान

पृष्ठ १३४-१५५

- |   |         |
|---|---------|
| १ परमेश्वर भ्रा का यक्ष मिलन-काव्य—       | १३८-१४० |
| २ मन्दिकल रामशास्त्री का मेघप्रतिसन्देश । | १४१-१४५ |

### तृतीय अध्याय—जैन-सन्देश-काव्य

पृष्ठ १४७-२३६

- |                             |         |
|-----------------------------|---------|
| १ जिन सेन का पार्श्वभ्युदय— | १५८-१८४ |
| २ विक्रमकवि का नेमिदूत—     | १८८-१९३ |

	पृष्ठ
३ मेरुग का जैन-मेघदूत	१६४-२०१
४ चरित्र सुन्दरगणि का शीलदूत	२०१-२०८
५ पादिचन्द्र का पवनदूत	२०८-२१३
६ अज्ञात कवि का चेतोदूत	२१४-२१८
७ विनय-विजय गणि का इन्दुदूत	२१८-२२५
८ मेघविजय का मेघदूतसमस्पालेख	२२५-२३६

### चतुर्थ अध्याय—जैनेतर-सन्देश-काव्य

पृष्ठ २३७-४७६

१ धोयि-कवि का परन-दूत	२३८-२५०
२ पूर्ण सारस्वत का हस सन्देश	२५१-२६५
३ वेदान्त-देशिक का हस-सन्देश	२६५-२७६
४ अनिर्ज्ञात कवि का हस सन्देश	२७६-२८६
५ लक्ष्मीदास का शुक-सन्देश	२८६-३०३
६ पासुदेव कवि का भृगु सन्देश	३०३-३१७
७ उद्दण्ड-कवि का कोकिलसन्देश	३१७-३३२
८ उदय कवि का भयूर सन्देश	३३३-३४३
९ वामन-भट्ट-बाण का हसदूत	३४३-३५२
१० विष्णु दास का मनोदूत	३५३-३६१
११ विष्णुव्रत का कोक-सन्देश	३६२-३७३
१२ रूप-गोहयामी का उद्धव-सन्देश	३७३-३८५
१३ रूप गोहयामी का हस-दूत	३८५-३९६
१४ माधव-कवीन्द्र का उद्धवदूत	३९७-४०६
१५ रुद्रन्यायपचानन का भ्रमर-दूत	४१०-४२०
१६ रुद्रन्यायपचानन का पिकदूत	४२२-४२८
१७ शताग्रधान कवि का भृगुदूत	४२८-४३४
१८ कृष्ण-सार्वभौम का पद्मदूत	४३५-४४४
१९ तैलग व्रजनाथ का मनोदूत	४४४-४४०
२० श्री कृष्ण न्याय पचानन का पातदूत	४४०-४६१
२१ मोलानाथ का पातदूत	४६१-४६६
२२ नित्यानन्द शास्त्री का इन्दुमदूत	४७०-४७६
परिशिष्ट १	४८०-४८२
परिशिष्ट २	४८३-४९०
परिशिष्ट ३	४९०-४९१

संस्कृत

# संस्कृत के सन्देश काव्य



प्रथम अध्याय

सन्देश काव्यों का साधारण परिशीलन



## सन्देश काव्यों का साहित्यिक स्वरूप—

इस विषय पर विवेचन करने से पूर्व यह अप्रासंगिक न होगा कि काव्य के स्वरूप तथा विभिन्न भेदों पर प्रथम विचार किया जाय। साधारणतया कवि की कृति को काव्य कहते हैं (कवे' कर्म काव्यम्)। कवि शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कोई कवृ यणें इस धातु से कवि शब्द को सिद्ध करते हैं (कयते वर्णयति कवि)। दूसरे कवृ धातु को पाणिनीय धातुपाठ में न देखकर और कवृ यणें इस धातु से कवरी आदि रूप ही सिद्ध होते देखकर—'कुड् शब्दे' इस धातु से कवि शब्द को सिद्ध करते हैं।<sup>१</sup> निरुक्तकार 'याम्फ' ने, कवि शब्द का अर्थ 'मेधावी' बताकर 'कवि' क्रान्त दर्शनो भवति कयते धा' ऐसा इसको व्युत्पन्न किया है। करते यह रूप वैदिक निघण्टु की गत्यर्थक धातुओं में पठित है।<sup>२</sup> 'ये गत्यर्था स्ते धानार्था' इस न्याय से कवि शब्द का क्रान्तदर्शी या मेधावी अर्थ माना गया है। वैदिक निघण्टु में मेधावी शब्द के पर्यायों में कवि शब्द की भी गणना है।<sup>३</sup> अमर-कोष में कवि और काव्य शब्द शुक्राचार्य के पर्याय हैं और कवि शब्द परिद्धत अर्थ में भी दिया है।<sup>४</sup>

रामायण के रचयिता वाल्मीकि आदि-कवि कहाते हैं। इसका कारण यही है कि लौकिक सस्कृत का प्रथम काव्य अनुष्टुप् छन्द में इन्हीं का लिखा हुआ है। बहुत समय है कि तमी से कवि शब्द छन्द में रचना करने वाले विद्वानों के लिए कद हो गया हो।<sup>५</sup>

१ अमरकोष की क्षीर स्वामी की टीका।

२ अमरकोष की रामाधारी टीका।

३ वैदिक निघण्टु २।१४

४ वैदिक निघण्टु ३।१५। इस पर टीका करते हुए स्कन्द स्वामी ने भी 'क्रामते कयतेरा गतिकर्मण इति रूपम्' ऐसा लिखा है। कवि शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए उरट ने भी 'क्रामते कयतेश्च इन् सर्गधातुभ्य' (३० ४, ११४) इति प्रत्यय। क्रामतेर्मकारस्य यत्वं रफलोपश्च बाह्यलकात्। क्रान्तमस्यास्तीति मत्वर्थीयस्य लुक्। कवि क्रान्तदर्शन। अतीतानागत विप्रकृष्ट विषयं युगपत् शानं यस्य स क्रान्तदर्शन' ऐसा लिखा है।

५ शुभो दैन्यशुभ काव्य उशना भार्गव कवि—ज्योमादिवर्ग—२६। धीरो मनीषी च प्राज्ञः सत्यायान् परिद्धत कवि—ग्रहवर्ग—५१।

६ कवि शब्द की अन्य व्युत्पत्तिया इस प्रकार हैं। कययति इति कवि, तस्य कर्म काव्यम् विष्णोः। कीति शब्दापते विमृशति रसभावनिति कवि, तस्य कर्म काव्यम् मद्भगोपाल।

साहित्य शास्त्र में काव्य पुरुष की कल्पना 'कर शब्द और अर्थ को उसका शरीर तथा रस, रीति, वक्रोक्ति या ध्वनि को उसकी आत्मा माना है। काव्य के गुण काव्य की आत्मा के गुण और अलंकार शब्द और अर्थ रूपी शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने वाले आयुष्य वताप गए हैं। जिस प्रकार किसी पुरुष की कल्पना उसके शरीर के बिना नहीं हो सकती उसी प्रकार किसी काव्य की कल्पना भी उसके शब्द और अर्थ रूपी शरीर के बिना नहीं हो सकती। इसीलिए सभी साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के लक्षण में शब्दार्थ का सन्निवेश किया है। भामह आदि प्राचीन आचार्यों ने शब्द और अर्थ को ही काव्य कहा है। शब्दार्थों सहित काव्यम् (काव्यालंकार १।१६।) ही भामह का काव्य लक्षण है। दण्डी ने काव्य का लक्षण बताते हुए कहा है-शरीर तादृष्टार्थ व्यञ्जित्पदावलि काव्यादर्श १।१०। अग्नि पुराण में भी काव्य का लक्षण 'इष्टार्थ व्यञ्जित्पदावलि काव्यम्, स्फुटदलकार गुणरहोप-वर्जितम्' ३३६।६। बताया गया है। रुद्रट ने तो 'तनु शब्दार्थों काव्यम्' (काव्यालंकार) ऐसा स्पष्ट ही कहा है। वक्रोक्तिजीवितकार ने 'शब्दार्थों सहित वक्रकवि व्यापारशालिनि। वन्द्ये व्यञ्जितो काव्यं तद्विदारहादकारिणि' ऐसा लक्षण दिया है। 'तद्वदोषो शब्दार्थों सगुणानलकृती पुन क्वापि' यह काव्यप्रकाशकार मम्मट का मत है। हेमचन्द्र ने भी 'अदोषो-सगुणो सालकारी-च शब्दार्थों काव्यम्' (काव्यानुशासन पृ०-१६) ऐसा ही लक्षण दिया है। धम्मट ने अपने काव्यालंकारसूत्र में शब्दार्थों निर्दोषो सगुणो, प्राय सालकारी च काव्यम् यह लक्षण किया है। विद्यानाथ ने अपने प्रतापद्वयशेखर में गुणालंकार सहितो दोष वर्जितो शब्दार्थों काव्य काव्यविदोविदु ऐसा कहा है। विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्' ऐसा लक्षण किया है। जगन्नाथ परिहतराज ने भी शब्द को प्रधानता देते हुए 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्यम्' ऐसा काव्य का लक्षण किया है। इन विभिन्न लक्षणों-का सारांश यही है कि वाक्य तथा मानव प्रकृति के दृश्यों द्वारा भावुक आत्माओं में उत्पन्न उच्च विचारों तथा उदात्त भावनाओं का सरस और सुन्दर शब्दों में व्यक्तीकरण ही कविता अथवा काव्य है।

काव्य के दृश्य और श्रव्य ये दो प्रधान भेद हैं। दृश्य काव्य में नटकों की गणना की जाती है। श्रव्य काव्य के पद्य, गद्य और मिश्र यह तीन भेद माने गए हैं। पद्य काव्य प्रायः रामायण और महाभारत के अनुकरण पर ही लिखे गए हैं। इन पद्य काव्यों को भी साहित्य शास्त्रियों ने महाकाव्य, खंड काव्य और मुक्तक इत्यादि भेदों में विभाजित किया है। दण्डी के काव्यादर्श में महाकाव्य के निम्न लक्षण दिए हुए हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ॥  
 आशीर्म्मस्त्रिया यस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥  
 इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ॥  
 चतुर्थं फलोपेतं चतुरोद्भात्त नायकम् ॥  
 नगरार्णवशैलतु चन्द्रार्कोदय-वर्णनै ॥  
 उद्यान-सलिल-क्रीडा-मधुपान-रततेस्त्वै ॥  
 विप्रलम्भौर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनै ॥  
 मन्त्रदूत प्रयाणाञ्च नायकाम्युदयरपि ॥  
 अलंकृतमसक्षिप्त रसम्भवनिरन्तरम् ॥  
 सर्गैरनति विस्तीर्णै ध्वजवृत्तै सुसंधिभि ॥  
 सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तै रपेतं लोक रञ्जकम् ॥  
 काव्यं कथयान्तर स्यापि जायते सद्भक्तिति ॥

7

काव्या-१. १४-१८.

विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में भी महाकाव्य के कुछ ऐसे ही लक्षण पाये जाते हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकं सुरः ।  
 सद्दृशं चित्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥  
 एकवर्णभया भूषा कुलजा बहवोऽपि वा ।  
 गृहगारपीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥  
 अगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसधयः ।  
 इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥  
 चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं चफल भवेत् ।  
 आदौ नमस्त्रियाशीर्गं यस्तुनिर्देश एव वा ॥  
 क्यचिन्निन्दा कलादीना सता न शुण कीर्तनम् ।  
 एकवृत्तमयै पदैर्यस्यतेऽन्यवृत्तकैः ॥  
 नातिस्पृष्टा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ।  
 नानावृत्तमय क्वापि सर्गं कश्चन दृश्यते ॥  
 सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।  
 संध्या-सुषेन्दु रजनी प्रदोषध्वान्तवासराः ।  
 प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलतु यव सागगाः ।  
 संभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्यर्गपुराण्वराः ॥  
 रणप्रयाणोपयम-मन्त्रपुत्रोदयादयः ।  
 वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥  
 केषुं चतस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।  
 नाम्नस्य सर्गापादेयकथया सर्गनाम तु ॥

साहित्य दर्पण ६ ३१-३२ ॥



महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों में से कुछ ही लक्षण जिस काव्य में पाये जाए, उसे सण्डकाव्य कहते हैं। साहित्यदर्पण में कहा भी है—

सण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारिच ॥ ६. ३२८ ॥

यथा—मेघदूतादि ।

साहित्य दर्पण में सण्ड काव्य के उदाहरण स्वरूप मेघदूत का नामोल्लेख कर यह बात भी निश्चित कर दी गई है कि शास्त्रीय दृष्टि से सन्देश काव्यों को सण्ड काव्य ही कहा जाना चाहिये ।

वेदान्तदेशिक द्वारा प्रणीत हससन्देश के टीकाकार ने हससन्देश में नगर, समुद्र, पर्यंत, ऋतु और उद्यान इत्यादि के कुछ २ वर्णन होने के कारण हससन्देश को महाकाव्य बतलाया है। मेघ-सन्देश पर अपनी टीका में मल्लिनाथ ने भी 'अथ काव्ये तत्र तत्र मगनगरार्णवादि वर्णन सङ्गात् महाकाव्यत्वम्' ऐसा लिखा है, लेकिन यह ठीक नहीं है, क्योंकि 'सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते' के अनुसार सर्गबद्ध होना महाकाव्य की प्रमुख विशेषता है और इसी का इन काव्यों में अभाव है। अतः मेघसन्देश या अन्य सन्देशकाव्यों को सण्ड-काव्य ही मानना चाहिये ।

कल्याणमल्ल यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से मेघदूत को महाकाव्य नहीं मानता है, फिर भी महाकवि कालिदास की रचना होने के कारण इस काव्य को महाकाव्य ही कहना है। उसका कथन है—

इह यद्यपि गिरि-नगर-सागर-सरित्-सरोवर-कमलाकर-वसन्तोत्सव-मलयानिल उलक्रीडा-पुष्पावचयोदयास्तगमन वर्णनाना सर्गबन्धादीना च महा काव्य लक्षणानामभार स्तथापिमहाकवि श्री कालिदास विरचितत्वात् इह महाकाव्यमुच्यते ।

कविता की दृष्टि से यदि मेघसन्देश अथवा अन्य सन्देशकाव्यों को महाकाव्य कहा जाये तो किसी अंश तक भले ही अनुचित न हो, लेकिन शास्त्रीयदृष्टि से तो सन्देश काव्यों को सण्ड काव्य ही कहना होगा ।

टीकाकार बलभद्र मेघदूत को केलिकाव्य मानते हैं तथा स्थिरदेव ने भी अपनी टीका में मेघदूत को कीडाकाव्य बताया है। लेकिन मेघदूत अथवा अन्य दूत काव्यों या सन्देशकाव्यों के लिए साहित्यशास्त्र में इस तरह का कोई पृथक् नाम निर्दिष्ट नहीं किया गया है। स्थिरदेव ने अपनी टीका में विभिन्न उदाहरणों द्वारा मेघदूत को महाकाव्य सिद्ध करने की भी चेष्टा की है। उसका कथन है—  
ननु गिरि नगरादि वर्णन व्यतिरेकेण, कथमस्य महाकाव्यत्वम् । अत्रोच्यते ।  
विदिशा विशाला-लकादि नगरी-वर्णनम् । स्व-सिन्धु निर्विन्ध्या सिन्धु प्रभृति समुद्र-  
गामिनी-निगदनीपचारा-स्तत्प्रतिपादनम् । गिरौ शैलादि शैल-शलाघा । हरते लीला

कमल मित्यनेन घनसमयपुर सराणामृतना निरूपणम् । यत्र स्त्रीणामेतेन चन्द्रोदय समर्थनम् । अव्यव्यास्मिजलधर तथा ताकस्याचिद्रवनश्लमायित्याभ्या मानूदय निवेदनम् । मिथ्रान्त सन् 'तथा' तत्रागार मित्येताभ्याम् उद्यान-स्तुतिनिगदनम् । भर्तु कण्ठछुवि रित्यनेन जल केलिकथनम् । यस्या यक्षा इति मधुपानाभिधानम् । सभो गान्ते नीता रात्रिरिति सुरतस्य वर्णनम् । जालोद्गीर्णं तथा दिङ् नागानामित्याभ्या मन्त्रचिन्ता । दूतो मेघ एव । मार्गं तावदिति प्रयाण कथनम् । ये त्या इत्यनेन युद्ध प्रबोधनम् । शपान्त इति नायकाभ्युदय वर्णनम् । विप्रलम्भ कथयैव समर्थित । ता चावश्यमित्यनेन पत्युद्देश । यस्य सयोगम् इति विवाह कथनम् । तत्र स्कन्दमिति कुमारकथनम् । एवमेतैर्नग-नगरी सागरर्तु चन्द्रार्कोदयोद्यान उलकेलि मधुपान सुरतमन्त्र दूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदय विवाह विप्रलम्भ कुमार वर्णनं विस्फुटैरष्टादश भिरमीमि महाकव्यलक्षणैरप लक्षितं त्वादस्य महाकाव्यत्वम् । लेकिन स्थिरवैय कविचार प्राप्ता नहीं है, क्योंकि सर्गबन्धो महाकाव्यम्-सर्गनतिविस्तीर्णं ध्वन्युत्तं सुसधिमि के अनुसार महाकाव्य में कई सर्ग तथा विभिन्न छन्दों का होना अनिवार्य है । अतः मेघसन्देश एक खण्डकाव्य ही है और इसी तरह सारे सन्देश काव्य भी खण्ड काव्य ही माने जायेंगे ।

### खण्ड काव्य तथा गीतिकाव्य

अंग्रेजी में खण्ड काव्य को Lyric Poetry कहते हैं । संहृत के खण्ड काव्य और अंग्रेजी की लिरिक कविता में यद्यपि स्वरूपतः बहुत भेद है, तथापि कुछ सादृश्य अग्र्य है । इसीलिए पाश्चात्य विद्वानों ने खण्डकाव्य को लिरिक कविता कहा है । इस प्रकार सन्देश काव्यों को दूसरे शब्दों में हम Lyric Poetry अथवा गीति काव्य भी कह सकते हैं । गीति काव्य प्रायः कोमल और मधुर भावों को लेकर सरस तथा सरल भाषा में लिखे जाते हैं और गाए जाने योग्य होते हैं । सन्देश काव्यों में भी प्रायः विरह का ही वर्णन होता है तथा प्रसाद-गुण युक्त वेदभी रीति में ही इनकी रचना की गई है । छन्द भी ऐसे ही प्रयुक्त किए गए हैं जो कोमल भावनाओं में संगीत का सम्मिश्रण करते हैं । अतः सन्देश काव्यों को हम गीति काव्य भी कह सकते हैं । साथ में विरह वर्णन की प्रचुरता होने से यदि इन्हें विरह-काव्य कहा जाए तो भी अनुचित न होगा ।

### सन्देश काव्य अथवा दूत काव्य

विप्रलम्भ गृह गार तथा विरह की गूढ मूर्ति को लेकर ही सन्देश काव्य लिखे गए हैं । विरह में दूत के द्वारा नायक या नायिका का अपनी प्रेयसी या अपने प्रिय के पास प्रणयसन्देश भेजना ही इन काव्यों का मुख्य विषय है । सन्देश का कव्य भी प्राचीन कालों में यही दिया हुआ है—सन्देशस्तु प्रोषितस्य स्वपार्ता प्रेषणं भवेत् । दूत का कार्य भी अमरकोष में निम्नान्त रूप रूप से दिया हुआ है—स्वात्सन्देश दूरो

दूतः। दूत द्वारा सन्देश प्रेषण ही इन काव्यों की मुख्य वस्तु है। इसी आधार पर यह काव्य सन्देश-काव्य अथवा दूत काव्य कहलाते हैं। दोनों का अर्थ एक ही है। मेघदूत अथवा मेघसन्देश दोनों समानार्थक ही हैं। इनकी व्युत्पत्ति तथा वाह्य रूप में ही केवल अन्तर है। मेघदूतम् (काव्यम्) को मेघश्चासी दूतश्च मेघदूत, स एवामेदोपचारात्तत्सर्वम् काव्यम् इस प्रकार अथवा मेघदूत यस्मिन् काव्ये तत् मेघदूतम् इस प्रकार व्युत्पत्ति किया जा सकता है। दूतान्त सभी काव्यों की व्युत्पत्ति इसी प्रकार होगी।<sup>१</sup> दक्षिण भारत तथा लका में इस प्रकार के काव्यों को सन्देश काव्य ही कहते हैं और इन काव्यों के अन्त में सन्देश शब्द ही पाया जाता है।<sup>२</sup> मरिलनाथ ने भी अपनी टीका में मेघसन्देश शब्द का ही प्रयोग किया है। शास्त्र में इस प्रकार के काव्यों का सौन्दर्य दूत की उपयुक्तता तथा सन्देश की भाव प्रणता पर ही निर्भर है। अतः दोनों ही नाम उपयुक्त हैं। फिर भी सन्देश की प्रधानता तथा सन्देशान्त नाम के अधिक प्रचुर लगने के कारण इन काव्यों को यहाँ सन्देश काव्य नाम से ही व्यवहृत किया गया है।

### पशु-पक्षी तथा अन्य जड़ और चेतन पदार्थों का दूत कार्य में उपयोग

वास्तव में दूत<sup>३</sup> शब्द राजनीति से सम्बन्ध रखता है। मनुस्मृति में दूत के लक्षण भी बताए गए हैं —

दूत चैव-प्रकुर्वीत सर्वशास्त्र विशारदम् ।

हगिताकार चेष्टा शुचि दक्ष कुलोद्गतम् ॥७॥६३॥

अनुरक्तशुचिर्दत्तस्मृतिमान्देशकालरित् ।

यपुष्पान्वीतभीर्याग्भी दूतो राज प्रशस्यते ॥७॥६४॥

आगे चलकर मनु फिर दूत की महत्ता का भी वर्णन करते हैं —

१ बंगाल तथा उत्तर भारत के अन्य प्रान्तों में लिखे गए सभी काव्यों के अन्त में दूत शब्द पाया जाता है। यथा पवनदूतम्, मनोदूतम्, पिकदूतम्, हंसदूतम् और पान्थदूतम् इत्यादि।

२ यथा हंस सन्देश, पिकसन्देश, मयूर सन्देश, कोकसन्देश इत्यादि दक्षिण में पाए जाते हैं। सिंहल भाषा में भी मयूर सन्देश और कोकिल सन्देश पाए जाते हैं।

३ हंस सन्देश की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी —

हंसस्य सन्देश अथवा हंसाय उक्त सन्देश, हंस सन्देश, स एवामेदोपचारात्तत्सर्वम् ग्रन्थ। अन्य नामों की व्युत्पत्ति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

३ दु गती + त = दूत। दुतानिम्या दीर्घश्च (उण्विस्व) के द्वारा दु के उ को दीर्घ हो गया है।

अमाल्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ।

वृत्तो वपेणपट्टे च दूते सधिविपर्ययो ॥७॥६५॥ ,

दूत एव हि सधत्ते भिनत्येव च सहतान् ।

दूतस्तन्वृत्ते कार्ये भिद्यन्ते येन पा न चा ॥७॥६६॥

साहित्य क्षेत्र में यह शब्द राजनीति से ही आया है और दूत के कार्य की गूँगाह रस में बड़ी ही उपयोगिता मानी गई है । विशेषतः दूत शब्द जब मन्त्रीलिङ्ग दूता बन जाता है, तो साहित्य में गूँगाह रस के लिए कितने ही भावों में अनिवार्य हो जाता है । दूत पुरुष पक्ष से अथवा नायक पक्ष से सम्बन्ध रखता है, दूता नायिका पक्ष से । दूत नायक की ओर से नायिका के पास पहुँच कर नायिका की केवल मनस्थिति का ही पता नहीं लगाता, नायिका के मन में प्रेममात्र को और भी उद्दीप्त करने का प्रयत्न करता है, नायिका को नायक से मिलने का सन्देश देता है और उसे सन्देश स्थान का पता भी बताता है । नायिका के मान को भग्न कराने में भी वह सहायक होता है । साहित्य के रस शास्त्र में दूत का एक महत्वपूर्ण स्थान है । रति भाग के परिपाक के लिए तथा गूँगाह रस की मनोवैज्ञानिक स्थिति में सहायक होने के लिए दूत अपरिहार्य सा विदित होता है । गूँगाह रस में अचलम्भ और आश्रय उभयाश्रित और उभयान्वित रहते हैं । नायक और नायिका में से दोनों एक दूसरे के लिए अचलम्भ और आश्रय दोनों ही होते हैं । अतः रतिभाग की समग्र अवस्थिति के लिए नायक तथा नायिका दोनों में ही रति भाग जागृत होना चाहिये । इसलिए साहित्य में दूत की आवश्यकता मानी गई है । साहित्य दर्पण में दूत तथा दूतियों के तीन भेद भी बताए गए हैं —

निसृष्टार्थं मिताद्यंश्च तथा सन्देशहारक ।

कार्यप्रेष्य स्त्रिया दूतो दूत्यश्चापि तथाविधा ॥३॥७७॥

उभयोर्मायमुन्नीय स्वयं पदति चोत्तरम् ।

मुनिनष्टं कुरुते कार्यं निसृष्टार्थस्तु स स्मृत ॥३॥७८॥

मिताद्यंमारी कार्यस्य सिद्धकस्ती मिताद्यंश्च ।

यावद्भाषितस्सन्देशहारक सन्देश-हारक ॥३॥७९॥

इस प्रकार साहित्य में नायिका और नायक की ओर से दूत अथवा दूती का भेज आना सर्व विदित ही है । प्रायः विरह की पूर्णराग और मान अवस्थाओं में दूत अथवा दूती का भेज आना दूसरे काव्यों में पाया जाता है, लेकिन सन्देश काव्यों में प्रथमोक्त विरह में ही दूत प्रेषण का व्यापार देखने में आता है । पूर्ण राग में नायक या नायिका की दस काम दशाण बताई गई हैं —

अग्निनाशत्रिचन्तामृतियुक्तं कथनोद्देशं सप्रलापाश्च ।

उन्मादोऽथ व्याधिर्ज्वरश्च मृतिरिति दशात्र काम दशा ॥सा०६०॥३॥८०॥

इसी प्रकार प्रवास में भी प्रेमियों की ग्यारह दशाएँ वर्णित की गई हैं —

अग्रेष्यसौष्ठवं तापं पाण्डुता कृशताऽरुचि ।

अधति स्याद् नालम्बस्तन्मयोन्माद मूर्च्छना ॥

मृतिश्चेति क्रमादेकादश स्मरदशा इह ॥स०द०॥३॥२०६॥

इन दशाओं में से उन्माद-दशा का स्वरूप साहित्यशास्त्रियों ने इस प्रकार बनाया है :—<sup>१</sup>

चित्तसमोह उन्माद कामशोकमयादिभि ।

अस्थान हास-रूदित गीत प्रलपनादिकृत् ॥३॥१६०॥

उन्मादश्चापरिच्छेद श्चेतनाचेतनेष्वपि ॥३॥१८१॥

विरही जब विरह में उन्मत्त हो जाता है, तब उसे चेतन और अचेतन तथा पशु-पक्षी और मनुष्य का विवेक नहीं रहता। वह हट कर किसी के सामने हसता, रोता, गाता तथा प्रलाप करता रहता है। ऐसी अवस्था में विरही नायक या नायिका का जिस किसी को भी दूत बनाकर अपने प्रिय के पास भेजना कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। जब चेतन और अचेतन का ही विवेक न रहे, तब पशु पक्षियों तक से अपनी विरह वेदना का निवेदन करना कुछ भी अनुचित नहीं प्रतीत होता है। इसी लिए अधिकांश सन्देश काव्यों में पशु-पक्षी दूत बनाए गए हैं।<sup>२</sup> उन्माद की पूर्ण अवस्था तो तब और भी अधिक प्रकट होती है, जब हम पवन, चन्द्र, पदाक, तुलसी वृक्ष इत्यादि को भी दूत कार्य में लगा हुआ देखते हैं।<sup>३</sup> अन्त में यहाँ तक देखने में आता है कि मन, भक्ति तथा शील जैसे सूक्ष्म और भावात्मक पदार्थों को

१ विद्यानाथ—उन्मादस्तुल्यवृत्तित्वं चेतनचेतनेष्वपि ।

मूपाल—उन्मादश्चिच्छविभ्रान्ति वियोगादिष्टनाशत ॥

वियोगजे तु वेष्टास्युधांवन परिदेहनम् ॥

असयद्धप्रलपनं शयन सहस्रोत्थिति ।

अचेतनैस्सहालापो निर्निमित्त मितादय ॥

२ यथा—वेदान्तदेशिक के पुत्र वरदाचार्य का हरिण-सन्देश, उद्दण्ड कवि का कोकिल-सन्देश, लक्ष्मीदास का शुक-सन्देश, विष्णुभ्रात का कोकसन्देश, उदय-कवि का मयूर सन्देश, वद्व न्यायपञ्चानन का अमरदूत तथा विभिन्न कवियों के इस सन्देश और इस दूत ।

३ यथा—घोषि कवि और वादि चन्द्र सूरि के पवनदूत, कृष्णनाथ न्यायपञ्चानन का वारतदूत, विनय विजयगणि का हनुदूत तथा अन्य चन्द्रदूत काव्य । कृष्ण सारंगभोग का पदाकदूत । सस्कृत साहित्य परिपत् कलकत्ते के पुस्तकालय में विद्यमान वैद्यनाथ द्वारा लिखित तुलसीदूत । गोपेन्द्र नाथ गोस्वामी द्वारा प्रणीत पादपदूत ।

भी दूत कार्य में नियुक्त किया गया है।<sup>१</sup> किसी किसी काव्य में पौराणिक पात्रों को भी यथा हनुमान और उद्धव को दूत कार्य सौंपा गया है।<sup>२</sup> भोलानाथ के पान्थदूत में मयुरा की ओर जाने वाले एक पथिक को ही भोपियों का दूत कल्पित किया गया है। इस प्रकार इन सन्देश काव्यों में विभिन्न पशु पक्षी तथा अन्य जड़ और खेतन पदार्थों को दूतकार्य में नियुक्त किया गया है। वास्तव में स्वयं कालिदास ने मेघ को दूत कल्पित कर परवर्ती कवियों के लिए एक नया मार्ग निर्दिष्ट कर दिया और यदि परवर्ती कवियों ने कुछ अन्य दूतों की भी करपना की, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यस्तुतः सन्देश काव्यों के रचयिता ये कवि भी उक्त प्रकार के दूत कल्पित करते समय उनकी असमर्थता से अवश्य ही परिचित थे तभी तो उन्होंने अपने काव्यों में किसी न किसी प्रकार अपने दूत के चुनाव का समर्थन किया है। स्वयं कालिदास ने भी लिखा है —

कामार्ता हि प्रकृतिरूपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥१॥ ।

इसी प्रकार अन्य काव्यों में भी ऐसे स्थल देखने में आते हैं। यथा—

१ युक्तयुक्तं प्यपि हि विदुषामर्थिना मो विवेकं ॥

( अज्ञात कवि का हस सन्देश ) ॥१॥१॥

२ न तस्या दोषोऽय यदिह विदुषा प्रार्थितयती

न कस्मिन् विधम्भ दिशति हरिभक्ति प्रणयिता ॥

( रूप गोस्वामी का हस दूत ॥२॥ )

३ कन्दर्पेण व्यथित इदयोन्मत्ततुरया यथाचे

प्रसाहीन यचनरहित निश्चल शोषहीनम्

दीव्य कर्तुं मुरहरपदो लक्ष्मणं पदमलाहरी ॥ ( कृष्णस्य )

( पदाकदूत ॥३॥ )

४ दूत मोहात्पयनमद्वद् प्राद्विणोदधुनेत्रं

प्रापो मोहो भवति मयिना बोधशून्यत्वहेतु ॥

( यादवचन्द्र का पवनदूत ॥१॥१॥ )

१. यथा—विष्णुदास का मनोदूत और तैलंग प्रज्जनाय का मनोदूत तथा किसी जैन कवि का घेतोदूत। राजेन्द्र लाल मिश्र के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची ३ पृ० २७ पर उल्लिखित वाली प्रसाद का भविदूत। खरिप्र सुन्दर गणि का शीलदूत।

२. यथा—रूप गोस्वामी का उद्धव सन्देश और माधवशर्मन् का उद्धवदूत, नित्या नन्द आशुकरि का हनुमद्दूत।

य प्रिलेपेण क्षुभितमनसा मेघ शैल द्रुमादौ  
याच्चादैव्य भवति किमुत क्वापि सन्देशाहं ॥  
( वेदान्तदेशिक का इस सन्देश ॥११॥४॥ )

अतः पक्षियों तथा अन्यपदार्थों के दूत बनाने ॥ अनौचित्य की कुछ भी शक्य नहीं करनी चाहिये ।

### प्राचीन साहित्य में सन्देश काव्यों के प्रारम्भिक तत्त्व

कालिदास के मेघसन्देश की कथास्तु तो सर्व विदित ही है । इस काव्य में एक विरही यक्ष मेघ के द्वारा अपनी प्रेयसी के पास प्रेम सन्देश भेजता है । कालिदास की इस विलक्षण और उदात्त कल्पना का क्या आधार था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । फिर भी ऐसी कल्पना के कुछ विद्वद् कालिदास से पूर्व प्राचीन साहित्य में हमें अवश्य उपलब्ध होते हैं । भारतीय साहित्य में ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है । सर्वप्रथम इस वेद में पशुओं के दूत कार्य करने का उल्लेख मिलता है । गृहस्पति की गायों को बल नामक असुर के योद्धा पणिलोग अथ अपहरण करके ले जाते हैं और उन्हें किसी गुफा में छिपा देते हैं, तब इन्द्र गायों की खोज करने के लिए सरमा नामक अपनी कुतिया को पणिलोगों के पास भेजते हैं । सरमा एक नदी को पार कर बलपुर पहुँचती है और वहाँ गुप्तस्थान में छिपाई हुई गायों को खोज निकालती है । इस असुर पर पणिलोग सरमा को अपने पक्ष में करना चाहते हैं । पाठकों के परिचय के लिये ऋग्वेद का सरमापणिलोकाद यथा उद्धृत किया जा रहा है -

पणिलोग कहते हैं :-

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानद् दूरे ह्यध्वा अगुरि पराचै ।  
कास्मे हिति का परितक्म्याऽसीत् कथं रसाया अतरः पयासि ॥१॥

सरमा उत्तर देती है :-

इन्द्रस्य दूतीरिपिता वरामि मह इच्छन्ती पण्यो निधीन्व ।  
अतिष्करो मियसा तन्न आधत्तया रसाया अतरम् पयासि ॥२॥

पणिलोग कहते हैं :-

कीदृडिडन्द्रः सरमे कादशीका यस्येद दूतीरसर पराकात् ।  
आचगच्छान्मित्रमेना दधामाया गवा गोपनिर्ना भवाति ॥३॥

सरमा कहती है :-

नाहं तं वेदं दध्यं दमन्सं यस्येद दूतीरसर पराकात् ।  
न तं गृहन्ति स्रवतो गमीरा हता इन्द्रेण पण्य शयध्वे ॥४॥

पणि लोग कहते हैं —

इमा गात्र सरमे या पेच्छ परिदिवो अन्तान्सुभगे पतन्ती ।  
कस्त एता अवसृजा द्युध्युताऽस्मकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥५॥

सरमा उत्तर देती है —

असेन्या व पण्यो वचास्यनिपज्यास्तन्य सतु पापो ।  
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्या वृहस्पति वै उभयानमृतात् ॥६॥

पणि लोग कहते हैं —

अय निधि सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभि र्वसुभिर्न्युष्ट ।  
रक्षन्ति ॥ पण्यो ये सुगोपा रेकुपदमलकमाजगन्ध ॥७॥

सरमा प्रत्युत्तर देती है —

पह गमन्पय सोमशिता अथास्यो अगिरसो नवग्वा ।  
त एतमूष विभजन्त गोनामधैत द्वच पण्यो यमधित् ॥८॥

पणि लोग कहते हैं —

एषा च त्व सरम आजगन्ध प्रयाधिता सहसा दैव्येन ।  
हरसार त्वा कृण्वे मा पुनर्गा अपते गया सुभगे भजाम ॥९॥

सरमा उन्हें उत्तर देती है —

भाह वेद आत्वं नो स्वसुत्वमिन्द्रो त्रिदुरगिरसश्च घोरा ।  
गोकामा मे अच्छदयम्यदायमपात इत पण्यो वरीय ॥१०॥

दूरमित पण्यो वरीय उद्गात्रो वन्तुमितीश्वरतेन ।  
वृहस्पतिर्या अयिन्द्रशिगृहा सोमो प्राधाण ऋपयश्च विप्रा ॥११॥  
ऋग्वेद मण्डल १०, अनुषाक ८, सूक्त १०॥

इस सवाद से यह तो निश्चित ही है कि भारतीय साहित्य में पशुओं को दूत बनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है ।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद (मं० ४, सू० ६१, मन्त्र स० १७, १८, १९) में एक और कथा उपलब्ध होती है। इसमें श्यावाश्व ऋषि राजा रघवीति के पास उनकी पुरांके प्रति अपने प्रणवसंदेश तथा विषाह प्रार्थना को रात्रि के द्वाग भेजते हैं ।



अश्वमेध के बाद बाल्मीकि रामायण में किरिकन्धा काण्ड के ४४ वें सर्ग में सीताजी की खोज करने के लिए सुग्रीव द्वारा हनुमानजी के भेजे जाने का वृत्तान्त तो सब लोग जानते ही हैं —

विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमन्वर्धमुक्त्वान् ॥१॥  
तद्यथा लक्ष्यते सीता तत्त्वमेशानुचिन्तय ॥६॥

रामचन्द्रजी भी हनुमानजी को कार्यकुशल और पराक्रमी समझकर स्वनामांकित अंगुठी सीताजी के अभिज्ञान के लिए हनुमानजी को देते हैं —

ददौ तस्य तत प्रीत स्वनामाकोपशोभितम् ।  
अंगुलीयमभिज्ञान राजपुत्र्या परन्तप ॥१०॥  
अनेन त्या हरिधेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा ।  
मत्संकाशादनुमानमनुद्दिग्नाऽनुपश्यति ॥१३॥

अन्त में रामचन्द्रजी हनुमानजी से कहते भी हैं,—

अतिषण्ण्यलमाधितस्तवाह हरिः परिक्रम्यिकमैरनरपै ।  
पयनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमस्तथा कुरुष्व ॥१७॥

इसके बाद सुन्दर काण्ड के ३४ वें सर्ग में हनुमान् जी स्वयं सीताजी से कहते हैं —

अहं रामस्य सन्देशोऽयं दूतस्तवागत ।  
वैदेहि कुशली राम स त्वा कौशलमवधीत् ॥२॥

सीताजी के द्वारा सन्देश प्रकट करने पर रामचन्द्रजी के गुण और पराक्रम का वर्णन कर हनुमानजी फिर सीताजी से कहते हैं —

तेनाहं प्रेषितो दूतस्तत्संकाशमिहागत ।  
रवद्विभोगेन दुःखार्तः स त्वा कौशलमवधीत् ॥३५॥

रामचन्द्रजी के स्वरूप, सीताजी के वियोग में उनकी दुरवस्था और अपनी यात्रा का वर्णन कर हनुमानजी फिर सीताजी को विश्वास दिलाते हैं—

अभिभाषस्व मा देवि दूतो दाशरघेरहम् ॥३५॥७२॥

अन्त में सीताजी भी हनुमान्जी को रामचन्द्रजी का दूत मान लेती हैं —

—पथं विश्वासिता सीता हेतुभि शोककर्मिता  
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छती ॥३५॥८४॥

‘तदनन्तर हनुमान्जी सीताजी को फिर विश्वास दिलाते हैं और रामचन्द्रजी की श्रगुटी उन्हें दिखाते हैं—

‘धानरोऽह महामागे दूतो रामस्य धीमत’ ।  
रामनामाक्ति चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम् ॥३६॥२॥

प्रत्ययार्थं तवानीत तेन दत्तं मद्यात्मना ।  
समाश्वसिहि मद्र ते क्षीणं दुःखफला ह्यसि ॥३६॥३॥

हनुमान्जी के साथ सीताजी जब वापिस चलने के लिये प्रस्तुत नहीं होती हैं, तब वे उनसे कुछ अभिज्ञान मांगते हैं—

यदि नोत्सहसे यातु मया सार्धमनिन्दिते ।  
अभिज्ञानं प्रयच्छ स्व जानीयाद्राघवो हि यत् ॥३७॥१०॥

इस पर सीताजी हनुमान्जी से काकज्वन्त की घटना का ॥२॥३॥ उल्लेख करती हैं और अपनी दिव्य चूड़ामणि भी उन्हें देती हैं—

ततो घृत्नगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् ।  
प्रदेयो राघवापेति सीता हनुमते वदती ॥३७॥६६॥

इसके अतिरिक्त एक और छोटी सी घटना का भी सीताजी उल्लेख करती हैं—

मनः शिलायास्तिलको गण्डपाश्वर्यं निवेशित ।  
त्वया प्रणष्टे तिलके तं किल स्मर्तुं मर्हसि ॥४०॥२॥

अभिज्ञान देने के बाद सीताजी अपनी ओर से रामचन्द्रजी को कुछ सन्देश भी भेजती हैं ( सु० ४० ) । सुग्रीव ने अपने प्रमुख धानरों को राखण और सीताजी की मोज में भेजते समय विभिन्न दिशाओं के मार्ग का भी धर्णन किया है ( कि ४० ४३ ) ।

इस प्रकार गल्मीकि रामायण में दूत द्वारा सन्देशप्रेषण, मार्गदर्शन तथा अभिज्ञान स्वरूप किसी वस्तु का देना अथवा किसी घटना का उल्लेख करना यह बातें पाई जाती हैं ।

१ इसके अतिरिक्त पंचपटी में सीताजी के अपहरण हो जाने पर उनके वियोग में उन्मत्त रामचन्द्रजी का विभिन्न वृत्तों, पर्यंतों, पशुओं तथा गोदायरी नदी से सीताजी के सम्बन्ध में प्रश्न करना भी दूतकाव्यों के लिये पथ प्रदर्शक हो सकता है । इस प्रसंग के लिये देखिए—या०—रा०—अरण्य काण्ड—६१—६४ सर्ग ।

रामायण के बाद महाभारत में भी दूतप्रेषण का वृत्तान्त कई प्रसंगों में देखने में आता है। युधिष्ठिर का दूत रूप से धीरुष्ण जी को हस्तिनापुर में कौरवों की सभा में भेजना तो सर्व विदित ही है। इस घटना को हम भले ही विशुद्ध राजनैतिक मान लें, लेकिन घन पर्व के नलोपारयान ( ५३वा अध्याय ) में आये हुए हस-दमयन्ती सवाद को तो निश्चित रूप से ही सन्देश काव्यों का पथ प्रवर्तक मानना पड़ेगा।<sup>१</sup> यह सवाद महाभारत में इस प्रकार है। एक दूसरे के रूप, गुण और योग्यता के निरन्तर सुनते रहने से नल और दमयन्ती परस्पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम करने लगते हैं। एक समय नल अपने मन में दमयन्ती का ध्यान करते करते ही अपने उद्यान में पहुँच जाता है। वहाँ एक साथ हसों की एक टोली आती है। नल उसमें से एक हस को पकड़ लेता है। इस पर वह हस नल से कहता है—

ततोऽन्तरिक्षगो याच व्याजहार नल तदा ।  
हन्तव्योऽस्मि न ते राजन् करिष्यामि तव प्रियम् ॥२०॥

दमयन्ती सकाशे त्वा कथयिष्यामि नैवध ।  
यथा त्वदन्य पुरुष न सा मस्यति कर्हिचित् ॥२१॥

एवमुक्तस्ततो हसमुत्ससर्ज महीपति ।  
ते तु हसा समुत्पत्य विदर्भानगमस्तत ॥२२॥

विदर्भ नगरीं गत्वा दमयन्त्यास्तदान्तिके ।  
निपेतुस्ते गरमन्त सा वदर्श च तान्त्रिगान् ॥२३॥

सा तानदभुत रूपान्वै दृष्ट्वा सखिगणावृता ।  
दृष्ट्वा महीतु खगास्तरमाणोपचक्रमे ॥२४॥

अथ हसा त्रिसृषु सर्वत प्रमदावने ।  
एकैकशस्तदा कन्यास्तान्दृष्ट्वात्समुपाद्रवन् ॥२५॥

दमयन्ती तु यं हस समुपाधायदन्तिके ।  
स मानुषी गिर कृत्वा दमयन्तीमथाग्ररीत् ॥२६॥

दमयन्ति नलो नाम निषधेषु महीपति ।  
अग्निनो सदृशो रूपे न समास्तस्य मानुषा ॥२७॥

<sup>१</sup> श्री वेदान्त देशिक ने अपने हस सन्देश में इस वृत्तान्त का उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित है कि उन्हें इस वृत्तान्त से अपने सन्देशकाव्य के लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

कन्दर्प इव रूपेण मूर्तिमानभवत्स्वयम् ।  
तस्य वै यदि भार्या त्वं भवेद्या वरवर्णिनि ॥२०॥

सफल ते भवेज्जन्म रूप चेदं सुमध्यमे ।  
यद्य हि देवगन्धर्व मनुष्योरग राक्षसान् ॥२१॥

दृष्टवन्तो न चास्मामिह दृष्टपूर्स्तथापि ।  
त्व चापि रत्नं नारीणां नरेषु च नलो वर ॥२०॥

विशिष्टाया विशिष्टेन सगमो गुणयान् भवेत् ।  
एवमुक्ता तु हसेन दमयन्ती विशापते ॥२१॥

अग्ररीत्तत्र त हस त्वमप्येवं नल वद ।  
नयेत्युक्तवाण्डज कन्या विदर्भस्य विशापते ।

पुनरागम्य निपद्यान्नलो सव न्यवेदयत् ॥२२॥

इस हस-दमयन्ती-सगद के अनिरिक राजा नल का भी देवताओं के दूत के रूप में दमयन्ती के पास जाना सर्वविदित ही है ।

महाभारत के अतिरिक्त श्रीमद्भगवत में भी कई स्थल ऐसे पाये जाते हैं जो कि निश्चित रूप से कई सन्देश कार्यों के आधार हैं । भगवत के दशम स्कन्ध के ३०वें अध्याय में इस प्रकार की कथा है । एक बार रास क्रीडा के प्रसंग में भगवान् कृष्ण के प्रेम को पाकर गोपिया कुञ्ज अभिमान करने लगती हैं । उनके अभिमान को दूर करने की भावना से कृष्णजी अन्नधान्न हो जाते हैं । अकस्मात् अपने मध्य में कृष्ण को ॥ पाकर गोपिया बड़ी दुःखित होती हैं और उनके विरह में उन्मत्त की तरह अशयन्य, प्लक्ष, न्यम्रोध, तुलसी, मरिलका, यूषिका और आम्र इत्यादि वृक्षों से उनका पना पूछती फिरती हैं । इस प्रसंग को लेकर ही यह अध्याय प्रारम्भ होता है-

अन्तर्हिते भगवति सदसैव ब्रजागना,  
अनप्यस्तमचक्षाणां करिष्य इय यूथपम् ॥१॥

गत्यानु रागस्मितविभ्रमेक्षितं मनोरमात्तापविहार विभ्रमै ।  
आक्षिप्त चित्ता प्रमदा रमापतेस्ताम्ना विचेष्टा जगृहस्तदात्मिका ॥२॥

गतिस्मितप्रेक्षणमापणादिषु प्रिया प्रियस्य प्रनिरुद्धमूर्तय ।  
असायहं नित्यपलास्तदात्मिका न्यवेदिषु दृष्टविहार विभ्रमा ॥३॥

भावन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचित्रयुक्तमत्तकवद् धनाद् धनम् ।  
पञ्चतुराशाश्वदन्तरवदिभूतेषु सन्तं पुरुषं धनस्पतीन् ॥४॥

दृष्टो य कच्चिदप्यतथ प्लुत न्यग्रोध नो मन ।  
नन्द सूनुरगतो हृत्वा प्रेम शसारलोकने ॥५॥

कच्चित् कुरवकाशोक नाग पुन्नाग चम्पका  
रामानुजो मानिनीनाम्रितो दर्पहरस्मित ॥६॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।  
सह त्वालि कुलै विभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युत ॥७॥

मालत्यदर्शि य कच्चिन्मलिके जानियूथिने ।  
प्रीतिं यो जनयन् यान करस्पर्शेन माधव ॥८॥

मृतप्रियालपनसासन-कोविदार-जम्बू-मृत्-यकुलान्न कदम्ब-नीपा ।  
ये ऽन्ये परार्थभरका यमुनोपकूला शसन्तु कृष्णपदवीं रहिततमना न ॥९॥

किं त दृग्न क्षिति तपो यत वेशवाग्नि स्पर्शोत्सवोत्पुलकितागद्वै विभासि ।  
अप्यग्नि सम्भर उरुक्रमयिक्रमाद् वा आहो यराह यपुष परिस्मरणेन वा ॥१०॥

अप्येणपत्न्युपगत प्रियदेह-गात्रैस्  
तन्यन् दृशा सखि सुनिर्घृतिमच्युतो य ।  
कान्तागसगकुचकु कुमराज्जाया  
कुन्दस्रज कुलपतेरिह याति गन्ध ॥११॥

बाहु प्रियस उपधाप गृहीतपद्मो  
रामानुजस्तुलसि कालिकुलैर्मदान्धे ।  
अन्वीयमान इह वस्तरय प्रणाम  
किं धामिनन्दति चरन् प्रणयाग्लोके ॥१२॥

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा यनस्ते  
नून तत्करजस्पृष्टा मिश्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥

इत्युन्मत्तयचो गोप्य कृष्णान्वेषणकातरा ।  
लीला भगवतस्तास्ता इत्यनुचकुस्तदाम्बिका ॥१४॥

कस्याश्चित् पूतनायन्त्या कृष्णायन्त्यपिधत् स्तनम् ।  
तोकायित्वा रुदत्यन्या पदादृष्टुकटायतीम् ॥१५॥

दैत्यायित्वा अद्वारान्यामेका कृष्णामिभावनाम् ।

रिंगयामास काप्यग्नी कर्षन्ती घोषनि स्तनैः ॥१६॥

॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥ ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ ॥ ६६ ॥ ॥ ६७ ॥ ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ ॥ ७३ ॥ ॥ ७४ ॥ ॥ ७५ ॥ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ ॥ ८१ ॥ ॥ ८२ ॥ ॥ ८३ ॥ ॥ ८४ ॥ ॥ ८५ ॥ ॥ ८६ ॥ ॥ ८७ ॥ ॥ ८८ ॥ ॥ ८९ ॥ ॥ ९० ॥ ॥ ९१ ॥ ॥ ९२ ॥ ॥ ९३ ॥ ॥ ९४ ॥ ॥ ९५ ॥ ॥ ९६ ॥ ॥ ९७ ॥ ॥ ९८ ॥ ॥ ९९ ॥ ॥ १०० ॥

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ।  
वत्सायतां हन्ति चान्या तत्रैका तु वक्रायतीम् ॥ १७ ॥

आहूय दुरगा यद्वत् कृष्णस्नमनुकुर्वतीम् ।  
वेणु कण्ठन्तीं क्रीडन्तीमन्या शसन्ति साध्विति ॥ १८ ॥

कस्योचित् स्वमुज न्यस्य चलन्त्याहापराननु ।  
कृष्णोऽह पश्य गतिं ललितामिति तन्मना ॥ १९ ॥

मा भैष्ट घातनर्पाभ्या तत्राण विहित मया ।  
हत्युन्मथैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २० ॥

आरह्यैका पदाऽक्रम्य शिरस्याहापरा नृप ।  
दुष्टाहे गच्छ जातोऽह खलाना ननु दण्डधृक् ॥ २१ ॥

तत्रैकोराच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोऽणम् ।  
चक्षुष्याश्चपिदध्वम् धो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥

यद्दान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ।  
भीता सुदृक् पिधायास्य भेजे भीति रिडम्यनम् ॥ २३ ॥

एवं कृष्ण पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरुन् ।  
न्यवक्षत् धनोद्देशं पदानि परमात्मन ॥ २४ ॥

पदानि व्यतमेतानि नन्दसूनुर्महात्मन ।  
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजज्जगदुशयशदिभिः ॥ २५ ॥

तैस्तै पदैस्तत्पदनीमन्निच्छन्त्योऽग्रतोऽवला ।  
धव्या पदै सुपूक्तानि त्रिलोक्यार्ता समनुग्र ॥ २६ ॥

कस्या पदानि खेतानि याताया नन्दसुनुना ।  
असन्त्यस्तप्रकोष्ठाया करेणो करिणा यथा ॥ २७ ॥

इस कथा प्रसंग के २४, २५ और २६ वें श्लोक के आधार पर ही श्रीकृष्ण सार्वभौम ने अपने पदावदूत काव्य की रचना की है। इसके अतिरिक्त गोपियों का अपनी विरहायस्था में वृन्दावन की लताओं और वृक्षों से कृष्ण के सम्बन्ध में पड़ना भी अनेक दूत काव्यों का मार्गप्रवर्तक है।

श्रीमदुभागवत के दशम स्कन्ध के ४६ वें अध्याय में भी सन्देश काव्य की कुछ रूपरेखा पाई जाती है। कृष्ण अब गोकुल से मथुरा आ जाते हैं और बहुत दिनों तक उन्हें गोकुल जाने का अवसर ही नहीं मिलता है तब वे नन्द और यशोदा के द्वारा

को दूर करने तथा गोपियों को सान्त्वना देने के लिये अपने प्रिय मित्र द्रुप को गोकुल भेजते हैं। यह कथा भागवत में इस प्रकार है—

वृष्णीना प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयित सखा ।  
शिष्यो बृहस्पते साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तम ॥१॥

तमाह भगवान् श्रेष्ठ भक्तमेकान्तिन फरचित् ।  
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपञ्चातिहरो हरि ॥२॥

गच्छोद्धर यज सीम्य पित्रोर्नी प्रीतिमानह ।  
गोपीना मद्वियोगाधि मत्सन्देशैर्मोक्षय ॥३॥

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिका ।  
मामेव दयित प्रेष्टमात्मान मनसा गता ॥४॥

ये त्यक्त लोक धर्माश्च मदर्थे तान् निमर्षहम् ॥५॥

मयि ता प्रेयसा प्रेष्टे दूरस्थे गोकुलसिन्धव ।  
स्मरन्त्योऽग विमुह्यन्ति विरहीत्कण्ठपविह्वला ॥६॥

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्राय प्राणान् कथंचन ।  
प्रत्यागमनसन्देशैर्वत्सल्यो मे मदात्मिका ॥७॥

इत्युक्त उद्धवो राजन् सन्देशं मतुं राहत ।  
आदाय रथमारुह्य प्रययौ मन्दगोकुलम् ॥८॥

इस प्रकार उद्धव के गोकुल पहुँचने पर नन्द और यशोदा उनका बड़ा स्वागत करते हैं। उद्धव भी उन्हें कृष्ण भगवान् का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हैं तथा शीघ्र ही ब्रज में कृष्णजी के पहुँचने का आश्वासन भी देते हैं—

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन ब्रजमच्युत ।  
प्रिय निधास्थने पित्रोर्भगवान् सात्वता पति ॥३४॥

इत्या कस रगमध्ये प्रतीप सर्वसात्वता  
यदाह व समागत्य कृष्ण सत्स्य करोति तत् ॥३५॥

मा विद्यत महामागो द्रव्यथ कृष्णमन्तिके ।  
अन्तर्हृदि न भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥३६॥

इस प्रकार नन्द और यशोदा के शोक को दूर कर उद्धवजी जय मधुरा जाने को उद्यत होते हैं तब कुछ गोपिया उनके रथ को रोक कर खड़ी हो जाती हैं। इसके आगे का कथा प्रसंग दशम स्कन्ध के ४७ वें अध्याय में इस प्रकार है—

त र्थादय कृष्णानुचर व्रजस्त्रिय प्रलम्बबाहु नवकञ्जलोचनम् ।  
 पीताम्बर पुष्करमालिन लसन्मुखारविन्द मणिमृष्ट कुण्टलम् ॥१॥  
 शुचिस्मिता कोऽयमपीदृश्यदर्शन कुतश्च कस्याच्युत वेद भूषण ।  
 इति स्म सर्वा परिग्रहस्तुकास्तमुत्तमश्लोक दाम्बुजाश्रयम् ॥२॥

आनीमस्त्या यदुपते पार्षद समुभागतम् ।  
 भवेद् प्रेषित पित्रोर्मवान् प्रियचिकीर्षया ॥४॥

अन्यथा गोपजे तस्य स्मरणीय न वदमहे ।  
 स्नेहानुबन्धो बन्धूना मुनेरपि सुदुस्त्यज ॥५॥

अन्नेऽर्घ्यकृता मैत्री यावदर्थ विदम्वनम् ।  
 पुम्भि स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनस्स्विय पदपदै ॥६॥

नि स्त्वं त्यजन्ति गणिका अकरण नृपति प्रजा ।  
 अधीनत्रिधा आचार्यमृत्विजो दत्त दक्षिणम् ॥७॥

लगा धीतफल वृक्ष भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ।  
 दग्ध मृगास्तथारण्य आरो भुक्त्वा रता स्त्रियम् ॥ ८ ॥

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतयान्काय मानसा ।  
 कृष्णदूते प्रज याते उद्वेग त्यक्त्वौकिका ॥ ९ ॥

गायन्त्य प्रियकर्माणि रदत्यश्च गतद्विष ।  
 तस्य सस्मृत्य सस्मृत्य यानि कैशोरवालयो ॥ १० ॥

इसी अवसर पर कहीं से एक भ्रमर आ जाता है और कोई गोपी उसे कृष्ण का दूत समझ बैठती है । तदनन्तर यह उस भ्रमर से कहती है —

काचिन्मधुकर दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसगमम् ।  
 प्रियप्रस्थापित दूत कर्तयिष्येदमग्रधीत् ॥ ११ ॥

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाद्भि सपत्न्या  
 कुन्व-विलुलित-माला-कुङ्कुमश्रुमिर्म ।  
 यदनु मधुपतिस्तन्मानिनीना प्रसाद  
 यदुसदसि विडम्ब्यो यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

सदृधरसुधा स्वा मोहिनी पाययित्वा  
 सुमनस इव सद्यस्त्यजेऽम्मान् भगवत् ।  
 परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पदुमा ।  
 ह्यपि यत हतचेता उत्तमश्लोकजटपै ॥ १३ ॥



किमिह बहु पदं गायसि त्वं यदूना  
मधिपतिमगृह्णाणामग्रतो न पुराणम् ।  
प्रियसख सखीना गीयता तत्प्रसंग  
क्षपितकुचरजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टा ॥ १४ ॥

दिवि भुवि च रसाया का स्त्रियस्तददुरापा  
कपटरचिर हास अत्रिजृम्भस्य या स्यु ।  
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का  
अपि च कृष्णरक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्द ॥ १५ ॥

यिस्तु शिरसि पाद वेदभ्यह चाद्रुकारै  
रनुनयश्रिदुपस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।  
स्वरुत इह विस्तृष्टापत्यपत्यन्यलोका  
न्यस्तुजदहतचेता किन्तु सप्रेषमस्मिन् ॥ १६ ॥

मृगयुनि कर्पीन्द्र रियधे लुधधर्मा  
स्त्रियमकृत विरुपा स्त्रीजित कामयानाम् ।  
यलिमपि यलिमश्चाविष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् य-  
स्तदलमसितसख्यैर्हुस्त्यजस्तत्कथार्थ ॥ १७ ॥

यदनुचरित—लीला—कर्ण—शीघ्र—प्रिमुद्-  
सकृददन—विधृत—द्वन्द्व—धर्मा विनष्टा ।  
सपदि गृहकुटुम्ब दीनमुत्सृज्य दीना  
यदथ इह विद्वद्गा भिजुचर्या चरन्ति ॥ १८ ॥

ययमृतमिव जिह्मव्याहृतं धृदधाना  
कुलिकरुतमिनाज्ञा वृष्णरध्वो हरिण्य ।  
ददृशिम् सकृदेतत्तन्मखस्पर्शनीम्—  
स्मररज उपमन्त्रिन् भणयतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥

प्रियसख पुनरागा प्रेयसा प्रेषित किं  
वरय किञ्चनुरन्ध्रे माननीयोऽसि मेऽह्न् ।  
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यज द्वन्द्वपाश  
सततमुगसि सौम्य श्रीर्धू साकमास्ते ॥ २० ॥

अत्र वत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽन्ते  
म्मरति स पितृगेहान् सौम्य धनूश्च गोपान् ।  
क्वचिदपि स कथा न किंकराणां शृणीते  
भुज्जगुस्सुगन्धि मूर्ध्न्यधास्यत कदा नु ॥ २१ ॥

गोपियों के इस कथन के बाद—

अयोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनं लालसा  
सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत् ॥२२॥

इत्यादि श्लोकों में उद्धवजी ने गोपियों की कृष्णमक्ति की वही प्रशंसा की है और अन्त में उन्होंने गोपियों को कृष्णजी का सन्देश भी सुनाया है—

धूयता प्रियसन्देशो भगतीनां सुखावह ।  
यमादायागतो भद्रा अहं भर्तुं रहदकर ॥२३॥

इसके बाद कृष्णजी के शब्दों में ही वे गोपियों को कृष्णजी का सन्देश सुनाते हैं—

भगतीनां प्रियोगो मे न हि सर्वात्मना कश्चित् ।  
यथा भूतानि भूनेषु च पाप्मनिर्जल मही ।  
तथाहं च मनः प्रालम्बतेन्द्रिय गुणाश्रय ॥२४॥

आत्मन्येवात्मनाऽत्मानं सृजे हन्म्यनु पालये ।  
आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥२५॥

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिगिको गुणान्वयः ।  
सुषुप्तिं त्यज्य जाग्रद्धि मांयावृत्तिभिरीयते ॥२६॥

येनेन्द्रियार्थान् ज्ञायेत मृषां त्यज्यरदुत्थित ।  
तन्निरन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्र प्रत्यपद्यत ॥२७॥

एतदन्तः समास्त्रायो योगः साख्यं मनीषिणाम् ।  
त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगा ॥२८॥

यत्प्रहं भगतीनां वै दूरं धर्तं प्रियो दृशाम् ।  
मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुष्ठानकाम्यया ॥२९॥

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मनः आत्रिश्यं धर्तते ।  
स्त्रीणां च न तथा चेत् सन्निकर्षेऽक्षिगोचरे ॥३०॥

प्रप्यानेदं मनः कृन्न् विमुक्तशेषवृत्तिं यत् ।  
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरं न्नामुपैष्यथ ॥३१॥

कृष्णजी के इस सन्देश को सुनकर गोपिया उद्धवजी को कृष्णजी की विभिन्न कथायें और लीलायें सुनाती हैं । उद्धवजी भी कृष्ण की कथाओं और लीलाओं में ही प्रसन्न रहते हुए गोपुल में कई मास बिता कर तथा कृष्णजी के प्रति गोपियों का

सन्देश लेकर मथुरा वापिस लौट आते हैं। श्रीमद्भागवत के इस प्रसंग के आधार पर ही श्री रूपगोस्वामी के उद्धव सन्देश तथा माधवकवीन्द्र के उद्धवदूत की रचना हुई है। उक्त प्रसंग में भ्रमर को भी दूत करिष्य किया गया है। अतः यह प्रसंग स्त्रियाय वाचस्पति के भ्रमरदूत तथा अन्य भृगु दूतों का भी आधार है।

उपर्युक्त प्रसंग के अतिरिक्त भागवत में कुछ अन्य स्थलों में भी सन्देश काव्यों के प्रारम्भिक तरंग दृष्टिगोचर होते हैं। दशम स्कन्ध के ६० वें अध्याय में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन किया गया है। कृष्णजी द्वारकापुरी में बड़े आमोद प्रमोद के साथ अपना जीवन गिताते हैं। शुकदेवजी उनके चरित्र का वर्णन करते हुए कहते हैं -

सुख स्वपुर्वा निरसन् द्वारकाया श्रिय पति ।  
सर्वसम्पत्समृद्धाया जुष्टाया वृष्णि पुनर्व ॥ १ ॥

स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभि ।  
रन्दुकादिभिर्हर्म्येषु, क्रीडन्तीभिस्तडिद्वेषुभि ॥ २ ॥

नित्य सकुलमार्गायाम् मदच्युद्धिर्मतगजै ।  
स्नानकृतैर्मन्दैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलै ॥ ३ ॥

उद्यानोपजनाद्याया पुष्पितद्रुम राजिषु ।  
निर्मिशदुष्टगण्डिगै नादिताया समन्तत ॥ ४ ॥

येमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकधरलभ - ।  
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्जिषु । ५ ॥

प्रोत्फुल्लोत्पल कहलार कुमुदाम्मोजरेणुभि ।  
यासितामलतोयेषु कृजद्—टिज—कुलेषु च ॥ ६ ॥

विजहार विगाह्याम्भो हृदिनीषु महोदय ।  
कुचकु कुमलिसाग परिरन्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥

उपगीयमानो गन्धर्वं मृदङ्गपणाननरान् ।  
वाद्यद्विमुदा वीणा सूतमागधरन्दिभि ॥ ८ ॥

सिन्धुमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभि स्म रेचकै ।  
प्रतिसिञ्चन् त्रिचिकीढे यक्षीभिर्गन्धगाडिव ॥ ९ ॥

ता विलन—यस्त्र—विधुतोरकुच प्रदेश  
सिञ्चन्त्य उद्धृत—वृहत्कवर—प्रसूना ।  
कान्त स्म रेचक—जिह्वायथोपगुह्य  
जातस्मरोत्सवलस—द्वदना विरेजु ॥ १० ॥

कृष्णस्तु तस्तनविपज्जितकु कुमसक्  
 क्रीडामिपद्गधुत—कुन्तल—वृन्द—दन्ध ।  
 सिञ्चन् मुहु युषतिभि प्रतिपिच्यमानो  
 रेमे करणुभिरिवमरति परीत ॥ ११ ॥

नटाना नर्तकीना च गीतवाद्योपजीदिनाम् ।  
 क्रीडालकार वासासि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रिय ॥ १२ ॥

कृष्णस्यैव गिहृतो गत्यालारेक्षितस्मितै ।  
 नर्मत्वेलिपरिष्वङ्गै स्त्रीणा विल हता धिय ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वमु कुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ।  
 क्षिन्तवन्त्योऽरविन्दास तानि मे गदत श्रु ॥ १४ ॥

### मरिष्य ऊर्ध्वः

कुररि दित्तणसि त्व धीननिद्रा न शोपे  
 स्वपिति जगति रात्र्यामीध्वरो गुप्तबोध ।  
 वयमिव सखि कश्चिद् गाढ निर्भिन्न चेता  
 नल्लिन नयन हासोदार लीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

नेत्रे निमीलयसि नलमदृष्टयन्धुस्  
 त्वं रोरर्वासि करण यत चक्राकि ।  
 हास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टा  
 किं वा व्रज स्पृहयसे कवरेण वोढुम् ॥ १६ ॥

भो भो सदा निष्टनसे उदञ्चन्-  
 नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रज्ञागर ।  
 किं वा मुकुन्दापहृतात्मलान्छुन  
 प्राप्ता दशा त्वं च गता दुःखस्याम् ॥ १७ ॥

त्वं यद्यमणा यलप्रताऽसि गृहीत इन्द्रो  
 क्षीणस्तमो न निजदीधितिभि क्षिणोपि ।  
 कञ्चिन्मुकुन्द गदितानि यथा वय त्वं  
 विस्मृत्य भो स्यगितगीरपलक्ष्यसे न ॥ १८ ॥

किन्त्वाचरितप्रस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ।  
 गोविन्दापाग निर्मिन्ने हृदीत्यसि न श्रमम् ॥ १९ ॥

मेघ धीमस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनम्  
 श्रीवत्साङ्कम् वयमित्र भवान् ध्यायति प्रेमवद् ॥  
 अत्युत्कण्ठ शरत्तद्दयोऽस्मद्विधो वाष्पधारा  
 स्मृत्वा स्मृत्वा निस्त्रासि मुहुर्दु खदस्तत्प्रसंग ॥२०॥

प्रियरागपदानि भावसे मृतसन्जीविकयानया गिरा ।  
 करवालि किमद्यते प्रिय वद मे वरिगतकण्ठ कोकिल ॥२१॥  
 न चलसि न वदस्युदार बुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम् ।  
 अपि यत वसुदेव नन्दनाङ्घ्रि वयमित्र कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥२२॥

शुष्यदध्वा कर्शिता यत सिन्धुपत्न्य  
 सम्प्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तु ।  
 यद्वद वय मधुपते प्रणयायलोक-  
 मप्राप्य मुष्टदया पुरकर्शिता स्म ॥२३॥

हस स्वागतमास्यता पित्र पयो ब्रूह्यङ्ग शीरे कथाम् ।  
 दूत त्वा नु विदाम कच्चिदजित स्यस्यास्त उक्त पुरा ॥  
 किं वा नश्चलसीहृद् स्मरति त कस्माद्भजामो वर्य ।  
 दौद्रालापय कामद् धियमृते सेवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।  
 क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमा गतिम् ॥ २५ ॥

उपर्युक्त प्रसंग में महिपियों का उन्मत्त की तरह कुररी, चक्रवाकी, चन्द्रमा, मलयानिल, मेघ, कोकिल, पर्वत, नदियों और हंस को सम्बोधन करना तथा कृष्णजी के सम्बन्ध में उनसे वार्तालाप करना परवर्ती कवियों को विभिन्न सन्देशकाव्य लिखने में अग्रगण्य ही प्रेरक रहा होगा। श्री रूपगोस्वामी के हंसदूत में भागवत का प्रभाव स्पष्ट ही दिखलाई देता है। इस काव्य की न केवल कथा ही प्रत्युत नाम भी भागवत के आधार पर है। परवर्ती कवियों ने चन्द्रमा, पवन, मेघ, कोकिल और हंस जैसे ही सन्देश वाहक अपने काव्यों में नियुक्त किये हैं।

उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त श्रीमद् भागवत में एक और स्थल पर भी दूत द्वारा सन्देश प्रेषण का कार्य पाया जाता है। रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से निश्चित हो जाता है किन्तु रुक्मिणी इस विवाह सम्बन्ध को नहीं चाहती है। वह श्रीकृष्णजी से विवाह करना चाहती है। इसी प्रसंग में विदर्भ से द्वारका को दूत के रूप में एक ब्राह्मण भेजा जाता है। यह कथा इस प्रकार है —

राजाऽसीदु भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ।  
 तस्य पञ्चाभवन् पुत्रा कन्यैका च वरानना ॥१०॥१२॥२१॥

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मगाहुरनन्तर ।  
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषा स्वसा सती ॥२०॥

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपरीर्यगुणधिय ।  
गृहागतैर्गीयमानास्त मेने सदृश पतिम् ॥ २३ ॥

ता बुद्धि लक्ष्मणौ दार्य रूपशील गुणाश्रयाम् ।  
कृष्णश्च सदृशो भार्या समुद्रोद्भू मनो दधे ॥ २४ ॥

यन्ध्रनामिच्छता दातु कृष्णाय अग्निनीं नृप ।  
ततो निवार्य कृष्णद्विद्व रफनी चैधममन्यत् ॥२५॥

तद्वेत्त्यासितापागी यैर्दूर्मी दुर्मना भृशम् ।  
विचिन्त्याप्त द्विज कचित् कृष्णाय प्राहिणोद्भूतम् ॥२६॥

द्वारका स समभ्येत्य प्रतीहारै प्रवेशित ।  
अपश्यदाद्य पुरुषमालीन काचनासने ॥२७॥

दूत के पहुचने पर कृष्णजी उसका स्वागत-सत्कार करते हैं, कुशलमगल पूछते हैं तथा उसके आने का कारण भी जानना चाहते हैं। इसी समय ब्राह्मण धीकृष्ण को रुक्मिणी का सन्देश सुनाता है-

### रुक्मिणी का कथन

भ्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वताते  
निर्विश्य ऊर्णधिवरे हस्तोऽगतापम् ।

रूपं दृशा दृशिमतामयितार्थलाभम्  
त्यय्यच्युते विशति चित्तमपन्नप मे ॥३७॥

का त्वा मुकुन्द मद्दती कुलशील रूप  
विद्यारयो द्रविण धामभिरात्म तुत्पम् ।

धीरा पतिं कुलवती न वृणीत फन्या-  
फाले नृसिंहनरलोऽमनोऽभिरामम् ॥३८॥

तन्मे भयान् खलु धृत पतिरग जाया  
मात्मापिनश्च भरतोऽन्नमो निधेदि ।

मा धीरभागमभिपश्यन्तु चैव आराद्  
गोप्तायुवन्मृगपतेर्गलिमम्युजाह ॥३९॥

पृथेष्ट दत्त नियम व्रत देयता  
गुर्यर्चनादिभिरल भगवान् परेश ।

अ।राधितो यदि गदाग्रज पत्य पाणि  
रुदृणातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥४०॥

श्रोभाणिनि त्यमजितोद्वहने सिदर्मान्  
शुभ्र समेत्य पृतनापतिभि परीत ।

निर्मध्य चैधमगधेन्द्रवल प्रसह्य  
मा राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥४१॥

अन्त पुरान्तरचरभनिहत्य वन्धूस्  
स्यामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।

पूर्वेधुरस्ति महती कुलदेवियाना  
यस्या वहिर्नयधूर्गिरिजामुपेयात् ॥४२॥

यस्याग्नि वक्रजरज स्तपन महान्तो  
घान्धुन्युमापतिरिधात्मतमोऽपहत्यै ।

यहर्ष्यमुञ्जात् न लभेय भवत्प्रसाद  
जह्यामसून् व्रतकृशान्धुतजन्मभि स्यात् ॥४३॥

रून्मिणी के इस सन्देश को सुनकर श्रीकृष्णजी निश्चित समय पर विदर्भ देश में आ जाते हैं और पूर्ण योजना के अनुसार रून्मिणी को पार्वती के मन्दिर से रथ में बैठा कर ले जाते हैं । इस कथानक में दूत द्वारा पूर्णानुराग में सन्देश प्रेषण रूप ही है । इस कथा के आधार पर ही श्री लक्ष्मण-सूरि ने विप्र सन्देश नामक काव्य लिखा है ।<sup>१</sup>

प्रार्थन सस्कृत साहित्य के अतिरिक्त भारतीय लोकगीतों में भी पक्षियों द्वारा पत्र भेजने की परम्परा के उदाहरण पाये जाते हैं । जय विरहिणी दूर देश में गये पति की याद कर उसे मन्देशा भेजने का विचार करती है, तब उसे कागा और अन्य पक्षी ही सहायक दिखलाई पड़ते हैं । वह कहती है -

केकरे हाथ चिठिया लिखि,  
भेजू, केकरे हाथ सन्देश ?

<sup>१</sup> पूर्ण चन्द्रोदय प्रेस, तजीर द्वारा प्रकाशित (१९०६) ।

## कागा के हाथ चिटिया लिखि भेजू, पछी हाथ सन्देश ।

बौद्धों के जातक साहित्य में चिटियों द्वारा सन्देश ले जाने के कई मनोरंजक प्रसंग देखने में आते हैं। कलण्डुक जातक (सं० १२७) में एक तोते की ही कथा है। वाराणसी का एक सेठ अपने कलण्डुक नाम के दास की रोज करने के लिए अपने पालतू तोते को भेजता है। वह तोता भी दास का पता लगाकर अपने सेठ को धापिस सूचना देता है।

कामविलाप जातक (सं० २६७) में श्ली का दृष्ट पाया हुआ एक व्यक्ति आकाश में उड़ते हुए एक कौबे को देखकर प्यारी भार्या के पास उसके द्वारा सन्देश भेजता है। यह कौबे से कहता है—

उच्चैः सफुण्ण हेमान पत्तयान विहंगम,  
यज्जासि खोत्थं वामूरु चिर सोसा करिस्सति ॥

इदं खो सा न जानाति अस्मि सत्तिच ओड्डितम् ।  
सा चएही वाहति कोधं त मे तपति नो इध ॥

एस उप्पल सन्नाहो निम्ब मुत्तीसके कत ।  
कासिकुच्चं मुदु पथं तप्पतु धनं कामिका ॥

कुतनि जातक (सं० ३४३) में एक ऐसे पक्षी की कथा है, जो कोशल के राजा के यहाँ रहता था और राजा को दूत के समान सन्देश पहुँचाया करता था (सा फिर राजा को दूत के हारिका)। उस चिटिया के दो छोटे बच्चे थे। एक बार कोशल राज ने एक पत्र देकर चिटिया को किसी दूसरे राजा के पास भेजा। उसके बाहर चले जाने पर कुछ उपद्रवी लड़कों ने उसके बच्चों को मार डाला। लौटने पर चिटिया ने कोशल राज से उसका बदला लिया और सदा के लिये यहाँ से चली गई।

महाउम्मग नामक एक दूसरे जातक (सं० ४४६) में उत्तर पंचाल की अत्यन्त सुन्दरी राजकुमारी 'पंचाल चण्डी' का हाल मिलता है। पंचाल तथा विदेह के राजाओं में उस समय गहरी शत्रुता चल रही थी। पंचाल के राजा ने अपने शत्रु को नीचा दिखाने के लिये एक नई चाल चली। अपनी सुन्दरी पुत्री की प्रशंसा में उसने पक्षियों से आकर्षक रचनाएँ निर्मित कराईं। इससे बाद सगीत्यों द्वारा कुछ पक्षियों के गले में घटिया पाद्य दी गई। फिर इन पक्षियों को विदेह राजा के राज्य में भेजा गया। यहाँ वे पंचाल राजकुमारी के रूप-सौंदर्य का गायन अत्यन्त मधुर शब्दों में करते तथा यह भी गाते कि राज कन्या विदेहराज पर अनुरक्त है और उसे छोड़ किसी अन्य को बरण नहीं करना चाहती। पक्षियों के यह गीत राजावानी मिथिला



में वहा के राजा ने भी सुने। वह पंचाल की राजकुमारी पर मुग्ध हो गया। इस प्रकार पक्षियों के द्वारा पंचाल नरेश ने मिथिला के राजा को फसाने में सफलता प्राप्त की।

प्राचीन काल में भारतीय पक्षियों की मांग विदेशों में बहुत थी। यूनान और रोम वाले भारतीय तोतों को बहुत पसन्द करते थे। इनके अलावा तीतर, गन्ध, चकोर, याज आदि पक्षी भी भारत से बड़ी संख्या में मंगाये जाते थे। यूनानी लेखकों ने इनकी चर्चा अपने लेखों में बहुत की है।

ईस्वी पहली या दूसरी शती में बनाई गई चोंदी की एक गोल तश्तरी एशिया माइनर के उत्तर पश्चिमी कोने में स्थित लेक्सस नामक स्थान से मिली है। यह इस समय वहा के स्ताम्बूल म्यूजियम में प्रदर्शित है। उस तश्तरी के बीच में भारत लक्ष्मी की सुन्दर मूर्ति बनी है तथा उसके अगल बगल में अनेक भारतीय पशुओं तथा तोता, एवं चकोर पक्षियों का बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रण किया गया है<sup>१</sup>।

उपर्युक्त प्रसंगों से यह विदित होता है कि प्राचीन भारत में पक्षी भी बड़े प्रशिक्षित होते थे तथा विदेशों में भी उनका बड़ा मूल्य मिलता था। समुद्र यात्रा करने वाले मोंतियों के पास कुछ पैसे प्रशिक्षित पक्षी भी होते थे, जो छोड़ देने पर समुद्रतट का पता लगाकर फिर जहाज पर वापस आ जाते थे। इस प्रकार ये दिशा का पथप्रदर्शक का काम बड़ी कुशलता से किया करते थे।

पशु-पक्षियों के दूतकार्य तथा पथप्रदर्शन से भी, समबद्ध, परजती कवियों को उन्हें सन्देशवाहक बनाकर विभिन्न सन्देशकाय लिखने की प्रेरणा मिली हो ।

### सन्देश काव्य का शिल्प विधान

जैसा कि सन्देशकाव्य शब्द से स्वयं स्पष्ट है, इस प्रकार के काव्यों में प्रायः किसी विरही नायक या नायिका के अपनी प्रियसी या प्रिय के पास दूत द्वारा सन्देश

<sup>१</sup> वे 'नवनीत' हिन्दी मासिक मार्च १९५६ में श्रीरूपप्रसाद राजपेयी क्यूरेटर, मथुरा म्यूजियम का 'पशु पक्षियों के दूत कार्य' लेख।

<sup>२</sup> मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत महाकाव्य में भी तोते के मुँह से पद्मावती का रूप वर्णन पाया जाता है। विरहिणी नागमती भी सय जीव जंतुओं और पशु पक्षियों में सहानुभूति की भावना करती हुई कहती है—

पिउ सौ कहैहु सदेसदा, हे भौग, हे काग ।

सो धनि विरहै जरि मुई, तेहि क धुवा इम्ह लाग ।

संस्कृतकथासाहित्य के प्रमुख ग्रन्थ पंचतन्त्र और दितोपदेश में तो पशु पक्षियों को ही नायक मान कर कथाएँ लिखी गई हैं।

भेजे जाने की करपना मी जाती है। सस्कृत साहित्य में विभिन्न प्रकार की रचनाओं के लिये आदर्श स्वरूप किसी ग्रन्थ का ढूँढ निकालना बड़ा ही कठिन है, लेकिन सन्देश का यों क सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। कालिदास का मेघ सन्देश सस्कृत साहित्य का प्रथम सन्देश काव्य है जिसके अनुकरण पर परवर्ती कवियों के द्वारा अनेक सन्देश काव्य लिखे गये हैं। कालिदास ने मेघ सन्देश में काव्यका जैसा विभिन्न तथा कथावस्तु का जैसा तारतम्य रक्खा है, वह इतना मनोवैज्ञानिक तथा व्यवस्थित है कि बाद में सभी काव्यों में उसका पूर्णतया अनुकरण किया गया है।

सन्देश काव्यों में प्रायः दो भाग होते हैं - पूर्व भाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग में सर्वप्रथम नायक अथवा नायिका की विरही रूप में उपस्थित किया जाता है। तदनन्तर दूत का दर्शन, उसका स्वागत, उसकी प्रशंसा तथा उसकी शक्ति का वर्णन किया जाता है। फिर उससे सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना के साथ २ गन्तव्य स्थान तक का मार्ग वर्णित किया जाता है। इस प्रकार मार्ग वर्णन करते २ पूर्व भाग समाप्त हो जाता है। तदनन्तर उत्तर भाग में गन्तव्य नगरी का वर्णन, प्रिय या प्रेयसी के निवासस्थान का वर्णन और फिर नायिका अथवा नायक की विभिन्न चेष्टाओं और विरहावस्थाओं की सभायना मी जाती है। इसके बाद उचित स्थल तथा अवसर देव कर सन्देश सुनाने की प्रार्थना की जाती है। सन्देश के बाद सन्देशगाहक की सत्यता प्रमाणित करने के लिए प्रेमियों के अन्तरंग जीवन की कोई गुप्त घटना भी अभिज्ञान स्वरूप वर्णित की जाती है। अन्त में सन्देश गाहक के प्रति शुभकामना के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

कालिदास ने अपने काव्य में ऐसा ही विषय ग्रम रक्खा है। बाद में और कवियों ने इसी ग्रम का पालन किया है। किसी २ काव्य में कोई बात कम मले हो, लेकिन उपर्युक्त विषय के अतिरिक्त और कोई नवीन वस्तु देखने में नहीं आती है।<sup>१</sup> कालिदास ने अपने सन्देश-काव्य के द्वारा सन्देश काव्यों का एक नमूना ही शिल्प विधान निर्धारित कर दिया जो कि आगे चलकर परवर्ती कवियों के लिए एक आदर्श सा हो गया और उन्हें सन्देश काव्यों में लिखने में मार्ग प्रदर्शन करता रहा।

### सन्देश काव्यों पर प्राचीन साहित्य शास्त्रियों की सम्मति

मेघसन्देश का सस्कृत साहित्य पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा है। सर्व प्रथम भगवद्गीता के मालतीमाधव नाटक में इसका कुछ प्रभाव उपलब्ध होता है। इस नाटक में विरही माधव मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रेयसी मालती के पास भेजता है -

---

<sup>१</sup> सन्देश काव्यों में मंगलाचरण प्रायः नहीं होता है लेकिन किसी किसी कवि ने अपने काव्य में मंगलाचरण भी किया है। यथा उदय-कवि का मयूर-सन्देश और रूपगोस्वामी का हसदूत।

माधव - तत्कमल विपिने प्रियागताह्वर करोमि ।  
(विलोक्य) साधु साधु ।

फलभर परिणाम श्याम जम्बू निवृज  
स्खलन तनु तरंगामुत्तरेण स्रवन्तीम् ।  
उपचितधनमाल प्रौढतापिण्डनील  
धयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाह ॥२४॥

( सरभसमुत्थायोन्मुख वृत्ताञ्जलि । )

कश्चित् सौम्य प्रियसहचरी विद्युर्गालिगति त्वा ?  
आयिर्भूत प्रणय सुमुखाञ्चातका या भजन्ते ?  
पौरस्व्यो या सुखयति मरुत् साधु सगाहनाभि ?  
विभ्रम् विभ्रत् सुरपतिधनुर्लम्प लक्ष्मीं तनोति ॥२५॥

( आकर्ण्य ) अये । अय प्रतिगवभरितकन्दरानन्दितोन्कगडनीलकण्ठफलके  
कानुगन्धिना मन्द्रदुहतेन क्षामनुमन्यते, याउदध्यर्थये । भगवन् ? जीमूत ।

दैवात् पश्ये जगति विचरन्निच्छया मत्प्रिया खेत्  
आशास्यादी तदनु कथयेमांधरीयामरस्थाम् ।  
आशा तन्तु न च कथयताऽत्यन्तमुच्छेदनीय  
प्राणप्राण कथमपि करोत्यायतादया स एक १ ॥२६॥

( मा० मा० नवम अंक )

१ इस स्थल में मेघ सन्देश का भागानुकरण ही नहीं किया गया है, प्रत्युत  
श्लोक स० २५ २६ में मन्दक्रान्ता छन्द का भी प्रयोग किया गया है । श्लोक स० २५  
के 'कश्चित् सौम्य' की मेघसन्देश की

कश्चित् सौम्य ध्वजसिन्धुमिदं वन्तुकुय त्वयामे

इस पंक्ति के प्रारम्भिक पदों से तुलना की जा सकती है तथा श्लोक स०  
२६ की अन्तिम दो पंक्तियाँ मेघसन्देश की

आशागन्ध कुसुम सदृश प्रायशो ह्य गनानाम् ।  
सद्य पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रणद्धि ॥१११॥

पंक्तियों से समानता रखती हैं ।

इसके बाद वीरेश्वर का पाङ्मण्डनशुद्ध-दूत काव्य, जम्बूकवि का चन्द्रदूत तथा धीरि कवि का परमदूत यह काव्य मेघसन्देश के सर्वप्राचीन अनुकरण के रूप में उपलब्ध होत हैं। समभव है कि इन काव्यों से पूर्व भी कुछ सन्देश काव्य लिखे गये हों और वे बड़े लोकप्रिय रहे हों। इस प्रकार के काव्य या तो सर्वथा लुप्त हो गये हैं या वे किसी ग्रन्थ भण्डार में किसी अन्वेषक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ईसवी सातवीं शताब्दी के अन्त या आठवीं के प्रारम्भ में हुए प्रसिद्ध अलकारशास्त्री आचार्य भामह के काव्यालकार से अप्रत्यक्ष रूप से कुछ प्राचीन अन्य सन्देशकाव्यों की सत्ता का भी प्रमाण प्राप्त होता है। आचार्य भामह ने सन्देश काव्यों को कुछ अनुचित ही माना है। अपने काव्यालकार में अयुक्तिमत् दोष का विचार करते हुए उन्होंने लिखा है—

अयुक्तिमद्यथा दूता जलभृन्मास्तेन्दय ।  
तथा भ्रमर-हारीत चक्र वाक् शुकादयः ॥४२॥  
अथाचोऽयुक्तवाचश्च दूरदेशविचारिणः ।  
कथं दौत्य प्रपद्येरन्निति युक्त्या न युज्यते ॥४३॥  
यदि चोक्तकण्ठया यत्तदुन्मत्त इव भाषते ।  
तथा भवतु भूम्नेद सुमेधोमि प्रयुज्यते ॥४४॥

### प्रथमपरि युक्तयुक्तविचार प्रकरण

भामह के इस अयतरण से यह तो निश्चित ही है कि उनके समय में भी कालिदास के मेघसन्देश के अनुकरण पर कई सन्देश काव्य लिखे जा चुके थे। इसके अतिरिक्त यह अयतरण सन्देश-काव्यों के सम्बन्ध में प्राचीन साहित्यशास्त्रियों के दृष्टिकोण को भी सामने रखता है। यों तो किसी अन्य आचार्य ने सन्देशकाव्यों पर स्पष्ट रूप से कहीं भी अपना कोई मत प्रकट नहीं किया है। केवल धारेश्वर भी मौजदेव ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण में प्रबन्ध विषयक युक्ति के प्रसंग में मेघसन्देश का उद्धरण दिया है—

प्रबन्ध व्यापि वस्तु पपत्ते हेतुस्तु प्रबन्धविषया युक्तिर्भवति ।

सा पथा—

धूम ज्योति सलिलमदता सन्निपात पथ मेघ ।

इत्यादि । ॥द्वितीय परिच्छेद, ५१॥

तर्क की दृष्टि से सन्देश काव्यों की सारी योजना ही साहित्यशास्त्रियों के लिए भले ही असंगत प्रतीत हो, लेकिन इन काव्यों के साहित्यिक सौन्दर्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। वस्तुतः इन काव्यों का सौन्दर्य मेघ, परम, चन्द्र, शुक, फोबिन और मयूर जैसे प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण सन्देशवाहकों पर ही निर्भर है।

सन्देश काव्यों के रचयिता भावुक कवि अपने सन्देशवाहकों की अपूर्णताओं से पूर्ण परिचित थे। इसीलिए तो प्रायः प्रत्येक काव्य में उन्होंने किसी न किसी प्रकार सन्देशवाहक की क्षमता और योग्यता का समर्थन किया है। विरह की तीव्रता में मनुष्य का चेतन और अचेतन का क्षान नष्ट हो जाता है और उस अवस्था में अचेतन मेघ, चन्द्र और पवन इत्यादि तथा शुक, कोकिल और मयूर इत्यादि पक्षियों को दूतकार्य में नियुक्त करना साहित्यिक दृष्टि से कुछ भी अनुचित नहीं है। प्रत्युत इसमें कवि की करपना का उत्कर्ष ही है। साहित्यदर्पण में श्री विश्वनाथ ने उन्माद का लक्षण बताते हुए लिखा है—

अधोन्माद

चित्तसमोह उन्मादं काम शोकभयादिभिः ।

अस्थान हास रुदित गीत प्रलपनादिकृत् ॥३१॥१६०॥

इसके बाद उदाहरण-स्वरूप उन्होंने स्वरचित एक श्लोक भी प्रस्तुत किया है—

आतङ्किरेफ भजता भ्रमता समन्ता-

त्प्राणाधिका प्रियतमा मम धीक्षिता किम् ।

( भकारमनुभूय सानन्दम् )

अपे किमोमिति सखे कथयाशु तन्मे

किं किं व्यवस्यति कुतोऽस्ति च कीदृशीयम् ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाद में साहित्य शास्त्रियों द्वारा विरहजन्य उन्माद-वाक्यांश में भ्रमर इत्यादि को सम्योधान करना कुछ भी अनुचित नहीं माना गया है और सन्देश काव्यों को साहित्यिक दृष्टि से दोषपूर्ण भी नहीं कहा गया है।

## सन्देश काव्यों का शृंगारिक स्वरूप

सन्देश काव्यों के विभिन्न पक्षों पर उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य विरह की ही पृष्ठभूमि को लेकर लिखे गए हैं। उन प्राचीन ग्रन्थों में भी जिनमें कि सन्देश काव्यों के आदि तत्त्व पाए जाते हैं, प्रेम अथवा विरह के प्रसंग में ही दूत द्वारा सन्देश प्रेषण का वृत्तान्त उपलब्ध होता है। घटकर्पर काव्य तथा मेघ सन्देश जिनमें कि सन्देश काव्य का प्रारम्भिक और पूर्ण विकसित रूप क्रमशः उपलब्ध होता है, विरह के ही प्रसंग को लेकर लिखे गए हैं। मेघसन्देश के प्रथम तथा अन्तिम दोनों श्लोकों में विरह और विप्रयोग शब्द दृष्टिगोचर होते हैं तथा सारा काव्य विरह के ही वातावरण को प्रस्तुत करता है। मार्गवर्णन के प्रसंग में क्या नदिधा, क्या पथिक वनिताएँ और क्या पर्वत-चोटियाँ सभी विरहिणी सौ

वर्णित की गई हैं। नायिका की विरहावस्था के साथ २ सन्देश कथन में नायक की विरहावस्था भी वर्णित की गई है। इस प्रकार सारा काव्य, नया वाह्य प्रकृति और नया मानवप्रकृति दोनों के विरह वर्णन से ही ओतप्रोत है। वहाँ २ शृंगार के संयोगपक्ष का भी वर्णन पाया जाता है। आगे चलकर पवनदूत, हससन्देश, मयूर सन्देश, फोकिल सन्देश, शुक सन्देश इत्यादि अन्य काव्य भी शृंगार रस के वातावरण में ही लिखे गए हैं। साहित्यशास्त्र में विरह में जितनी भी कामदशाएँ बताई गई हैं, उन सब का सन्देश काव्यों में बड़ा क्रमिक और मनोवैज्ञानिक वर्णन प्राप्त होता है। विरह का जैसा सर्वांगीण वर्णन इन सन्देश काव्यों में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आता है। अतः सन्देश काव्य अपने मूल रूप में शृंगाररसप्रधान ही है।

### जैन सम्प्रदाय में सन्देश काव्यों का धार्मिक रूप

आगे चलकर यह देखने में आता है कि जैन मनीषियों के द्वारा एक तथीन उद्देश्य को लेकर ही कुछ सन्देश काव्य लिखे गए हैं। शृंगार रस के वातावरण में चलने वाली काव्य परम्परा को उन्होंने अपनी प्रतिमा से धार्मिक रूप देकर एक नई दिशा की ओर मोड़ दिया है। त्याग प्रधान जीवन में पूर्ण निश्वास करने वाले जैन मुनियों ने अपनी सन्धुति के उच्च तत्त्वों तथा पार्श्वनाथ और नेमिनाथ जैसे महापुरुषों के जीवनचरित्र अपने सन्देश काव्यों में अंकित किये हैं। इस प्रकार अचलगच्छीप आचार्य मेरुग ने नेमिनाथ के जीवनचरित्र को लेकर अपना जैन मेघदूत लिखा। कई जैन कवियों ने मेघदूत के अन्तिम पदों को लेकर समस्या पूर्ति-स्वरूप कई सन्देश काव्य लिखे हैं। आठवीं शताब्दी से ही ऐसे प्रयत्न आरम्भ हुये हैं। जिनसेन ने मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर तथा पार्श्वनाथजी के जीवनचरित्र को लेकर पार्श्वाम्बुदय काव्य लिखा है। उत्तरकालीन कवियों ने भी ठीक वैसा ही किया है। उन्होंने अपने गुरुओं को विप्रतिपन्न लिखते समय सन्देश काव्यों में अपनी धार्मिक प्रगति का वर्णन किया है। इस प्रकार साहित्यिक सौन्दर्य के साथ २ दार्शनिक सिद्धान्त भी उनके काव्यों में पाये जाते हैं। त्रिपय के अनुसार मन और शील जैसे दूत भी नियुक्त किये गये हैं। सन्देश काव्यों में जैन कवियों का यह प्रयोग सर्वथा मगीन है। जैन कवियों द्वारा रचित प्रमुख सन्देश काव्य निम्न लिखित हैं - विक्रमकवि का नेमिदूत, मेरुग का जैनमेघदूत, चरित्र सुन्दरगणि का शीलदूत, किसी अज्ञात कवि का चेतोदूत, विनयविजयगणि का इन्दुदूत, मेघ विजय का मेघदूतसमस्यातोष तथा विमलकीर्तिगणि का चन्द्रदूत इत्यादि। इन सन्देश काव्यों में न केवल सदाचार और सयम का ही आदर्श स्थापित किया गया है, अपितु परमार्थ तत्त्व का भी निरूपण किया गया है। काव्य की भाषा में होने से यह परमार्थ निरूपण और भी सरस और सुगम हो गया है।

## उत्तरकालीन भक्तिपरक तथा दार्शनिक सन्देशकाव्य

क्रमशः सन्देश काव्य भारतवर्ष में इतने लोकप्रिय हो गये कि उत्तरकालीन कवियों ने रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत के उदात्तचरित नायकों के जीवनवृत्त को लेकर कई सन्देशकाव्य लिखे। आचार्य वेदान्तदेशिक द्वारा रचित इस सन्देश के कथानायक स्वयं मर्यादा पुरोत्तम रामचन्द्रजी हैं। हनुमानजी के सीताजी की खोजकर लका से लौटने के बाद रामचन्द्रजी द्वारा एक हंस के हाथ सीताजी के पास अपने प्रणय सन्देश के भेजे जाने का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार रत्ननाथ पचानन के भ्रमरदूत काव्य में लका से सीताजी का समाचार लेकर हनुमानजी के वापिस लौटने पर विरह-विधुर श्री रामचन्द्रजी द्वारा भ्रमर के हाथ सीताजी के पास प्रणय सन्देश भेजा गया है। श्रीकृष्णनाथनाथ-पचानन भट्टाचार्य के वातदूत में भी सीताजी के द्वारा रामचन्द्रजी के पास वायु को दूत बनाकर अपनी दुःख वार्ता पहुँचाई गई है। इन काव्यों में विरह वर्णन बड़ा सजीव और करुणापूर्ण है। प्रायः यह काव्य रामचन्द्रजी की भक्ति से प्रेरित होकर ही लिखे गये हैं, जैसा कि इन काव्यों के अन्तिम पद्यों से स्पष्ट होता है।<sup>१</sup>

श्री तैलग प्रज्जनाथ ने महाभारत की द्रौपदीचरितकथा के आधार पर मनोदूत नामक अपना सन्देशकाव्य लिखा है। इस काव्य में दुःशासन द्वारा चरित हरण किये जाने के अरसर पर असहाय द्रौपदी अपने मन को ही दूत बनाकर कृष्ण के पास अपना विनय सन्देश भेजती है। कवि ने द्रौपदी की असहायस्थिति एक भक्त की असहायस्थिति के समान ही चित्रित की है तथा श्रीकृष्ण की भक्त-वत्सलता और भक्त-परायणता पर विशेष प्रकाश डाला है। इस काव्य में जनता के लिए कृष्णभक्ति का दिव्य-सन्देश दिया गया है। दूसरे शब्दों में यह काव्य कृष्णपरक एक भक्तिकाव्य ही है। कवि ने काव्य के अन्त में कृष्णभक्ति की बड़ी महिमा बताई है—

१ श्रेयसा प्राप्तिहेतुम् ।

I सीतारामव्यतिकरसखं इस सन्देश रत्नम्

पश्यन्त्वन्तः श्रयणमनघ चक्षुरज्जीव्य सन्त ॥  
( धे० दे० हं० स० २५० )

II शश्वत्कुर्याद् व्यसनजनिताशेषपापोपशान्तिम् ।  
तन्मे कुर्यान्निजगुण कथाराधितो रामचन्द्र ॥ भ्रमरदूत १२५ ॥

III अघ्यथान्ति तव परिहरेच्छानुकम्पी प्रणामा—  
क्षत्र्याशस्तं मम च जनयेद्बद्धमावाद्भिर्मोक्षम् ॥ वातदूत १०० ॥

न तावन्चाचल्यं त्यजति च मनोवृत्तिविहगी ।  
न यावच्छ्री कृष्ण स्मरणरससिन्धो निपतति ॥१६४॥

स कोऽपि श्रीगोपीजन हृदयहारी प्रतिदिनम्  
सदा ध्येयो नान्य' प्लवङ्ग भवाम्भोधि तरणे ।  
यदीयं नामेद जगदधभिदा-दीक्षितमहो  
स्मरन्भक्त' प्रेमामृतरसनिमग्नो विजयते ॥१६६॥

कुछ कवियों ने श्री मद्भगवत के आधार पर भी कई सन्देश काव्य लिखे हैं । इनमें श्री रूपगोस्वामिन् का हसदूत और उद्धव सन्देश, माधवकवीन्द्र का उद्धवदूत तथा श्रीकृष्ण-सार्वभौम का पदाकदूत प्रमुख हैं । इन सब कवियों ने कृष्णभक्ति में ही प्रेरित होकर कृष्ण की जीवनलीलाओं का प्रकारान्तर से अपने काव्यों में वर्णन किया है । श्री रूपगोस्वामिन् ने हसदूत के आदि और अन्त में कृष्ण की वही भाव पूर्ण स्तुति की है <sup>१</sup> तथा उद्धवसन्देश के अन्त में भी श्री कृष्णजी से ससार सागर से पार कर देने की प्रार्थना की है । <sup>२</sup> माधव-कवीन्द्र ने भी अपने उद्धवदूत को कृष्ण के लिये उपहार-स्वरूप अर्पित किया है । <sup>३</sup> श्रीकृष्ण सार्वभौम ने भी श्रीकृष्ण के चरणरुमलों को हृदय में धारण करते हुए अपना पदाकदूत लिखा है । <sup>४</sup>

उपर्युक्त काव्यों में अतिरिक्त कुछ अन्य काव्य भी श्रीकृष्ण की कथा को लेकर लिखे गए हैं । इनमें रुद्रन्याय पद्मानन का पिकदूत तथा भोलानाथ का पान्थदूत विशेषतया उल्लेखनीय हैं । पिकदूत में राधा ने पिक के द्वारा मथुरा में कृष्ण के पास अपना विरहसन्देश भेजा है । पान्थदूत में भी गोकुल से मथुरा जाते हुये एक पथिक की दूत बनाकर कृष्ण के पास किसी गोपी ने अपना सन्देश भेजा है । शतावधान-

- १ दुष्टल विभ्राणो दलित हरि-ताल घुति-हर  
जगपुष्पधेणी रुचि रचिर पादाम्बुजतल ।  
तमालश्यामांगो दरहसित-लीलाचितमुल  
परानन्दामोग' स्फुरतु हृदि मे कोऽपि पुरप ॥ हसदूत १ ॥
- II प्रबन्धोऽयं बन्धोरपिलजगता तस्य सरसा  
प्रभोरन्त सान्द्रा प्रपदलहरौ परलययतु ॥ हसदूत १४२ ॥
- २ स श्रीकृष्णस्तद्वक्त्रस्तारयेहो भगवधिम ॥ उद्धव स १३१ ॥
- ३ राधावन्धोरुपहतमिति प्रेममाध्वीकमेतन्  
निर्विघ्नेन शरणपुटके पुण्यन्त पितन्तु ॥ उद्धवदूत १७० ॥
- ४ शके सायक-वेद षोडशमिती श्रीकृष्णशर्मपित्र  
आनन्द-प्रद-मन्द-मन्दन पद दन्द्धारविन्द हृदि ।  
चक्रे दृष्ट्य पदाकदूत-रचन विद्वन्मतोरञ्जनम् ॥४६॥



कवि के भृगदूत में भी एक गोपी भृग के द्वारा कृष्ण के पास अपना विनयसन्देश भेजती है। इस काव्य में गोपी के कृष्ण प्रेम की उत्कटता व्यक्त की गई है। मानवीय प्रेम के स्थान पर इस काव्य में दिव्य प्रेम का चित्रण किया गया है। वैष्णवों के भक्ति-साहित्य में इस काव्य का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

महाप्रभु श्री चैतन्य के मानुलवर्य श्री विष्णुदास द्वारा रचित मनोदूत भी एक महत्वपूर्ण सन्देश काव्य है। इसमें कवि ने मन के द्वारा श्रीकृष्णजी के पास अपनी करुण प्रार्थना पहुँचाई है। सासारिक प्रलोभनों, कष्टों और दुर्गों में फसे हुये मनुष्यों की असहाय्यस्थिति का इस काव्य में बड़ा कारुणिक चित्र अंकित किया गया है तथा श्रीकृष्णजी की शरण में जाने के लिये मनुष्यों को प्रेरित किया गया है। इस काव्य में भृगार रस का नितान्त अभाव है और शान्त रस की ही पवित्र धारा आदि से अन्त तक प्रवाहित हो रही है। भक्तिपरक सन्देश काव्यों में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है।

यह्य पर श्री गोपेन्द्र नाथ गोस्वामी द्वारा प्रणीत पदपदूत काव्य का उल्लेख करना अनुचित न होगा। इस काव्य में महाप्रभु श्री चैतन्य की धर्मपत्नी श्री विष्णु प्रिया ने अपने घर में स्थित निम्न वृक्ष को दूत बनाकर श्री महाप्रभु के पास मीलशैल पर भेजा है। यह काव्य भी कृष्णभक्ति से ओतप्रोत है। इसी प्रकार दक्षिण भारत के पूर्णसरस्वती द्वारा रचित इस सन्देश में एक भक्त स्त्री द्वारा इस के हाथ श्रीकृष्ण के पास वृन्दावन में अपना सन्देश भेजा गया है। इस काव्य में प्रेम के दिव्यस्वरूप को ही चित्रित किया गया है तथा कृष्ण से भक्ति की ही प्रार्थना की गई है।

भक्तिपरक सन्देश काव्यों के अतिरिक्त कुछ सन्देश काव्य दार्शनिक भी पाए जाते हैं। इस प्रसंग में किसी अज्ञात कवि द्वारा विरचित इस सन्देश विशेषतया उल्लेखनीय है। इस काव्य में माया के बन्धन में फँसकर तथा कर्मों के मोह में पड़कर शिवजी की भक्ति से विरहित किसी पुरुष द्वारा अपने मन रूपी इस को दूत बनाकर शिवलोक में शिवभक्ति के पास भेजा गया है। वेदान्त, योग और शैवदर्शन के सिद्धान्त ही इस काव्य में प्रतिपादित किए गए हैं तथा इस काव्य का विषय नितान्त दार्शनिक ही है।<sup>१</sup>

१ डा० जे० बी० चौधरी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित वीरेश्वर के बाङमगडन गुणदूत काव्य का विषय सर्वथा भिन्न ही है। इस काव्य में कवि ने अपने मृतगुण को दूत बनाकर कालीभक्ति के राजा भीमसेन के पास गङ्गाश्रय पाने के विचार से भेजा है। विषय की दृष्टि से यह काव्य बड़ा महत्वपूर्ण है। काकदूत नामक एक अन्य दूत काव्य में कणगार में पड़ा हुआ ब्राह्मण काक के द्वारा अपनी प्रेयसी कादम्बरी के पास सन्देश भेजता है। नैतिकता की शिक्षा देने के उद्देश्य से समाज पर लिखा हुआ यह एक व्यंग्य काव्य है (दे० एम० कृष्णमाचारीयार का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३६५)।

## सन्देश काव्यों से देश का भौगोलिक तथा सामाजिक परिज्ञान

सन्देश काव्य के शिरप विधान से यह तो स्पष्ट ही है कि इन काव्यों में मार्ग वर्णन भी रहता है। वात्मीकि रामायण में हनुमानजी तथा अन्य वानरों को सीताजी की खोज में किष्किन्धा नगरी से बाहर भेजते समय मार्ग वर्णन किया ही गया है। कालिदास ने अपने सन्देश काव्य में रामगिरि से अलका तक का मार्ग वर्णित कर उत्तरीय भारत का बड़ा भव्य चित्र प्रस्तुत किया है।

प्राचीन उज्जयिनी, विदिशा, दृशपुर तथा दशार्ण देश का प्राचीन घैमघ मेघसन्देश के अतिरिक्त अथ और कहा देखने को मिल सकता है। धामन भट्ट बाण के हसदूत में मलय पर्यंत माला ( आवनकोर पर्यंतमाला ) से अलका तक का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है। इस प्रसंग में ताम्रपर्णी नदी, मदुरा नगर, कावेरी नदी श्रीरगम्, चोलदेश, अरणाचल, काची, कालहस्तिमंदिर, कनकमुखरी नदी, वृष्ण-वेणी नदी, तुगभद्रा, गोदावरी, पचघटी, विन्ध्याचल, सरयू तथा गण्डकी नदी और कौंचपर्वत का बड़ा रमणीय वर्णन किया गया है।

धोयी कवि के पवनदूत में मलय पर्यंत माला से राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयनगर (बंगाल) तक का मार्ग वर्णित किया गया है। मलयपर्वत से पाण्ड्यदेश, ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित उरगपुर, सेतुबन्ध रामेश्वर, काचीपुर, कावेरी, माल्यवान् पर्यंत, पचाप्सर नामक झील, आन्ध्र देश, गोदावरी नदी, कलिग नगरी, विन्ध्यप्रदेश, नर्मदा नदी, ययाति नगरी, सुह्यदेश, त्रिवेणी तदनन्तर विजयपुर—इस प्रकार मार्ग का क्रम बताया गया है। इस काव्य से दक्षिण भारत से बंगाल तक के आने जाने के तत्कालीन नियमित मार्ग का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

वेदान्तदेशिक के इस सन्देश में मात्स्यगन्ध पर्यंत से लका तक के मार्ग का अच्छा परिचय मिलता है। माल्यवान् पर्यंत से अजनाद्रि ( बेंकटाद्रि ), कनकमुखरी नदी, तुण्डीर देश, सत्यव्रत क्षेत्र, काचीपुर, वेगा नदी, हस्तिशैल, चोल देश, श्वेतशैल, कावेरी, श्रीरगधाम, पाण्ड्य देश, वृषभाद्रि, ताम्रपर्णी नदी, मलयचल, समुद्रतट, समुद्र के मध्य में स्थित सुवेल पर्यंत और वहां से फिर लका इस प्रकार मार्ग का निर्देश किया गया है।

लक्ष्मीदास के शुक्सन्देश में रामेश्वरम् से गुलकापुर ( वृष्कणामतिलकम् ) तक के भूभाग का बड़ा अच्छा वर्णन मिलता है। सेतुबन्ध रामेश्वर से समुद्रतट होते हुए ताम्रपर्णी नदी, पाण्ड्य राजाओं की राजधानी मणलूर नगरी ( मानालोर ), सहायपर्यंत, केरलदेश, स्थानन्दूर ( त्रिवेन्द्रम् ), कूपक राजाओं की नगरी कुलपुरी, कोलम्पदेश ( किलान ), पल्लमग्राम ( तिष्ठतल ), विम्बली नगरी ( वेम्पनाट ), पिम्पली राजाओं का स्कन्धाधार, सिन्धु द्वीप ( कतल तुकत ), कुस्ला नदी

( मुत्वात्तपुरम् ), सुब्रह्मण्यमन्दिर, पशुपतिक्षेत्र, चूर्णानदी ( अल्वेय या पेरियार ), केरलराजाओं की राजधानी माहोदयपुरी ( तिरुचिन्कुलम् ) तदनन्तर गुणकापुरी ( तन्क्कणामतिलकम् ) -इस प्रकार रामेश्वरम् से गुणकापुरी तक का मार्गक्रम निर्दिष्ट किया गया है ।

लक्ष्मीदास के शुकसन्देश में केरलदेश के दक्षिण भूभाग का वर्णन पाया जाता है । उद्दण्ड शास्त्री के कोकिल सन्देश में केरल देश के उत्तरीय भाग काची नगरी से जयन्तमगल ( आधुनिक चेन्नमगल ) तक के प्रदेश का वडा ही कवित्वमय वर्णन किया गया है । काची नगरी कम्पा नदी क्षीरसिन्धु नदी ( पालार )-चोलदेश तिरुव क्षेत्र-कावेरी-होसलदेश-लक्ष्मीनारायणपुर-सहायपर्वत-केरलदेश-याडमयी-नदी पुरली ( कोट्टयम् ) के राजाओं की राजधानी-शम्भरदेश कोलदेश-कुन्कुटकोड ( कालीकट )-प्रकाशदेश ( वेट्टत्तुनाट )-श्वेतराण्य ( तृप्रंगोड )-निलानदी-नैमनारायणीय ब्राह्मणों का देश रणखल देश ( पोर्बल )-वृषपुरी ( तृश्वर )-सगमग्राम ( इरिंगा लक्कुट )-कुदम्बवन अजनखलपुरी ( तिरुयचिक्कुल )-चूर्णानदी-जयन्त मगल इस प्रकार काची से जयन्तमगल तक का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है ।

वासुदेवकवि के भृगुसन्देश, विष्णुजात के कोकसन्देश और पूर्ण सरस्वती के इस सन्देश में भी दक्षिण भारत के विभिन्न भूभागों का पर्याप्त वर्णन मिलता है । उदयकवि के मयूर सन्देश में स्यान्न्दूर ( त्रिवेन्द्रम् ) से अन्नकर ( त्रिचूर के पास कोई ग्राम ) तक का भूभाग वर्णित किया गया है । स्यान्न्दूर ( त्रिवेन्द्रम् ) से समुद्र तट होते हुए वरकल क्षेत्र ( वरकल )-वृषक राजाओं की राजधानी कोलम्ब नगरी ( किलान )-यूगुदी प्रदेश ( आधुनिक कायकुलम् ) में स्थित कण्टियूर नगर उल्लस क्षेत्र ( तिरुवल्ल )-भणिकण्ड मन्दिर-वचुला नदी कीर्तिमदग्राम सिन्धु द्वीप ( कटत्तुक्कु )-फुरला नदी-रविपुर-ग्राम ( त्रिपुलीतीर्थ ) शिवमन्दिर-वाल्मिलोणी देश की राजधानी-अभिनवकुदम्बमन्दिर-चूर्णानदी माहोदयपुरी अजनाक्षेत्र ( तिरुचिन्कुलम् )-गुणकापुरी-सगमग्राम कुलीपिनीवापी-वृषपुर ( त्रिचूर ) का शिवमन्दिर श्वेतराण्य ( रेंकिट-न्नुग्राम )-ग्रहक्षेत्र ( ग्रहान्कुलम् ) सितगरसीर ( श्वेतच्छुवतट-अन्नकर )-इस प्रकार एक विस्तृत भू भाग का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है । दक्षिण भारत के प्राचीन नगरों, नदियों तथा विशिष्ट मन्दिरों का यथास्थान इस काव्य में पर्याप्त वर्णन मिलता है । भूगोल के विद्वानों के लिए दक्षिण भारत में लिखे गए यह सन्देश काव्य बड़ा महत्त्व रखते हैं । मध्य काल की भौगोलिक स्थिति के अध्ययन करने में इससे बड़ी सहायता मिल सकती है । इसके अतिरिक्त तत्तत् प्रदेश के प्राकृतिक उत्पादनों का भी हमें इन सन्देश काव्यों से ज्ञान प्राप्त होता है । भौगोलिक परिज्ञान के साथ साथ दक्षिण भारत के धर्म तथा वहा के जनजीवन की भी इन सन्देश काव्यों में तत्तत् स्थान पर झलक पाई जाती है ।

श्री मेघविजय द्वारा प्रणीत मेघदूत-समस्यालेख में औरंगाबाद से द्वीपपुरी

(दीव वन्दर, गुजरात) तक के मार्ग का धड़ा ही सूक्ष्म परन्तु विशद विवरण प्राप्त होता है। नन्दागपुरी (औरंगाबाद) देवगिरि पर्वत तथा नगरी पल्लो पर्वत-तु गिला पर्वत तापी नदी भृगुपुर नर्मदानदी महीनदी सिद्धशैलशशु जय नामक जैन तीर्थ-ह्रीपपुरी (दीववन्दर)-इस प्रकार औरंगाबाद से दीववन्दर तक के मार्ग का क्रम निर्दिष्ट किया गया है। मार्ग में पढ़ने वाले अनेक जैन मंदिरों और तीर्थ स्थानों का बड़ी श्रद्धा के साथ काव्य में वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार विनय विजयगणि के इन्दुदूत में योधापुर (जोधपुर) से सूरत तक का मार्ग वर्णन किया गया है। योधापुर (जोधपुर)-सुवर्णगिरि श्री महावीर और श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिर-जालन्धर नगर (जालोर)-रोहिणी नगरी (सिरोही)-अर्बुद पर्वत (माउन्ट आबू) अचल पर्वत श्रीकुमारपाल राजा का जैन मंदिर-सरस्वती नदी के तट पर स्थित सिद्धपुर-साधमती नदी (सावरमती नदी)-राजद्रुग (अहमदाबाद)-घाटपट्टी नगरी (रहोदा) नर्मदानदी भृगुपुर (भडौंच)-तापी नदी-सूर्यपुर (सूरत)-इस प्रकार जोधापुर से सूरत तक का मार्गक्रम निर्दिष्ट किया गया है। मार्ग में आने वाले विभिन्न जैन तीर्थों तथा मन्दिरों का भी यथास्थान वर्णन किया गया है। इन दो काव्यों के मार्ग वर्णन से यह प्रतीत होता है कि देश के इस भूभाग में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था। राजद्रुग (अहमदाबाद), भृगुपुर (भडौंच) और सूर्यपुर (सूरत) के वर्णन से इन नगरों की तत्कालीन सम्पन्नता का भी परिचय प्राप्त होता है। जैन मुनि पैदा ही यात्रा करते हैं। उनका भौगोलिक ज्ञान किताबी न होकर अनुभवजन्य होता है। इसलिये जैन सन्देश काव्यों का भौगोलिक दृष्टि से भी कम महत्त्व नहीं है।

यगाली कवियों द्वारा रचित कृष्ण सवधी सन्देश काव्यों में यद्यपि भौगोलिक वर्णन अधिक नहीं है, फिर भी इन काव्यों में ब्रजभूमि (गोकुल से मथुरा) का बड़ा रम्य चित्र अंकित किया है। सौरों (उ०प्र०) के निकट रहने वाले शतावधान कवि के भृगदूत में भी ब्रज भूमि का सरस तथा श्रद्धापूर्ण वर्णन पाया जाता है।

इस प्रकार संस्कृत के सन्देश काव्य भारतवर्ष के भौगोलिक अध्ययन में बड़े सहायक हैं। इन काव्यों से देश के विभिन्न भूभागों में आने आने के प्राचीन मार्गों तथा प्राकृतिक दृश्यता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल तथा सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने वालों के लिए यह काव्य नितान्त उपादेय हैं।

### सन्देश काव्यों की भाषा, शैली और छन्द

विप्रलम्भ शृंगार तथा मक्ति भावना को लेकर ही सन्देश काव्य लिखे गए हैं। इन काव्यों में जैसी कोमल और मधुर भाषनाएँ पाई जाती हैं, वैसी संस्कृत

यद्यपि इस प्रकार के प्रणयसन्देश का जन साधारण से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी सहृदय पाठक कवि के विचारों को हृदयगम कर अपने जीवन में उनका सदुपयोग कर ही सकते हैं। स्वयं कालिदास ने ही यत्न के द्वारा मनुष्यमात्र के लिए जीवन के चिरन्तन सत्य की ओर संकेत किया है। प्रायः दुःख के समय मनुष्य धरारा उठता है और हताश हो जाता है। ऐसे ही अवसर पर मेघसन्देश का यह पकिया—

कस्यात्यन्त सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा  
नाचगच्छत्युपरि च वशा चक्रेनेमिक्रमेण ॥

दुःख सागर में निमग्न प्रत्येक मनुष्य के लिए यका साहस देने वाली हैं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि विरह में हर एक बड़ी निराशा, अनुभव करने लगता है और उसे प्रेम का दीप बुझता हुआ सा प्रतीत होने लगता है। ऐसे ही अवसर पर प्रेमदीप में स्नेहधारा बढानेवाली यह पकिया—

स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्यसिनस्ते त्वमोगा-  
दिष्टे यस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभरन्ति ॥

कितनी उपायेय हैं। मेघसन्देश के अतिरिक्त विरहपरक अन्य सन्देश-काव्यों में भी जीवन सम्बन्धी कुछ विशिष्ट अनुभूतियां देखने में आती हैं। कवियों ने अपने सन्देश काव्यों में तत्तत् स्थानों पर बड़े गम्भीर विचार पाठकों के सम्मुख रखे हैं। विरह प्रधान काव्यों से हम यह भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि भोगपरायण जीवन की अपेक्षा निवृत्तिपरायण जीवन कहीं अधिक श्रेष्ठ है। विरह के बाद मिलन का माधुर्य कुछ और ही होता है। किसी कवि ने उचित ही कहा है—

सुख हि दुःखान्यनुभूय शोभते धनान्धकारेध्विष दीपदर्शनम् ।

इसके अतिरिक्त जैन कवियों ने अपने सन्देश काव्यों में निश्चित रूप से पाठकों के लिये कुछ विशिष्ट सन्देश दिया है। शृंगार-परक सन्देश काव्यों का शान्तरस में पर्यवसान कर तथा श्री नेमिनाथ और श्री स्यूलभद्र जैसे महापुरुषों को अपने काव्य का नायक बनाकर इन कवियों ने पाठकों के समक्ष शान्त रस का आदर्श उपस्थित किया है। यह शान्त रस ही है जो मनुष्य को मानवधर्म की स्मृति कराता है। तृष्णाओं का क्षय करता है और मानवहृदय में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना उत्पन्न करता है। ससार में विष्व प्रेम की भावना ऐसे ही साहित्य से फैलती है। जैन मनीषियों के सन्देश काव्यों में इस प्रकार त्याग प्रधान जीवन का सन्देश छिपा हुआ है।

राम तथा कृष्ण के कथानकों को लेकर लिखे गए अन्य सन्देशकाव्य भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। स्वयं आचार्य वेदान्तदेशिक ने अपने काव्य को 'सन्देशरत्न तथा 'श्रेयसा प्राप्तिहेतुम्' बतलाया है। कारण स्पष्ट ही है क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में श्री रामचन्द्रजी और श्री सीताजी के मिलन की कथा का दर्शन किया है। रामचन्द्रजी तथा सीताजी के भक्त पाठकों के लिए उनकी कथा का वर्णन ही कह्याण कारक है।

नृन्यायपचानन का भ्रमरदूत भी रामायण की कथा से सम्बद्ध है। कवि ने इस काव्य को श्री रामचन्द्रजी के गुण कीर्तन के उद्देश्य से ही लिखा है। यह काव्य भी पाठकों को राम भक्ति का प्रेरणा देता है। इसी प्रकार श्रीकृष्णन्याय पचानन का वाः दूत भी राम कथा के कीर्तन द्वारा मोक्ष प्राप्ति का सन्देश बताता है।

भागवत की कथा के आधार पर जो सन्देश काव्य लिखे गए हैं, उनमें भी पाठकों के लिए एक विशिष्ट सन्देश छिपा हुआ है। गोपियों का विरह साधारण विरह नहीं है। दूसरे शब्दों में वह भक्त और भगवान् के विरह का प्रतीक है। कवियों ने कृष्ण कथा को सन्देश काव्यों के रूप में उपस्थित कर न केवल सन्देश-काव्य का शिष्य क्षेत्र ही विस्तृत किया है, प्रत्युत उन काव्यों के द्वारा जनता को कृष्ण भक्ति का अमर सन्देश भी दिया है। शतावधान कवि ने भ्रमरदूत में गोपिका के यह शब्द—

दूर ताउन्स नव महिमा यत्र वेदान्तयाचो  
मन्दायन्ते प्रथिनपसा योगमाज्ञा धिपश्च ।  
पताउन्मे कुतुम्भतसीमूनभासि त्रदग  
कुर्वा नित्य गिष्यविरता वाङ्मन कायवृत्ती ॥११॥

भक्त हृदय की प्रतिध्वनि ही है।

इसी प्रकार त्रिष्णुदास के मनोदूत में भी कृष्ण भक्ति का परित्र सन्देश पाया जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति कवि के यह ध्यान—

ईदामहे नहि महेन्द्रपद् मुकुन्द  
मीरुर्महे चरणदेन्यमुपागतम् वा ।  
आशा पुनस्तत्र पदाञ्जताधिवामाम्  
आशास्महे चिरमिय न कृशा यथा म्यान् ॥८॥

चिन्ता शणोल्लिखितमसहृद्देयसा प्राप्तिहेतुम् ।  
सीतागमननिकरसख हससन्देशरत्नम्  
पदपन्पल्लधधरणमनघचसुरजीय मन्त ॥ ८ ॥ १० ॥

देव त्वदीयचरणां जमधुव्रतेषु  
 त्वत्कीर्तिनामगुणगानद्वद्व्रतेषु ।  
 त्वन्न्यस्तजीवितधनेहितमानसेषु  
 प्रेमार्थवृत्तिषु कदानुचरीकरोमि ॥८६॥

किसी भी भावुक हृदय को भक्ति से परिप्लावित कर सकते हैं। इस प्रकार संस्कृत के सन्देश काव्यों में जन-साधारण के लिए भगवद्भक्ति तथा निवृत्तिपरायण जीवन का सन्देश छिपा हुआ है। राम और कृष्ण के चरित्र के आधार पर सन्देशकाव्यों को लिखकर कवियों ने भारतीय संस्कृति को पाठकों के समक्ष रखने का बड़ा ही स्तुत्य प्रयास किया है। इस प्रकार सन्देशकाव्य न केवल साहित्यिक प्रत्युत सांस्कृतिक दृष्टि से भी बड़े महत्वपूर्ण हैं। भक्ति के क्षेत्र में भी इन काव्यों ने जनता के लिए मार्ग प्रदर्शन किया है। मानसता के लिए जो पवित्र और कल्याण-कर सन्देश इन काव्यों से उपलब्ध होता है, उसकी उपादेयता को कोई भी सहृदय और निष्ठ पाठक अस्थीकृत नहीं कर सकता।



## ❁ द्वितीय अध्याय ❁



### प्रथम भाग—मूल-सन्देश-काव्य

[१] घटकर्पू कवि का सन्देश काव्य ।

[२] कालिदास का मेष सन्देश ।



## घटकर्पर कवि का सन्देश काव्य [वि० स० प्र० शतक]

इस कवि के वास्तविक नाम का कुछ भी पता नहीं है और न इससे जीवन के विषय में ही कुछ ज्ञात है। इसके परिचित सन्देश-काव्य का भी कोई विज्ञेय नाम नहीं मिलता है। अपने काव्य के अन्त में इसने प्रतिज्ञा की है—

भावातुरक्त उन्निता सुरतौ शपेयमालम्ब्यचाम्पु तृपित करकोशपेयम्,  
जीयेय येन कविना यमकै परेण तस्मै बहेयमुदक घटकर्परेण । १२।

अर्थात् जो कोई कवि यमक में मुझे परास्त कर देगा, उसके लिये मैं फुटे घड़े से पानी भरूँगा। सभ्य है कि इस पद्य में आये हुए घटकर्पर शब्द से ही कवि का घटकर्पर नाम पड़ गया हो और उससे काव्य को भी घटकर्पर काव्य कहा जाने लगा हो। विष्णुमादित्य के नवैरत्नों में भी घटकर्पर का नाम आता है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशकुन्तलभट्टघटकर्पर कालिदासा ।  
प्यातो वराहमिहिरो नृपते सभाया रत्नाणि ये वररचिर्नव विक्रमस्य ॥

भारतीय जन श्रुति के अनुसार ईसा के पूर्व विष्णु नामक राजा की स्थिति काल्पनिक नहीं है। हाल की गाथा-सप्तशती में भी दानशील राजा विष्णु का उल्लेख मिलता है—

सषाहणसुहरसतोसिण्ण देन्तेण तुह करे लक्खम्,  
चलणेन विषक्काइत्त चरिअ अनुसिक्खिअ तिरसा ५१४  
सषाहनसुहरसतोपित्तेन ददता तव करे लात्ताम्,  
चरणेन विष्ण्मादित्यचरितमनुशिक्षित तस्या ॥

हाल का समय सिन्धु की राय में सन् ६८ ई० के आस पास है। जब सन् ६८ ई० के ग्रन्थ में विष्णु का नाम पाया जाता है, तब सौ वर्ष पहिले उसकी स्थिति मानने में किसी प्रकार की शका नहीं होनी चाहिये। इसके 'शकारि' होने में भी कोई आपत्ति नहीं दीयती, क्योंकि ईसा से १५० वर्ष पूर्व आने वाले शकों का हाल इतिहास में भी पाया ही जाता है। समयत यही उनका सहारण हो, अतः ईसा से पूर्व विष्णु की सत्ता ऐतिहासिक प्रमाणित होती है। यह विष्णु पौराणिक गाथाओं का कल्पित नायक नहीं है, प्रत्युत इतिहास का सच्चा प्रमाणशाली विजेता है। अतः विष्णु की समा के रत्न घटकर्पर कवि को विष्णु तथा कालिदास के समकालीन मानना ही उचित है। इस प्रकार घटकर्पर को ईसा पूर्व प्रथम शतक अथवा विष्णु प्रथम शतक में ही मानना चाहिए।

१ इस विषय पर विशेष आलोचना के लिये श्री दलदेवप्रसाद उपाध्याय द्वारा रचित 'संस्कृत-कवि चत्वारः' का कालिदास सम्बन्धी लेख देखिए।

मद्रास के टी एस नारायण शाम्भरी ने रत्नावली नाटिका की अपनी भूमिका में एक नवीन विचार प्रतिपादित किया है। उनका कथन है कि घटकर्पर उपनामक धारक कवि का ही वाद में भास नाम हो गया था और यह भास ई० पू० छठी शताब्दी के प्रारम्भ में शासन करने वाले उज्जैन के श्री हर्ष विजयनादित्य का समकालीन था। इस तरह घटकर्पर कवि और भास नाटककार इन दोनों को वे एक ही व्यक्ति मानते हैं। उनके इस विचार के मूलाधार राजशेखर के कविविमर्श तथा हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में पाये गये कुछ उद्धरण हैं। इन उद्धरणों के आधार पर ही वे कहते हैं कि धारक जन्म से धोरी था, उसने कई नाटक लिखे थे तथा उन्हीं में से कोई नाटक राजा हर्ष के हाथ बेच दिया होगा। मम्मट के काव्य प्रकाश में इसी वृत्तान्त का उल्लेख किया गया है। राजशेखर ने अपने कवि विमर्श में लिखा है

भासो रामिलसोमिलौ वरचिश् श्रीसाहसाक कवि  
 मंडो भारविनालिदासतरलास्कन्धस्तुगन्धुश्चय ।  
 दंडी बाणदिवाकरौ गणपति कान्तश्च रत्नाकर  
 सिद्धा यम्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वे वयम् ॥  
 कारण तु कवित्वस्य न सम्पन्नकुलीनता ।  
 धारकोऽपिहि यद्भास करीनामग्रिमोऽभयत् ॥  
 आदौ भासेन रचिता नाटिका प्रियदर्शिका ।  
 निरीर्थस्य रसज्ञस्य कस्य न प्रियदर्शना ॥  
 तस्य रत्नावली नून रत्नमालेन राजते ।  
 दशरूपककामिन्या यत्तस्यत्यन्तशोभना ॥  
 नागानन्द समालोच्य यस्य श्रीहर्षविक्रम ।  
 अमन्दानन्दभरितस्त्वरसभ्यमकरोत्कविम् ॥  
 उदात्तराधवनूनमुदात्त रस गुम्भितम् ।  
 यदुदीच्य भगभूत्याद्या प्राणिन्युर्नाटकानि वै ।  
 शोक पर्यवसानास्य नवाका किरणावली ।  
 माकन्दस्येव कस्यान्न प्रददाति न निर्धृतिम् ॥  
 भासनाटकचक्रोऽपि छेदै लिप्ते परीक्षितुम् ।  
 स्वप्नरासउदत्तस्य दाहकोऽभून्न पात्रक ॥

दंडिन के 'कवि हृदय' पर टीकास्वरूप अपने 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने भी लिखा है—

सम्प्रति परा काष्ठामारूढेनापि भासेन स्वकीयदशा न विस्मृता, यतोऽनेन पूर्व-  
 'चरित घटकर्परेशोदकवहनमेव प्रतिज्ञातम्, प्रतिज्ञा चेन्नामसहमाना परे कवय'  
 परिहसितुमनसो विक्रमार्कसम्यमेव भास तज्जातिस्मारकघटकर्परनाम्ना व्यवज्झ ।  
 क्रमेण च स एव व्यपदेशो भास महाकवेस्तुप्रसिद्धस्तम्पन्न ।

किन्हीं २ ग्रन्थों में घटुर्पर कवि का यह श्लोक—

एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्द्रो निरखेयिनाक  
नून न दष्ट करिनाऽपितन दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ॥  
नीतिसार-१७

मास का ही लिया हुआ माना गया है ।

श्री टी एस नारायण शास्त्री, वकील, हार्डिगेर्ट, मद्रास संस्कृत के पुरन्धर विद्वान् थे । उन्होंने अपनी "Age of Shankar" नामक पुस्तक में अपने पक्ष के समर्थन में निम्न युक्तिया प्रस्तुत की हैं—

१—श्री हर्ष के नाटकों से मिलती जुलती रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है—(क) रत्नावली तथा मालविकाग्निमित्र की कथा यस्तु में पर्याप्त समानता है और यदि मालविकाग्निमित्र को पहिले लिखा हुआ माना जाय तो यह ध्यान कठिन से ही समझ में आती है कि अन्य दो नाटक रच लिखे गये । (ख) श्री हर्ष ने अपने नाटकों की कथा यस्तु कालिदास से नहीं ली है, रिक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों व सम्बन्ध में प्रचलित कुछ परम्पराओं और स्थानों का जो कि धाव में गुणादय की गृहकथा में समाविष्ट कर दिये गये, उपयोग किया है । उसके नाटकों का एक निश्चित पौराण्य भी है तथा कुछ लोकप्रिय ऐतिहासिक व्यक्तियों को लेकर ही यह लिखे गये हैं । (ग) कालिदास ने केवल अपने मालविकाग्निमित्र नाटक में ही अपने पूर्वजों वधियों का उल्लेख किया है । पूर्वजों करियों तथा मेघदूत में उदयन की कथाओं का उल्लेख तभी कुछ सार्थक हो सकता है जबकि इसका यह आशय लिया जाए कि कवि ने उन्हीं ग्रथकारों का उल्लेख किया है जिनका कि यह किसी प्रकार अनुकरण कर रहा है ।

२—यहो यहो लेखकों ने भी मास को महाकवि, महान् नाटककार तथा रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द तथा अन्य नाटकों का रचयिता माना है ।

३—श्री हर्ष से उज्जैन का श्री हर्ष विष्णुमादित्य ही समझा जाना चाहिये न कि कन्नौज का हर्षवर्धन । श्री हर्ष से कन्नौज का हर्षवर्धन समझने के कारण ही विद्वानों द्वारा यह मूल हुई है कि वे इन नाटकों को हर्षवर्धन की समा के बाण या किसी अन्य कवि के द्वारा लिखा हुआ मानते हैं ।

४—उज्जैन का यह श्री हर्ष ई० पू० छठी शताब्दी में ही रहा होगा, जैसा कि प्राचीन ग्रंथों में उसके सम्बन्ध में आए हुए अनेक उल्लेखों से प्रमाणित होता है ।

लेकिन टी एस नारायण शास्त्री के इस मत से हम सहमत नहीं हैं। रोद् का विषय तो यह है कि राजशेखर का कविनिर्माण श्रव कहीं मिलता ही नहीं है और का-यानुशासन में जैसा कि आजन्मल मुद्रित है, उक्त अवतरण पाया ही नहीं जाता है। ससृष्ट साहित्य में कहीं भी भास के हर्ष का राजकवि होने का उल्लेख नहा मिलता है। जब तक कोई और प्रमाण उपलब्ध न हो तब तक कोई निर्णय नहा किया जा सकता। मम्मट के काव्य प्रकाश में कहीं कहीं 'श्री हर्षदिर्वाणादीनामित्र धनम्' यह भी पाठ भेद पाया जाता है। अतः धातक और हर्ष का सम्बन्ध भी पूर्णतया निश्चित नहीं है। यदि घटकर्पर उपनामक धातक कवि कालिदास का सम कालीन अथवा किञ्चित् पूर्व कालीन होता और उसे ही भास कहा जाता, तो कालिदास के समय तक उसका 'प्रद्योतयशसा भाससौमिलकविपुत्रादीनाम्' के मध्य में गिना जाना अधिक सगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि तत्कालीन प्रचार साधनों को देखते हुए 'प्रद्योतयशस्' होने में पर्याप्त समय चाहिये। इसके अतिरिक्त कालिदास ने अपने लिए 'वर्तमानस्य' विशेषण का प्रयोग किया है। इससे निश्चित होता है कि भास कालिदास से बहुत प्राचीन है तथा कालिदास के समकालीन घटकर्पर कवि से उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

इस काव्य के अतिरिक्त नीतिसार नामक एक अन्य लघु काव्य भी घटकर्पर कवि का लिखा हुआ माना जाता है। यह एक शिक्षात्मक काव्य है। इसमें केवल २१ ही श्लोक हैं तथा शूकर और सिंह का संवाद दिया गया है। कालिदास ने कुमार समय के प्रथम सर्ग में हिमालय का वर्णन करते हुए लिखा है—

अनन्तरत्नप्रभस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम् ।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विनाक ॥ १ ३

कालिदास के इस विचार का खडन करते हुए ही घटकर्पर कवि ने अपने नीतिसार में यह लिखा है—

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोरिति यो यभापे ।

नून न दृष्ट कविनाऽपि तेन क्षरिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ॥ १७

इस श्लोक के आधार पर कालिदास और घटकर्पर के परस्परप्रतिस्पर्धी होने का तो निश्चय होता है लेकिन उनके पौर्वापर्य के सम्बन्ध में कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता।

## काव्य का विषय

यह काव्य वर्षा ऋतु के वर्णन से प्रारम्भ होता है। इसमें कोई विशेष कथानक नहीं है। कवि ने वर्षा ऋतु के वर्णन के बाद एक प्रोपितभर्तृ का स्त्री का वर्णन किया है। मेघ संदेश में पति अपनी पत्नी के पास संदेश भेजता है, लेकिन इस का

में पत्नी मेघ के द्वारा अपने प्रिय के पास सन्देश भेजती है। पत्नी के सन्देश में कवि ने उसकी विभिन्न विरहावस्थाओं का चित्रण किया है। इसी की पक्ति को मानसरोवर की ओर उड़ता हुआ तथा पिपासु चातक को जल की पुकार करता हुआ देखकर विरहिणी का भी हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। और वह भी अपने प्रिय के लिये तड़प उठती है—

हसपक्तिरपि नाथ सम्प्रति प्रस्थिता प्रियति मानस प्रति ।  
चातकोऽपि तृपितोऽग्नौ याचते दुःखिता मनसि सा प्रिया चते ॥

विरहावस्था में मेघों का गरजना तथा मयूरों का कलरव सुनकर प्रोषितभर्तृ का का हृदय अस्सन्न हुआ जाता है, फिर भी प्रिय के गुणों का स्मरण कर वह किसी तरह अपने जीवन की रक्षा करती रहती है। कवि ने विरहिणी की चिन्ता और स्मृति का निम्नपदों में कैसा सश्लिष्ट वर्णन किया है—

मेघश्चमुद्रिता कलापिन प्रोषिताहृदय शोक क्षापिन ।  
तोयदागमकृशा च साऽचते दुर्धरेण मदनेन साचते ॥

किं कृपाऽपि तत्र नास्ति कान्तया पादुगडपतितालकान्तया ।  
शोकसागरजले निपातिता त्र्यदुगुणस्मरणमेव पतिताम् ॥१२॥

विरहिणी नायिका की प्रियदर्शन की अभिलाषा यहाँ ऋतु के द्वारा मार्ग के अन्तराद् हो जाने पर और भी उत्कट हो जाती है। वह कहती है—

माणेषु मेघसलिलेन विनाशितेषु कामो धनु स्पृशति तेन विना शितेषु ।  
गम्भीरमेघरसित व्यथिता कदाऽह जह्या सचि प्रियप्रियोगजशोकदाहम् ॥१४॥

प्रकृति की सौम्य रचनाएँ भी विरहावस्था में विरहिणी को दुख ही पहुँचाती हैं। कदम्ब और कुटज के कुसुमों को देखकर नायिका का हृदय और भी व्यथित हो जाता है और वह इन वृक्षों से प्रार्थना करते हुए कहती है —

नयकदम्ब शिरोऽग्रनताऽस्मिते  
वसति ते मदन कुसुमस्मिते ।  
कुटज किं कुसुमैरुपहस्यते  
प्रणिपतामि च दुष्पसहस्य ते ॥१७॥

तद्वर विनताऽस्मिते सदाऽहम्  
हृदयं मे प्रकरोषि किं सदाहम् ।  
तव कुसुमनिरीक्षणेऽपदेऽह  
विमृजेयं सहसैव नीप देहम् ॥१८॥

इस प्रकार इस काव्य में विरह का बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया गया है। भावों के उपयुक्त भाषा तथा छन्दों का प्रयोग कर कवि ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। २२ छन्दों के इस लघु काव्य में वियोगिनी, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के समिश्रणों से बना हुआ उपजाति, वसन्त-तिलका, मालभारिणी, रथोद्धता, पुरिषताम्रा, इन्द्रवज्रा और द्रुतनिलम्बित छन्दों के प्रयोग से भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार व्यक्त होता है। छन्दों के साथ २ यमक अलंकार की भी कवि ने अपने काव्य में अपूर्व छटा दिखाई है। प्रत्येक पद्य में यमक अलंकार का प्रयोग किया गया है तथा सर्वत्र यह अलंकार ऐसी सरलता के साथ प्रयुक्त किया गया है कि इसके कारण कविता में कहीं भी दुरुहता अथवा कृत्रिमता नहीं आने पाई है। यद्यपि उपर्युक्त कतिपय उद्धरणों में भी यमकालंकार का प्रयोग हुआ है, फिर भी विशेष रूप से यमकालंकार का सौन्दर्य पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए कुछ अन्य उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। यथा ऋतु का वर्णन करते हुए कवि लिखता है —

निधित खमुपेत्य नीरदं प्रियहीना हृदयानी रदं ।  
सलिलैर्निहित रज क्षिती रविचन्द्रारपि नोपलक्षितौ ॥१॥

हृता नदन्मेघभयादुद्रवन्ति निशामुत्थान्पथ न चन्द्रवन्ति ।  
नवार्मुमत्ता शिपिनो नदन्ति मेघागमे कुन्दसमानदन्ति ॥२॥

मेघावृत निशि न भाति नभो वितार  
निद्राऽम्युपेति च हरि सुखसेवितारम् ।  
सेन्द्रायुधश्च जलदोऽद्य रसन्निभानाम्  
सरम्ममानहति भूधर-सन्निभानाम् ॥३॥

कवि का यथा वर्णन पाठकों के समक्ष यथा ऋतु का एक चित्र सा उपास्थित कर देता है। यमक अलंकार के साथ २ प्रकृतिवर्णन में भावसौष्ठव भी भरा हुआ है। यमक अलंकार के प्रयोग में अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित करना कवि की केवल गर्वोक्ति ही नहीं है, बल्कि एक कठोर सत्य है। इस लघुकाव्य पर अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं। इसी से इसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

संस्कृत के सन्देश काव्यों में इस काव्य का प्रथम स्थान है। यह काव्य मेघ सन्देश से पहिले का ही लिखा हुआ है। इन दोनों काव्यों की कथा वस्तु एक ही है। केवल इतना ही अन्तर है कि घटकपर्परे के काव्यमें पत्नी पति के पास मेघ को दूत बना कर भेजती है जब कि मेघसन्देश में पति अपनी पत्नी के पास मेघ को दूत बनाकर भेजता है। दोनों काव्यों में यथा ऋतु के प्रारम्भ में ही दूत भेजा गया है। घटकपर्परे काव्य में वियोग का समय बहुत थोड़ा है—वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ केवल तीन

महीने का ही नियोग पाया जाता है। इसके विपरीत मेघसन्देश में पूरे वर्ष भर का वियोग बताया गया है।

दोनों काव्यों में एक प्रमुख भेद यह भी है कि मेघसन्देश में मार्ग-वर्णन के प्रसंग में विभिन्न पर्वतों, नदियों और नगरों इत्यादि का बड़ा सुन्दर वर्णन पाया जाता है, लेकिन घटकर्पर काव्य में इस तरह के मार्ग वर्णन का नितान्त अभाव है।

पंडित प्राणभाय भरस्वामी का विचार है कि सम्भवतः इस काव्य से ही मेघ को दूत बनाकर प्रिय के सन्देश को प्रेयसी के पास पहुँचाने का विचार कालिदास के ध्यान में आया हो। घटकर्पर है भी कालिदास का समकालीन। इसलिये ऐसा होता कोई अस्याभाविक बात नहीं है। इसके विपरीत घटकर्पर के काव्य को मेघसन्देश के बाद का नहीं कह सकते। यदि घटकर्पर मेघसन्देश को देखकर कोई काव्य लिखता, तो उनकी लेखनी से भी हमें अप्रश्य ही एक सर्वांगसम्पन्न सन्देश काव्य प्राप्त हुआ होता। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि घटकर्पर कवि का यह लघुकाव्य सर्वप्रथम सन्देशकाव्य है और सम्भव है कि कालिदास ने भी इस काव्य से कुछ प्रेरणा प्राप्त की हो।

यद्यपि नाम अथवा स्वरूप से यह काव्य सन्देशकाव्य जैसा नहीं प्रतीत होता है, लेकिन वस्तुतः यह सन्देशकाव्य ही है। केवल मेघसन्देश जैसे शिरष विधान की ही इस में न्यूनता है। अतः सन्देश काव्यों के अनुशीलन में इन्से भी सम्मिलित किया गया है। सन्देशकाव्य एक प्रकार का गीतिकाव्य है और २२ श्लोकों के इस लघुकाव्य में विभिन्न मधुर छन्दों का प्रयोग कर कवि ने इस काव्य को एक सफल गीतिकाव्य बना दिया है। इसके अतिरिक्त महाकाव्यों तथा मेघसन्देश काव्य के मध्य में भागपक्ष तथा कलापक्ष दोनों की ही दृष्टियों से यह काव्य एक अन्तर्गम्य कला का कार्य करता है। इस प्रकार संहृत सन्देश काव्यों के विकास के इतिहास में इस घटकर्पर काव्य के महत्त्व को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

यद्यपि कालिदास के मेघसन्देश से घटकर्पर काव्य का प्रभाव कुछ कम ही हो गया है, फिर भी इस काव्य ने उत्तरकालीन संहृत कवियों को बड़ा प्रभावित किया है। इस काव्य के माधुर्य पर मुग्ध होकर दक्षिण भारत में कृष्ण के पुत्र किसी मदन-कवि ने वि. स. १६८० (स. १६७३ ई०) में कृष्णलीला काव्य नामक ८४ श्लोकों का एक लघु काव्य लिखा।<sup>१</sup> इस काव्य में घटकर्पर काव्य के श्लोकों के प्रत्येक चरण को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। इस काव्य के चार श्लोकों में घटकर्पर-काव्य का एक श्लोक पूरा हो जाता है। यथा—

१ दे० इरिष्पा आफ्रिस लाइवरी, वेटालाग आफ संहृत मैनस्क्रिप्ट्स (इंगलिंग प्राग) जिल्द ७, सं० १४६१। आशिक रूप से कलकत्ता से डा० जे० पी० चौधरी द्वारा प्रकाशित।

हृत्मा नन्दो घमयाद् द्रवन्ति नेदुस्तदा तत्र च मन्द्वन्ति ।  
वाधानि नन्दोऽपि ददौ बुभुक्ष्य प्रीतो धन मार्गणमागधेभ्यः ॥ ५ ॥

दधीनि गोप्यो गृहसारवन्ति निशामुखान्यथ न चन्द्रवन्ति ।  
क्षिपन्तु काश्चिच्च तदाचचक्षु सित्का पुनश्चापिदधु स्रचक्षु ॥ ६ ॥

अजेऽवतीर्णे मित्रभाजधीर धरा च पूत पवनोऽतिधीरम् ।  
नवाभ्युमसा शिखिनो नदन्ति प्रभा नभोऽपिस्म घना नदन्ति ॥ ७ ॥

इतीन्द्रिरामन्द्रिमागतोपा न पूतनामाह मित्रो सतोपा ।  
न कोऽपि कोणे तु किमायदन्ति (० नदन्ति ?) मेघागमे कुन्दसमानदन्ति ॥८॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह सन्देशकाव्य एक लोकप्रिय काव्य रहा है साहित्यप्रेमियों ने इस पर अनेक टीकायें लिखी हैं तथा अपनी रचनाओं में इसका अनुकरण भी किया है ।<sup>१</sup>



१ यह काव्य विदेशों में भी प्रकाशित हो चुका है । जी० एम० दर्श के जर्मन अनुवाद सहित बर्लिन से १८२८ ई० में, शेजी के फ्रेंच अनुवाद सहित जर्नल एशियाटिक पेरिस, १८२३, भाग २, पृ० ३६ में प्रकाशित, जर्मन अनुवाद सहित होफर द्वारा Indische Geschichte vol II पृ० १०६ इत्यादि में प्रकाशित तथा वोहलन द्वारा Das Alte Indien, Königsberg, १८३०, ३८० इत्यादि पृष्ठों में प्रकाशित । ईंगलिंग का इण्डिया आफिस कैटालाग, भाग ७, पृ० १४२७ भी देखिए ।



## कालिदास का मेघसन्देश (वि० सं० प्रथम शतक)

कविकुलगुरु कालिदास के नाम से कौन भारतीय परिचित न होगा। न केवल भारतवर्ष में, यदिक ससार में सर्वत्र ही कालिदास का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनकी रचनाओं का अनुवाद भी प्रायः ससार की प्रत्येक सभ्य भाषा में हो चुका है। इतना होने पर भी इस विश्वकवि के काल, जन्मस्थान तथा जीवन वृत्त इत्यादि के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। ईसा के पूर्व की ८ वीं शताब्दी से लेकर ईसा के बाद की ११ वीं शताब्दी तक के विभिन्न समयों में विभिन्न विद्वानों द्वारा इस कवि का समय निर्धारित किया गया है। इसी तरह इस कवि के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़ा मतभेद है।

महाकवि ने अपने सम्बन्ध में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। लेकिन उनके सम्बन्ध में भारत और लंका में कई किम्बदंतियाँ पाई जाती हैं। भारतवर्ष में यह किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि कालिदास लङ्कपन में बड़े मूर्ख थे। पढ़ना लिखना तनिक भी न जानते थे। त्रिष्यान्ती नामक एक विदुषी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में हारकर कुछ पट्टियों ने कालिदास के साथ बड़ी युक्ति से उसका विवाह करा दिया। परन्तु विधायत्री को जब परिदृष्टों की धूर्तता का पता लगा, तब यह बहुत दुःखित हुई और उसने उस मूर्ख को घर से निकाल दिया। कालिदास ने भगवती की बड़ी आराधना की और उन्हीं की कृपा से यह एक प्रतिभाशाली कवि बन गए थे। जब घर लौटे, तब विवाह बन्द पाया। उसके सुलवाने के अभिप्राय से कवि ने

(१) श्री हरप्रसाद शास्त्री का ( Kalidasa, His home, Indian Antiquary XLVII, 264 ) कथन है कि मालवा में दशपुर कालिदास की जन्मभूमि थी। श्री ए सी चटर्जी के अनुसार ( Kalidasa His Poetry and Mind, P 148 ) वज्जैन इसकी जन्मभूमि है। डा० भांड दाजी (Literary Remains, Calcutta) काश्मीर को कालिदास की जन्मभूमि मानते हैं। श्री मधुसूदन के अनुसार ( Home of Kalidasa, Indian Antiquary XLVII 264 ) त्रिदम कालिदास की जन्मभूमि है। हरिद्वर की अवन्तिसुन्दरीकथा का निम्नलिखित श्लोक भी उनके विचार का समर्थन करता है—

लिप्ता मधुद्रवेणसन्धस्य निर्विन्शा गिरः ।

तेनेदं यत्नं वेदम कालिदासेन शोधितम् ॥

कुछ लोग काली की उपासना वाली दन्तकथा तथा इसके नाम के आधार पर इसे पगाली मानते हैं और नदिया में इसकी जन्मभूमि बताते हैं। कुछ मैथिल विद्वान् इसे मिथिलानियासी भी मानते हैं।

संस्कृत में 'अनावृतकपाट द्वार देहि' कहा। त्रिभुषी पत्नी ने तुरन्त उत्तर दिया—'अस्ति कश्चित् धामिशेष'। कवि ने अपनी पत्नी के उत्तरभूत वाक्य के शब्दों से आरम्भ कर तीन काव्य बना डाले। 'अस्ति' शब्द से कुमारसम्भ, 'कश्चित्' से मेघदूत और 'वाग्' से रघुवश बनाया।

लकायसियों में भी कालिदास के विषय में एक किम्बदन्ती अत्यन्त प्रसिद्ध है। कहते हैं कि कालिदास ने सिंधल द्वीप के राजा कुमारदास के जानकीहरण महाकाव्य की रच्य प्रशंसा की थी। इसे सुन कुमारदास ने कालिदास को सिंधल में बुलाया। कालिदास यहाँ गए और राजा के बड़े प्रेमपात्र बन गए। कालिदास, सुनते हैं, एक वैश्या के यहाँ आया जाया करते थे, जिसने कि अपने दरवाजे पर एक यह श्लोकार्थ लिख रखा था—

कमले कमलोत्पत्ति श्रूयते न तु दृश्यते।

कवि ने इसकी पूर्ति इस प्रकार कर दी —

बाले, तव मुद्राम्भोजे कथमिन्द्रीरुहयम् ॥

कहा जाना है कि इसी सुन्दरी के कारण कालिदास मार डाले गए। कुमारदास इस घटना से अत्यन्त विचलित हुए और उन्होंने कवि की चिता पर आत्म-हत्या कर ली। अभी तक सिंधल द्वीप के दक्षिणी भाग में कालिदास की समाधि विद्यमान है। यह दन्त कथा भारत में प्रसिद्ध नहीं है परन्तु सिंधल के अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।<sup>१</sup>

जैसा कि प्रायः देखा जाता है कि जय लोग सत्य को भूल जाते हैं, तब अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हो जाती हैं। यह दन्तकथाएँ कभी कभी सच्ची भी होती हैं और कभी कभी नितांत निराधार भी। कालिदास के सम्बन्ध में भी इस प्रकार अनेक दन्तकथाएँ पाई जाती हैं।<sup>२</sup> बल्लाल के भोज ग्रन्थ में भी कवि के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ वर्णित की गई हैं।

### कवि का समय

पहले कहा ही गया है कि कालिदास के समय के सम्बन्ध में इतिहास के विद्वानों में बड़ा मत भेद है। इन विभिन्न मतों को ही अब हम पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास करेंगे तथा उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कवि के जीवनकाल का निर्णय करने की चेष्टा करेंगे।

१ दे० नन्दर्गकर का कुमारदास, पृ० ४।

२ दे० ग्रियर्सन, Traditions about Kalidasa Journal of the Asiatic Society of Bengal, X LVII, April

## ई० ११ वीं शताब्दी का विचार

किसी समय विद्वानों में यह भी विचार प्रचलित था कि ईसा की ११ वीं शताब्दी में ही कबी कालिदास रहा होगा। इस विचार धारा के समर्थकों का कहना था कि कवि की रचनाओं में मुसलमान का पर्यायवाची यवन शब्द कई स्थान पर आता है और मुसलमान भारतवर्ष में ईसा की ७ वीं शताब्दी में सर्वप्रथम आये। अतः कवि को ११ वीं शताब्दी में मानना अनुचित नहीं है।<sup>१</sup>

उपर्युक्त तर्क के आधार पर ११ वीं शताब्दी को ही प्रधानता दी जाये, इसका कोई प्रयत्न कारण हमें नहीं दिखलाई पड़ता है। दूसरे यवन शब्द का अर्थ भी कुछ निश्चित नहीं है। यह शब्द Ionian (और इसीलिए परम्परया यूनानी) से सम्बन्ध रखता है। यह तो ऐतिहासिक सत्य है ही कि सातवीं शताब्दी से उक्त पहले सिकन्दर के समय में यूनानी लोग भारतवर्ष में आये थे। ११ वीं शताब्दी की विचारधारा के पक्ष में एक दूसरा तर्क यह भी है कि कालिदास धारानगरी के राजा भोज का सभा कवि था और यह राजा धारानगरी में ११ वीं शताब्दी में ही शासन करता हुआ माना जाता है। अतः कालिदास को ११ वीं शताब्दी का मानना अनुचित नहीं है। लेकिन राजा भोज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में भामह के काव्यालंकार से कई उद्धरण दिये हैं तथा भामह ने अपने ग्रन्थ में कालिदास की रचनाओं से भी पद्य उद्धृत किये हैं। भामह का समय ईसवी पाचवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि कालिदास भामह से पूर्व अर्थात् ई० पञ्चम शतक से पूर्व ही रहा होगा।<sup>२</sup>

इसके अतिरिक्त श्री वे० बी० पाठक और श्री जी० बी० वैद्य ने त्रिप्रमोर्षीय नाटक के ई० नवम शतक में किये गए एक कनाडी अनुवाद का भी उल्लेख किया है। इससे भी यह निष्कर्ष निकलता है कि यह नाटक नवम शतक से पूर्व भी रहा होगा।

१ इस विचारधारा के अध्ययन के लिये श्री कृष्णराम महादेव जोगलेकर का श्रुत्यंशमहाकाव्य (भूमिका पृ० २३) देखिये।

२ यदि राजा भोज की सभा में भी किसी कालिदास की स्थिति मानी जाय, तो भी अनुचित नहीं है। लेकिन यह कालिदास रघुवंश, कुमारसम्भव, शकुन्तला, मालविकाग्निमित्र, त्रिप्रमोर्षीयम् और मेघदूत के रचयिता से भिन्न ही रहेगा। ये कालिदास हुए भी कई हैं। भोज ग्रन्थ के आधार पर वेस्टले ने (Asiatic Researches, VIII 243) भी कालिदास को ११ वीं शताब्दी का माना है। लेकिन भोज ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। इसके अतिरिक्त भोज के समय में भी किसी अन्य कालिदास की सत्ता से हमें आपत्ति भी नहीं है।

इस प्रकार कालिदास के ई० ११ वीं शताब्दी में होने का विचार नितान्त निराधार है।

### ईसवी छठी शताब्दी का विचार

श्री आर सी दत्त ई० ५०० और ५५६ के बीच में कालिदास का समय निर्धारित करते हैं<sup>१</sup>। डा० भाउदाजी मातृगुप्त को ही कालिदास मानते हैं और ई० षष्ठ शतक के मध्य में काश्मीर के राजा हर्ष विक्रमादित्य के शासनकाल में ही कालिदास का समय निर्धारित करते हैं<sup>२</sup>। उनकी विचारधारा के आधार सन्तुष्ट में ये हैं—<sup>३</sup>

(१) मातृगुप्त के काश्मीर के राजा होने की बात राजा विक्रम द्वारा कालिदास को अपना आधा राज्य दे देने की जनश्रुति से बिलकुल मेल खाती है।

(२) मातृगुप्त और कालिदास इन नामों के भिन्न होने के आधार पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती, क्योंकि नाम भी प्रायः उपाधियाँ होती हैं और मातृगुप्त को कालीगुप्त या कालिदास माना जा सकता है।

(३) राजतरंगिणी के लेखक ने अन्य रुबियों का, यहाँ तक कि भगवद्गीता का भी, उल्लेख किया है, लेकिन कालिदास का नाम भी नहीं लिया है।

(४) कालिदास काश्मीर अथवा उससे निकट के ही किसी प्रदेश का निवासी था, क्योंकि वहाँ ही के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन उसने मुख्यतया प्रस्तुत किये हैं।

(५) अपनी पत्नी और घर से नियुक्त हो जाने के कारण उत्पन्न अपनी भावनाओं का ही कालिदास ने मेघदूत में सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। पत्नी और गृह से वियुक्त होना मातृगुप्त के सम्यन्ध में भी सत्य माना जाता है।

(६) मातृगुप्त के सम्यन्ध में लिखा गया राजतरंगिणी का २५<sup>०</sup> वा पद्य ठीक वही भाव रखता है जो कि मेघदूत के ११३ वें पद्य में प्रायः उन्हीं शब्दों में पाया जाता है।

१ दे० आर सी दत्त का Civilization in Ancient India भाग १, पृष्ठ ३५।

२ Literary Remains, 18 जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई, जिन्द ७, पृष्ठ १६, २०७ (भाउदाजी कालिदास को सेतु कान्य का लेखक मानते हैं)।

३ दे० आष्टे का Date of Kalidasa (Central Press Bombay) पृ० = 1

(७) विक्रम की मृत्यु के बाद जब प्रवरसेन काश्मीर की गद्दी पर बैठा, तब मातृगुप्त काशी चला गया। इसी समय प्रवरसेन की प्रार्थना से प्राकृत भाषा में उसने सेतु काव्य लिखा। जनश्रुति इस काव्य को कालिदास का ही लिया हुआ मानती है। प्रतापेन्द्र, दण्डिन् और रामशर्मा भी इस काव्य को कालिदास का ही लिखा हुआ मानते हैं। जनश्रुति से यह भी ज्ञात होता है कि प्रवरसेन ने पितस्ता नदी पर नारों का एक पुल बनवाया था। सेतुकाव्य के सम्बन्ध में ह्युएन्त्सांग के समकालीन बाण कवि ने भी हर्ष-चरित में इस प्रकार लिखा है—

कीर्ति प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।

सागरस्य पर पार कपिसेनेय सेतुना ॥

(८) इस प्रकार मातृगुप्त और कालिदास का तादात्म्य निश्चित हो जाने पर कालिदास को प्रवरसेन और विक्रम के साथ ई० ६ठी शताब्दी में ही मानना चाहिये। भाउदाजी का यह भी कहना है कि ह्युएन्त्सांग प्रवरसेन का अतिथि था।

लेकिन भाउदाजी का मत सर्वथा सगत नहीं है। मैक्समूलर ने इस मत को असगत ही बताया है। उसका कहना है कि चीनी यात्री प्रवरसेन का नहीं, बल्कि राजादित्य का अतिथि था। इसके अतिरिक्त राघवभट्ट ने शकुन्तला पर अपनी टीका में मातृगुप्त और कालिदास दोनों को भिन्न व्यक्ति ही मानकर उनके उद्धरण दिये हैं तथा मातृगुप्त द्वारा रचित एक ग्रन्थ का भी भारत के मातृगुप्ताख्य पर टीका के रूप में उल्लेख किया है। जेमेन्द्र ने अपनी औचित्य विचार-वर्चा में भी कालिदास और मातृगुप्त को भिन्न व्यक्ति ही मानकर उनके उद्धरण दिये हैं। पीटरसन ने भी अपने Introduction to सुभाषितारलि, पृ ८६ में मातृगुप्त को मातृगुप्ताचार्य (अलकारशास्त्र का लेखक) माना है। भाउदाजी की विचारधारा का भी एस पी पंडित (रघुवश की भूमिका ६८-७४), श्री नन्दर्गाकर (रघुवश की भूमिका ६८-७६) तथा मैक्समूलर ने भी (इण्डिया, १३३, ३१४) प्रबल युक्तियों के साथ खण्डन कर दिया है।

भाउदाजी के अतिरिक्त मैक्समूलर, फर्ग्युसन, कर्न तथा भाण्डारकार इत्यादि विद्वान् भी अन्य तर्कों के आधार पर कालिदास को ई० ६ठी शताब्दी में ही रचने का प्रयत्न करते हैं। सर्वप्रथम फर्ग्युसन महाशय ने यह सिद्धान्त चलाया कि विप्रम संवत् का प्रयत्न विक्रमादित्य उज्जैन का हर्ष विक्रमादित्य ही था और इसी ने ई० ५४४ में कारूर में म्लेच्छों को परास्त कर अपनी विजय के उपलक्ष्य में विप्रम संवत् चलाया तथा इस संवत् को प्राचीनता का रूप देने के लिये ६०० वर्ष पीछे कर दिया। इस प्रकार कालिदास का समय ई० ५४४ ही ठहरता है।<sup>१</sup>

मैक्समूलर ने फर्गुसन के इस सिद्धान्त को ही लेकर अपनी Renaissance Theory खलाई है<sup>१</sup>। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य तर्क भी उसने प्रस्तुत किये हैं। मेघदूत के एक पद्य पर टीका करते हुए मरिलनाथ ने दिङ्नाग और निचुल को कालिदास का समकालीन बताया है। मैक्समूलर इस प्रमग का उल्लेख करते हुए तथा दिङ्नाग को -यसुवन्धु का शिष्य मानकर कालिदास को ई० छठी शताब्दी का ही मानते हैं<sup>२</sup>। लेकिन यह पद्य कालिदास का ही लिखा हुआ है इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है<sup>३</sup>। यह पद्य स्रेपक भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त डा० मैकडानल का कहना है-दिङ्नाग को यसुवन्धु का शिष्य बताने वाली बौद्ध जनश्रुति भी कुछ प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि १६ वीं शताब्दी तक तो इस जनश्रुति का कहीं पता ही नहीं लगता है। यसुवन्धु का ई० छठी शताब्दी में होना भी चीनी प्रमाणों के विरुद्ध है, क्योंकि चीन के प्रमाणों से यह प्रतीत होता है कि यसुवन्धु के ग्रन्थों का चीनी भाषा में ई० ४०४ में अनुवाद हुआ था। अतः मैक्समूलर का यह तर्क उचित नहीं है।

इसके अतिरिक्त फर्गुसन की विचारधारा भी सत्य नहीं है। मि० फ्लीट की शिलालेख सम्बन्धी खोजों ने फर्गुसन के सिद्धान्त को नितान्त निराधार साबित कर दिया है। उनकी खोजों से यह निष्कर्ष निकलता है। ई० पूर्व ५७ का विषम

१-India, What can it teach us ? 281, 284

२ उपर्युक्त प्रसंग में आया हुआ पद्य इस प्रकार है-

अद्रे भृग हरति पवन किंस्वित्युन्मुखीभि  
हृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धानाभिः॥

॥

द्वीपादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोद्दमुखं खं  
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् । मेघ ॥१॥१८॥

इस पद्य की टीका में मरिलनाथ लिखता है-अग्नेदमप्यर्धान्तरं ध्वनयति रसिको निचुलो नाम महाकवि कालिदासस्य सहाध्यायी परापादितानां कालिदास प्रधानदूषणानां परिहर्ता यस्मिन् स्थाने तस्मात् स्थानात् उदङ्मुखो निर्दोषत्वा दुन्ततमुत्पं पथि दिङ्नागानाम् दिङ्नागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्तविन्धीस पूर्वकाणि दूषणानि परिहरन्-इत्यादि ।

इस प्रसंग में आप्टे महाशय (Date of Kalidasa) का कहना है कि मरिल नाथ की टीका 'किसी जनश्रुति के आधार पर ही है और यह जनश्रुति कालिदास को ई० पू० ५६ में राजा विक्रमादित्य की सेवा का राजकवि बताने वाली जनश्रुति से बढ़कर नहीं हो सकती ।

संवत् ई० १४४ में स्थापित होने के राज्याय मालव संवत् के नाम से ईसा के पूर्व एक शताब्दी अधिक से प्रचलित था। ई० ८०० के लगभग यह संवत् विक्रम संवत् व नाम से चलने लगा। शक (सीरियन) लोग भी छठी शताब्दी में पश्चिमी भारत से नहीं निकाले गये थे। गुप्त राजाओं ने पाचवीं शताब्दी में ही उन्हें पश्चिमी भारत से निकाल दिया था। छठी शताब्दी में जिन प्रदेशियों को भारत से निकाला गया था वे शक नहीं, हण थे और उन्हें निम्नी विजयनादित्य ने नहीं बरिक् विष्णुवर्धन ने परास्त किया था।

इसके अनतिरिक्त २१० हार्नेली इमी यशोधर्मन् को काश्मीर का हर्ष विक्रमादित्य समझते हैं।<sup>१</sup> उनका कहना है कि काश्मीर को जीतकर तथा हणों को भारतवर्ष से निकालकर इसने मालव संवत् का नाम विक्रम संवत् रख दिया। यह मत भी भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि हणों के पराजय करने पर भी यशोधर्मन् को शकाराति नहीं कहा जा सकता और न उसने शिलालेखों से किसी नवीन संवत् के स्थापन की घटना का पता लगता है। अतः डा० हार्नेली का मत भी मान्य नहीं है।

### पाचवीं अथवा चौथी शताब्दी का मत

श्री के० वी० पाठक कालिदास को ई० पाचवीं शताब्दी का मानते हैं। उनका मत है कि कालिदास स्कन्ध गुप्त विजयनादित्य का समकालीन था।<sup>२</sup> पाठक ने धरलभदेय के निम्नलिखित श्लोक के पाठ को प्रामाणिक मानकर अपना मत निश्चित किया है —

विनीताघ्नश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनं  
दुधुवुर्नाजिन स्कन्धारलङ्गकु कुमरेसगन् ॥ रघुनंश ४॥६७॥

तत्र हणानरोधाना भर्तृषु व्यक्तशिवम् ।  
कपोलपाटलादृशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥४॥६८॥

यहां सिन्धु शब्द का स्थान पर धरलभदेय ने 'यन्' पाठ माना है। यन् शब्द पाठक की सम्मति में oxus (आक्सस) का सस्वृतीकरण है। अतः इस पाठ को प्रामाणिक मानने से यह कहना पड़ता है कि रघु ने हणों को आक्सस नदी (जो पामीर से निकल कर धरल सागर में गिरती है) के किनारे उनके भारत आगमन के पहिले

१ दे० Indian Antiquary, 1912, 256 और जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी (१९०३) ४४६ (१९०४) ६३६ तथा (१९०६) १००।

२ दे० के० वी० पाठक द्वारा संपादित मेघदूत की भूमिका तथा इण्डियन एन्टिक्वेरी XLI, 265

ही हराया था। यह घटना ई० ४५५ से पूर्व की हो सकती है, क्योंकि तभी स्कन्दगुप्त के प्रचल प्रताप के सामने हार मान मग्न मनोरथ होकर हूणों को लौटना पड़ा था। स्कन्दगुप्त द्वारा हूणों के पराजित करने का उल्लेख गुप्तसम्भत् १३६ (या ई० ४५५ ४६६) के जूनागढ़ के शिलालेख में भी मिलता है। इस प्रकार रघुवश को कालिदास की प्रथम रचना मानकर पाठक ने उन्हें स्कन्दगुप्त का समकालीन माना है। इसके अतिरिक्त कालिदास को लका के राजा कुमारदास (ई० ५१५ ५२०) का समकालीन मानकर पाठक उन्हें षष्ठ शतक के पूर्वार्ध अथवा ई० ५३० के लगभग मानते हैं।<sup>१</sup> मेघदूत में आप हण दिट्नाग के उल्लेख को भी आधार मानकर पाठक ने कालिदास को ई० पाँचवाँ शताब्दी में ही रखने का आग्रह किया है।

श्री विजयचन्द्र मुजुमदार ने कुछ अन्य प्रमाण देकर कालिदास को सम्राट कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य (ई० ४१४ ४५५) तथा सम्राट स्कन्दगुप्त (ई० ४५५ ४६७) दोनों के समय में माना है।<sup>२</sup> उनका कहना है कि रघुवश के प्रथम सर्ग के पाँचवें श्लोक में<sup>३</sup> महाराजधिराज की उपाधि धारण करने वाले समुद्रगुप्त की ओर कुछ संकेत पाया जाता है। रघुवश के प्रथम सर्ग का बारहवाँ श्लोक सम्राट समुद्रगुप्त के पुत्र सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (ई० ३७८ ४१५) की ओर संकेत करता है। रघुवश के तृतीय सर्ग के २२ वें और ५५ वें श्लोक सम्राट कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य (ई० ४१४-४५५) से सम्बन्ध रखते हैं।<sup>४</sup> इसी प्रकार रघुवश के चतुर्थ सर्ग का ६३ वाँ श्लोक कुमारगुप्त प्रथम की महेन्द्रादित्य उपाधि का संकेत करता है।<sup>५</sup> रघुवश के सप्तम सर्ग के प्रथम श्लोक में स्कन्द शब्द स्कन्दगुप्त (ई० ४५५ ४६७) की ओर संकेत करता है।<sup>६</sup> रघुवश के १६ वें और १६ वें सर्गों में हरे।

१ जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी वयम्बई ४१, ३५।

२ जर्नल एशियाटिक सोसायटी वयम्बई, १९०६, पृ० ७३१

३ आसमुद्रक्षितीशानामानाकरधरत्ननाम् ॥१५॥

४ तदन्यये शुद्धिमति प्रसूत शुद्धिमत्तर।

दिलीप इति राजेन्दुरिन्दु क्षीरनिधाविष ॥१२॥

५ पितु प्रयत्नात्स समग्रसपद शुभे शरीरावयवैर्दिने दिने।

पुपोप वृद्धि हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिन बालचन्द्रमा ॥३॥ ॥२२॥

हरे, कुमारोऽपि कुमारविग्रह सुरद्विपास्फालमर्कशागुली।

भुजे शचीपत्रविशेषकाक्विते स्तनामचिह्न निचखान सायकम् ॥३॥ ॥५५॥

६ गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृप।

धिय महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥४॥ ५५॥

७ अघोपयन्त्रा सदृशेन युक्ता स्कन्धेन साक्षादिव देवसेनाम्।

स्वसारमादाय विदर्भनाथ पुरप्रवेशमिमुषो वभूव ॥७॥ ॥१॥



द्वारा स्कन्दगुप्त के हार जाने के बाद गुप्त साम्राज्य की दयनीय दशा का सचेत मिलता है। मेघदूत १ ४५ श्लोक में भी देवगिरि पर शत्रुओं का दमन करने के लिए रहने वाले स्कन्द पर पुष्पवर्षा करने का मेघ को आदेश दिया गया है। इसमें भी स्कन्दगुप्त की ओर ही संकेत मिलता है। डा० कीथ भी मजुमदार के विचार ही का समर्थन करते हैं।<sup>१</sup> उनका भी कथन है कि रघुवंश के चतुर्थ सर्ग के २६ वें श्लोक में गुप्त राजाओं का उल्लेख है तथा चतुर्थ सर्ग के ही ४२, ४० और ६८ वें श्लोक में चन्द्रगुप्त द्वितीय का उल्लेख पाया जाता है।<sup>२</sup>

आधुनिक पश्चात्य विद्वान् भी कालिदास को किसी न किसी गुप्त सम्राट् के शासन काल में ही मानते हैं। प्राचीन भारत में गुप्त काल (ई० ३००-६५० के लगभग) संस्कृत विद्या तथा भारतीय कलाओं के पुनरुत्थान के लिए प्रसिद्ध है। श्री वी० दे० सिन्घ का विश्वास है कि गुप्त राजाओं में प्रथम दो अथवा तृतीय राजा के शासन काल में ही कालिदास रहा होगा—

सम्राट् चन्द्रगुप्त	II	ई० ३५७-४१३
सम्राट् कुमारगुप्त	I	ई० ४१३-४५५
सम्राट् स्कन्दगुप्त		ई० ४५५-४८०

चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा स्कन्दगुप्त इन दोनों ने ही विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की थी। मि० सिन्घ का कथन है—यह बात असंभव नहीं है कि कालिदास की पहली रचनाएँ ई० ४१३ से पहले चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में लिखी गई हैं और बाद के ग्रन्थ कुमारगुप्त प्रथम (ई० ४१३-४५५) के शासनकाल में लिखे गए हों। हो सकता है कि कालिदास का सारा साहित्यिक जीवन कुमारगुप्त के शासन काल में ही रहा हो। यह बात भी असंभव नहीं है कि स्कन्दगुप्त के राजा होने के बाद भी कालिदास लिखता रहा हो। मि० सिन्घ का विचार है कि तीस साल से अधिक समय तक कालिदास का साहित्यिक जीवन रहा होगा।<sup>३</sup>

शर्कों के द्वारा भारतवर्ष पर किया गया प्रथम आक्रमण स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के द्वारा रोका गया था। लेकिन मन्दसौर के ई० ४७३ के घत्समट्टि के शिलालेख में कालिदास के काव्य का अनुकरण देखकर सिन्घ और मैकडानल आदि विद्वानों ने कालिदास को घत्समट्टि के शिलालेख के समय से प्राचीन अनुमान कर इसको

१ जर्नेल रायल एशियाटिक सोसायटी, १९०६, ४३३ ई

२ स गुप्तमूलप्रत्यन्त शुद्धपाणिपर्याप्तम् ।  
पद्मिधं वलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ॥४॥ ॥२६॥

३ दे० Early History of India पृ० ३०४ एवं सं० १६१४

चन्द्रगुप्त द्वितीय (ई० ४००) का ही समकालिक माना है। ऐसा मानने से रघुवश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु का दिग्विजय समुद्रगुप्त के दिग्विजय से, कुमार सम्भव की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म से, विष्णुसहस्रनाम की रचना, भरिलनाथ के अनुसार कालिदास और बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग का समकालीनत्व, कालिदास के ग्रन्थों से अनुमित उस काल की शान्ति आदि प्रायः सभी बातें संगत हो जाती हैं। इसके सिवाय इन्दुमती स्वर्ण-धर में उपस्थित मगधराज के लिए जो उपमा या विशेषण प्रयुक्त किए गए हैं उनसे भी चन्द्रगुप्त नाम की ध्वनि निकलती है। अन्य प्रमाणों के आधार पर भी बहुत से विद्वानों ने गुप्त राजाओं के काल में ही कालिदास का अस्तित्व माना है।<sup>१</sup>

परन्तु इस मत के अनुसार यह भी आपत्ति उठती है कि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक के लिए ५०० वर्ष पुराने शुंग वंश के अप्रसिद्ध राजा अग्निमित्र को ही नायक क्यों चुना। अश्वघोष और कालिदास के काव्यों में विशेष अनुकरण होने से यदि मान भी लिया जाए कि कालिदास ने ही अश्वघोष का अनुकरण किया तो उसने माससोमिल्लकपिपुत्रादि के साथ अश्वघोष को भी नामोल्लेख क्यों नहीं किया। रघुवश के पाण्ड्य सम्राट् का कालिदास द्वारा ऐसा विस्तृत वर्णन क्यों किया गया है जब कि उस समय पाण्ड्य वंशीय राजाओं की अत्यन्त अवस्था थी और पहलव वंशीय राजाओं का साम्राज्य था। इसके अतिरिक्त कालिदास का गुप्तकाल में माना जाना गुप्त राजाओं के विक्रमादित्य उपाधि धारण करने पर ही अभिहित है। लेकिन गुप्त राजाओं से पूर्व भी मालवा में विक्रम सवत् के प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य का पता इतिहास से चलता है। महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य ने ही ई० पू० ५६ में यह विक्रम सवत् चलाया था। यह बात अथर्वविवाद सिद्ध हो चुकी है।

## ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी का विचार

सर विलियम जोन्स ने निम्नलिखित श्लोक—

धन्वन्तरिस्तपणकामरसिंह शकु धैतालमट्ट घटकर्पर कालिदासा ।  
रयातो वराहमिहिरो वृषते सभाया रत्नानि वै वरकचिर्नय विक्रमस्य ॥

को आधार मानकर ई० पू० ५६ में विक्रम सवत् के संस्थापक राजा विक्रमादित्य ही की समा का राजकवि कालिदास को माना है। हाल की गाथा सप्तशती

१ 'ज्योतिर्मती चन्द्रमसैव रात्रिः,' 'इन्दु नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै' में चन्द्रमा तथा इन्दु शब्द चन्द्रगुप्त के द्योतक बतलाए हैं।

२ मैकडानल का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३२५।

में भी दानशील राजा विक्रम का उल्लेख पाया जाता है ।\* हाल का समय स्मिथ की राय में सन् ६८ ई० के आसपास है । जय ६८ ई० के ग्रन्थ में विक्रम का नाम पाया जाता है तब सौ वर्ष पहले उसकी स्थिति मानने में किसी प्रकार की विप्रपत्ति नहीं हो सकती । विक्रमादित्य ने म्लेच्छों का नाश किया—

म्लेच्छोच्छेदाय वसुधा हरेरद्वयिष्यत ।

शकान्विनाश्य येनादौ कार्यभारो निवेशित ॥

इसके अतिरिक्त मन्दसौर के शिलालेख के रचयिता वासुभाट्ट ने ऋतुसंहार के १,२,१०-११ तथा मेघदूत के ६५ श्लोक\* का अपने शिलालेख में अनुकरण किया है । इससे यह निश्चित ही है कि कालिदास ई० ८७३ से पूर्व ही रहा होगा । बुद्धचरित्र तथा सौन्दरनन्द के लेखक अश्वघोष के काव्यों में कालिदास के काव्यों के समानांतर भाव धाले श्रुत से पद्य दृष्टिगोचर होते हैं । कालिदास ने प्रायः वात्सर्गिक तथा अन्य प्राचीन लेखकों से ही प्रेरणा प्राप्त की है और उसके विचार नितान्त मौलिक हैं । अश्वघोष में कवि की अपेक्षा दार्शनिक का अंश अधिक है । अतः इस बात की अधिक सम्भावना हो सकती है कि अश्वघोष ने ही कालिदास के विचारों का अपनी रचनाओं में उपयोग किया हो । अश्वघोष कनिष्क का समकालीन था । अतः ई० ७८ ही उसका रचनाकाल समझा जाना चाहिये । इस तरह कालिदास भी ई० ७८ पूर्व ही माना जायगा । डा० पीटर्सन भी इसी मत के समर्थक हैं । उनका कथन है—Kālidāsa stands near the beginning of the Christian era, if indeed, he does not overtop it

कालिदास के मालविज्जाग्निमित्र नाटक का नायक अग्निमित्र शुगरशीय पुष्यमित्र का पुत्र है । पतञ्जलि ( ई० पू० १८८ ) ने पुष्यमित्र का अपने महाभाष्य में उल्लेख किया है । सी एम डफ ने (Chronology of India, Westminster) में पुष्यमित्र को ई० पू० १७८ का माना है । अतः उसके पुत्र को नाटक का नायक बनाने से यही सिद्ध होता है कि कालिदास ई० पू० प्रथम शतक में ही हुआ होगा क्योंकि उस समय अग्निमित्र की कथाएँ अवश्य प्रसिद्ध रही होंगी । ई० चतुर्थ या पंचम शतक में होने वाला कालिदास अपने समय के प्रसिद्ध राजाओं को छोड़कर

१ सयाद्वय सुह-रस तोसिष्य देन्तेण तुह करे लब्धम् ।

चलणेन विष्कमादित्य चरित्र अणु सिक्खितं तिससा ॥१॥ ॥६४॥

सयाद्वय सुह रस तोषितन ददता तय करे लाक्षम् ।

चरणेन विष्कमादित्य चरित मनुशिक्षितं तस्या ॥ गाथा का संस्कृतानुवाद ॥

२ Buhler—Die Indischen Inschriften, P 18.

ई० पू० द्वितीय शतक के राजा को अपने नाटक के नायक के रूप में कभी नहीं चुन सता। इसलिए कालिदास की प्रथम सप्त के आरम्भ में (ई० पू० प्रथम शतक) ही मानना आवश्यक हो जाता है।

प्रो० आष्टे<sup>१</sup> का मत है कि अश्वघोष का पुत्र चरित कालिदास के रघुवंश के अनुकरण पर ही लिखा हुआ है।<sup>२</sup> इसके अतिरिक्त आन्तरिक साक्ष्य से भी कालिदास के ई० पूर्व में ही होने का निष्कर्ष निकलता है। शुकुन्तला नाटक में चोरी के अपराध का दण्ड और उत्तराधिकार का नियम हमें प्रमाणस्वरूप प्राप्त होते हैं। प्रिना उत्तराधिकारी के मरने वाले धनमित्र एणिक की मृत्यु की सूचना देने वाला नाटक के छठे अंक का अनंतरण प्रो० आष्टे के अनुसार उस समय का निर्देश करता है जब कि मृत पुरुष को विधवा स्त्री को अपने पति की संपत्ति में कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त होता था। ऐसा समय ईसवी सदी से पहले ही पाया जाता है जब कि मनु, आपस्तम्ब और वसिष्ठ की ही स्मृतियाँ चलती थीं तथा बृहस्पति, शूल्ब, लिखित और याज्ञवल्क्य की स्मृतियाँ नहीं चल पाई थीं। छठे अंक के प्रवेशक में रत्न की चोरी के अपराध में सूचित किया गया मृत्युदण्ड बड़ा कठोर सा प्रतीत होता है। त्रिकमोर्षीय में भी (आत्मनो बधमाहर्ता-४१) ऐसे ही अभिप्राय का प्रसंग और दर्शने में आता है। सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ समय समय पर चोरी का दण्ड घटता रहा है। मनु और आपस्तम्ब बड़े कठोर दण्ड का विधान करते हैं। दण्ड के पक्ष में शुमनि का विकरण तो बाद में बृहस्पति की स्मृति में ही पाया जाता है। उपर्युक्त दो प्रमाणों से यही प्रतीत होता है कि कालिदास बृहस्पति से, जो प्रायः ई० प्रथम शतक में ही माना जाता है, पूर्व के समय में रहा होगा।

इसके अतिरिक्त प्रो० आष्टे ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाया है कि कालिदास के ग्रन्थों में न्यायदर्शन का बिलकुल रुपेत नहीं मिलता है। (रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के प्रथम श्लोक में (अथात्मन शब्दगुण गुणश्च पद विमानेन विगाहमान) आकाश के लिये शब्दगुण शब्द उच्यते आता है, लेकिन यह शब्द साध्य दर्शन से भी लिया हुआ हो सकता है)। इससे भी ये यह निष्कर्ष निकलते हैं कि न्यायदर्शन के विकास से पहले कालिदास रहा होगा।

उपर्युक्त प्रमाणों के अतिरिक्त कविता की शैली भी विचार करने योग्य है। दण्डी, वाण, भजमूर्ति तथा अन्य मध्ययुगीन लेखकों की रचनाओं में लम्बे समास, श्लेष अलंकार तथा अलङ्कृत शैली पाई जाती है। कालिदास की रचनाओं में पैरामी रीति ही अपनाई गई है और लम्बे समास इत्यादि नहीं हैं। इससे भी यह प्रतीत होता है कि कालिदास दण्डी इत्यादि से दया ७ शताब्दी पूर्व ही रहा होगा,

क्योंकि तत्कालीन प्रचार साधनों को देखते हुए साहित्यिक शैली में ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन के लिए इतना समय तो चाहिए ही। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास कम से कम ई० पू० प्रथम शतक में ही रहा होगा।

कालिदास के काल के सम्बन्ध में उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि इस सम्बन्ध में मुख्य विचार दो ही हैं। प्रथम विचार कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक में मानना है। इस विचार को हम भारतीय विचार भी कह सकते हैं, क्योंकि प्रो० ए. बी. कीच के शब्दों में भारतवर्ष के बाहर इस विचार के समर्थक कम ही हैं<sup>१</sup>। दूसरा विचार कालिदास को ई० पंचम या छतुर्थ शतक में मानना है। इस विचार को हम यूरोपियन विचार भी कह सकते हैं, क्योंकि कुछ भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त प्रायः इस विचार के पोषक यूरोपियन विद्वान् ही हैं। यद्यपि समय के दृष्टिकोण से इन दोनों विचारों में बड़ा भेद है, लेकिन कालिदास को उज्जयिनी के किसी राजा विक्रमादित्य के (अनुमानतः प्रथम) शासन काल में मानने में दोनों मत एक हैं। चूंकि ऐतिहासिकों ने गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाला प्रथम सम्राट् भूल से अथ तक मान रखा है, अतः कालिदास को भी वे उसी के आश्रय में मानते हैं। लेकिन चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही प्रथम विक्रमादित्य मानना श्रमाधिक नहीं है। प्रो० के० एम० शेम्मान्जेकर ने इस मत का समूल परीक्षण कर दिया है<sup>२</sup>।

कविता की शैली इत्यादि के बाह्य प्रमाणों से कालिदास का बाण, रत्नकीर्ति तथा मन्दसौर शिलालेख के लेखक धत्सभाट्टि से कई शताब्दी पूर्व होना ही निश्चित होता है। कवि की निश्चित तिथि का कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। लेकिन कवि की धार्मिक प्रवृत्तियाँ तथा उसके ग्रन्थों की भाषा सम्बन्धी विशेषताओं से ई० पू० प्रथम शतक का स्पष्ट संकेत मिलता है। गुप्तवंश के सय राजा वैष्णव थे

१ प्रो० एस. रे ने १९०६-१० में पाए गए एक Bhatta Medallion की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। इस चित्र में आश्रमवासियों को राजा दुष्यन्त और उनके सारथि से हिरण्य न मारने की प्रार्थना करता हुआ बताया गया है। यह दृश्य शकुन्तला नाटक के प्रथम दृश्य से मिलकुल मिलता जुलता है। इस चित्र को गुप्त काल (ई० पू० १८४ से ई० पू० ७२) का माना जाता है। प्रो० रे का कथन है कि कालिदास उस समय से पूर्व ही रहा होगा। अतः इनके मतानुसार ई० पू० द्वितीय शतक कालिदास का समय स्थिर होता है।

२ दे० कीच का संस्कृत नाम, पृ० १४३

३ दे० Journal of Indian History, vol X, Part २ में A Puzzle in Indian Epigraphy नामक लेख।

लेखन कालिदास निश्चित रूप से शैव था। कथा सरित्सागर में विक्रम सवत् का स्थापन विक्रमादित्य तथा उसका पिता महेन्द्रादित्य दोनों ही शिव के परम भक्त बताए गए हैं। सारे मालवा प्रान्त में शैवधर्म का ही अधिक प्रचार दीखता भी है। अतः यही बात अधिक तर्कसंगत प्रतीत होती है कि गिण्डु धर्मावलम्बी गुप्त-राजाओं के शासनकाल में जबकि शैव धर्म का ह्रास हो रहा था, कालिदास को न मानकर शैव धर्मावलम्बी उन राजाओं के शासन काल में जबकि मालवा में शैवधर्म अपने उत्कर्ष पर था, माना जाय।

इसके अतिरिक्त भाषा के प्राचीन प्रयोग भी कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक का ही सिद्ध करते हैं। कुछ प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि कालिदास ऐसे समय में रहा होगा जब पाणिनीय व्याकरण का पूर्ण प्रचार न हुआ होगा। 'त पातया प्रथममास पपात पश्चात्' (रघु० ६ ६१) और 'प्रभ्रशया यो नरुष चकार' (रघु० १३ ३६) इत्यादि प्रयोगों को भरिलनाथ ने अपाणिनीय वतलाया है, लेकिन इनसे पाणिनीय व्याकरण के अतिरिक्त किसी और व्याकरण के भी व्यवहार में रहने का प्रमाण मिलता है। इसके अलावा कुछ वैदिक तथा उत्तर वैदिक रूप भी जैसे वभून्<sup>१</sup> के लिए आस, कामयमान के लिए कामयान,<sup>२</sup> उत्तमान् के लिए दाभ्वान्,<sup>३</sup> त्रियम्यक के लिए त्रियम्यक<sup>४</sup> गुप्तयुग से कई शताब्दी के पूर्व के समझे जाने चाहिए। अतः कालिदास को जिना किसी कठिनार्थ के ई० पू० प्रथम शतक में रखा जा सकता है। यह समय ही ऐसा रहा होगा जब कात्यायन के वार्तिक तथा पतञ्जलि के महाभाष्य से संपन्न पाणिनीय व्याकरण व्यवहार में आता तो होगा, लेकिन इसका पूर्ण प्रभाव स्थिर न हो पाया होगा तथा भाषा में वैदिक या उत्तरवैदिक प्रयोग तब भी कुछ चलते रहे होंगे और पाणिनीय व्याकरण की प्रधानता के साथ साथ दूसरे व्याकरण भी प्रयोग में आते होंगे।

उपर्युक्त धार्मिक तथा भाषा सम्बन्धी प्रमाणों के अतिरिक्त मेघदूत में वत्सराज उद्यन का उल्लेख भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है।<sup>५</sup> अथर्वि दश के वर्णन में कवि ने बड़ा के वृद्ध लोगों को वत्सराज उद्यन की कथाओं में पारंगत बताया है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में उद्यन की

१ तेनास लोक पितृमान् विनेना। रघु० १४ २३ ॥

२ राज्यक्षमपरिहानिराययौ कामयानसमरस्थया तुलाम्। रघु० १६ १०१  
किन्तु यादृशीतिहास निगन्धेषु कामयानानामरस्था अयते। शकु० ३ अरु।

३ दाभ्वान्मुपुत्राशिपमित्युवाच। रघु० १८ ७१॥

४ त्रियम्यक सयमिन ददर्श। कुमा० ३ ४८।

५ प्राप्यावन्ती नुद्यन कथा कोविद ग्राम वृद्धान्।

कथाएँ बड़ी प्रचलित थीं। चूँकि नायक की मृत्यु के बाद उसकी कथाएँ बहुत समय तक नहीं चल सकीं, अतः कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक में ही ज़रफ़े मालव देश में उदयन की बीरता तथा प्रेम की कथाएँ खूब प्रचलित रही हों, मानना युक्तियुक्त है। वत्सराज उदयन तथा कालिदास के मध्य में चार शताब्दी का ही अन्तराल अधिक सगत प्रतीत होता है। यदि कालिदास को ई० चतुर्थ शतक में रखा जाए तो हमें यह मानने को विवश होना पड़ेगा कि नौ शताब्दियों के बाद भी उदयन की कथाएँ जीवित परम्पराओं के रूप में विद्यमान थीं। इसके अतिरिक्त ई० प्रथम शतक में गुणादय ने अपनी बृहत्कथा द्वारा उदयन की कथाओं का देश भर में प्रचार कर दिया था। यदि कालिदास को ई० चतुर्थ शतक में माना जाए तो उस समय उदयन की कथाओं का केवल उज्जयिनी में ही सीमित रहना सगत नहीं प्रतीत होता है। बृहत्कथा के अन्तिम परिच्छेद में कालिदास के आश्रयदाता राजा विक्रमादित्य का ही वर्णन किया गया है। यदि कालिदास की रचनाओं में उसके आश्रयदाता की प्रच्छन्न रूप से कुछ भी प्रशंसा या उसकी रचनाओं में उसके पात्रों तथा तत्कालीन नायक में सादृश्य बताने वाले कुछ भी प्रसंग हो सकते हैं, तो उन सबका बृहत्कथा में वर्णित प्राचीन विक्रमादित्य से ही सम्बन्ध हो सकता है न कि इस उपाधि के धारण करने वाले किसी उत्तर कालीन राजा से। इन प्रशस्तियों और प्रसंगों में कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनसे कालिदास का गुप्त राजाओं के समय में मानने का विचार बिरबुल छिन्न भिन्न हो जाता है।

सर्ग प्रथम विप्रमोर्धशीय नाटक को ही लीजिए। कालिदास ने अपने आश्रयदाता के नाम को अमर बनाने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिये ही इस नाटक का वह नाम रखा है। कथा सरित्सागर के अनुसार विक्रमादित्य के पिता का नाम महेन्द्रादित्य था। इन्द्र के अन्य वृत्त से विशेषणों में से महेन्द्र का ही बार बार नाटक में प्रयोग कुछ रहस्य प्रकट करता है। इससे यह स्पष्ट ही प्रकट होता है कि युवावस्था में अपने आश्रयदाता वृद्ध राजा महेन्द्र का श्रद्धागान करने के लिये यह शब्द बार बार प्रयुक्त किया गया है<sup>१</sup>। इन्द्र के पर्यायवाची अन्य शब्दों का भी प्रयोग इस नाटक में देखने में आता है लेकिन महेन्द्र शब्द की आवृत्ति विशेषतया उल्लेखनीय है। कुमारसम्भार के तृतीय सर्ग तथा शकुन्तला के ७ वें अंक में इन्द्र का प्रसंग होने पर भी इन्द्र के किसी भी नाम की आवृत्ति देखने में नहीं आती है। चूँकि महेन्द्र शब्द प्रायः गद्य वाक्यों में ही आया है, अतः यह स्पष्ट ही है कि जान बूझकर इस शब्द का प्रयोग किया है न कि छन्द की वियशता से। महेन्द्र शब्द की आवृत्ति के अतिरिक्त नाटक में कुछ ऐसे वाक्य भी पाए जाते हैं जो कि पङ्के महत्वपूर्ण हैं—

१ प्र० अं० में ६ बार, सू० अं० के विष्णुसप्तम में ४ बार और अन्तिम अं० में बार बार महेन्द्र शब्द आया है।

- १ किं प्रभाव दर्शिता महेन्द्रेण । प्र० प्र०
- २ दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान् । प्र० अ०
- ३ युक्तमेतत् । अनुत्सेक बलु विक्रमालकर । प्र० अ०
- ४ सदृश पुरुषान्तरविदो महेन्द्रस्य । त० अ०
- ५ प्रथम पुत्र दर्शनेन विस्मृताऽस्मि । इदानीं महेन्द्र सकीर्तनेन स्मारितः समयो मम हृदयमायासयति । प० अ०
- रम्भे । उपनीयता स्वयं महेन्द्रेण सभृत कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेक । प० अ०

उपयुक्त वाक्यों में नीसरा वाक्य तो निश्चित रूप से विक्रमादित्य की प्रशंसा में है ही । प्रथम और चतुर्थ उज्जयिनी के तत्कालीन राजा तथा विक्रमादित्य के पिता महेन्द्र की प्रशंसा में है । द्वितीय वाक्य में पिता और पुत्र के संध का स्पष्ट निर्देश करते हुए कवि ने यह कहने का प्रयास किया है कि विक्रम के गौरव अथवा धीरकार्यों से महेन्द्र को शान्ति मिलती है । पाचवें वाक्य में तो कवि ने जान बूझकर ही महेन्द्र शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि पिछले श्लोक के अनुसार पुरन्दर शब्द की ही आवृत्ति प्रसंग में उपयुक्त बैठती है । इसके अतिरिक्त इस वाक्य में कवि ने बृद्ध महेन्द्र के राज्यभार छोड़ने का भी वक्ता सूचन संकेत किया है । वास्तव में यह नाटक बृद्ध राजा महेन्द्र के राज्यभार से अयकाश प्राप्त करने तथा विक्रम के राज्याभिषेक होने के अवसर पर लिखा गया प्रतीत होता है<sup>१</sup> । उपयुक्त छठे वाक्य में इसका भी कुछ संकेत स्पष्ट दीख रहा है । कथा सरित्सागर में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि वि० संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य का पिता महेन्द्रादित्य वास्तव में राज्यभार से मुक्त होकर वाराणसी चला गया था—

ततश्च यौवनस्थ त विलोक्य प्राज्यविक्रमम् ।  
अभिपिच्य सुत राज्ये यथानिधि जनप्रियम् ॥  
महेन्द्रादित्यमृपति समार्यासचिवोऽपि सः  
वृद्धो वाराणसीं गत्वा शरणं शिष्रिये शिवम् ॥

कथा १८० ५६ ६० ॥

- १ अर्थात् पुत्रिणामग्र्य सुपुत्रेण तथामुना ।  
पौलोमीसभवेनेव जयन्तेन पुरन्दर ॥ ५ ॥ १४ ॥
- २ पुत्र के युवक हो जाने पर बृद्ध राजा का राज्य छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार कर लेना कवि का अपना आदर्श रहा है । तुलना कीजिए रघु० प्र० ८, तृ० ७०, सप्तम ७१ इत्यादि ।



इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि ने विजयनगरीय नाटक में अपने आशयदाता राजाओं ( महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य ) के जीवन की भी घटनाओं का दिग्दर्शन कराया है। इसी प्रकार रघुनश में भी कुछ ऐसे कथा प्रसंग हैं जो महेन्द्र और विक्रम के जीवन की घटनाओं से नितान्त मिलते जुलते हैं। दिलीप का पहिले पुत्र हीन होना तथा बाद में वशिष्ठ की गौ के वरदान से पुत्र को प्राप्त करना ठीक उसी तरह है जिस प्रकार कथासरित्सार में महेन्द्रादित्य का पुत्रहीन होना और शिवजी की कृपा से विक्रमादित्य का प्राप्त करना वर्णित किया गया है। इसके बाद रघु की शिक्षा, अनेक राजकुमारियों से उसका विवाह, राजा होने के बाद उसका दृढ़ तथा उदार शासन और अन्त में उसका दिग्विजय यह सब घटनाएँ कथासरित्सागर में वर्णित विक्रमादित्य के जीवन की घटनाओं से इतनी समानान्तर हैं कि पाठक को निश्चय हो कर यह मानना पड़ता है कि कालिदास ने अपने वर्तमान सरलक के जीवन का चित्र प्रस्तुत करने के लिए ही पौराणिक रघु का चरित्र चुना है। तुलना के लिए दोनों ग्रन्थों से कुछ पद्य उद्धृत किए जाते हैं —

- १ वक्ष्ये च तन्नामिदं वसु राजनि वर्पति । १ जनाय शुद्धान्तचराय शसन्ते  
सौमत्तव्यतिरेकेण नास्ति नञ्चिदनीश्वर ॥ कुमार जन्मामृत समिताक्षरम् ।  
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपते  
शशिप्रभं हृत्प्रभुमे च चामरे ॥
- २ उपनीतस्य विद्यासु गुरवो हेतुमात्रताम् । २ विनिन्युरेन गुरवो गुरुप्रियम्  
पयुस्तस्याप्रभासेन प्रादुरासन्त्यय तु ता ॥ अरन्त्यपक्षाश्च यमूद्युतप्रत  
क्रिया हि यस्तुपहिता प्रसीदति ॥
- ३ आज्ञान्तोपनतैर्दत्ता कन्या रूपवतीर्द्वयै । ३ नरेन्द्रकन्यास्तमराप्य सत्पति  
आजहार पिता तस्य तास्ता श्रिय इधापरा ॥ तमोनुद दक्षमुता इषायमु ।
- ४ सोऽपितद्विक्रमादित्यो राज्यमासाद्यपैतृकम् । ४ सराज्य गुरुणा दत्त प्रतिपद्याधिकं यमो  
नमो भास्यानिरारंभे राजा प्रतपितु क्षमात् ॥

( कथा १, १, ४०, ४४, ४८, ६१ )

( रघु ० वृ ० १६, २६, ३३, अ ० ११ )

उपर्युक्त प्रमाणों से यह बात बड़ी सरलता से समझ में आ सकती है कि कालिदास के सरलक महेन्द्र और विक्रम ही उज्जयिनी के प्राचीन और प्रसिद्ध राजा थे। गुप्त राजाओं ने तो उनके नाम की उज्जयिनी में अपनी राजधानी बनाने के बाद उपाधिस्वरूप ग्रहण किया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अर विक्रमादित्य नाम उपाधिस्वरूप धारण किया तो उसके पुत्र कुमारगुप्त ने विक्रमादित्य व पिता महेन्द्रादित्य का ही नाम उपाधिस्वरूप धारण कर लिया। गुप्त राजाओं ने यह उपाधि किसी उद्देश्य से ही धारण की होगी। और यह

उद्देश्य यही हो सकता है कि उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाने के बाद गुप्त राजाओं ने यह देखकर कि मालव देश की जनता के हृदय में वहाँ के प्राचीन राजाओं महेन्द्र और विक्रम की स्मृतियाँ अब भी जागृत हैं तथा जनता उनके नाम को हर समय याद करती है, स्वयं भी जनता को प्रसन्न करने के लिए यह नाम उपाधि स्वरूप धारण किये हों। यद्यपि चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रथम के सम्वन्ध में प्राचीन राजाओं के नाम का कम विपर्यस्त हो गया है, लेकिन स्कन्दगुप्त के पुत्र विक्रमादित्य उपाधि धारण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त राजाओं की यह प्रेरणा उपाधियाँ थी। अतः यह बात निनान्त निःसंदिग्ध है कि कथामरिसागर में वर्णित राजा ही कालिदास के स्रक्षक हैं, न कि गुप्त वंश का कोई राजा। गुप्त राजाओं का परमभाग्य तथा वैष्णव होना तो इतिहासप्रसिद्ध ही है। अतः शीघ्र मत का मानने वाला कालिदास शैवमतानुसारी मालव के प्राचीन राजाओं महेन्द्र और विक्रम के स्रक्षण में ही हो सकता है। कथामरिसागर में विक्रम स्वतः के स्थापक राजा का दूसरा नाम विपमशील दिया हुआ है न कि चन्द्र या स्कन्द। इस प्रकार के नाम की भिन्नता से भी विक्रम स्रक्ष के स्थापक राजा के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं रह जाना चाहिये। अतः आयुधर्म के स्रक्षक, पौराणिक गाथाओं के अमर गायक, विदेशियों को भारतभूमि से निकालने वाले तथा स्रक्षित विद्या का उत्थान करने वाले और ई० पू० १९ में उज्जयिनी में शासन करने वाले प्राचीन और अधिक यशस्वी विक्रमादित्य को ही कालिदास का स्रक्षक माना जाना चाहिए<sup>१</sup>।

कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक में रहे जाने का विचार शताब्दियों से चली आती हुई भारतीय-जनाश्रुति से तो मेल खाना ही है, आन्तरिक तथा बाह्य प्रमाण भी इसके पक्ष में हैं तथा इस विचार के मान लेने पर बृहत्कथा जैसे कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों के समय में भी परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

अब हमें यह देखना है कि कालिदास को अन्य विभिन्न समयों में मानने वाले विचार कहाँ तक भ्राम्यक और असत्य हैं। कालिदास को गुप्त राजाओं के समय में माननेवाले लोगों ने गुप्त धातु तथा इससे उभने वाले शब्दों, रघुवंश तथा कुमारसम्भार में कुमार शब्द का प्रयोग और कुमार सम्भार के नाम को आधार मानकर कालिदास को गुप्तराजाओं के समय में रखने का आग्रह किया है। लेकिन किसी ग्रन्थ में कोई पद या वाक्यांश

१ प्रो० रे० एम० शेम्सादनेकर (सेन्ट जेवियर्स कॉलेज, बम्बई) ने (जर्नल आफ दि यूनिवर्सिटी, आफ बाम्बे, १, पृ० २३०-२८६) में प्रबल प्रमाणों और तर्कों के आधार पर कालिदास को ई० पू० १६ में ही रखा है। डॉ० एम० एल० दास गुप्त ने भी (प्राच्यराणी पत्रिका, फलकत्ता, भाग २, सं० ३३, १९४१ पृ० १००-१०१) कालिदास को इसी समय का माना है।

तभी किसी विशेष अभिप्राय का द्योतक माना जा सकता है, जब कि जान बूझकर विशेषतया उसका प्रयोग किया गया हो या किसी विशिष्ट अभिप्रायपूर्ण प्रसंग में यह पाया जाय। रघुवंश में गुप् धातु का प्रयोग बड़े ही साधारण रूप में हुआ है, जैसा कि रामायण और महाभारत में भी पाया जाता है। राजनीति के ग्रन्थों में तो इस धातु का प्रयोग बड़ा ही प्रचुर है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मनुस्मृति में तो गुप्त

में से शब्द स्थान स्थान पर पाये जाते हैं। कालिदास ने जिसका कि राजनीति का ज्ञान अग्रगण्य ही गम्भीर रहा होगा, गुप् धातु तथा इससे बनने वाले शब्दों को राजनीति के अर्थों में ही प्रयुक्त किया है। अतः गुप् धातु के प्रयोग में कोई विशेष तात्पर्य दृष्टिगोचर नहीं होता है। वस्तुतः कालिदास ने पा, रक्ष, वै इत्यादि पालनार्थक सभी धातुओं का छन्द की सुविधा के अनुसार प्रयोग किया है और गुप् धातु केवल राजनैतिक अर्थ में (रक्षा करना) प्रयुक्त की गई है। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रसंग में इस धातु के प्रयोग में कोई विशेष अभिप्राय दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतः इस तरह के तुच्छ आधार पर कालिदास का गुप्त राजाओं से सम्बन्ध जोड़ना नितान्त निराधार है। यदि केवल गुप् धातु के प्रयोग मात्र से गुप्त राजाओं से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है, तो शक् धातु तथा इससे बने हुए शब्दों के भी कहीं कहीं पाये जाने वाले प्रयोग के आधार पर शक राजाओं से भी कालिदास का सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

कुमार शब्द का प्रयोग भी किसी तरह कुछ महत्वपूर्ण नहीं है। कादम्बरी, बेणीसहार और मुद्रा राक्षस में भी यह शब्द बहुत बार आता है। कवि ने यदि कहीं भी रघुवंश में इस शब्द का प्रयोग किया है तो आवश्यकता से प्रेरित होकर, जिस तरह कि कुमारी शब्द रघुवंश के छठे सर्ग में आता है। वास्तव में कुमार शब्द संस्कृत साहित्य का बहुत ही साधारण शब्द है। 'सुत' 'पुत्र,' 'तनय,' 'आत्मज,' 'सुनु' इत्यादि अन्य पर्यायवाची शब्दों की तरह इसका भी स्थान स्थान पर प्रयोग पाया जाता है। अतः कुमार शब्द के प्रयोग में कोई विशेष बात नहीं बोलती है। इसके त्रिपरीत विक्रमोर्वशीय में महेन्द्र शब्द की आवृत्ति जान बूझकर की गई प्रतीत होती है। चूंकि इन्द्र के पर्यायवाची अन्य शब्दों को छोड़कर इसी विशेषण की आवृत्ति की गई है तथा कुछ यावत् भी ऐसे हैं जो महेन्द्र नामक किसी व्यक्ति की प्रशंसा का संकेत करते हैं, अतः कालिदास को महेन्द्र जैसे किसी राजा का समकालीन ही मानना चाहिये। इस मत का कथासरित्सागर के प्रमाण से भी कोई विरोध नहीं पड़ता है।

प्र० कीध का यह कथन भी कि कालिदास की रचनाओं में शुतक्वाह के हिन्दु शास्त्रों का स्पष्ट प्रमाण दिखलाई देता है, सत्य नहीं है। वस्तुतः साख्य, योग, न्याय, वेदान्त, ध्याकरण, अर्थशास्त्र, ज्योतिष यह सब विधायें गुप्त वंश के किसी भी प्राचीनतम राजा से ही प्राचीन नहीं, बल्कि ईसा से भी पूर्व की हैं।

कुछ विद्वानों ने यूनानी Diametron के अपभ्रंश जामित्र (कुमार० ७१) तथा चन्द्रग्रहण के कारणों के वर्णन<sup>१</sup> (रघु १४५०) का भी उल्लेख किया है। उनका कहना है कि कालिदास ने ज्योतिष के यूनानी शब्द तथा ग्रहण के कारणों का अपने पूर्ववर्ती किसी भारतीय ज्योतिषी से ज्ञान प्राप्त किया होगा। सम्भव है कि ज्योतिष के प्रथम भारतीय विद्वान आर्यभट्ट के ग्रन्थों से जिनमें कि यूनानी ज्योतिष का प्रभाव देखने में आता है और जो कि ई० पंचम शतक के अन्त में लिखे गए हैं, कालिदास ने यह ज्ञान प्राप्त किया हो। अतः कालिदास ई० षष्ठ शतक का ही हो सकता है। लेकिन यह मत सत्य नहीं है। बोधायन गृह्यशेष सूत्र<sup>२</sup> तथा रामायण जैसे प्राचीन ग्रन्थों में भी ज्योतिष के पारिभाषिक शब्द पाये जाते हैं। भारतीयों को ज्योतिष का ज्ञान भले ही कहीं बाहर से प्राप्त हुआ हो लेकिन यह तो निश्चित ही है कि ई० ५०० प्रथम शतक में भारतवर्ष में लग्न और राशि का ज्ञान सर्वसाधारण में प्रचलित था और यदि इस ज्ञान को यूनानी आधार पर भी माना जाये तो भी कालिदास की तिथि में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण तथा विक्रम सन्त की स्थापना में दो शताब्दियों से अधिक का अन्तराल ज्योतिष के प्रसार के लिये पर्याप्त है और फिर ऐसे देश में जहाँ कि वैदिक युग से ही ज्योतिष विद्या की उन्नति होती रही हो, ज्योतिष विद्या का इतना शीघ्र प्रसार होना कोई कठिन बात नहीं है। अतः कालिदास को गुप्त राजाओं के शासन काल में मानना न्याययुक्त नहीं है।

कालिदास और अश्वघोष के पौर्वापर्य का निवेदन तो पहिले किया ही जा चुका है। अश्वघोष दार्शनिक था और उसका प्रधान ध्येय बौद्धधर्म का प्रचार करना था। उस समय के लोगों की अभिरुचि का-यों में अधिक देख कर और विषयवस्तु लोगों को उस मार्ग से परावृत्त कर धर्मागम्य करने के उद्देश्य से ही उसने अपना प्रथम काव्य सौन्दर्यनन्द लिखा था। यह बात उसने सौन्दर्यनन्द के अन्तिम श्लोकों में स्पष्टता कही है।<sup>३</sup> क्योंकि उस समय लोक में किसी प्रसिद्ध कवि के प्रचलित सुन्दर शृंगार रस प्रधान का-यों की यही प्रसिद्धि थी, इसलिये अश्वघोष ने उसी कवि की शैली का अनुकरण किया और उसमें 'प्राह्य न ललित' ऐसा उपदेश दिया। इसलिये मानना पड़ता है कि अश्वघोष ने ही अपने काव्यों में कालिदास का अनुकरण किया है। इसके अतिरिक्त अश्वघोष के ग्रन्थों का उत्तर

१ छाया हि मूमे शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमत प्रजाभिः ।

२ स्वर्गाय श्री ब्रह्मक गुह्याय काले ने बोधायन गृह्यशेष-सूत्र में राशियों के नाम पहिले ही खोज निकाले हैं। उक्त गृह्य-सूत्र में वसन्त ऋतु की सीमाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है—मीनमेपयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्त । देखिये तिलक का गीता रहस्य । -

३ दे० म० म० हरप्रसाद शास्त्री का सौन्दर्यनन्द काव्य ।

कालीन अलंकार ग्रन्थों में अथवा सुभाषितावलिओं में कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है। यदि कालिदास ने अश्वघोष का अनुसरण किया होता तो मालविकाग्नि मित्र नाटक के प्रारम्भ में भास, सीमिल्ल, कपिपुत्रादि की तरह अश्वघोष का भी निर्देश अग्रश्य करता। अतः ई० पू० प्रथम शतक में कालिदास को रखने हुये हमें यह कहना ही पड़गा कि अश्वघोष ने ही कालिदास के काव्यों से प्रेरणा प्राप्त की है। डा० कीथ का कहना है कि अश्वघोष की प्राकृत कालिदाम की प्राकृत से प्राचीन है। लेकिन प्राकृत भाषा के स्वरूप के आधार पर कोई तर्क चल नहीं सकता, क्योंकि इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है कि किसी विशेष प्रकार की प्राकृत किसी विशेष शताब्दी में ही बोली जाती थी।

मेघदूत के आधार पर कालिदास को दिङ्नाग का समकालीन मानना भी ठीक नहीं है। कुछ विद्वान् तो उपर्युक्त पद्य में अन्य अर्थ को विरुद्ध मानत ही नहीं है। यदि अन्य अर्थ को माना जाय तो भी यही प्रकट होता है कि दिङ्नाग नामक कोई कवि कालिदास से ईर्ष्या रखता था। लेकिन यह कवि दिङ्नाग नामक बौद्ध दार्शनिक नहीं हो सकता। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो यह है कि इस बौद्ध दार्शनिक के कवि होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। दूसरा यह कि एक दार्शनिक और एक कवि में परस्पर शत्रुता कभी हो ही नहीं सकती।

तीसरा कारण यह है कि दिङ्नाग नामक बौद्ध दार्शनिक के न केवल उज्जयिनी बरिफ मालवा तथा के निवासी होने का पता नहीं है, बल्कि के राजा के आश्रय में रहने की तो बात ही दूर है। इन सब बातों के अतिरिक्त कुन्दमाला नामक नाटक में रक्षसिग एक अन्य दिङ्नाग का भी पता लगा है। यह दिङ्नाग बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग से भिन्न है, क्योंकि इसने नाटक की भाषा में ही गणेश की स्तुति की है। हो सकता है यही दिङ्नाग कालिदास का प्रतिस्पर्धी हो या अन्य कोई इस नाम का कवि कालिदास का प्रतिस्पर्धी रहा हो। कम से कम यह तो निश्चित हो है कि यह बौद्ध दार्शनिक कालिदास का प्रतिस्पर्धी नहीं है।

डा० वे० बी० पाटक का ईस्वी षष्ठ शतक का मन अतः विरुद्ध माना ही नहीं जाता है। लेकिन उनके मत की दृष्टियों पर ध्यान में लोगों का ध्यान नहीं गया है। वज्रु नदी को आक्सस समझने की उनकी चेष्टा का समर्थन मुश्किल से ही हो सकता है। प्रथम तो पाटकेट के प्रामाणिक होने में भी सन्देह है। दूसरा कारण यह भी है कि कालिदास ने किसी नदी के वर्णन करने के अथवा को छोड़ा नहीं है। फिर यह बात कुछ असम्भव सी दीपती है कि कालिदास भारतवर्ष की एक विशाल नदी सिन्ध (Indus) को छोड़कर आक्सस नदी का एक दम वर्णन करने लगे। इससे अतिरिक्त उस नदी के पास बेशर उत्पन्न होती हुई बताई गई है। यह बात काश्मीर प्रदेश में बहती हुई सिन्धु नदी के तट पर ही संभव हो सकती है न कि आक्सस नदी पर जहाँ कि बेशर का उत्पन्न होना सिद्ध नहीं है। वज्रु

नदी का आम्सस नदी से तादात्म्य जिस प्रकार माना गया है, उस प्रकार तो टेम्स नदी का तमसा नदी से भी तादात्म्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त श्री एस० क० रे ने रिप्पण पुराण तथा अन्य ग्रन्थों से उद्धरण देकर वज्र और सिन्ध नदी को एक ही प्रमाणित भी किया है (दे० उनके शकुन्तला नाटक की भूमिका)

रघु के दिग्विजय में हूणों के उल्लेख के आधार पर भी कालिदास को ईसवी ५४ शतक का मानना उचित नहीं है। महाभारत में हूणों का उल्लेख पाया ही जाता है। यौद्धों के ललित विस्तर नाम के ग्रन्थ से भी हूण जाति के प्राचीन होने का उल्लेख मिलता है। उसमें अनेक लिपियों के साथ हूण लिपि का भी उल्लेख है<sup>१</sup>। अश्वघोष ने इसी ग्रन्थ के आधार पर अपना बुद्ध-चरित लिखा था। ललित विस्तर का समय ई० प्रथम शतक के बाद का नहीं हो सकता। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हूण जाति ई० पू० प्रथम या द्वितीय शतक में भी ज्ञान थी। इसके अतिरिक्त प्रो० आप्टे और नन्दर्गाकर का यह भी कथन है<sup>२</sup> कि रघुवश के श्लोक में उल्लिखित हूण लोग इन्डो-सीथियन थे जिन्होंने कि वैक्ट्रिया की सीमा या भारतवर्ष के द्वार पर अपना विशाल साम्राज्य ई० पू० तृतीय शतक के मध्य से ई० प्रथम या द्वितीय शतक के अन्त तक स्थापित कर रक्खा था।

कालिदास की तिथि के सम्बन्ध में कुछ अन्य मत भी हैं। श्री द्विपोलाइट फाचे कालिदास को रघुवश के अन्तिम सर्ग में वर्णित सूर्य वश के अन्तिम राजा अभिर्णर्ण की मृत्यु के बाद उत्पन्न हुए उसके पुत्र का समकालीन मानते हैं और ई० पू० अष्टम शताब्दी के लगभग ही कालिदास का समय स्थिर करते हैं<sup>३</sup>। श्री एस० पी० परिडट इस मत का पण्डित करते हुए कहते हैं<sup>४</sup>— यदि कालिदास अपने समय में शासन करते हुए इस राजा का समकालीन होता, तो उसके जीवन का अन्त्य ही कुछ वर्णन करता। इसके अतिरिक्त रघुवश को हम सम्पूर्ण फान्य भी

१ श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने संस्कृत वाङ्मयाचा त्रोटक इतिहास में कहा है कि हूणों का उल्लेख महाभारत और हरिवंश में भी है।

२ दे० आप्टे का Date of Kalidasa पृ० २४ तथा नन्दर्गाकर के रघुवश की भूमिका पृ० ८८।

३ दे० Collective Works of Kalidasa, Paris Literary Remains, Calcutta 7 Saturday Review, Jan 1860 और जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी मर्च १८६१, २५ में भाउदाजी का कालिदास पर निबन्ध।

४ दे० एस० पी० परिडट के रघुवश की भूमिका पृ० २७-२८।

नहीं मान सकते। जनश्रुति के अनुसार सूर्यवंश के राजाओं का इतिहास अभी और अवशिष्ट है। कालिदास के काव्य के अग्निवर्ण तक पहुँचते पहुँचते समाप्त हो जाने से हम यह नहीं मान सकते कि सूर्य वंश ही यहाँ पर समाप्त हो गया होगा। विष्णु पुराण में अग्निवर्ण के बाद भी ३७ राजाओं की सूची दी गई है।

लासेन महोदय शिलालेखों में समुद्रगुप्त के लिये 'कवियों का मित्र' इस उपाधि के प्रयुक्त किये जाने के आधार पर कालिदास को समुद्रगुप्त की सभा का कवि मानते हैं और ई० ६०० तृतीय शतक का प्रारम्भ ही कालिदास का समय स्थिर करते हैं। मोनियर विलियम्स (इण्डियन विज्डम, ४६४) भी इसी तिथि को मानते हैं। लेकिन श्री एस० पी० एण्डर (एच० भूमिका) उपर्युक्त तर्क को निर्णायक नहीं मानते, क्योंकि अन्य राजाओं यथा मालवा के शीलार्थस्य और कन्नौज के हर्षवर्धन के साथ भी यह उपाधि पाई जाती है।

श्री के० जी० शर्मा ने 'इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली' भा० १ स० २, जून, १९२५, पृ० ३०८-३१६ में तथा श्री के० चट्टोपाध्याय ने अपने Date of Kalidasa नामक लेख (शलाहावाद वि० स्टडीज, भाग २, ७६) में कालिदास को ईसवी पूर्व प्रथम शतक का ही माना है।

## कवि की जन्मभूमि

कालिदास ने अपने सम्बन्ध में कहीं कुछ भी नहीं लिखा है। इसकी जन्मभूमि के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़ा मत भेद है। काश्मीर, विदर्भ, बंगाल तथा मालवा इन प्रदेशों में कहीं न कहीं प्रायः इसकी जन्मभूमि बताई जाती है। हिमालयवर्णन तथा काव्यशैली के आधार पर कोई इसे काश्मीरवासी बताता है तो काली की उपासना वाली दन्त-कथा तथा इसके नाम के आधार पर कुछ लोग इसे बंगाली मानते हैं। श्री चिन्तामणि त्रिनाथक वैद्य का मत है कि कालिदास यदि बंगाली होता तो उसके ग्रन्थों में गौड़ी रीति का प्राधान्य होता जैसा कि प्रायः बंगाली कवियों के काव्यों में पाया जाता है। दण्डिन की अवन्तिसुन्दरी कथा में—

लिप्ता मधुद्रवेणासन्यस्य निर्ययशा मिर ।  
तेनेद यत्नं यदमं कालिदासेन शोधितम् ॥

यह पद्य आया है। इस पद्य के आधार पर कोई इसे विदर्भ का बताते हैं। लेकिन मेघदूत में मेघ को अलका का मार्ग बताते हुए रास्ता देता होने पर भी यह उससे उज्जयिनी जाने का आग्रह करता है और कहता है कि उज्जयिनी के विशाल मन्दिरों और रमणियों के कुटिल फटाखी के देखने से यदि यह वंचित रह गया,

तो उसका जीवन ही निष्फल है। उज्जयिनी की शिप्रा नदी तथा महाकाल के वर्णन से कवि का उज्जयिनी के लिए विशेष पक्षपात प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त कवि ने मेघदूत में अवन्ति प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का बड़ा सूक्ष्म वर्णन किया है। बड़ा की छोटी छोटी नदियों का भी नाम निर्देश किया है तथा वर्णन दिया है। इस आधार पर यही कहा जा सकता है कि कालिदास उज्जयिनी का रहने वाला था। बहुत सम्भव है कि यह काश्मीर में पैदा हुआ हो और बाल्यावस्था वहीं बिताकर उज्जयिनी में आ बसा हो, अन्यथा हिमालय पर्वत का ऐसा सजीव वर्णन करना केवल उस पर्वत को एक दो बार देखकर ही सम्भव नहीं है।

### कवि का जीवन धृष्ट तथा उसके धार्मिक विचार

कालिदास के सम्यन्ध में प्रचलित कुछ किम्वदन्तियाँ पहिले ही जा चुकी हैं। उसकी रचनाओं से यह प्रकट होता है कि वह एक आस्तिक ब्राह्मण रहा होगा तथा अपने जीवन का अधिकांश उसने विष्णुवादित्य की राजसभा में रहकर उज्जयिनी में ही बिताया होगा। ब्राह्मण होने के अतिरिक्त हम और किसी उपजाति में उसने होने का ठीक २ अनुमान नहीं कर सकते। उसके ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि अपने जीवन में वह बड़ा सुखी और सम्पन्न रहा होगा। जहाँ तक उसके धार्मिक विचारों का प्रश्न है, वह शैवमतानुलम्बी प्रतीत होता है। प्रायः उसके सभी ग्रन्थों में शिवजी की स्तुति पाई जाती है। त्रिकमोर्वशीय के प्रथम श्लोक में उसने लिखा है - स ह्याणु स्थिरभक्ति-योग सुलभो नि श्रेयसायास्तु यः । मालयिकाग्निमित्रं भी शिवजी की प्रार्थना की गई है -

एकैक्ष्यं स्थितोऽपि प्रणवबहुमले य स्वयं कृत्तियासां  
कान्ता समिध देहोऽप्यविषयमनसा य पुस्ताद्यतीनाम् ।  
अष्टाभियस्य कृत्स्न जगदपि तनुभिर्विधृतो नाभिमान  
सम्भार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीश ॥

कुमारसम्भव काव्य तो शिवजी की कथा को लेकर लिखा ही गया है। शकुन्तला नाटक के अन्तिम श्लोक में भी शिवजी की प्रार्थना की गई है। रघुवंश में भी कवि ने शिवजी और पार्वती की वन्दना की है। मेघदूत के पूर्वभाग में उज्जयिनी में स्थित महाकाल के मन्दिर का कवि ने बड़ा ही मत्स्य वर्णन किया है। अतः यही स्थाभाविक प्रतीत होता है कि कालिदास को शैव ही माना जाए। लेकिन शैव होते हुए भी कवि की रचनाओं में कहीं भी धार्मिक सफाई नहीं दिखलाई देती है। उसकी शिवभक्ति सहिष्णुता तथा व्यापक दृष्टिकोण लिए हुए है।

### कालिदास का देशाटन

कालिदास भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों से परिचित प्रतीत होता है। रघु वंश के चतुर्थ सर्ग में बंगाल, बिहार और उड़ीसा के यथार्थ वर्णन से यही अनुमान



होता है कि कालिदास ने इन प्रान्तों की यात्रा अवश्य की होगी। कौंकण प्रदेश में बीज बोने से पहिले जमीन के जलाने की प्रथा का वर्णन तो बड़ा ही आश्चर्य जनक है। रघुपथ के चौदहवें सर्ग में विभिन्न देशों के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने उन देशों की यात्रा अवश्य की होगी, क्योंकि केवल यात्राविवरणों के पढ़ने से इतना विस्तृत ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। लेकिन इतना सब कुछ होते हुये भी हमें यह अवश्य मानना पड़ेगा कि दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत से कालिदास अधिक परिचित था। मेघदूत के मार्गदर्शन से भी इसी कथन की पुष्टि होती है।

### कालिदास का पांडित्य

यद्यपि कालिदास के निजी जीवन के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है, फिर भी उसकी रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह विभिन्न विद्याओं तथा कलाओं का उत्कृष्ट विद्वान् था। दर्शनों के गम्भीर ज्ञान से लेकर बालक-बालिकाओं के साधारण खेलों तक का कालिदास को ज्ञान था। कालिदास ने मनु इत्यादि की स्मृतियों का भी गम्भीर अध्ययन किया होगा, तभी तो शकुन्तला नाटक में षष्ठ अंक में मात्स्यिक और धनमित्र वारिक के प्रसंग में चौर्य-दण्ड और उत्तराधिकार के नियम का शास्त्रसंगत उल्लेख पाया जाता है। बाह्य प्रकृति के साधारण से साधारण रूप का भी कवि को ज्ञान है। इन्द्रधनुष के बनने की प्रक्रिया तथा मेघों के स्वरूप का कालिदास के द्वारा किया गया वर्णन आधुनिक भौतिक विज्ञान के सर्वथा अनुकूल है। कालिदास का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है। व्याकरण की दृष्टि से उसकी भाषा नितान्त शुद्ध है। व्याकरण के 'शब्दार्थयोस्तादात्म्यम्' इस सिद्धान्त को कालिदास भी मानता है, जैसाकि रघुपथ के प्रथम श्लोक में 'वागर्थाधिव संपृकी' इस कथन से स्पष्ट है। इसी प्रकार अलंकार शास्त्र तथा नाट्यशास्त्र से भी कालिदास पूर्ण परिचित प्रतीत होता है। कहीं भी उसने इन शास्त्रों के नियमों का अपनी रचनाओं में उल्लंघन नहीं किया है। आयुर्वेद तथा इसकी विभिन्न शाखाओं का ज्ञान भी कवि का प्रशंसनीय है। इसके अतिरिक्त कवि ज्योतिषशास्त्र से भी परिचित प्रतीत होता है। दर्शन में कवि का वेदान्त दर्शन की ओर अधिक झुकाव प्रकट होता है।

यास्तय में देया जाए, तो कालिदास अपने समय की सब विद्याओं का पारंगत विद्वान् था। सरस्यती की रूपा से कोई भी विद्या उसके लिये दुर्गम नहीं थी।

## कालिदास नाम के अनेक विद्वान्

संस्कृत साहित्य में कालिदास नाम के अनेक विद्वान् हुए हैं। राजशेखर ने अपनी सुक्तिमुक्तावली में कालिदासत्रयी का उल्लेख किया है—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्  
भृगुरे ललितोद्भृगुरे कालिदास त्रयी किमु ॥

६२० म० म० प० रामावतार शर्मा पांडेयजी ने बतलाया है कि नवसाहस्राक्षरित का कर्त्ता पद्मगुप्त भी परिमल कालिदास कहाता था। यह धाराधिप मुज का सभापण्डित था। धारा के भोक्त की सभा में भी एक कालिदास था। ज्योतिर्विभरण और शशु जयमाहात्म्य का रचयिता भी कोई कालिदास था। परन्तु विक्रमादित्य का सभापण्डित महाकवि कालिदास जिसके सम्बन्ध में यहा विचार हो रहा है, इन सभ कालिदासों से प्राचीन तथा भिन्न है।

## कालिदास के ग्रन्थ

कालिदास नि सन्देह एक महाकवि और महान् कलाकार है। विविध प्रकार की अनेक साहित्यिक रचनाये उसकी लिखित बताई जाती हैं, परन्तु केवल सात ग्रन्थ ही मुख्यतया उसके लिये हुए मान जाते हैं। तीन नाटक ( १ ) मालविकाग्निमित्र, ( २ ) विक्रमोर्वशीय और ( ३ ) अभिज्ञानशाकुन्तल। दो महाकाव्य ( १ ) कुमार सभय और ( २ ) रघुनश। दो खण्डकाव्य ( १ ) श्वेतुसहार और ( २ ) मेघदूत ( मेघसदेश )।

## मेघ सदेश की कथा

कैलाश पर्वत पर स्थित अलका नगरी के स्वामी धनपति कुबेर के यहाँ एक यज्ञ किसी सेवा कार्य में नियुक्त था। सेवा में कुछ प्रमाद करने के कारण यज्ञराज कुबेर के द्वारा पत्नी से वियुक्त कर एक वर्ष के लिये ऊलका नगरी से निर्वासित कर दिये

१ यज्ञ के सेवाकार्य तथा प्रमाद के सम्बन्ध में कवि ने कुछ भी नहीं लिखा है। लेकिन कुछ जैन टीकाकारों का ऐसा कथन है कि प्रातः कालीन शिवपूजा के अवसर पर कुबेर के लिये मानसरोवर से सद्योविकसित कमल पुष्प लाना यज्ञ का कार्य था।

जाने पर धृमता ० वह रामगिरि पर्वत पर जा पहुँचता है और वहीं रहने लगता है' । किसी तरह वहाँ उसके आठ महीने तो बीत जाते हैं लेकिन थापाड़

इस कार्य के लिये यक्ष को सूर्योदय से बहुत पहिले ही पत्नी के बाहुपाश से मुक्त होकर घर से निकलना पड़ता था । इसलिये एक दिन वह शाम को ही कुछ कलियां तोड़ लाया । प्रातःकाल जब कुबेर शिवजी की पूजा करने लगा, तब किसी पत्नी में छिपे हुये एक भौरे ने उसकी उगली में काट खाया । यक्षस्थिति का ज्ञान होने पर कुबेर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने यक्ष को शाप दे दिया । कुछ टीकाकारों का यह भी कथन है कि यह यक्ष कुबेर के उद्यान का द्वाररक्षक था । एक दिन जब वह द्वार खुला छोड़कर चला गया, तब उसकी अनुपस्थिति में इन्द्र का पेरारत दायी उद्यान में घुस गया और उसने पुष्पों की क्यारिया कुछलु डाली । इसलिये उसे कुबेर ने शाप दे दिया । कुछ अन्य विद्वान् ऐसा कहते हैं कि यक्ष प्रतिदिन कुबेर के लिए पुष्प शय्या तैयार किया करता था । एक दिन पुष्पशय्या पर सोने के आनन्द का अनुभव प्राप्त करने के लिये वह स्वयं उस पर लेट गया तथा गहरी नींद सो गया । इसी समय कुबेर वहाँ आ गये और उन्होंने उसे अपनी शय्या पर सोता हुआ देख कर एक वर्ष के लिये निर्वासित कर दिया । कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि कुबेर की निधियों की रक्षा करने के कार्य में ही यक्ष ने प्रमाद किया होगा ।

श्री मन्दिफल राम शास्त्री ने मेघप्रतिसन्देश में (वेन्निये प्र० स० श्लोक स० ५५ ५७) यक्ष के शाप का कुछ अन्य ही कारण बताया है । उन्होंने लिखा है कि एक बार कुबेर ने सय्या के समय यक्ष से शिवजी को भेंट करने के लिये शीघ्रातिशीघ्र एक माला बनाने के लिये कहा । यक्ष ने माला बनाकर प्रेमवश पहिले अपनी पत्नी को पहिना दी । फिर उसी माला को शिवजी के लिये ले गया । जब सन्ध्या कालीन उत्सव में शिवजी के लिये वह माला भेंट की गई तो उन्होंने निर्मल्य समझ कर उसे अस्वीकृत कर दिया । इस घटना के सारे रहस्य को अपनी प्रणिधानशक्ति से पूर्णतया जानकर कुबेर ने यक्ष को शाप दे दिया ।

मल्लिनाथ ने भूल से रामगिरि को चित्रकूट समझ लिया है । यों तो किसी भी ऐसे पर्वत को जहाँ रामचन्द्रजी रहे हों, रामगिरि कह सकते हैं और चित्रकूट पर अपने बनवास में रामचन्द्रजी रहे भी थे । इसीलिये समयतः मल्लिनाथ ने रामगिरि से चित्रकूट का अर्थ ग्रहण किया है । लेकिन मेघ द्वारा अनुसरणीय मार्ग के प्रारम्भिक स्थान को देखते हुये रामगिरि से दक्षिण का कोई अन्य पर्वत ही समझ में आता है, क्योंकि मार्ग के मध्य में आध्रकूट का ( किसी किसी पुस्तक में चित्रकूट का भी ) उल्लेख आता है । अतः गिरसन के मतानुसार रामगिरि से नागपुर के निम्न २४ मील के अन्तर पर उत्तर की ओर स्थित रामटेक ही समझना चाहिये । मराठी में टेक का अर्थ पहाड़ी ही होता है । इससे अतिरिक्त रामटेक में रामचन्द्रजी

मास के लगते २ उसका विरही हृदय बड़ा व्याकुल हो उठता है और पत्नी के जीवन की चिन्ता भी उसे सताने लगती है<sup>१</sup>।

इसी समय आकाश में उत्तर की ओर जाता हुआ एक मेघ उसे दिखाई पड़ता है। प्रथम तो मेघदर्शन से उसे कुछ चिन्ता होती है, लेकिन बाद में घड़े प्रेम से स्यागत करता हुआ वह उसके कुल, शील और सामर्थ्य की प्रशंसा करता है और फिर उससे अलका नगरी जाने तथा अपनी पत्नी के पास अपना सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना करता है। शुभ निमित्तों, अपनी पत्नी के जीवित तथा पतिव्रता बने रहने की आशा और कौलाश पर्वत तक हमों के साथ यात्रा करने के आनन्द से मेघ को यात्रा के लिये प्रोत्साहित कर वह फिर रामगिरि से अलका तक का रामणीय मार्ग उसे बड़े विस्तार के साथ बताता है।

इस प्रसंग में सर्वप्रथम रामगिरि से उत्तर की ओर मालद्वेज,<sup>२</sup> वहाँ से फिर कुछ पश्चिम की ओर मुड़कर उत्तर की ही ओर चलने पर आन्नकूट पर्वत,<sup>३</sup> तदनन्तर विन्ध्याचल के चरणों में बहती हुई नर्मदा नदी<sup>४</sup> का जल ग्रहण करने के बाद

तथा उनके साथियों से सम्बद्ध बहुत से मन्दिर भी पाये जाते हैं और अनेकों यात्री वहाँ समय-समय पर आते हैं। अतः यह निश्चित ही है कि कालिदास के समय में भी यह स्थान एक तीर्थ रहा होगा।

कुछ विद्वान् रामगिरि से मध्यप्रदेश का रामगढ़ पर्वत समझते हैं। नर्मदा के उद्गम-स्थान आन्नकूट के निकट ही यह रामगढ़ पर्वत है।

१ शेषान् मासान् गमय चतुर — इत्यादि अग्रिम कथन से यह प्रतीत होता है कि आषाढ़ मास तक यक्ष ने अपने शाप के आठ मास प्रित दिये थे। उसका यह शाप कार्तिक मास से प्रारम्भ हुआ सम्भवि जाना चाहिये।

२ आधुनिक रतनपुर के समीप मारदा नामक स्थान अथवा कोई भी ऊँचा पहाड़ी स्थान।

३ अमरकण्टक नामक पर्वत जिससे कि नर्मदा तथा अन्य नदियाँ निकलती हैं और जो विन्ध्य पर्वत का पूर्वी भाग है। डा० बराजपे आन्नकूट से सोहागपुर के दक्षिण तथा महादेव पर्वतमाला के उत्तर की कोई पहाड़ी मानते हैं। उनका कथन है कि रामदेव और भिलसा को मिलाने वाली सरल रेखा से पूर्व की ओर २०० मील के अन्तर पर अमरकण्टक स्थित है। अतः यह मेघ का प्रथम विश्रामस्थान नहीं हो सकता।

दशार्ण<sup>१</sup> देश और बेतवाती नदी के तट पर स्थित इस देश की राजधानी विदिशानगरी<sup>२</sup> पहुँचने का मेघ को परामर्श दिया गया है। वहाँ से फिर नीचे 'नामरु किसी पर्वत पर विश्राम करने के बाद वननदी,<sup>३</sup> निर्विन्ध्या<sup>४</sup> तथा सिन्धु<sup>५</sup> नदियों पर से होते हुए अवन्ति देश और उज्जयिनी नगरी जाने का मेघ से आग्रह किया गया है।

उज्जयिनी के उच्च प्रासादों में विध्राम करने के बाद गन्धवती<sup>६</sup> नदी के निकट

१ दशार्ण—यह देश जिसमें दस दुर्ग ( भूखण्डों ), यह नदी जिसमें दस नदिया ( भूखण्ड = जल ) मिलती हैं। विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली एक नदी ( दोसन ) का भी यह नाम है। प्राचीन दशार्ण देश भोपाल सहित मालवा का पूर्वी भाग तथा मध्यदेश का दक्षिण पूर्वी भाग था। मालवा के आधुनिक छत्तीसगढ़ जिले को दशार्ण देश कह सकते हैं।

२ बेतवा नामक आधुनिक नदी।

३ आजकल का भित्सा नामक नगर।

४ विदिशा नगरी के पास की कोई छोटी और नीची सी पहाड़ी।

५ महिलनाथ बने या मघ तासाम् ऐसी व्याख्या देकर वननदी नाम की कोई विशेष नदी नहीं मानते हैं। सारोद्धारिणी टीका के लेखक ने मालवदेश में स्थित इस नाम की एक नदी को ही माना है। विटसन ने 'नगनदी' पाठ भेद मानकर पार्वती नदी का ही यह नामान्तर माना है। पार्वती नदी बेतवा नदी से पश्चिम की ओर बहती है और शिप्रा में मिलती है।

६ विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली नदी। यह नदी पूर्वोक्त वननदी अथवा मग नदी ( पार्वती ) तथा शिप्रा के मध्य में उत्तर की ओर बहने वाली कोई नदी है। संभवतः आजकल की नेघज नदी का ही यह प्राचीन नाम रहा हो।

७ महिलनाथ ने सिन्धु नदी से निर्विन्ध्या नदी का ही तात्पर्य लिया है। उसके मत से काश्मीर के सिन्धु नदी के अतिरिक्त सिन्धु नाम की कोई नदी कहीं है ही नहीं। लेकिन उसका यह विचार सत्य नहीं है। मालवा में पाली सिन्धु नाम की एक नदी पाई जाती है। यह घगी नामक स्थान से निकलती है और चम्बल में मिलती है अथवा सिन्धु नदी से उस छोटी सी सिन्धु नदी का भी प्रदूषण हो सकता है, जो देवास से निकलकर तथा ओर भी बहुत सी छोटी नदियों के साथ उज्जैन के पास से गुजरती हुई चम्बल में मिल जाती है।

८ उज्जैन के पास एक छोटी सी नदी तथा शिप्रा की एक शाखा जिसके तट पर मदाकाल का मन्दिर बना हुआ है।

महाकाल' के मन्दिर में सायकालीन पूजा के समय तक ठहर कर फिर कहीं किसी भजन बलभि में ही रात्रि बिताकर प्रातः काल आगे बढ़ने के लिए मेघों से कहा गया है। इसके बाद गम्भीरा<sup>२</sup> नदी में विहार करते हुए देवगिरि<sup>३</sup> पहुँचकर वहाँ स्कन्द<sup>४</sup> स्वामी पर पुष्पवर्षा करने और फिर चर्मएवती<sup>५</sup> नदी तथा दशपुर<sup>६</sup> नगर जाने का मेघ को आदेश दिया गया है।

तदनन्तर ब्रह्मार्त<sup>७</sup> और कुरुक्षेत्र<sup>८</sup> होते हुए सरस्वती<sup>९</sup> नदी और वहाँ से फिर कनखल<sup>१०</sup> के समीप गंगाजी के दर्शन करते हुये हिमालय पहुँचने का मेघ को

- १ उज्जैन का प्रसिद्ध शिव मन्दिर तथा शिवजी की मूर्ति—इन दोनों के लिये ही महाकाल कहा जाता है।
- २ गन्धवती नदी की तरह मालवा की एक छोटी सी नदी। जिमसेन ने अपने आदि पुराण, अध्याय २६ में इस नदी का उल्लेख किया है। सभ्यत जहाँ से चर्मएवती निकलती है, वहाँ से यह नदी भी निकलती है।
- ३ विरसन के मतानुसार मालवा प्रान्त के मध्य में चम्बल नदी के दक्षिण में स्थित आजकल का देउगढ नामक स्थान। डा० फ्लीट के अनुसार भासी खे दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग ६० मील पर स्थित देवगढ़ नामक ग्राम।
- ४ कुमार कार्तिकेय। ५- आधुनिक चम्बल नदी
- ६ आधुनिक चम्बल नदी से कुछ उत्तर की ओर स्थित आजकल का रन्तिपुर या रन्तमपुर नामक स्थान। कुछ लोग सिधना नदी के उत्तरी या बाएँ तट पर स्थित मन्दसोर के दोसर नामक स्थान को ही दशपुर समझते हैं। पश्चिमी मालवा में मन्दसोर जिले में यह एक प्रमुख नगर है। प्राचीन समय में भी यह एक महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा, क्योंकि महाभारत, नासिक और गुप्त शिलालेखों में भी इसका उल्लेख मिलता है।
- ७ ब्रह्मार्त नाम का पवित्र देश इस्तिनापुर के उत्तर पश्चिम में कुरुक्षेत्र के निकट का देश है। मनु महाराज ने सरस्वती और दण्डवती नदियों के बीच में इस देश की स्थिति बताई है।
- ८ कीरवों और पाण्डवों के बीच महाभारत युद्ध का घटनास्थल तथा याने श्वर से दक्षिण पूर्व की ओर का स्थान।
- ९ भारतवर्ष की एक पवित्र नदी जो कि हिमालय के दक्षिण भाग से निकलती है और मरस्थल के रेत में आकर विलीन हो जाती है।
- १० दरिद्वार के निकट कनखल नाम का तीर्थ। यह ग्राम गंगा के पश्चिमी किनारे पर बसा हुआ है। भस्तिनाथ ने कनखल नाम का पर्वत माना है, जिसके मुख से गंगा निकलती है।

परामर्श दिया गया है। हिमालय पर्वत पर शिवजी के चरण न्यास<sup>१</sup> की परिक्रमा करने के बाद क्रौंचरन्ध्र<sup>२</sup> में से निकलकर उत्तर की ओर ऊपर चलने पर कैलाश<sup>३</sup> पर्वत और वहाँ से फिर अलका<sup>४</sup> नगरी जाने के लिए मेघ से कहा गया है।

मार्ग वर्णन के बाद यक्ष अलका नगरी के वैभव<sup>५</sup> और विलासप्रिय जीवन का वर्णन करता है। फिर अपने गृह तथा उसके आसपास के दृश्यों का वर्णन कर मेघ से स्वल्प शरीर होकर तथा गृहस्थित क्रीडाशैल पर बैठकर अपनी प्रेयसी के देखने की प्रार्थना करता है। इस प्रसंग में यक्ष ने निरहिणी प्रेयसी का बड़ा ही भावपूर्ण काल्पनिक चित्र अंकित किया है। तदनन्तर यक्ष मेघ से मध्यरात्रि में सौधजातावन में बैठकर और शीतल वायु द्वारा उसे जगाकर (यदि सो रही हो) सन्देश सुनाने की प्रार्थना करता है।

अपना सन्देश<sup>६</sup> रतने के बाद यक्ष मेघ से प्रेयसी के प्रति सन्देश लाने की भी प्रार्थना करता है तथा उसके मोन भाव से अपने दूत कार्य के स्वीकृत हो जाने की आशा कर अन्त में उसको आशीर्वाद देता है कि सन्देश कार्य को पूरा करने के बाद वह अपनी इच्छा के अनुसार यत्र तत्र घूमता रहे और विद्युत् रूपी प्रेयसी से कभी भी उसका वियोग न हो<sup>७</sup>।

१ समस्त हरिद्वार के निकट 'हर की पैंडी' नामक पहाड़ी।

२ कोई पहाड़ी दर्रा जो कि परशुरामजी के बाण से बना था। हिमालय पर्वत पर स्थित नीति दर्रे का ही शायद यह नामान्तर हो।

३ यह पर्वत मानसरोवर से २५ मील के अन्तर पर स्थित बताया जाता है तथा शिवजी और पार्वती का यह निवासस्थान है।

४ कुबेर की प्रख्यात राजधानी। अपने वैभव के कारण ही इस नगरी का नाम अलका है। अल् धातु का अर्थ ही 'सजाना' है।

५ कुछ पुस्तकों में कथा को कुछ और आगे भी बढ़ाया गया है। उसका सारांश यह है कि मेघ यक्ष का सन्देश लेकर अलकापुरी पहुँचता है। पूर्व निर्दिष्ट लक्षणों से यक्ष के घर को पहिचान कर यक्ष पत्नी के लिए वह यक्ष का सन्देश सुनाता है। पति के वृत्तान्त को सुनकर यक्ष कष्ट बड़ी प्रसन्न होती है। इसी अथ सर पर मेघ द्वारा कहा हुआ यक्षवृत्तान्त धनपति कुबेर के भी पास पहुँच जाता है। यक्ष की कठण दशा को जानकर कुबेर को बड़ी दया आ जाती है और वह शाय को समाप्त कर यक्ष दम्पती का पुनर्मिलन करा देता है।

## काव्य समीक्षा

मेघ सन्देश की कथा सन्देश में ऊपर दी जा चुकी है। वस्तुतः कथानक 'जैसी कोई वस्तु इस काव्य में है वही नहीं'। यक्ष का नाम क्या था, कुवेर के यहाँ वह क्या कार्य करता था तथा उसका अपराध क्या था—इन सब विषयों पर कवि ने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। यदि कवि चाहता तो इन सब विषयों पर भी विस्तार के साथ लिख सकता था। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि काव्य में कथा तो उपलक्षणमात्र है। अपने परिचित देशों और स्थानों का यथार्थ वर्णन करना तथा प्रथम बार नियुक्त भावुक प्रेमियों की भावनाओं का चित्रण करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है।

## काव्य का मूल स्रोत

इस सम्बन्ध में दक्षिणार्त और मल्लिनाथ का कहना है<sup>१</sup> कि कालिदास ने इस काव्य के लिखने में वारमीकि-रामायण से अग्रस्य ही प्रेरणा प्राप्त की है। रामायण में सीताजी के पास हनुमान् द्वारा रामचन्द्रजी ने सन्देश भेजा ही है। इसी घटना के आधार पर यह सन्देश काव्य लिखा गया है। काव्य में—

( १ ) यक्षश्चक्रे जनकतनयास्तान् पुण्योदकेषु  
स्निग्धच्छाया तरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥१॥

( २ ) इत्याप्यासे पयन तनय मैथिलीजोन्मुखी सा ॥२॥४०॥

जैसे स्थलों में जनकतनया, राम और पयनतनय के उल्लेख से भी रामायण की घटना का पाठकों के समक्ष चित्र उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त विरहिणी नायिका का वर्णन भी विरहिणी सीता के वर्णन से बहुत कुछ मिलता जुलता है। यक्ष पत्नी के सम्बन्ध में कहे गये—

ता जानीथा परिमितकथा जीयित मे द्वितीय  
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिदं काम् ।

गाढोत्कण्ठा गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बाला  
जाता मन्ये शिशिर मयिता पदिमर्नीयाऽन्यैरूपाम् ॥२॥२२॥

१ प्रायः सभी सन्देश काव्यों में कथा वस्तु का ऐसा ही स्वरूप पाया जाता है।

२ यह खलु कवि सीता प्रति हनुमता हारित सन्देश हृदयेन समुद्रद्वन् तत्स्था-  
नीयनायकाद्युत्पादनेन सन्देश करोति । (दक्षिणार्त) सीता प्रति रामस्य  
हनुमन्सन्देश मनसि निधाय मेघसन्देश कवि कृतवान् । (मल्लिनाथ)<sup>१</sup>



पद्य में

हिमदत्त-नलिनीं नष्टशोभां व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना ।

सहचर रहिते चक्रवाकी अनक सुता कृपया दशा प्रपन्ना ॥ रा० रा० सु० १६ ३० ।

की छाया स्पष्ट दीख पड़ती है ।

इसी प्रकार कई अन्य स्थलों में भी समानान्तर भाव पाये जाते हैं । रामायण के किष्किन्धा काण्ड में वर्षावर्षण के प्रसंग में कहा गया है—

१ मही वार्ष्यं विमुचति ॥२८॥७॥

२ प्रवासिनो यान्ति नरा स्वदेशान् ॥२८॥२२॥

३ (मिथ्या) महत्सु भृगेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥२८॥२२॥

४ मेघाभिक्रामा परिसम्पतन्ती समोदिता भाति घलाक पक्ति ।

पातायधुता, धरपोण्डरीकी, लम्ब्येय माला रचिराम्बरस्य ॥२८॥२३॥

मेघ सन्देश में भी मेघ के प्रसंग में ऐसे ही समानान्तर भाव व्यक्त किए गये हैं—

१ काले २ भयति भवतो यस्य संयोगमेव

स्नेहम्यकिञ्चिन्निरिहर्जं मुचतो वाष्पमुष्णम् ॥१॥१२॥

२ यो वृन्दानि त्यजति पयि धाम्यता प्रोषितानाम् ॥२॥२८॥

३ रिप्तिन् खिन्नि शिलरिपु पद न्यस्य गन्तासि यत्र (मार्ग) ॥१॥१३॥

४ नूनमाचक्ष्मामाला

सेविष्यन्ते नयन सुभगं खे भवन्त घलाका ॥१॥१६॥

इस काव्य के—

१ (मिथे) त्यज्यासन्ते नयनमुपरिस्पन्दि शके भृगान्या

मीनं क्षोमाच्चल कुबलय श्री तुलामेष्यतीति ॥२॥३५॥

२ सम्मोघान्ते मम समुचितो दस्त सवाहनानाम् ।

यास्यत्यूरु सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥२॥३६॥

३ आलिंग्यन्ते मुखवति मया ते तुपायाद्रियाता

पूर्वं स्पृष्ट पदि किल भवेद्गमैभिस्तवेति ॥२॥३६॥

इत्यादि स्थलों में भी, रामायण के क्रमशः निम्नलिखित, पद्यों की छाया विद्यमान है—

- १ तस्या शुभ वाममरालपद्मराजीवृत कृष्णविशालशुक्लम् ।  
प्रास्पन्दतैक नयन सुकेश्या मीनादृत पद्ममिराभिवाम्रम् ॥  
॥रा० सु० २६ २॥
- २ गजेन्द्र दस्तप्रतिमश्च पीनस्तयो ह्वयो महतयोस्तु जात ।  
प्रस्पन्दमान पुनरुरुरस्या राम पुरस्तात्स्थितमाचचक्षे ॥  
॥रा० सु० २६ ४॥
- ३ बाहि यात, यत कान्ता ता स्पृष्ट्वा मामपि स्पृशे ।  
स्थयि मे गात्र सस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागम ॥

रामायण में हनुमान्जी के प्रति विश्वास उत्पन्न कराने के लिये रामचन्द्रजी ने सीताजी के पास अपनी अँगूठी भेजी है तथा सीताजी ने भी अभिज्ञान स्वरूप अपनी चूड़ामणि हनुमान्जी को देकर जयन्त की कथा का उल्लेख किया है। इसी तरह इस काव्य में भी यज्ञ अपने वैवाहिक जीवन की एक घटना मेघ को अभिज्ञान के रूप में बताता है तथा अपनी प्रेयसी के पास से भी कुछ अभिज्ञान के, लाने के लिये कहता है। इस तरह रामायण और मेघसन्देश में विभिन्न स्थलों में सादृश्य दृष्टिगोचर होता है। भारतीय रामायण में हनुमान्जी के द्वारा रामचन्द्रजी के सन्देश तथा उनकी अँगूठी देने के बाद सीताजी के सम्बन्ध में कहा गया है—

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुं करविभूषितम् ।  
भर्तारमिव संप्राप्तं जानकी मुदिताऽभवत् ॥सु०॥३६॥४॥

मेघ सन्देश में भी मेघ के पणिचय के बाद यज्ञपत्नी के दसचित्र हो जाने की संभावना करते हुए कहा गया है—

धोष्यत्यश्मात्परमवहिता सीम्य सीमन्तिमीनां  
कान्तोदन्त सुहृदुपगत सगमात् किञ्चिदूत ॥२॥३८॥

लेकिन रामायण की घटना तथा वर्णन साम्य के आधार पर हम यह नहीं मान सकते कि कवि ने रामायण के भागों का अपहरण कर यह काव्य लिखा है। भले ही उसने रामायण से इस काव्य के लिखने की प्रेरणा प्राप्त की हो, लेकिन उसने काव्य का विस्तार अपने ही दृग्ग से किया है।

काव्य में विभिन्न स्थलों में जो भावसाम्य पाया जाता है, उसका भी कारण यही है कि कालिदास आदि कवि भारतीय की रामायण का, परम प्रशंसक था

और उसकी शैली न केवल मेघसन्देश में बरिक्त सभी रचनाओं में रामायण से प्रभावित है<sup>१</sup>। बृहत्कथा में वर्णित यक्षों के शापों की कथाओं<sup>२</sup> और महाभारत, श्रीमद्भागवत<sup>३</sup> तथा जातक कथाओं में आये हुए दूत प्रसंगों से

१. रामायण में रावण को परास्त करने तथा मारने के बाद रामचन्द्रजी सीताजी तथा अपने अन्य माधियों के साथ लंका नगरी से अयोध्या वापिस लौटते हैं। पुष्पक विमान द्वारा इस यात्रा के वर्णन प्रसंग में कवि को लंका से अयोध्या तक के भूभाग का वर्णन करने का अवसर प्राप्त हुआ है। कालिदास ने भी इसी स्थल से सेते होकर रघुवंश के स्तरहर्ष सर्ग में इस वायु यात्रा का ही वर्णन किया है। ब्रूहि रघु-  
वश कवि की मेघ सन्देश से पूर्व की रचना है, अतः समझ है कि रघुवश के इस सर्ग को लिखते समय कवि के मन में अकस्मात् मेघ सन्देश लिखने की प्रेरणा उत्पन्न हो गई हो।

इसके अनिरिक्त कुछ ऐसा भी प्रतीत होता है कि विक्रमोर्वशीय नाटक के लिखते समय भी कवि के मन में मेघदूत की कल्पना कुछ प्रस्फुटित हो रही थी। तभी तो इस नाटक के चतुर्थ अंक में पुरुरवा की विरहावस्था का वर्णन करते हुए चित्रलेखा कहती है—अनेन पुनर्निर्वृतागमप्युत्कटाकारिणा मेघोदयेनाप्रतीकारो भविष्यतीति तर्कयामि। और पुरुरवा भी अपनी प्रेयसी के प्रियोग में उन्मत्त होकर मेघ को रात बार सम्बोधन करता है तथा मयूर, कोकिल, राजहंस, शक्रशाक, भ्रमर, गजराज, परीत, नदी और हिरण इत्यादि से उर्वशी का पता पछुता है।

२. समझ है कि 'योगिनी माहात्म्यम्' में वर्णित आपाद कृष्ण एकादशी की कथा के आधार पर यह काव्य लिखा गया हो। यह कथा इस प्रकार है कि हेममाली नामक यक्ष मानसरोवर से कुंजर के लिए पुष्प तोड़ कर लाया करता था। एक दिन उसने अपने कर्त्तव्य पर ध्यान न दिया और अपनी पत्नी त्रिशालाक्षी के पास ही रह गया। इस बात पर कुछ हीकर कुंजर ने उस श्वेतकुष्ठ लगाकर निर्वासित कर दिया। हिमालय पर घूमने = उन्ने मार्गगण्डेय श्रुति मिले और उनके कहने से उसने आपाद मास के कृष्ण पक्ष में योगिनी ज्ञत रफला। इस प्रकार रोग से मुक्त होकर वह समग्र पर अपने घर लौट आया और अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

३. श्री मद्भागवत में दशम स्कन्ध में ६० वें अध्याय में स्त्रियों द्वारा मेघ को भी सम्बोधन किया गया है—

मेघ श्रीमन्ममसि दयितो यादवेन्द्रम्य नृगम्

श्रीवत्साक ययमिव मवान् ध्यायति प्रेमवद् ।

अयुत्कण्ठ शबल हृदयोऽस्मद्विधो पापघाता

स्मृत्या स्मृत्या विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसंग ॥२०॥

इस श्लोक में मन्दात्रान्ता छन्द का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है।

भी कवि ने कुछ प्रेरणा भली ही प्राप्त की हो तथा यह भी सम्भव है कि घटकपर्प कवि के यमक काव्य से भी मेघ के दूत बनाने का विचार कवि के ध्यान में आया हो, लेकिन यह तो मानना ही पड़ेगा कि विभिन्न नगरों, नदियों और पर्वतों इत्यादि का वर्णन कवि ने बड़े सजीव और सरस ढंग से किया है तथा यक्षदम्पती की रिहायस्थाओं का चित्रण भी बड़ा ही भावपूर्ण और अद्वितीय है। अन्य प्राचीन स्रोतों से सहायता लेकर इस काव्य के लिखने पर भी कवि की धनलकीर्ति में कुछ भी घट्टा नहीं आता है। अपने अन्य ग्रन्थ जैसे अभिज्ञान शाकुन्तलम्, रघुवशम् और कुमारसम्भवम् के लिखने में भी कवि को पुराणों तथा अन्य काव्यों से सहायता लेनी पड़ी है। अन्य देशों के बड़े बड़े कवियों ने भी जैसे अग्नेज कवि शेक्सपियर ने अपने ग्रन्थों के लिये प्लाट अपने से प्राचीन स्रोतों से ग्रहण किये हैं। कवि का महत्त्व उसके वर्णन प्रकार, मनुष्य स्वभाव की भीतरी पेंठ और पात्रों के ठीक तथा प्रभावशाली शृंखला पर निर्भर है। इसलिये यदि यह मान भी लिया जाये कि मेघ-दूत के लिखने में कवि को अन्य स्रोतों का आधार लेना पड़ा है, तो भी भारतीय कवियों में उनका पद कवि सम्राट के सर्वथा उपयुक्त है। कविता के क्षेत्र में एक नये शिल्पविधान के साथ साथ एक नई काव्यपरम्परा के जन्म देने का श्रेय कालिदास को ही है और उसका यह सदेश काव्य भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों दृष्टिकोणों से एक अभिनव रचना है।

### साहित्यिक आलोचना

कवि ने इस काव्य को दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग को पूर्ण मेघ तथा द्वितीय भाग को उत्तरमेघ भी कहा जाता है। प्रथम भाग में विरही यक्ष का मेघदर्शन, मेघ का स्वागत, सदेश लेजाने की प्रार्थना तथा मार्ग-वर्णन है। द्वितीय भाग अथवा उत्तर मेघ में अलका नगरी, यक्ष गृह तथा विरहिणी नायिका के वर्णन के बाद सन्देश कथन और अन्त में मेघ को आशीर्वाद दिया गया है।

मार्ग वर्णन के प्रसंग में कवि ने विभिन्न नगरों, नदियों, पर्वतों तथा रमणीय स्थानों का बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है। वर्षा ऋतु के आगमन से प्रकृति में होने वाले परिवर्तनोंका भी बड़ा ही भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्ग वर्णन कुछ स्थानों की केवल सूचीमात्र नहीं है, बल्कि

---

१ चीन के हुस्कन (Huskun) (१६६०-१७०० ई०) नामक कवि ने भी एक स्थान पर एक भट्ट महिला द्वारा मेघ को दूत नियत करके अपने स्वामी के पास भेजने का वर्णन किया है। इसने नागार्जुन की प्रज्ञामूल शास्त्र टीका का चीनी भाषा में अनुवाद किया था। यह ग्रन्थ कालिदास के पूर्वनिश्चित समय के अनुसार उत्तर कालीन रचना है। अतः इस ग्रन्थ के प्रभाव का तो कुछ प्रश्न ही नहीं उठता है।

तत्तत् स्थान का एक शब्दचित्र है और इसके द्वारा तथा मेघ को दूत बनाने से भी पूर्व मेघ में कवि को प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन करने का एक बड़ा सुअवसर प्राप्त हुआ है। मेघ स्वयं ही प्रकृति का एक सुन्दर रूप है और इन्द्र धनुष के साथ तो उसका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। ऐसे ही दृश्य का वर्णन करते हुए यज्ञ ने मेघ से कहा है—

रत्नच्छायव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेत त्पुरस्तात्  
बर्मीकाप्राप्तप्रभवति धनुः स्रष्टमास्रष्टलस्य ।

येन श्यामं, यपुरतितरा कान्तिमापत्स्यते से  
यहौणेष स्फुरितरचिमो गोपवेशस्य विष्णो ॥१॥२॥

कवि ने इन्द्र धनुष से सयुक्त मेघ के लिये मयूरपंख धारण किये हुये गोपवेश विष्णु की कितनी सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है।

मेघ के सम्पर्क से शोभायमान आन्नकूट पर्वत का भी कवि ने बड़ा ही मनोहर चित्र अंकित किया है—

छन्नोपान्त परिणतफलद्योतिभिः काननाम्नैः,  
त्यय्यारूढे शिखरमचल स्निग्धवेषीसयर्थैः ।

नून यास्यत्यमर मिथुन प्रेक्षणीयामवस्थाम्  
मध्ये श्याम स्तन इव भुव शेषविस्तार पाण्डु ॥१॥१२॥

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ हो जाने पर सारंगों (ध्रुवों), कुरगों और हाथियों) द्वारा मेघमार्ग के सूचित किये जाने का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है—

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिश केसरैर्धरूढं  
आशिर्भूतप्रथम मुकुता कन्दलीश्वानु बन्धम् ।  
अग्नारण्येष्वधिक सुरभिः गन्धमाघाय चोत्था  
सारगास्त जल लवमुच सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥१॥२१॥

विन्ध्य पर्वत पर विभिन्न धाराओं में बहती हुई नर्मदा नदी के लिये कवि यही सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है—

रेषा द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यदे विशीर्षा  
भक्तिन्देदैरिव विरचिता भूतिमगे गजस्य ॥१॥२२॥

नर्मदा नदी को विन्ध्य पर्वत रूपी हाथी के शरीर की शृंगार रचना बताकर कवि ने इन दोनों के स्वरूप का एक चित्रता उपस्थापित कर दिया है।

मेघ दर्शन अथवा वर्षा ऋतु के आने पर मयूरों का आनन्दित होना प्रसिद्ध ही है। इसीलिये कवि ने मेघ के लिये लिखा है -

शुक्लापागै सज्जल नयने स्वागतीकृत्य केका  
प्रत्युद्योत कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥१॥२३॥

वर्षा ऋतु में दशार्ण देश के वर्षाकालीन प्राकृतिक वैभव का भी कवि ने बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है -

पाण्डुच्छायापोपनवृतय केतकी सूचिभिर्नै  
नीडारमैर्गृहवलि भुजामाकुल ग्राम चैत्या ।  
त्यय्यासन्नैः परिणत फलाश्याम जम्बू वनान्ता  
सपत्स्यन्ते कतिपयदिनं स्थायित्वा दशार्ण ॥१॥२४॥

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने पर केतकी पुष्पों का खिलना, वायस इत्यादि पक्षियों का घोंसला बनाना और जामुनों का पकना प्रसिद्ध ही है। इस त्रिविध सौन्दर्य को देखकर वर्षा ऋतु में भी बड़ा हसों का कुछ दिन और ठहर जाना स्वाभाविक ही है।

आगे चलकर शैलराज से उतरती हुई गंगा का भी कवि ने बड़ा भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है -

तस्माद्गच्छेरनुकनकल शैलराजागतीर्णाम्  
जहो कन्या समरतनयस्वर्गसोपानपक्तिम् ।  
गौरीरक्तरञ्जुटिरचना या विहस्येय केने  
शम्भो केशप्रदण्डमकरोदिन्दुलम्बोर्मिहस्ता ॥१॥२५॥

शिवजी द्वारा अपनी जटाओं में गंगा के धारण किये जाने की घटना के आधार पर कवि ने बड़ा गंगा में किसी प्रौढ़ा नायिका का भाव कितनी सुन्दर रीति से आरोपित कर दिया है।

गंगा के स्फटिक समान निर्मल जल को पीने के लिये मेघ के उड़ने की सभा बना करते हुए कवि ने क्या ही सुन्दर उद्बोधना की है -

ससर्पन्त्या सपदि भवत स्रोतसिच्छापयाऽसौ (गंगा)  
स्यादस्थानोपगतयमुनःसगमेशाभिरामा ॥१॥२६॥

गंगा के बाद हिमालय पहुँचने पर मेघ की शोभा के लिये भी कवि ने बड़ी सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है -

तस्या एव प्रभञ्जमचल प्राप्य गौर तुपारै  
 वक्ष्यत्यध्वश्रमविनयन तस्य शृगे निषण्ण  
 शोभा शुभ्रात्रिनयनवृषोत्सातपकोपमेयाम् ॥१॥५३॥

तुपार से श्वेत हिमालय के किसी शृंग पर बैठे हुए मेघ को शिवजी के वृष के सींग में लगी हुई पक से उपमा देकर कवि ने मेघ के सौभाग्य को बढ़ाया ही है।

कौलाश पर्वत के चरुण में तो कवि ने बड़ा ही चमत्कार दिखाया है। इस पर्वत की धवलता को हृदयगम कराने के लिये कवि ने इसे द्विज्यागनाओं का दर्पण तथा शिवजी का अट्टहास ही बना दिया है—

‘कौलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथि स्या ।  
 शृगोच्छ्रायै कुसुद विशद्वैर्यो विलस्य स्थित स  
 राशीभूत प्रतिदिशमित्र त्र्यम्बकस्याट्टहास ॥१॥५६॥

इस प्रकार पूर्व में कवि ने विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों का बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रण किया है। साथ में स्थान स्थान पर उत्कृष्ट मानवीय भावनाओं का भी सम्मिश्रण पाया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास का मेघ ‘धूम-ज्योति-सलिलमरता सन्निपात’ ही नहीं है, बरिक्त बह बह का मित्र और बन्धु है तथा बह की पत्नी उसकी सखी अथवा उसके भाई की जाया है।

पर्वतों के चरुण में भी कवि ने प्रायः सर्वत्र ही मेघ को उनका मित्र बताया है। तभी तो रामगिरि के सम्बन्ध में कवि कहता है—

काले काल भवति भवतो यस्य (रामगिरे) संयोगमेत्य  
 स्नेह व्यक्तिश्चिरधिरहज भुवतो वाप्यमुप्याम् ॥१॥५७॥

चिर धिरह के बाद मिलने वाले मित्रों का अधुपात करना स्वाभाविक ही है। वर्षा ऋतु के आगमन से वन की अग्नि शान्त हो जाती है। इस बात को मेघ का आभ्रकूट पर्वत के प्रति उपकार बताकर पर्वत द्वारा मित्र रूप से उसके भी अध्यधम दूर करने का चरुण किया गया है—

त्वामासार-प्रशमित-यनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना  
 वक्ष्यत्यध्यधम परिगतं सानुमानाभ्रकूटं ।  
 न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुहृतापेक्षया संश्रयाय  
 प्राप्त मित्रे भवति विमुक्तं किं पुन यस्तथोच्यते ॥१॥७॥

इसी प्रकार नीचे नामध पर्वत को भी मेघ ने सम्पर्क से पुलकायमान बताया गया है—

नीचैराख्य गिरिमधिरसेस्तत्र विश्रामहेतो  
स्वत्सम्पर्कात् पुलकितमित्र प्रौढपुष्पै कदम्बै ॥१॥२६॥

मित्र के सम्पर्क से मित्र का पुलकित होना स्वाभाविक ही है।

आकाश में जाते हुए मेघ के वर्णन में कवि ने यही ही कोमल मानवीय भाव-  
नाओं का उल्लेख किया है -

स्वमारुढ पवन पदवीमुदगृहीतालकान्ता  
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिता प्रस्रयादाश्रयसत्य ॥१॥२७॥

प्रोषितभर्तृकाओं का मेघ दर्शन होने पर प्रिय के चापिस लौटने के विश्वास से  
अत्युत्कण्ठित होना स्वाभाविक ही है।

ग्रामीण सरल स्त्रियों द्वारा मेघ के देते जाने का भी कैसी भावमग्नता के साथ  
कवि ने वर्णन किया है -

तृष्यायत्त कृपिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञै  
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदयधू लोचने पीयमान ॥१॥२८॥

मार्ग में पड़नेवाली नदियों को प्रायः मेघ की प्रेयसियों के रूप में ही कवि ने  
वर्णित किया है। बेजयती ( बेतवा ) नदी का निम्नट मेघ के पहुँचने का प्रसंग लेकर  
कवि कहता है -

गत्या सद्यः फलमविकल कामुकत्वस्य लब्धा ।  
तृरीषान्तस्तनितसुभग पात्यसि स्वादु यस्मात्  
सञ्जभृगं मुपमित्र पयो वेधवत्याश्चलोर्मि ॥१॥२९॥

यहाँ पर मेघ को कामुक तथा बेजयती नदी को विलासिनी स्त्री के रूप में  
चित्रित किया गया है।

निर्गन्ध्या नदी के पास पहुँचने पर भी कवि ने इस नदी को मेघ की नायिका  
के रूप में ही वर्णित किया है -

यीक्षिद्धोभस्तनित विहगश्रेणि काची गुणया  
ससर्पन्त्या स्थलित सुमग दर्शितार्तनाथे ।  
निर्गन्ध्याया पथि भय रसाम्यन्तर सन्निपत्य  
स्त्रीणामार्थं प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु ॥१॥३०॥

रूपक और श्लेष की सहायता से कवि ने किस सुन्दर रीति से यहाँ निर्ग-  
न्ध्या नदी में नायिका के व्यवहार का वर्णन किया है।



सिन्धु नदी ( मालवा की काली सिन्ध नदी ) को भी मेघ की प्रेयसी के रूप में ही चित्रित किया गया है —

प्रेणीभूतप्रतनुमतिना ताम्रतीतस्य सिन्धु,  
पाण्डुरज्ज्वालातटमृदतरङ्ग शिभिर्जीर्णं पल्लैः ।  
सोभाग्य ते सुभग'जिरहास्थया व्यज्यन्ता  
काश्य येन त्यजति सिन्धिना स त्रयैर्दोषपाद्य ॥१॥३०॥

मेघ के प्रियोग में सिन्धु नदी (मालवा की काली सिन्ध नदी) को कुछ बता कर कवि ने उसे मेघ की प्रोपितभर्तृ का नायिका का रूपक दिया है ।

आगे चलकर गम्भीरा नदी भी एक उदात्त नायिका के रूप में ही वर्णित की गई है —

गम्भीराया पयसि सरितश्चेतसीय प्रमन्ते  
छायात्माऽपि प्रकृति सुभगो लक्ष्यते ते प्रवेशम् ।  
तस्मादस्या धुमुदशिशदान्यर्दसि त्र न धैर्यात्  
मोघीकृतु चटुलशफरोद्धर्तनप्रेक्षितानि ॥१॥४१॥

उपमा और रूपक की सहायता से गम्भीरा नदी को एक उदात्त और अनुरक्त नायिका के रूप में यहाँ उपस्थित किया गया है ।

नदियों के वर्णन प्रसंग में उनके साथ मेघ के प्रणय सम्बन्ध की चर्चा करने पर भी कुछ नदियों के प्रति मेघ की न करल नष्टे वरिक्त अज्ञान भी दिखाया गया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि मेघ से चर्मैवती (चर्मरज) नदी का सत्कार करने के लिये भी कहा गया है —

व्यालस्येया सुरभितनयालम्भजा मानयिष्यन्  
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणता रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥१॥४६॥

सारस्वती के जल से तो मेघ क अन्त शुद्ध होने तक का उल्लेख किया गया है —

दृष्ट्वा ताम्रप्रभिगममृषा सोम्य सारस्वतीनाम्  
अन्त शुद्धस्त्वमपि भविता धर्ममात्रेण दृष्ट्य ॥१॥५०॥

कवि ने न केवल नदियों को ही मेघ की नायिकाओं के रूप में चित्रित किया है, बल्कि उज्जयिनी के प्रसंग में तो यहाँ की पौराणनाओं के साथ भी मेघ के प्रणय संपन्न की व्यंजना की गई है —

त्रिद्युद्गमस्फुरित चकितैस्तत्र पौरागनानाम्  
लोलापागै र्यदि न रमसे लोचनै र्यञ्चितोऽसि ॥१॥२८॥

उज्जयिनी में रात्रि के समय अभिसार के लिए जाती हुई रमणियों को कवि ने विजली द्वारा मार्ग दिखाने का भी मेघ से आग्रह किया है तथा बरसने और गरजने क लिये तो सर्वथा निषेध किया है —

सौदामन्या कनक निषय स्निग्धया दर्शयोर्मम  
तोयोत्सर्गमनितमुखरो मा स्म भूर्निःश्लवास्ता ॥१॥३८॥

इसके अतिरिक्त उज्जैन में महाकाल की पूजा करने, देवगिरि में स्कन्द स्थायी पर पुष्पनर्पा करने तथा हिमालय पर शिवजी के चरणन्यास की भक्तिपूर्ण परिक्रमा करने का यथास्थान मेघ को आदेश दिया गया है । इस प्रकार हम यह देखते हैं कि मार्ग वर्णन के द्वारा वाह्य तथा मानव प्रकृति दोनों का ही कवि ने सशिलप्ट रूप में चित्रण किया है । साथ में काव्य की कथा के मूल तत्त्वों—प्रेमियों का त्रियोग, तज्जन्य मानसिक वेदना और इस अवस्था में मेघ का सदायर होता- को कवि ने पाठकों की दृष्टि से कहीं भी दूर नहीं होने दिया है । प्रकृति वर्णन तथा मानवीय भावनाओं क चित्रण में सयोग और त्रियोग के मिश्रित वातावरण की भूलक सर्वत्र ही दिखाई देती है । नगर, पर्वत तथा त्रिदिया केवल भौगोलिक दृष्टि से ही वर्णित नहीं की गई हैं, बरिन् उनको भी काव्य में रत्नात्मक ढंग से समन्वित कर और किसी न किसी रूप में मेघ से सयुद्ध मान कर ही वर्णित किया गया है ।

पूर्वमेव में जिस प्रकार वाह्य प्रकृति के वर्णन की प्रचुरता है, उन्ही प्रकार उत्तर मेघ में मानव प्रकृति के चित्रण का प्राचुर्य पाया जाता है । अलका नगरी तथा अपने गृह के वर्णन के बाद यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी के स्वरूप का वर्णन करता है—

तन्वी श्यामा शिपरिदशना पद्मविम्बाधरोष्ठी  
मध्ये क्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभि ।  
श्रोणीभारादलसगमना स्तोक नम्रा स्तनाभ्याम्  
या तत्र स्थायुरति त्रिपथे स्प्रिग्रायेव धातु ॥ २ ॥ ३१ ॥

यक्ष पत्नी के इस स्वरूप वर्णन में कवि ने आदर्श सौन्दर्य की अपनी कल्पना को ही साकार रूप दे रखा है । यक्ष पत्नी को दूसरे शब्दों में हम पद्मिनी भी कह सकते हैं । कवि ने भी अग्रिम पद्य में 'जाता मन्थ शिशिरमधिता पद्मिनी वाऽन्य रूपाम्' ॥२॥३२॥ कहकर यक्ष पत्नी के पद्मिनी होने की ही पुष्टि की है ।

यक्ष दम्पती का परस्पर प्रेम भी दाम्पत्य प्रेम का एक उत्कृष्ट आदर्श है । तभी तो यक्ष में से कहता है —

ता जानीया परिमितकथा जीवित मे द्वितीयम्  
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रगकीमिवैकाम् ॥२॥२०॥

यक्ष ने अपनी पत्नी को अपना द्वितीय जीवन तथा अपनी अनुपस्थिति में उसे चक्रवार पथ की तरह एकाकिनी बनाकर अपने पारस्परिक प्रेम की अनन्यता तथा दृढ़ता प्रतिपादित की है। इसीलिये तो उसे शका होती है कि उसकी पत्नी अग्र-य ही प्रथम विरह में बड़ी दुखी हो रही होगी।

इसके बाद यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी का बड़ा ही भावपूर्ण करुणा चित्र प्रस्तुत करता है -

नून तस्या प्रयत्नरक्षितोच्छ्रुनेत्र प्रियाया  
निश्वासानामशिशिरतया भिन्नधर्णाधरोष्ठम् ।  
हस्तन्यस्त मुखमसकलव्यक्ति लभ्यालकत्वात्  
इन्दोर्देन्य त्वदनुसरणकिलकृन्तेर्विभक्ति ॥२॥२१॥

पतिवियोग में नितान्त रोते रहना, उष्ण निश्वास से अधरोष्ठ का फीका पद जाना, केशसंस्कार न करना तथा हथेली पर मुख का रखे रहना पतिप्राणा पक्ष पत्नी के विषाद, शोक और चिन्ता की पराकाष्ठा को व्यक्त करते हैं। कवि ने इस पद्य में विरहिणी यक्षपत्नी का बड़ा ही भावपूर्ण करुण चित्र अंकित किया है।

आगे चलकर विरहिणी यक्ष पत्नी की विरह कालीन विभिन्न अरुण्डाओं तथा चट्टाओं की बड़ी मधुर समाजना की गई है। यक्ष मेघ से कहता है कि उसकी पत्नी या तो देवताओं की पूजा में लगी होगी, या विरह में क्षीण मेरी आकृति का अपने मनोभावों के अनुसार चित्र बनानी होगी, या पिंडों की मैना से पूछती होगी- हे रसिके, क्या तुम्हें भी स्वामी की याद आती है ? तू तो उनकी बड़ी दुलारी थी । सभन है कि मलिन वस्त्र पहिने हुए गोद में धीला रखकर नेत्रों के जल से भीगे हुए तन्तुओं को किसी तरह ठीक ठाक करके मेरे नामांकित पद को गाने की इच्छा से वर्गात में प्रवृत्त वह अपनी स्मरविधि को भी भूलती हुई दिखाई पड़े । इस प्रकार

१ अलोक्ये ते निपतति पुरा सा बलि व्याकुला या  
मन्सादृश्य विरहतनु या भावगम्य लिखन्ती ।  
पृच्छन्ती वा मधुर वचना सारिका पञ्जरम्याम्  
कच्चिदमर्तु रमरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२॥२२॥ ।

२ उत्सवे वा मलिनवसने सोम्य निक्षिप्य धीणा  
मदगोत्राक् विरचितपदं मेघमुत्तागतुकामा ।  
तन्त्रीमाद्री नयनसन्निहै सारयित्वा कथयिन्  
भूयो मूय स्वयमपि वृता मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥२॥२३॥

प्रेयसी की मन सग अवस्था के वर्णन के बाद यक्ष कहता है कि एक वर्ष के लिये निश्चित मेरे वियोग की अग्रधि के अवशिष्ट मासों को गिनने के लिये देहली पर चढ़ाये पूजा के फूलों को उठा कर, समर है, वह भूमि पर रख रही हो। या फिर भोंति भोंति के समागम सुखों का अपने मन में वह आनन्द ले रही हो<sup>१</sup>।

विरह काल में विविध मनोविनोदों के द्वारा प्रेयसी की मन सग और सकरपा वस्था के वर्णन के बाद यक्ष ने उसकी अन्य अवस्थाओं का भी अपनी कल्पना के आधार पर बड़ा भावपूर्ण चित्र अंकित किया है। यक्ष कहता है कि चित्र लेखन या वीणा बजाने आदि में दिन तो किसी तरह उसकी प्रेयसी का कट जाता होगा, लेकिन रात्रि में तो वह बड़ा दुःख उठाती होगी और मध्य रात्रि में भी जमीन पर जागती ही रहती होगी—

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोग  
शके रात्रौ गुल्तर शुच निर्मिनादा सखीं ते ।  
तामुन्निद्रामभनिशयना पश्य साध्वीं निशीथे ॥ २ ॥ २७ ॥

इस पद्य में कवि ने विरहिणी नायिका की अगरावस्था का भी वर्णन किया है।

यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी को बड़ा कृश तथा विरह शय्या पर एक करबट से लेटा हुआ और रात्रि भर रोता हुआ ही बताता है—

आधिसामा विरहशयने सन्निपत्यैकपात्रार्जम्  
(रात्रिम्) तामेवोष्णीरिरहमहतीमधुभिर्पापयन्तीम् ॥ २ ॥ २८ ॥

प्रिय सयोग में चन्द्रमा की जो किरणों अमृत के समान शीतल लगती थीं, वियोग में वे विरह-वेदना को और भी उद्दीप्त करती हैं। इसलिए चन्द्रमा को देखकर भी विरहिणी यक्ष पत्नी के नेत्रों से आसू यहने लगते हैं और वह अपने नेत्रों को बन्द कर लेती है। यक्ष पत्नी की विरह अन्य इसी विषय द्वेष अवस्था का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

पादानिन्दोरमृतशिशिरान् जलमार्गप्रविष्टान्  
पूर्व प्रीत्या गतमभिमुख सन्निवृत्त तथैव ।  
अक्षु रोदात् सलिल गुरभि पद्मभिश्चादयन्तां  
साध्रं उद्धीन स्थलकमलिनीं न प्रमुञ्चा न सुप्ताम् ॥ २ ॥ २९ ॥

१ शेषान्मासान् विरहदिवसम्यापितम्याग्रयेयां  
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहर्तृक्षपुष्पै ।  
मत्सर्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्यादयन्ती  
प्रायेणीते रमणविरहेष्वगनाना विनोदा ॥ २ ॥ ३० ॥

यक्ष पत्नी की दयनीय दशा का यथार्थ चित्रण करने के लिए कवि ने उपमा भी वहीं ही उपयुक्त दी है ।

विरहवेदना की उत्कटता में यक्ष पत्नी को शरीरसंस्कार से रहित, उष्ण निश्वासे छोटता हुआ और स्वप्न में ही प्रियसमागम के विचार से निद्रा को चाहने पर भी प्रबल अश्रुवेग के कारण निद्रा न पाता हुआ वर्णित किया गया है—

निश्वासेनाधरकिशलयन्लेशिना विक्षिपन्ती  
शुद्धस्नानात् परंप्रमलकं नृनमागएडलम्भम् ।  
-मत्सभोगं कथमुपनयेत् स्वप्नजोऽपीति निद्राम्  
आकाक्षन्तीम् नयनसलिलोन्मोहकद्वारकाशाम् ॥२॥३०॥

विद्योग में यक्षपत्नी को रोता हुआ बताकर कवि ने यहाँ उसके लज्जास्याग की व्यञ्जना की है ।

विरहिणी यक्षपत्नी का चित्त विलकुल ही अस्थिर रहता है । वह खुरखुरी, बेचैन और एक में लिपटी हुई अपनी चोटी को जो लूने मात्र से पीछा पहुँचाती हो, अपने गण्डस्थल के पास से लम्बे नरों वाले हाथ द्वारा बार बार हटाती हुई वर्णित की गई है—

आधे यक्षा विरहदिवसे वा शिष्या दाम द्वित्या  
शापस्यान्ते प्रिगलितशुचा ता मयोद्वेष्टनीयाम् ।  
स्पर्शन्निष्ठामयमिननवेनासकृत् सारयन्तीं  
गण्डाभोगात् कठिनविपमामेकत्रेणीं करण ॥२॥३१॥

विरह कालीन एक बेणी को बार बार कपोलस्थल से हटाना नायिका के चित्त विभ्रम अथवा उन्माद को सूचित करता है ।

अन्त में यक्ष भेग से कहता है कि आभूषणों से रहित, भौंति भौंति के दुखों से तड़पते हुए तथा विरहशय्या के मध्य में किसी तरह पड़े हुए उसके सुकुमार शरीर को देखकर तुम भी अवश्य रो पड़ोगे—

सा सन्न्यस्ताभरणमरला पेशलं धारयन्ती  
शय्योन्संगे निहितमसकृदु खदुःखेन गात्रम् ।  
त्यामप्यत्र नयजलमय मोचयिष्यत्यवश्यम् ॥२॥३२॥

यक्ष पत्नी को इस पद्य में अत्यन्त शीघ्र और अशक्त बताकर कवि ने उसकी मृच्छादिस्था की ओर संकेत किया है । इसीलिये तो उसे देखकर भेग के भी रो पड़ने की समाधान की गई है । आगे चलकर विद्योगिनी यक्षपत्नी के नयन के सम्बन्ध में—

रुद्धापागप्रसरमलकैरजनस्तेहशून्यम्  
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।  
नयनम् ॥२॥३४॥

फह कर तो कवि ने गिरह की प्रणिच्छाया सी उपस्थित कर दी है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरहिणी यक्षपत्नी की तत्तत् विरहावस्थाओं और चेष्टाओं का कवि ने कोमल भावनाओं को लेकर वड़े ही भावपूर्ण और मार्मिक ढंग से यहाँ चित्रण किया है । समृद्ध साहित्य अथवा किसी अन्य साहित्य में इस तरह का कोई अन्य उत्कृष्ट उदाहरण मिलना असम्भव न भी हो, लेकिन दुर्लभ तो अवश्य ही है ।

प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाओं की समाधान करने के वादे पर मधु ने यह कहा है कि यदि मधु रात्रि में किसी तरह मेरी प्रेयसी सोती हुई मिले, तो अपना गरजना बन्द करके एक प्रहर तक तुम उसकी अवश्य प्रतीक्षा करना<sup>१</sup> । तदनन्तर अपने जल कणों से शीतल वायु द्वारा उसको जगाकर<sup>२</sup> पहिले तुम उसे इस प्रकार अपना परिचय देना—

भर्तुर्मित्र प्रियमविधवे विदि मामम्युवाहम्  
तत्सन्देशे हृदय निदिशेत्तगत त्वत्समीपम् ।  
यो वृन्दानि त्यरयति पथि धाम्यता प्रोषितानाम्,  
मन्दस्निग्धैर्धनिमिरबला-वेषि मोक्षोत्सुकानि ॥२॥३५॥

मधु के परिचय में कवि ने कैसे प्रभावपूर्ण और सार्थक शब्दों का प्रयोग किया है । परिचय के आदि में ही पतिवाचक भर्तु शब्द को इसलिये रखा गया है कि उससे तत्काल ही यक्ष पत्नी का ध्यान आकृष्ट हो जाये । वियोगिनी पतिव्रताओं के कान में यह शब्द जैसी अमृतवर्षा करता है, उसका अनुमान सभी सहृदय कर सकते हैं । कवि यदि चाहता तो 'भर्तुर्मित्र' की जगह 'मित्र भर्तु' भी लिख सकता था । उससे भी छन्द की गति में कोई ब्यागत न आता । परन्तु नहीं, उसने यक्ष पत्नी के कान में सर्वप्रथम 'भर्तु' का सुनाना ही उचित समझा ।

इसके अतिरिक्त, 'भर्तु' का समकक्ष और अर्थ विशेष से पूर्ण 'अविधवे' शब्द भी बड़ा महत्वपूर्ण है । इसके रखने में भी कुछ कारण है । इस शब्द के द्वारा यक्ष

१ तस्मिन् काले अतद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्थ-  
दन्थास्येना स्तनितविमुक्तो याममात्र सहस्य ॥२॥३६॥

२ तामृत्योप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन  
यक्षु धीर स्तनितयचनैर्मानिर्ना प्रक्रमेया ॥२॥३७॥

अपनी पत्नी को यह सूचित करना चाहता है कि वह विधवा नहीं हो गई है, सोभाग्यवती बनी हुई है, उसका पति अभी जीवित है। पति के जीवित रहने के समाचार से बढ़कर और कौन समाचार पति प्राणा स्त्री के लिये आनन्ददायक हो सकता है।

मेघ के लिये 'अभ्युवाह' शब्द भी यहा जानबूझ कर ही प्रयुक्त किया गया है। जो मेघ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जल ले जाने का शुस्तर कार्य कर सकता है, उसके लिये सन्देश ले जाना कोई कठिन कार्य नहीं है। मेघ को न केवल सन्देश वाहक, प्रत्युत प्रेमियों का मिलन कराने वाला भी यतलाया गया है।

मेघ के पश्चिम को सुनकर प्रेयसी के दत्तचित्त हो जाने की आशा कर पक्ष फिर मेघ से प्रेयसी को अपना सन्देश सुनाने के लिये कहता है। सर्वप्रथम प्रेयसी की कुशल वार्ता ही पूछने के लिये मेघ से कहा गया है—

भूया एव तव सहचरो रामगिर्याग्रमस्थ  
अव्यापन्न कुशलमगले पृच्छति त्वा वियुक्त ॥२॥४०॥

इन पक्तियों में पक्ष पत्नी की कुशल तो पूछी ही गई है, लेकिन साथ में पक्ष के निःश्वस स्थान तथा जीवित होने का भी समाचार दिया गया है। 'अव्यापन्न,' से पक्ष के जीवित होने की प्रतीति के साथ साथ उसकी तीव्र विरहव्यथा का भी अनुमान लगाया जा सकता है। इसीलिये तो बाद में उसे वियुक्त भी कहा गया है।

कुशल प्रश्न के बाद पक्ष मेघ से प्रेयसी को अपना वृत्तान्त सुनाने के लिये कहता है—

अग्नेनाग प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तम्  
सास्त्रेणानु द्रुतमग्निगतोत्पलदमुत्पलितेन ।  
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोन्मुखसिन्धु दूरधर्मी  
सकरपे स्तैर्विशति विधिना धरिणा रुद्धमार्ग ॥

कहकर उसकी विरहता भी प्रकट की गई है। नायक और नायिका को समान अवस्था में बताकर कवि उनके प्रेम की भी समानता प्रकट कर रहा है।

आगे चल कर फिर कहा गया है—

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यं सग्रीना पुरस्तात्  
पर्ये लोल कथयितुममृगाननस्पर्शं लोमात् ।  
सोऽतिवृन्तं ध्रुवविषयं लोचनाभ्यामदृश्यं  
स्यामुत्पलदविगचितपदं ममुक्षेनेदमाह ॥३॥४१॥

यक्ष की त्रियोग से पूर्ण तथा उत्तरकाल की अवस्थाओं के महान् वैषम्य का इस पद्य में बड़ी स्पष्टता के साथ वर्णन किया गया है। प्रेम की प्रबलता में प्रेयसी से अत्यन्त दूर हो जाने पर यक्ष का उत्कण्ठित हो जाना स्वाभाविक ही है। इसीलिये तो वह मेघ के द्वारा अपनी प्रेयसी के पास सन्देश भेजता है। सन्देश में सर्व प्रथम यक्ष ने कहा है -

श्यामास्त्रग चकित हरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्  
यक्षप्रच्छाया शशिनि शिखिना बर्हभारेषु केशान् ।  
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीतीचिषु भ्रूजिलासान्  
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चरिणः सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

प्रकृति के तत्सदृश्यणीय दृश्यों में प्रेयसी के अंगों की शोभा दूढ़ने से प्रेयसी में यक्ष की तन्मयता प्रतीत होती है। 'हन्तैक स्मिन् क्वचिदपि न ते चरिणः सादृश्यमस्ति' कह कर यक्ष के विषाद की ही व्यञ्जना नहीं की गई है, प्रत्युत यक्षपत्नी के सौन्दर्य की अनुपमता भी व्यक्त की गई है।

इसके बाद यक्ष अपनी विरहावस्था का वर्णन करता है—

त्वामालिख्य प्रणय कुपिता धातुरागौ शिलायाम्  
आत्मानं ते चरण पतितं यागदिच्छामि कर्तुम् ।  
अक्रौस्ताग्मुदुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे  
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगम नो कृतान्त ॥२॥४४॥

यक्ष पत्नी द्वारा यक्ष के चित्र बनाने की सभाजना पहिले की ही गई है। यक्ष भी उसी प्रकार अपनी पत्नी का चित्र बनाता है। लेकिन दैव की क्रूरता तो देखिये कि जब वह प्रणयकुपिता प्रेयसी का चित्र बनाकर उसके चरणों में अपना चित्र भी

१ उपर्युक्त पद्य के अनुरूप भार कवि की अन्य रचनाओं में भी पाये जाते हैं:-

I कलमन्यभृतासु भावित कलहसीषु मद्रालस गतम् ।  
पृथतीषु विलोलमौक्षित पयनाघृतलतासु विभ्रमा ॥२॥५०॥२०५६॥

II मृदु पथन विभिन्नो मतिप्रयाया प्रणयात्  
धनरचिरकलापो नि सपत्नोऽद्य जात ।  
रतिविगलितबन्धे केशपाशे सुकेश्या  
सति कुसुमसनाथे किं करोत्येष यर्ही ॥विभ्रमो० ॥४॥१०॥

'चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातम्' का भाव पहिले भी इसी काव्य में चकित हरिणी प्रेक्षणा ॥२॥२१॥ में पाया जाता है।



बनाना चाहता है, तो उसकी आँखों से अभिधारा प्रवाहित होने लगती है और उसका चित्र अधूरा ही रह जाता है। यक्ष के प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त करते हुए कवि ने इस पद्य में यही ही कोमल भावनाओं का चित्रण किया है। उत्तरकालीन अन्य सन्देश काव्यों में भी इस पद्य का मात्रानुकरण देखने में आता है।<sup>1</sup>

जिस प्रकार यक्ष की पत्नी कथंचित् अपने पति से स्वप्न में ही मिल पाती है, वैसे ही यक्ष भी कथमपि अपनी पत्नी से स्वप्न में ही मिल पाता है —

मामाकाशप्रणिहितं मुञ्ज निर्दयाश्लेषहेतो  
लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु ।  
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानाम्  
मुक्तास्थूला स्तरु किसलयेषु य । पतन्ति ॥२॥४॥

स्वप्न में भी प्रेयसी से भेंट होने पर उसे अक में भर कर निर्भर आलिंगन करने के लिये यक्ष अपनी भुजायें आकाश में फैलाता है। इस दृश्य को देखकर वन-देविया भी फरसा से आर्द्र हो रो पड़ती हैं। उनके अधुविन्दु ही नये तरपटलों पर मोती के सदृश दिखाई पड़ते हैं।

वन देवियां तक जिसके दुःख संचित होती हैं, वनस्थली को भी जिसने अपने समान शोकवाली बना दिया है, वह यक्ष हम सबकी कटाक्ष का पात्र तो अवश्य ही है। अपने कारणभरे विलाप से यक्ष सब प्राणियों की शुभकामनाओं को अपनी ओर आकृष्ट करता है। सुख दुःख की चक्रनेमि पर सवार जितना प्राणिजगत् है, उसमें कोई भी ऐसा नहीं होगा, जो वियोग व्यथाओं से अशरण बने हुये यक्ष के प्रति सहानुभूति न दिखाये।

रामगिरि पर सनसनाती हुई जो हवा चलती है, वह मानो यक्ष के लिये प्रिया के जीवन का सन्देश लाती है। यद्यपि वह दयिता को प्राणालम्बन देने की इच्छा

॥ कवि की अन्य रचनाओं में भी इस पद्य के अनुरूप मात्र पाय जाते हैं —

I न च मुयदगमालेत्येऽपि प्रियामसमाप्य ता  
मम नयनयोरुद्वाप्यत्य सगे न भविष्यति ॥विजयो॥८॥१०॥

II प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्यां स्वप्नसमागम ।  
याप्यस्तु न ददात्येना द्रष्टुं विजयतामपि ॥शकु०॥६॥२०॥

III सादृश्य प्रतिहृतिदर्शने प्रियायां स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोऽसर्वैश्च ।  
तेनाद्यो परिगमिता समा कथंचिद्दालन्यादक्षितयस्तृतेन सूनो ॥रघु॥८॥६०॥

IV इति स्थदस्तोऽल्लिखितश्च मुग्धया यदस्युपलभ्यत चन्द्रशेखरः ॥कुमार॥१॥१८॥

से मेघ को दूत बनाकर भेज रहा है, पर तो भी वह सन्देश-वार्ता में ही यह सूचित कर देना चाहता है कि वह अपनी पत्नी को अभी तक अद्वयापन्न ही समझ रहा है। अद्वोरात्र बहते हुये समीरों में उसकी यही भावना रहती है कि वे उसकी गुणयती प्रिया का स्पर्श सुख लेकर आ रहे हैं। वस्तुतः उत्तर से आने वाली पननों में इस प्रकार की भावना ही यक्ष के सुखानुभव का कारण है। दक्षिण रुख बढ़ती हुई कौन सी हवा यक्षिणी के गात्र सस्पर्श सुख से संपृक्त है, इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है। यक्ष केवल हिमालय की वायु को पहचान सकता है। उन तुषाराद्रियातों में फिर अधिक विवेचन यह नहीं कर सकता। उन सब का आलिंगन करने की आवश्यकता इसीलिये है, क्योंकि उसको सदा सन्देह रहता है कि शायद इनमें से कोई भौंका प्रिया के गात्र को छूकर आया हो। यह सन्देह ही उसके विनोद को बढ़ाने के लिये पर्याप्त है। अपनी इसी भावना का वर्णन करते हुये यक्ष कहता है -

मित्रा सद्यः किसलयपुटान् देवदाहद्रमाशाम्  
ये तत्क्षीरं क्षुत्तिष्ठुरमयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।  
आलिंग्यन्ते गुणरति मया ते तुषाराद्रियाता  
पूर्वं स्पृष्ट यदि किञ्च भवेदगमेभिस्तवेति\* ॥२॥४६॥

सन्देश के प्रथम चार श्लोकों में यक्ष के विरहकालीन चार मनोविनोदों का वर्णन किया गया है। सद्यश्च वस्तु दर्शन, प्रति कृति दर्शन, स्पर्श-दर्शन तथा तद्गम स्पृष्ट वस्तु-स्पर्श-यह चारों विनोद क्रमशः उपर्युक्त चार पद्यों में पाए जाते हैं। यक्ष पत्नी की विरहावस्था के चित्रण में भी इन मनोविनोदों की संभावना की गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यक्ष और यक्षिणी की समान वियोगदशा और प्रेम का यहा वर्णन किया गया है।

\* कालिदास ने शाकुन्तल में भी कुछ ऐसी ही कल्पना की है -

शक्यमरजिन्दसुरभिं पश्यन्ती मालिनीतरगाणाम् ।  
अगैरनग तप्तेरगिरलमालिनि तु पथतः ॥३॥१॥

मयभूति ने भी मालतीमाधव में ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं -

उन्मीलन्मुकुल कराल कुन्दं कोश प्रच्योतद्दधन मकरन्द गन्धवन्धो ।  
ताम्रीपत्रचलविलोचना नताग्नीमालिगन्पवन मम स्पृशागमनम् ॥१॥३॥  
अन्यच्च विकसत्कन्दर्भं निकुरम्य पाशुना सह जीवितं यह मम प्रिया यत ।  
अथवा तद्गमपरिवासशीतल मयि किञ्चिदर्पय भवान्नि मे गति ॥६॥४३॥

गीतगोविन्द में अपदेव ने भी उक्त पद्य से मिलते जुलते भाव व्यक्त किये हैं -

यद्द मनुते ननु ते तनुसगतपवनचलितमपि रेणुम् ॥१॥१॥

अपनी प्रेयसी के विरह में यक्ष बड़ा ही व्याकुल रहता है। रात्रि में वह यह सोचता है कि कब दिन हो और दिन में वह यह सोचता है कि कब रात्रि हो। इसी तरह की दुर्लभ प्रार्थनाओं से पूर्ण अपने चित्त की असहाय्यता का यक्ष ने निम्न पद्य में वर्णन किया है—

सत्तिष्येत क्षण इव कथं दीर्घायामा प्रियामा  
सर्वावस्थास्त्वनिरपि कथं मन्दमन्दतप स्यात् ।  
इत्थं चेतश्चदुलनयने दुर्लभप्रार्थन मे  
गाढोष्माभिः कृतमशरणं स्पृष्टियोगं व्ययामि ॥२॥४७॥

यह घात किसी भी सहृदय से छिपी नहीं है कि विरह में थोड़ा सा भी समय बड़ा कष्ट कर प्रतीत होता है और जब विरह वेदना बड़ी प्रबल हो तब तो चित्त की असहाय्यता का कहना ही क्या? कवि ने इस पद्य में यक्ष की भावनाओं का बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है।

अपनी दयनीय दशा का वर्णन करते २ यक्ष को आशका होती है कि कहीं उसकी पत्नी बड़ी चिन्तित न हो जाय। इसीलिए वह एकदम कहता है—

मम्यात्मानं बहु विगणयन्मात्मनैवावलम्ब्य  
तत्करत्याणि त्वमपि नितरा मां गम कातरस्यम् ।  
कस्यात्यन्तं सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा  
मीर्क्षेर्गच्छत्युपरि च दशा वक्रनेमिकमेण ॥२॥४८॥

सत्तार में कोई न हमेशा दुःखी रहता है, न हमेशा सुखी ही रहता है। दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख आते ही रहते हैं। यक्ष का दुःख भी हमेशा नहीं बना रह सकता।<sup>१</sup> इसीलिए वह फिर अपनी प्रेयसी को आश्वासन देता है—

१ उपर्युक्त पद्य में प्रयुक्त 'आत्मानमात्मना' जैसा पद विन्यास प्रसंगान्तर में अन्यत्र भी कवि ने प्रयुक्त किया है—

आत्मानमात्मना वसिष्ठं यजन्त्यात्मानमामना ॥कुमा०॥२॥१०॥

यहां यह तो स्पष्ट ही है कि कवि ने धर्मदुःखग्रस्तगीता के उपदेश का आश्रय लिया है। यथा—

I उद्धरेदात्मनात्मानम् नात्मानमवसादयेत् ॥६॥१॥

II संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥३॥४३॥

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ  
 शेवान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा<sup>१</sup> ।  
 पश्चादाग्रा विरहगुणितं तत्तमात्मामिलापम्  
 निर्वेद्याय परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥४६॥

विरहिणी यक्ष वधू के लिये प्रिय मिलन के आश्वासन से बढ कर और मधुर सन्देश क्या हो सकता है। यक्ष के सन्देश की मुख्य बात तो इसी पद्य में छिपी हुई है और वास्तव में सन्देश भी यही पर समाप्त हो जाता है।

मेघ को अपना सन्देश बताने के बाद यक्ष को शका होती है कि कहीं उसकी पत्नी मेघ को कोई धूर्त न समझ बैठे। इसलिये अपने वैवाहिक जीवन की एक छोट्टी पर यही गूढ़ घटना भी यक्ष मेघ को बताता है, ताकि मेघ से उस घटना को सुन कर यक्ष पत्नी को यह विश्वास हो जाये कि मेघ वास्तव में यक्ष का भेजा हुआ वृत्त है—

मूयश्चाह स्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे  
 निद्रा गत्वा किमपि रुदती सत्यं विप्रबुद्धा ।  
 सान्तिर्हास कथितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे  
 दृष्टं स्वप्ने नित्यं स्वयम् कामपि त्वं मयेति ॥२॥४०॥

कस्यात्यन्तमित्यादि पक्तिया भी अवश्य ही महाभारत के—  
 सुखं च दुःखञ्च भयामयं च लाभालाभौ मरणं जीर्णं च ।  
 पर्यायश्च सर्वमिदं स्पृशन्ति तस्माद्भीरो न प्रहृष्येन्न शोचेत् ॥महा०शा०॥२५॥३१॥  
 श्लोक के आधार पर लिखी गई हैं। मनुस्मृति में भी चक्र की उपमा पाई जाती है—

चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥१०॥४५॥  
 भास ने भी एक स्थल पर ऐसा ही निर्देश किया है—

काल क्रमेण जगत् परिवर्तमाना  
 चक्रारपक्तिरिव गच्छति भाग्यपतिः ॥स्वप्न०॥१॥४॥

ऐसे ही समानान्तर भाग्य—‘सयोगा विप्रयोगाश्च भवन्ति बहवो नृणाम्’ इस तरह कथा-सरित्सागर में, ‘समागमा सापगमा सर्वमुत्पादि भगुरम्’ इस तरह पञ्च-तन्त्र में, ‘एष कीडति कूप यन्त्र घटिकान्यायप्रसक्तो विधि’ इस तरह मृच्छकटिक नाटक में भी पाये जाते हैं।

१ अमरशतक में भी यह भाव कुछ दूसरे शब्दों में पाया जाता है—

कान्ते कल्पपि वासराणि गमय त्वं मीलयित्वा दृष्टौ ॥२५॥

यद्यपि घटना बहुत छोटी है लेकिन इस घटना को यक्ष-दम्पति के अतिरिक्त और कोन जान सकता था। मेघ के मुख से यह घटना सुनकर उसे 'भर्तु' मित्र प्रियम्' मानने में यक्ष-यक्षू को कोई सन्देश नहीं रह सकता, क्योंकि यक्ष यह घटना अपने किसी अन्तरंग मित्र को ही बता सकता है। रामायण में रामचन्द्रजी ने भी अभिज्ञान स्वरूप अपनी अँगूठी देकर हनुमानजी को सीतार्जी के पास भेजा है और सीतार्जी ने भी काफ जयन्त की घटना के साथ एक अन्य घटना भी अभिज्ञानस्वरूप वर्णित की है और अपनी वृद्धामणि भी हनुमानजी के साथ भेजी है। लेकिन कवि यक्ष को पहिले ही 'कनकवल्लभश्च शरित्प्रकोष्ठ' बता चुका है, अतः बाद्य अभिज्ञान के अभाव में किसी अन्तरंग घटना का ही अभिज्ञानस्वरूप बताया जाना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अभिज्ञान घटना के द्वारा अपनी कुशल सूचित करने के बाद यक्ष अपनी पत्नी को यह भी विश्वास दिलाता है कि विरह में उसका प्रेम मर नहीं हुआ है प्रत्युत और भी समृद्ध हो गया है -

एतस्मान्मा कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा  
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्यासिनी भू ।  
स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्यसिमस्तौ त्वभोगात्  
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशौभवन्ति ॥२॥४१॥

विरह में यक्ष प्रेम के समृद्ध होने का वर्णन कर कवि प्रेम सम्बन्धी अपने विचारों को ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है। इसके पूर्व भी कवि एक स्थल पर 'विरहगुणित तम तमात्माभिलाषम् ॥२॥४६॥ कह चुका है।

इस प्रकार मेघ को अपना सन्देश बता कर यक्ष फिर मेघ से अपनी पत्नी के भी सन्देश लाने की प्रार्थना करता है। अन्त में मेघ के मौन रहने पर भी उसका द्वारा अपनी प्रार्थना के स्वीकार किये जाने का विश्वास कर वृत्तवृत्ता प्रदर्शन और आशीर्वाद के साथ यक्ष मेघ को विदा कर देता है -

इष्टान् शान् जलद त्रिचर प्रावृषा सम्भृन्धी  
मा भूदेय क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग ॥२॥४८॥

(१) नो तस्य तत प्रीति म्यनामाकोपशोभितम्  
अगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्या परन्तप ॥वि० ४४॥१०॥

अनेन त्या हरियेष्ट चिह्नं जनकात्मजा ।  
मत्सकशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥वि० ४४॥१३॥

(२) मनशिलाया मित्तको गण्डपाश्वे निषेधित ।  
तथा प्रनष्टे तिलके त किल स्मर्तुमर्हसि, सु० ४०॥१॥

यक्ष के इस आशीर्वाद में भी उसके विरह विधुर हृदय की ही प्रतिध्वनि पाई जाती है। और यह आशीर्वाद है भी वही हृदयस्पर्शी तथा कारुणिक। विद्युत् को मेघ की पत्नी के रूप में पहिले भी वर्णित किया जा चुका है—नीला रात्रि चिर-विलसनात् विन्नविद्युत्कलत्र ॥१॥३६॥ इसीलिये यक्ष मेघ को विद्युत् से क्षणमात्र के लिये भी विप्रयुक्त न होने का आशीर्वाद देता है। जिन्ही व्यक्ति इससे बढ़कर और शुभ आशीर्वाद क्या दे सकता है ?

काव्य में यक्ष का सन्देश वही भावपूर्ण और कारुणिक है। कवि ने विरही यक्ष के हृदय की भावनाओं का वही सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है। साथ में मान योजना भी वही व्यवस्थित और मनोवैज्ञानिक ढंग से की गई है। सर्वप्रथम अपने निवासस्थान तथा कुशल का समाचार देने के साथ साथ यक्ष अपनी पत्नी की कुशल वार्ता पूछता है। इसके बाद वह अपनी विरहावस्था का वर्णन करता है। तदनन्तर अपनी पत्नी को भ्रम्य वधात हुए वह उसे शीघ्र ही अपने मिलने का आश्वासन देता है। अन्त में वह विरह में भी अपने प्रेम की प्रगाढ़ता का अपनी पत्नी को विश्वास दिलाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यक्ष का सन्देश विरहिणी यक्षपत्नी के निष्प्राण जीवन में भी प्राण का संचार कर सकता है। अपनी प्रियतमा के जीवन की रक्षा के लिए ही तो यक्ष मेघ के द्वारा सन्देश भेज रहा है और उसका यह सन्देश न केवल मेघ की ही लिए प्रत्युत उसकी पत्नी के लिये भी वस्तुतः श्रोत्रपेय है।

## उज्जयिनी और अलका

इस काव्य में कवि ने विभिन्न पर्वतों तथा नदियों का वर्णन तो किया ही है, कुछ नगरों के प्राकृतिक सौन्दर्य, सासारिक वैभव और विलासमय जीवन का भी यथास्थान कवि ने बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है। इन नगरों में उज्जयिनी और अलका विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्तर की ओर जाने वाले मेघ के लिए उज्जयिनी का मार्ग यद्यपि सीधा नहीं पड़ता है, फिर भी उससे बड़ा जाने का आग्रह किया गया है, ताकि वह बड़ा के उच्च प्रासादों और विलासिनी पौराणनाओं के दर्शन से वंचित न रह जाय—

यकं पन्था यदपि भवत प्रस्थितस्थोत्तरायाम्  
सौधोत्सगप्रणयविमुखो मा म्म भूः उज्जयिन्या ।  
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराणनानाम्  
लोलापागे यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि ॥१॥२८॥

उज्जयिनी के वैभव का अनुमान लगाने के लिये कवि का निम्न कथन ही पर्याप्त है—

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणा गां गतानाम्  
शेषं पुण्यैर्हृतमिदं दिव कान्तिमत्त्वखण्डमेकम् ॥१॥३१॥

उज्जयिनी की पर्यवधीकाओं में चिकनार्थ रखते हुए हीरे और मोती इत्यादि को देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र में केवल जल ही शेष रह गया होगा—

हारास्तापस्तरलगुटिकान्कोटिश शसशुक्ती  
शष्पश्यामान्तरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।  
दृष्ट्वा यस्या विपश्चिरचितान्विद्रमाणा च भगान् ।  
सलदयन्ते सलिलनिधयस्तोयमाश्रयशेषा ॥१॥३२॥

ऐसे वैभवशाली नगर में प्रत्येक गयाक्ष से सुगन्धित धूप का निकलते रहना, घर-घर में मयूर का मृत्य करना तथा प्रासादों का विभिन्न प्रकार के पुष्पों से सुगन्धित और सुन्दर स्त्रियों के पादरागसे अंकित होना स्वाभाविक ही है। मेघ को अपनी यात्रा की थकान दूर करने का उपदेश देता हुआ यह प्रकारान्तर से नगर के सौन्दर्य का ही वर्णन करता है—

आलोदगीर्णैरुपचितरपु केशसस्कारधूपै  
धन्धुग्रीत्या भग्नशिलिभिर्दलनूलोपहार ।  
हर्म्यपवस्या कुसुमसुरभिरभ्यरेद नयेथा  
लक्ष्मीं पश्यन् ललितरनितापादरागान्त्रितेषु ॥१॥३२॥

उज्जयिनी में केवल सासारिक वैभव से ही पूर्ण है प्रत्युत यहा का प्राकृतिक सौन्दर्य भी कुछ कम नहीं है। प्रातःकाल होने पर हंसों के मधुर कलरव तथा कमलों की मधुर सुगन्ध से युक्त जो शीतल हवायें शिवा नदी से चलती हैं, वे किस प्रकृति-प्रेमी के हृदय को मुग्ध न करेंगी। उज्जयिनी की प्रातःकालीन सुषमा का कवि ने निम्न पद्य में कितना मधुर चित्र अंकित किया है—

दीर्घाकुर्वन् पट्टमदक्षलं कूर्जि सारसानाम्  
प्रत्यूपेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय ।  
यत्र स्पर्शना हरति सुरतग्लानिमगानुपूल  
शिवायात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ॥१॥३३॥

यहा प्रकृति की वृष्टभूमि में मानवीय भावनाओं का यही सुन्दर रीति से यहा पर समन्वय किया गया है।

। प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सासारिक वैभव से पूर्ण इस नगर में अभिसरिकायें निविड अन्धकार में भी अपने प्रेमियों के पास रात्रि में आती हुई बताई गई हैं—

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योपिता तत्र नक्तम्  
रङ्गालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥१॥३८॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य, सासारिक वैभव और मानवीय भावनाओं को लेकर उज्जयिनी नगरी का बड़ा ही रमणीय चित्र उपस्थित किया है।

उज्जयिनी नगरी के समान अलका नगरी का भी कवि ने बड़ा उदात्त और भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। कैलाश पर्वत पर स्थित अलका नगरी का परिचय देता हुआ पक्ष मेघ से कहता-है -

तस्योत्सगे प्रणयिन इव अस्तगंगादुकुलाम्  
न त्व दृष्ट्वा न पुनरलका ज्ञास्यसे कामचारिन् ।  
या न काले वहति सलिलोदगारमुच्चैर्विमाना  
मुकाजालप्रथितमलक कामिनीनाश्चन्द्रम् ॥२॥६४॥

कैलाश पर्वत और अलका नगरी के लिये प्रिय और प्रेयसी की बड़ी ही मधुर तथा उपयुक्त उपमा यहाँ प्रदान की गई है।

अलका नगरी के उच्च प्रासादों का भी वही सुन्दर दृग से वर्णन किया गया है। इन प्रासादों में सुन्दर दिव्यागनायें तो रहती ही हैं, भित्तियों पर चित्र भी बने हुए हैं, संगीत के साथ मृदंग भी बजते रहते हैं और फर्श भी पारदर्शक मणियों का बना हुआ है।

विद्युत्पन्त ललितनलिता सेन्द्रचाप सचित्रा  
सगीताय प्रहृतमुरजा स्निग्धगम्भीरघोषम् ।  
अन्तस्तोर्य मणिमयमुषस्तु गमभ्र लिहाप्रा  
प्रासादास्तत्र तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेष्यैः ॥२॥१॥

मेघ और प्रासादों में परस्पर सादृश्य पताने वाले विशेषणों का यहाँ बड़ा ही सुन्दर उपयोग किया गया है।

अलका नगरी में सर्वदा ही सद्यः ऋतुयें पाई जाती हैं। तभी तो यहाँ की स्त्रियाँ अपने विभिन्न अंगों को विभिन्न ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले विविध पुष्पों से सर्वदा सजाती रहती हैं। इसी भाव को लेकर काव्य में कहा गया है-

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धम्  
नीता लोघ्रप्रसरजसा पाण्डुतामानने धी ।  
चूडापाशे नवकुरयक चारु कण्ठे शिरीषम्  
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यद्य नीपं यधूनाम् ॥२॥२॥



अलका की स्त्रियों को रत्न इत्यादि के अलंकारों से भूषित न बताकर पुष्पों से ही उनके भूषित होने का वर्णन कर कवि उनके अत्यधिक सौकुमार्य तथा यिला सयती होने की व्यंजना कर रहा है।

अलका नगरी की कुछ अन्य प्राकृतिक विशेषताओं को भी देखिये -

यत्रोन्नत भ्रमर मुखरा पादपा नित्यपुष्पा  
हंसश्रेणीरचितरसना नित्यपद्मा नलिन्य ।  
केकोत्कण्ठा भजनशिखिनी नित्यमास्वत्कलापा  
नित्यज्योत्स्ना प्रतिहतमोघुत्तिरम्या प्रदोषा ॥२॥३॥

अलका नगरी का यहाँ पर बड़ा ही उदात्त और समृद्ध चित्र अंकित किया गया है।

प्राकृतिक वैभव से पूर्ण यह अलका नगरी सासारिक वैभव में भी कुछ कम नहीं है। यहाँ का जीवन भी यहाँ बिलासमय ही वर्णित किया गया है -

यस्या यक्षा सितमणिमयान्धेत्य हर्म्यस्थलानि  
ज्योतिरङ्गाया धुसुमचिदान्युत्तमरीसहाया ।  
आसेजन्ते मधु रतिफल कटपधूमप्रस्तम्  
(मेष) त्वदुगम्भीरभ्यनिषु जनकै पुष्करेणाहतेषु ॥२॥४॥

अलका नगरी के वैभव और बिलासमय जीवन का एक और दृश्य देखिये -

नीधीरन्ध्रोच्छ्वसितशिथिल यत्र रिम्बाधराणाम्  
क्षीमं रागादिनिभृतकरेण्यक्षिपत्सु प्रियेषु ।  
अर्चिस्तु गानमिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्  
ह्रीमूढाना मयनि विफलप्रेरणा धूर्णेमुष्टि ॥२॥५॥

अलका नगरी के वैभव के साथ-साथ यह पद्य यहाँ की रमणियों की सुगन्धना को भी व्यक्त कर रहा है।

जिस प्रकार उज्जयिनी में अभिसारिकायें रात्रि में अपने प्रेमियों के पास जाती हुई वर्णित की गई हैं, उसी प्रकार अलका में भी रात्रि में अभिसारिकायें अपने अपने प्रेमियों के पास जाती हुई यतलार्द यह हैं -

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पै  
पत्रच्छेदै कनक कमलै वर्णविभ्र शिभिश्च ।  
मुक्ताजालै स्नान परिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै  
नेत्रो मार्गं सवितुष्टये सूच्यते कामिनीनाम् ॥२॥६॥

अलका नगरी का कवि ने शृ गार रस से पूर्ण बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। अलका की स्त्रिया नयन विभ्रमों में बड़ी ही दक्ष हैं तथा उनके विविध शृ गार की सामग्री अकेले कल्पवृक्ष से ही उन्हें उपलब्ध हो जाती है। वहाँ की चतुर वनिताओं के भ्रू विलास और तिरछे कटाक्ष रूपी श्रमोघास्त्रों से ही कामीजन चूर चूर हो जाते हैं। उनको विभ्रम की शिक्षा देने वाला रतिफल नामक मधु है जो कि कल्पवृक्ष से चुआ कर धनाया गया है। कामी क्षय को प्राप्त न होने वाली निधिया जिनके घरों में हैं, वे कामी यक्ष वारागनाओं को साथ लेकर कुंजर के वैभ्राज नामक उपरान में विहार करते हैं —

अक्षय्यान्तर्मननिधय प्रत्यह रक्तकण्ठे  
रदुगायद्विभर्धनपलियश किन्नर्येन सार्धम् ।  
वैभ्राजाल्य त्रिमुधवनिता वारमुल्यामहाया  
यक्षालापा यहिदपयन कामिनो निर्दिशन्ति ॥२॥१०॥

अलका में खरम कोटि का अर्धस्थातन्त्र्य है। यह अमन्त सम्पत्ति की पूरी है, फिर भी उसमें कल्पवृक्ष है। यद्यपि इस नगरी में कल्पवृक्ष की उपयोगिता कुछ भी नहीं है, फिर भी कवि ने कल्पवृक्ष के लिए कुछ उपयोग दूढ़ ही लिया है —

वासश्चित्र मधु नयनयोर्निधमादेशदक्षम्  
पुष्पोद्भेद सह फिसलयै भूषणाना विकल्पान् ।  
लात्ताराग चरणकमलन्यासयोग्यञ्च यस्याम्  
एकं सूतं सकलमयलामण्डन कल्पवृक्ष ॥२॥१३॥

अर्थात् अलका में एक कल्पवृक्ष ही अलकाओं के प्रसाधन की समस्त सामग्री पूरी कर देता है। अगर सौन्दर्य के देश में स्त्रियों को कोई कामना यदि होती है, तो वह वेयल मण्डनसामग्री की। जैसा मण्डन वे चाहती हैं, कल्पवृक्ष उन्हें दे देता है। यही कल्पतरु की सार्यता है।

अलका और उज्जयिनी में अनेक समानताएँ पाई जाती हैं। दोनों नगरियों की अभिसारिकाओं का उल्लेख किया ही जा चुका है। अलका में अप्सरा रूपी परपस्त्रिया हैं। उज्जयिनी में भी उनके समकक्ष गणिकाएँ हैं जो महाकाल के मंदिर में चामरनृत्य करती हैं। पशुपति की पूजा का विधान दोनों जगह समान है। उज्जयिनी में सायकाल आरती के समय ढोल बजाए जाते हैं। अलका में सगीत के लिए मुरजों की ध्वनि होती है। अलका में वे सुन्दरी बालाएँ जिनके लिए देव भी ललचाते हैं, सुवर्ण की बालू में मणियाँ छिपा कर गुप्तमणि नामक खेल खेलती हैं (सकीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्या ॥२॥६॥)। उज्जयिनी में शुषतिषा गन्धयन्ती नदी के तीर में जल ब्रीडा करती हैं। अलका में सुरत खिन्न अलकाओं की भ्रान्ति

हरने की सामग्री चन्द्रकान्त मणिया हैं।<sup>१</sup> उज्जयिनी में प्रातःकाल खिलने वाले कमलों से सुगन्धित होकर जो शिवा की इषा चलती है, वही रतिथान्त रमणियों की ग्लानि हरती है।<sup>२</sup> अलका और उज्जयिनी दोनों जगह भयनों में गवाह हैं। उज्जयिनी में इन जालमार्गों से स्त्रियों के केश सस्कार का जो धूप निकलता है, वही ऊँचे चढ़कर मेघ के गात्र को पुष्ट करता है। अलका में भी जालमार्गों से जो धुँवाँ निकलता है, वह मेघों की ही रक्षा करने के काम में आता है। अलका में घर घर पर मोर पले हुए हैं जिन्हें गृहस्यामिनी खिया नचाती हैं। उज्जयिनी के भयनों के नील कण्ठों को वर्षा का सन्देशवाही मेघ नवाने वाला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अलका और उज्जयिनी में परस्पर बड़ा सादृश्य है। यद्यपि उज्जयिनी इस भूलोक का ही एक भाग है, लेकिन उसका प्राकृतिक सौन्दर्य, सांसारिक वैभव और विलासमय जीवन स्वर्ग से किसी भी प्रकार कम नहीं है। इसीलिये तो कवि ने इस नगरी को 'विष कान्तिमत्स्येदमेकम्' कहा है। वास्तव में उज्जयिनी पृथ्वी पर एक आदर्श नगरी है और अलका तो साक्षात् स्वर्ग है ही। इस नगरी के वर्णन में कवि की सुख और सौन्दर्य की करपना ही साफ़ हो उठी है। इस नगरी को कवि का आनन्दपूर्ण कोई स्वप्न नगर माना जाय, तो अनुचित न होगा।

### यक्ष का गृह

अलका जैसी सुन्दर नगरी में यक्ष का गृह भी कुछ कम सुन्दर नहीं है। कुबेर के गृह से उत्तर की ओर ही यक्ष का यह गृह है। अपने उच्च तथा मणिमय तोरण के द्वारा यह द्वार से ही चमकता है। इसके पास में बालमन्दार वृक्ष लगा हुआ है। मरुतशिलाओं की सीढ़ियों से युक्त तथा स्पष्ट जल से पूर्ण एक बापी भी इस घर में है। वर्षा ऋतु में भी इस इस बापी के जल में विहार करते रहते हैं। इस बापी के किनारे ही कनक वदली से घिरा हुआ एक क्रीडाश्लेष है।

इसके शिखर पर इन्द्रनीलमणिया लगी हुई हैं तथा इस पर माधवी मण्डप के पास ही रक्ताशोक और केशर के वृक्ष लगे हुए हैं। इन वृक्षों के मध्य में सुवर्ण निर्मित तथा स्फटिक के फलक वाली एक वास्तव्य है जिस पर कि यक्ष के घर का मयूर सायंकाल को प्रायः बैठा करता है और यक्ष पत्नी उसे अपने हाथ से ताल

१ यत्र स्त्रीणां प्रियतमं भुजोच्छ्रयासितालिंगनानाम्  
अग्लानि सुरत अनिता तन्तुजालायलम्बा ।  
(मेघ) त्वत्सरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निरीधे ।  
व्यालुम्पन्ति स्फुटजल लघस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ता ॥२॥६॥

२ यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिर्मगानुक्ल-  
शिमावात प्रियतम इय प्रार्थनाचाटुकार ॥

दे दे कर नचाया करती है। गृह के द्वार पर शूल और पदुम के चित्र बने हुए हैं। इस प्रकार कवि ने यक्ष के गृह की बड़ी ही उदात्त कल्पना की है। इस गृह वर्णन से यक्ष के ऐश्वर्यवान् और वैभवसम्पन्न होने में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता है। निर्धन होने पर भी प्रेमी जनों में पति पत्नी सखी प्रेम की मात्रा कम नहीं होती फिर जो जन्म से ही धन सम्पन्न हैं, उनके प्रेम की प्रगाढ़ता का तो कहना ही क्या? पत्नी वियोग होने से यक्ष को कितना दुःख, कितनी मनोव्यथा, कितना शोक सन्ताप हो सकता है, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। यक्ष पत्नी भी पति के वियोग में बड़ी ही अधीर तथा गद्गदकण्ठ बतलाई गई है। अलका नगरी तथा गृह के वैभव और समृद्धि वातावरण को देखते हुए यक्ष उम्पती का विरह में परस्पर उल्लिखित होना स्वाभाविक ही है। यक्ष उम्पती के विरह-वर्णन में अलका नगरी और यक्षगृह का वैभव तथा विलासमय वातावरण पृष्ठभूमि के समान कार्य कर रहा है।

### यक्ष और यक्षपत्नी -

यक्ष और यक्ष पत्नी का विरही प्रेमियों के रूप में विवेचन किया ही जा चुका है। काव्य के नायक और नायिका के रूप में भी उनका कुछ विवेचन करना अनुचित न होगा। शास्त्रीय दृष्टि से यक्ष को धीरे ललित नायक कहा जा सकता है। वह युवक है, फला प्रेमी है तथा अपनी पत्नी के प्रति उसका प्रेम भी काफी तीव्र है। वियोग होने के कारण वह कामचारी है। इसलिये उसका भौगोलिक ज्ञान बड़ा ही गम्भीर और यथार्थ है। किसी योग्य और सूक्ष्मदर्शी पर्यटक के समान ही वह मेघ के मार्ग का निर्देश करता है।

जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बड़ा ही स्वस्थ तथा आशावादी है जैसाकि उसके निम्न कथन से प्रतीत होता है -

कन्यास्यन्त सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा  
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥२॥४८॥

विरह में भी उसके प्रेम की तीव्रता बढ़ता ही जाती है। सन्देश के अन्त में उसने स्वयं ही कहा है—

स्नेहानाहु किमपि विरहे घसिनस्ते त्वभोगात्  
इष्टे यस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभजन्ति ॥२॥५१॥

इसके अतिरिक्त यक्ष का व्यावहारिक ज्ञान भी कुछ कम नहीं है तथा मनुष्य प्रकृति की गम्भीरताओं से भी वह परिचित जान पड़ता है। इसीलिये तो अपने सन्देश वादक मेघ को वह अपना आता तथा सुहृद् और अपनी पत्नी को मेघ की आदृजया बनाता है। संगीत तथा चित्रकला से भी उसे प्रेम है। तभी तो स्वरचित पदों में उसने अपना सन्देश भेजा है—

त्वामुत्कण्ठाविरचितपद मन्मुखेनदमाह । १

यक्ष के द्वारा अपनी प्रेयसी के चित्र बनाने का उल्लेख तो काव्य में आया ही है ।

यक्ष की विरह विधुरता तथा स्वभाव कोमलता देखकर काव्य के अन्त में स्तुति ही उसके प्रति हमारी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है और जिस प्रकार उसने अन्त में मेघ को आशीर्वाद दिया है -

मामूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग ॥

उसी तरह हम भी उसके प्रति यह शुभकामना व्यक्त 'किये बिना नहीं रह सकते ।

मामूदेव क्षणमपि च ते जायया विप्रयोग ॥

### यक्षपत्नी-

काव्य की नायिका के रूप में यक्षपत्नी पर यदि हम विचार करते हैं, तो यह बड़ी ही पतिपरायणा, धर्मनिष्ठ और सुन्दर ली सिद्ध होती है । प्रोषितमर्तृका नायिका के रूप में उसका जीवन बड़ा ही सयत तथा कठोर है । साहित्यशास्त्र में विरहिणी स्त्रियों का जैसा स्वरूप बतलाया गया है, यक्ष पत्नी प्रायः वैसी ही है । यह भूमि पर सोती है और किसी भी प्रकार के प्रसाधन से सर्वथा दूर ही रहती है । विरहावस्था में भी वह देवताओं की पूजा करती रहती है<sup>१</sup> ।

सगीत तथा चित्ररत्ना से वह भी परिचित है । विरहावस्था में अपने पति के नाम से युक्त कोई गाना गाकर अथवा अपने पति का चित्र बनाकर वह समय बिताने की चेष्टा करती है । कवि ने उसका जैसा वर्णन प्रस्तुत किया है, उससे वह पद्मिनी प्रतीत होती है । स्थान स्थान पर कुछ उपमाओं द्वारा भी कवि ने उसके पद्मिनी होने की पुष्टि की है<sup>२</sup> । इसके अतिरिक्त उसकी शिष्टाचार की भावना भी बड़ी ही उदात्त है और यह बड़ी ही मानिनी है । तभी तो मेघ से विद्युत् रूपी अपनी स्त्री को साथ लेकर उससे धार्तालाप आरम्भ करने के लिये कहा गया है<sup>३</sup> । यक्ष ने अभिज्ञानस्वरूप जो घटना वर्णित की है, उससे भी यक्ष पत्नी के मानिनी होने का निश्चय होता है ।

१ आलोने ते निपतनि पुरा सा बलिव्याकुला या ॥२॥२४॥

२ आता मन्ये शिशिरमधिता पद्मिनीं याऽन्यरूपाम् ॥

साधेऽक्षीय स्थल कमलिनीं न प्रनुदा न सुताम् ॥

३ विषदुर्गमं स्तिमितनयना त्वत्सनाथे गवाक्षे

पपत्तु धीरं स्तनित वचनेर्मानिनीं प्रक्रमेया ॥२॥२७॥

## मेघ का दूत कार्य

यों तो यक्ष का मेघ को दूत कार्य में नियुक्त करना कुछ अनुचित सा ही प्रतीत होता है, लेकिन कवि के इस कथन से —

यक्षश्चक्रे जनक-तनया स्नान-पुरणोदकेषु  
स्निग्धच्छाया तरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥

यह सूचित होना है कि यक्ष एक स्थान पर स्थिर रूप से नहीं रहता है, प्रत्युत उन्मादावस्था में इधर उधर घूमता फिरता है। ऐसी अवस्था में घेतन और अचेतन के विषेक का नष्ट हो जाना स्वाभाविक ही है<sup>१</sup> और मेघ के द्वारा अपनी पत्नी के पास यक्ष का सन्देश भेजना कुछ भी असंगत नहीं प्रतीत होता है। कवि ने भी—

कामार्ता हि प्रकृति रुपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥५॥

कह कर मेघ के दूत कार्य के अनौचित्य का परिहार कर दिया है। दूत में प्रायः निम्न गुणों का होना आवश्यक समझा जाता है —

ब्रह्मचारी बली धीरो मायावी मानरजित ।  
धीमानुदारो नि शको धक्ता दूत स्त्रिया भवेत् ॥  
दूत चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्र विशारदम् ।  
इ गिताकार चेष्टश्च शुचिं दक्ष कुलोद्गतम् ॥  
अनुरक्तशुचिर्दक्षस्मृतिमान्देशकालवित्  
वपुष्मान् वीतभीरुर्गमी दूतो राज प्रशस्यते ॥

कवि ने अपनी प्रतिभा से मेघ में प्रायः सभी गुणों का समावेश किया है। मेघ को उच्चवयस में उत्पन्न बताया गया है, वह इन्द्र का प्रधान पुत्र है तथा इच्छा अनुसार कोई भी रूप धारण कर सकता है। मेघ कामचारिण है, सतसों की सहायता करने वाला है, रुपकों के जीवन का मुख्य अवलम्ब है, उसका अन्त करण करणा से पूर्ण है और स्त्रियों के प्रति तो वह बड़ा ही उदार है। शिवजी का वह परम भक्त है। इसीलिये तो महाकाल के मन्दिर में सायकालीन पूजा के समय वह पटह का कार्य करता है और शिव चरणन्यास पहुँचने पर भक्तिपूर्वक उसकी प्रदक्षिणा करता है। इन सब गुणों के होते हुए भी मेघ को पूर्ण ब्रह्मचारी तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि विद्यत् रूपी उसकी प्रेयसी तो उसके साथ ही रहती है तथा अजयिनी की स्त्रियों के चंचल कटाक्षों से भी वह क्रीड़ा करता है।

समय समय पर अपने पुरोचित साहस का भी मेघ ने परिचय दिया है। शरभों द्वारा आक्रमण किये जाने और सुरयुवतियों द्वारा यन्त्रधारणरूप में परिवर्तित किये जाने पर वह अपनी चतुरता का भी परिचय देता है। उसका घोर गर्जन उसकी गम्भीर वाली है। कवि ने 'ससे' 'सौम्य' 'बन्धु' और 'सुहृद्' जैसे सम्बोधनों द्वारा उसके उदार चरित्र की स्थान स्थान पर अभिव्यञ्जना की है।

## रस, छन्द और शैली

इस काव्य का मुख्य रस विप्रलम्भ शृंगार है। शाप द्वारा उत्पन्न प्रवास से पति पत्नियों का विरह इस काव्य में पाया जाता है और नायक की उन्मादावस्था का विशेष रूप से चित्रण किया गया है। समग्र काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा गया है। कवियों की सम्मति है कि विषय के अनुकूल छन्दों योजना करने से वर्ण्य विषय में सजीवता आ जाती है। वह विशेष खुलता है, उसकी सरलता और सहृद्यों को आनन्दित करने की शक्ति बढ़ जाती है। इस काव्य में विप्रलम्भ शृंगार और करुण रस के मिश्रण की अधिकता है। यक्ष का सन्देश कारणिक उक्तियों से भरा हुआ है। जो मनुष्य कारणिक आलाप करता हो, या जो प्रेमोद्रेक के कारण अपने प्रेम पात्र से मीठी मीठी बातें करता हो, वह न तो साप के सदृश टेढ़ी मेढ़ी आल खलता है, न रथ के सदृश दौड़ता ही है। अतः उसकी गति भुजगप्रयात या रथोद्धता अथवा और ऐसे ही किसी वृत्त में अच्छी नहीं लगती। वह तो ठहर-ठहर कर कभी धीमे और कभी कुछ ऊँचे स्वर में अपने मन के भाव प्रकट करता है। यही जान कर कालिदास ने मन्दाक्रान्ता वृत्त का उपयोग इस काव्य में किया है। कहा भी गया है—

मातृद् प्रवास व्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ।

वर्षाश्रुतु, यात्रा तथा आपत्ति के वर्णन में मन्दाक्रान्ता छन्द विशेष रूप से उपयुक्त रहता है। इस काव्य में यह तीनों ही बातें पाई जाती हैं। वास्तव में कालिदास ने समग्र काव्य को इस छन्द में लिखकर सन्देश काव्यों के लिये मन्दाक्रान्ता छन्द की परम्परा सी निर्धारित कर दी है और उसे इस छन्द के प्रयोग में सफलता भी खूब मिली है। हेमचन्द्र ने भी कालिदास के मन्दाक्रान्ता वृत्त की अत्यन्त प्रशंसा की है—

सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवर्तगति ।

सदश्वदप्रकस्येय कामोज नुरगागना ॥ सुवृत्त तिलक ।

विन्यास ३ । श्लोक ३४॥

कालिदास की इस सफलता से प्रेरित होकर ही कुछ परम्परा कवियों ने अपन सन्दर्भ-काव्यों में इस वृत्त का आश्रय लिया है।

कवि यदि अपने मन का भाव ऐसे शब्दों में कहे जिनका आशय सुनने के साथ ही सुनने वाले की समझ में आ जाय, तो ऐसा काव्य प्रसाद गुण से पूर्ण कहा जाता है। जिस तरह पके हुये अमूर का रस बाहर से भलकता है, उसी तरह प्रसादगुण परिप्लुत कविता का भावार्थ शब्दों के भीतर से भलकता है। उसके हृदयगम होने में देर नहीं लगती। अतएव जिस काव्य में करुणार्द्र सन्देश और प्रेमातिशयद्योतक बातें हों उसमें प्रसाद गुण की कितनी आवश्यकता है, यह सहृदय जनों को बताना न पड़ेगा। प्रेम की बात यदि कहते ही समझ में न आ गई—कारणिक सन्देश यदि कानों की राह से तत्काल ही हृदय में न पहुँचा, तो उसे एक प्रकार से निष्फल ही समझिये। प्रेमालाप के समय कोई कोप लेकर नहीं बैठता। करुणा क्रन्दन करने वाले अपनी उक्तियों में व्यग्य और क्लृप्ता लाने नहीं बैठते। वे तो सीधी तरह सरल शब्दों में अपने मन की बात कहते हैं। यही समझ कर महाकवि कालिदास ने इस काव्य को प्रसाद गुण से ओतप्रोत कर दिया है और बैदर्भी रीति तथा कैशिकी वृत्ति में ही इस काव्य की रचना की है। धुन चुन कर सरल और कोमल शब्दों को ही रखा है। माधुर्य, सरलता और स्पष्टता ही कालिदास की शैली की प्रमुख विशेषतायें हैं। उदात्त तथा दीप्यमान करपनाशक्ति के द्वारा कवि की शैली में प्रवाह, लय तथा चित्रोपमता आदि गुण पर्याप्त रूप से पाये जाते हैं। बाह्य तथा मानव प्रकृति दोनों के चित्रण में कवि कुशलहस्त है। उज्जयिनी तथा अलका के वर्णन में प्रत्येक पद्य में तत्तद् दृश्य का एक शब्दचित्र सा प्रस्तुत किया गया है। मानवीय भावनाओं के चित्रण में भी कवि ने पूर्ण कुशलता का परिचय दिया है। यक्ष पत्नी की विरहावस्था का वर्णन बड़ा ही भावपूर्ण है और सहृदय पाठकों के हृदय में करुणा का संचार किये बिना नहीं रह सकता। काव्य की प्रत्येक पंक्ति से कवि की सुकुमार भावनाओं तथा उपयुक्त शब्द-चयन का प्रमाण मिलता है। भावों के अनुकूल भाषा भी बड़ी सरस और मधुर है। विभिन्न अलंकारों के साथ उपमा अलंकार का भी काव्य में प्रयोग किया गया है और यह उपमायें भी बड़ी उपयुक्त तथा चमत्कारपूर्ण हैं। विरहिणी यक्षपत्नी का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

आधिष्ठामा विरहशयने सन्निपण्णैकपाश्याम्  
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्र शेषा हिमाशो ॥२॥२८॥

यदा पर विरह हीण यक्ष पत्नी के लिये कलामात्र चन्द्रमा के शरीर की कितनी सुन्दर उपमा दी गई है।

इसी प्रकार कवि ने आगे भी फिर बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

पादानिन्दोरमृतशिरान् आलमार्गं प्रविष्टान्  
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुख सन्निवृत्त तथैव।



चक्षुः खेदान् सलिलं गुह्यं पद्ममिश्रं दयन्तीं  
साध्वीं स्थलकमलिनीं न प्रनुद्धा न सुताम् ॥२॥१॥

आँसुओं से भारी पलकों द्वारा आँखें बन्द किये हुई यक्ष पत्नी के लिये दुदिन में न तो पूर्ण निरसित और न पूर्ण बन्द स्थल कमलिनी की बड़ी ही उपयुक्त उपमा दी गई है। दोनों ही स्थलों में गुणसाम्य के साथ साथ उपमेय और उपमान के लिंग की समानता भी ध्यान देने योग्य है। वास्तव में कालिदास की शैली में चित्रोपम वर्णन के साथ साथ संगीतात्मक अभिव्यक्ति की भी शक्ति छिपी हुई है। सस्कृत के अन्य कवियों में यह गुण प्रायः कम ही देखने में आता है। कालिदास की रचनाओं में मेघसन्देश सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य माना जाता है। इस काव्य को आदर्श मान कर परवर्ती कवियों ने इसके अनुकरण पर विभिन्न सन्देशकाव्य लिखे हैं। ईसा की अष्टम शताब्दी में जैन आचार्य श्री जिनसेन ने जैन तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र को लेकर चार सगों में पार्श्वभ्युदय नामक अपना काव्य लिखा। इसमें मेघसन्देश की प्रत्येक पंक्ति को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। सम्पूर्ण मेघसन्देश को इस प्रकार पार्श्वभ्युदय काव्य में समाविष्ट कर दिया गया है। मेघसन्देश की लोकप्रियता का इससे बढकर और प्रबल प्रमाण क्या हो सकता है? न केवल भारतवर्ष में, प्रत्युत विदेशों में भी मेघसन्देश के प्रशंसक पाये जाते हैं। फ्रांस के श्री पम० फाबे का कथन है — *There is nothing as perfect in the elegiac literature of Europe as the Meghaduta of Kalidasa*

## काव्य में नैतिक तथा अन्य विचार

कालिदास की रचनाओं में यद्यपि उनके चिन्तन-रत्न बिल्लरे हुये पाये जाते हैं। यों तो काव्य का उद्देश्य मुख्य रूप से पाठकों को आनन्दित करना ही है, लेकिन उसके शिक्षणात्मक पक्ष को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। उत्तम काव्य की विशेषता भी यही है कि वह अप्रत्यक्ष रूप से पाठकों को सद्विचार तथा नैतिकता की भी शिक्षा दे। कवि के कुछ ऐसे ही उपदेशप्रद विचार मेघसन्देश से यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

### (१) कृतज्ञ रहना

मित्र के साथ उपकार करना भारतीय जीवन की एक प्रमुख विशेषता है तथा मित्र के उपकार को समाज का तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति भी कभी नहीं भूलता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि ने कहा है—

न क्षुद्रोऽपि प्रथमं सुकृतापेक्षया संधयाय  
प्राणं मित्रे भवति विमुच्य किं पुनर्यस्तथोच्चै ॥१॥१०॥

## (२) निर्धन

निर्धनों के विषय में कालिदास का यह विचार सर्वथा अखण्डनीय है—

रिक्त सर्गो भगति हि लघु पूर्णता गौरवाय ॥२०॥

सब खाली चीजें हटकी होती हैं, निर्धन का सब जगह निरादर होता है, परन्तु भरपूर होने से भारीपन आ जाता है। धनिकों का सब जगह आदर होता है। कवि का यह कथन एक कटुसत्य है।

## (३) सच्चा प्रेम

किसी किसी कवि ने प्रेम के विषय में इसे सिद्धान्त सा समझ लिया है—मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात् स्नेह प्रयासाधयात्—अर्थात् मित्रेश में रहने से प्रेम नष्ट हो जाता है। कालिदास ने इस मत का सर्वथा खण्डन किया है। उनका मत है—

स्नेहानाहु किमपि विरहे घासिनस्ते त्वभोगात्  
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभगन्ति ॥२१॥२॥

घटने की बात तो दूर रही, विरोग में स्नेह बढ़ता है। कारण यह है कि विरोग में स्नेह रस का आस्वादन नहीं होता। अतः इस के एकत्र होते होते यह महान् राशि बन जाता है। किस सहृदय को यह सिद्धान्त मान्य नहीं होगा ?

## (४) सज्जन

सज्जनों के विषय में कालिदास के विचार बड़े ही उच्च हैं। उनके सम्वन्ध में कवि कहता है—

नि शब्दोऽपि प्रदिशति जल याचितश्चातकेभ्य  
प्रयुक्त हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थकिमेव ॥२१॥३॥

सज्जन प्रणयी अन्यों की याचना का उत्तर उनकी अभिलाषा को पूरा करने में ही देते हैं। मुख से इच्छा पूर्ति का वचन नहीं कहते।

## (४) सुख-दुःख

कालिदास ने सुख दुःख के परिवर्तन की उपमा पहिये की नेमि से दी है। जिस प्रहार पहिये की नेमि नीचे से ऊपर तथा ऊपर से नीचे घूमा करती है, उसी प्रकार सुख-दुःख की भी दशा है—

कस्यात्यन्त सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा  
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रेमिकर्मणः ॥२॥८८॥

ससार में कौन ऐसा मनुष्य है जो सदा सुख भोगे और कौन ऐसा है जो दुःख के गर्त में पड़ा हुआ सदा आर्हें भरा करे। अवनति के बाद उन्नति तथा उन्नति के बाद अवनति अवश्य होती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

### (६) धन का फल

धन इकट्ठा करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य नहीं है। धन इकट्ठा कर दूसरों के दुःख दूर करने में ही उसका व्यवहार करना चाहिये—

आपन्नार्तिप्रशमनफला, सपदो द्युत्तमानाम् ॥१॥१४॥

कवि का यह कथन भी पक्का समीचीन है।

### (७) मित्र का कर्तव्य

मित्र के कार्य को एक बार हाथ में ले लेने के बाद फिर सच्चे मित्र उसमें विलम्ब नहीं करते—

मन्दायन्ते न सन्तु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या ॥१॥३६॥

इस प्रकार काव्य में कवि के अनेक गम्भीर विचार पाये जाते हैं।

### सन्देश की विशेषता

इस काव्य में एक विरही पति के द्वारा अपनी विरहिणी पत्नी के पास प्रणय सन्देश भेजा गया है। इन विरही पति पत्नियों का प्रेम बड़ी उच्चकोटि का है। यह मित्रार्थ है—निर्दोष है। यज्ञ अपने और अपनी प्रियतमा के जीवन को अन्योन्याश्रित समझता है और अपना सन्देश भेजकर अपनी पत्नी की प्राणरक्षा करना चाहता है। बहुत सम्भव है कि उसकी पत्नी भी वियुक्त होने के कारण पति की प्राण धारणा के विषय में सशक रही हो। कवि ने यज्ञ के सन्देश के द्वारा यह बतलाने की चेष्टा की है कि प्रेम से जीवन परिपक्व, सुन्दर और सार्थक हो सकता है तथा मानवीय प्रेम के द्वारा ईश्वरीय प्रेम भी हृदय में जागृत किया जा सकता है। इस यात्रा में ओर भी कई उदाहरण इस देश में पाये जाते हैं। गोपियों के प्रेम को हमें लौकिक नहीं कह सकते। यह सर्वथा अलौकिक है। अन्यथा—

नो चेद्दयं विरहआग्न्युपयुतदेहा  
प्यानेन याम पदयो पदयो सरो ते ॥

उनके मुख से कभी न निकलता ।

इसके अतिरिक्त इस काव्य से एक और शिक्षा यह भी मिलती है कि सासारिक विषयों के आनन्द में ही जीवन का सच्चा उपयोग नहीं है, बरिक्त सच्चे प्रेमियों का त्यागमय तथा दुःख पूर्ण जीवन भी स्पृहणीय है ।

कुछ विद्वान् इस काव्य को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समझाने की चेष्टा करते हैं । प्रो० एम० रंगाचारियर का कथन है कि यक्ष वधू के प्रति यक्ष के प्रेम और उत्कण्ठा में भक्त का परमात्मा से प्रेम तथा मिलने की उत्कण्ठा झलकती है । यह दृष्टिकोण दूसरे शब्दों में वैष्णव दृष्टिकोण कहा जा सकता है ।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मेघदूत पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—

“हममें से प्रत्येक निर्जन गिरि शृंग पर अकेला खड़ा होकर उत्तर की ओर देख रहा है । बीच में आकाश, मेघ और सुन्दरी पृथ्वी के सुख, सौन्दर्य भोग और पेश्वर्य की चित्रलेखा के स्वरूप देवा, शिवा तथा अम्बी वर्तमान है । ये सब मन में स्मृति जगा देते हैं, पर पास में पहुँचने नहीं देते, आकाश का उद्रेक करते हैं पर उसकी निवृत्ति नहीं करते । दो मनुष्यों के बीच में इतना अन्तर ! किन्तु यह बात मन में उठती है कि किसी समय हम लोग एक ही मानस लोक में थे, पर अब वहाँ से निर्वासित हो नये हैं ।

केवल यही नहीं । वैदिक परम्परा के अनुसार अनेक पर्व (संयोजक जंग) होने से पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड पर्याप्त पर्वत कहलाता है, रमणीय (मोक्ष) होने से इसे रामपर्वत कह सकते हैं । यहाँ अप्सरा नरद्वारा देवपुरी अयोध्या से यक्ष (जीर) मानों निर्वासित हुआ सा रहता है । है तो वह अकेला ही, परन्तु उसमें पंचकोश, तीनपुर, दश इन्द्रिय-स्थान आदि अनेक आश्रम (आश्रयस्थान) हैं जिनमें वह निवास करता है—सिन्धुचन्द्राया तपु वसति चक्रामगिर्याश्रमेषु । यों तो वह भोगों में फसा हुआ अपनी दूरस्थ प्रिया को भूला रहता है, परन्तु ग्रीष्म (शम, दम, संयम आदि तपस्या) में तपने के पश्चात् जल आपाद, सदाचार के प्रथम दिवस (प्रमुख दीर्घा) पर मेघ (मन) आश्लिष्ट साधु (उन्नत) होता है, तब प्रिया की विशेष याद आती है और उसकी ओर मेघ (मन) द्रुत बनकर आता है । इसके मार्ग में अन्नरसमय से लेकर मनोमय जगत् तक के अनेक भोग पड़ते हैं । इन्हीं का वर्णन पृथमेघ में नदियों, नगरों आदि के प्रतीकों द्वारा किया गया है । मनोमय जगत् पार करके विशानमय जगत् आता है । यहीं उत्तरमेघ की अमरावती है, जहाँ योगी को ‘सोऽहम्’ की अनुमृति होती है—

इस रूपरु की वास्तविक पूर्ति तभी होती है, जब यक्ष अपनी प्रिया से मिल जाता है और जब 'सोऽहम्' की अनुभूति प्राप्त हो जाती है। इसीलिये काव्य के अंतिम दो पदों में दोनों का मिलन दिया दिया गया है<sup>१</sup>। समस्त दो पदों में कथा के एक दम शीघ्रता से समाप्त होने तथा इतना सहसा मिलन होने के लिये आलोचक के तैयार न होने से यह श्लोक प्रशंसित माने जाते हैं। लेकिन हमें रवीन्द्र बाबू के निम्न लिखित शब्द न भूलने चाहिये — "महाभारत में भी यही बात है। स्वर्गारोहण पर्यं में ही कुरुक्षेत्र के योद्धाओं को स्वर्ग लाभ हो गया। कथाप्रिय व्यक्तियों को जहां कथा समाप्ति रुचिकर होती, वहां महाभारतकार नहीं रुके, इतनी बड़ी कहानी को घूल से घने गूह की भँति से एक क्षण में छिन्न भिन्न कर आगे बढ़ गये। जो संसार से विरागी हैं और कथा कहानियों को उदासीन भाव से देखते हैं, उन्होंने इसके भीतर से सत्य का भी अनुसंधान किया, वे चुन्ध नहीं हुये। विलकुल यही बात मेघसन्देश के लिये भी कही जा सकती है<sup>२</sup>।"

कुछ विद्वानों को इस काव्य में शौचदर्शन की भी भूलक दिखलाई देती है। उनका कथन है कि कालिदास शिवजी को ही वेदान्त द्वारा प्रतिपाद्य प्रधान पुरुष (वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुष व्याप्य स्थित रोदसी) मानते थे तथा शिव सायुज्य प्राप्त करने की भी उन्हें बड़ी उत्कण्ठा थी। उनका यह भी विश्वास था कि जीवात्मा इन्द्रियों के विषयों में अनुरक्त होने और परमात्मा के ध्यान में उपेक्षा करने से ही परमात्मा से वियुक्त है और यह वियोग तब तक चलता रहेगा जब तक कि जीवात्मा अपने मन को शिखरलोक में शिवजी के पास नहीं भेजता है।

यक्ष को भी अपनी पत्नी के प्रेम तथा अपने स्वामी की सेवा में अनुरधानता करने के कारण वियुक्त रहना पड़ता है। मेघ के प्रति कहे गये यक्ष के वचनों को हम ऐसा मान सकते हैं कि यक्ष अपनी अन्तरात्मा से परमात्मा के आनन्दमय स्थान पर विभिन्न केन्द्रों में से होते हुए जाने की प्रार्थना करता है। आषाढ मास से प्रारभ

- १ तत्सन्देश अलधरयगे दिव्य वाचाऽचक्षते  
प्राणास्तस्या जन हितरतो रक्षितु यक्षवध्या ।  
प्राप्योदन्त प्रमुदितमना साऽपि तस्यो स्वमर्तुं  
केषा न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमानाम् ॥२॥१६॥  
श्रुत्वा यार्ता अलद-वचिता ता धनेशोऽपि सद्यः  
शपस्यान्तं सद्रषद्वदय सविधायास्तकीप ।  
सयोज्यैती रिगलितशुचौ दम्पती हृष्टचितौ  
मोगानिष्ठानभिमतमुत्तान् प्रापयामास भूय ॥२॥१७॥

- २ इस प्रसंग में भी नेमिदूतम् (कोटा) की डा० फतेहसिंह द्वारा लिखित भूमिका दर्शनीय है।

करना, राम गिरि पर (भारतवर्ष के केन्द्र में रहना तथा आँखों के बन्द करने से शाप का अवसान—यह सब बातें सन्देश की आध्यात्मिक विशेषता को ही प्रकट करती हैं।

श्री डा० यासुदेव शरण अग्रवाल ने भी अपने 'मेघदूत एक अध्ययन' में काव्य की अध्यात्मपरक ही व्याख्या की है। उनका विचार है कि कवि ने मेघदूत में पड़े कौशल से शिव के स्वरूप का सन्निवेश किया है। उज्जयिनी में महाकाल शिव के पुण्यधाम का वर्णन है। शिव के गणों का, उनके नीलकण्ठ गुण का, शिवजी के नृत्य का तथा उसके आरम्भ में गजासुर की कृत्ति के परिधान का उल्लेख है (१।४०)॥ शकर को शूली कह कर उनके त्रिशूल की ओर भी संकेत है। चण्डी, भयानी और गौरी के नाम भी हैं। शिवजी के अट्टहास का (१।५६), उनकी जटाओं में कल्लोल करती हुई जह्नुतनया का तथा पार्वती के साथ गंगा के सपत्नी भाव का भी वर्णन है। शम्भु के भुजगों का, पार्वती के साथ उनके विहार का (१।६१), कुबेर के साथ उनकी मैत्री का, किन्नरियों द्वारा उनके यशोगान का, त्रिपुर की विजय का पथ उनके वृषभ का भी वर्णन किया है। शिवजी त्रिनयन हैं (१।५६), मदन का वे वदन कर चुके हैं, इसलिये जहाँ शिव का निवास है वहाँ कामदेव जाने से डरता है। देवागनाओं द्वारा दर्पण के काम में लिये जाने वाले रजतगिरि कौलाश के उत्सव में तो अलकापुरी बसी ही हुई है। शिवजी पशुपति हैं (१।५६), उनके चरणन्यास की परिक्रमा और दर्शन करके अज्ञातु जन स्थिर पद अर्थात् अनावृत्तिमय मोक्ष पाने में समर्थ होते हैं (१।५६)। इस प्रकार अनेक प्रकार से वृषराज केतन शिव के स्वरूप का कालिदास ने मेघदूत में निर्देश किया है। आगे चल कर विद्वान् लेखक ने शिव के इस स्वरूप पर विस्तृत रूप से विचार किया है। उनका कथन है—

“कालिदास उत्कृष्ट कोटि के अद्वैतवाद को मानने वाले थे। वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म को वे शिव ही कहते हैं तथा शिव, विष्णु और ब्रह्म में वे कोई भेद नहीं मानते (कुमार० २।४)। शिव, विष्णु और ब्रह्मा का अद्वैतभाव शिव और कूटस्थ आत्मा का तादात्म्य और योग द्वारा उस अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार ही कालिदास का दार्शनिक मत है।”

“अतएव वृषवेतु, वृषाचन, शिवरूप आत्मा के दर्शन नहीं होते, तब तक काम-याधा चित्तवृत्तियों को अधोमुख रखती है। वृषपति शिव की साधना और भक्ति (१।५६॥) प्राप्त करना प्रत्येक कामरूप पुरुष के लिये अत्यन्त आवश्यक है। कालिदास के अनुसार योग के द्वारा परमात्मा सशक परम ज्योति का दर्शन करना ही जीवन की परम सिद्धि है—

योगात्स चान्तं परमात्मसह  
दृष्ट्वा पर ज्योतिरुपात्तराम<sup>१</sup>॥ कुमार० ३।५॥

शिव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही कालिदास के दर्शन और आध्यात्मिक ज्ञान है। कवि ने इस काव्य में भी पाठकों को शिव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान कराने की चेष्टा की है।<sup>१</sup>

भारतीय साहित्य में लौकिक और पारलौकिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक का समन्वय कराने की प्रथा चली आती है। इस काव्य में भी मानवीय प्रेम से सश्रित लघु बह्य प्रकृति के प्रेम के साथ परमात्मा के प्रेम की ओर सकेत किया गया है। जीवात्मा तथा परमात्मा के बीच की खाई को पार करने के लिये यह सन्देश काव्य एक स्थायी सेतु का कार्य करता है। प्रेयसी रूपी परमात्मा के निवासस्थान से आती हुई शीतल वायु के लिये जीवात्मा सर्वदा ही उत्कण्ठित रहेगा। कवि ने निम्न पद्य में इसी भाव का सकेत किया है -

भित्वा सद्यः किशलय पुटान् देवदारुद्रमाणा  
ये तत्क्षीरं स्तुतिं सुरमयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।  
आलिङ्ग्यन्ते गुण्यति मया से तुयारोद्रियाता  
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेद्गमेभिस्तवेति ॥

काव्य के अन्त में भी कवि ने कुछ आध्यात्मिक सन्देश अपने पाठकों को दिया है। यत् मेघ के प्रति शुभकामना व्यक्त करते हुये कहता है -

मा भूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ।

दूसरे शब्दों में इस पंक्ति का यह भी अर्थ हो सकता है कि जीवात्मा का क्षण भर के लिये भी उद्योति स्वरूप परमात्मा से वियोग न हो<sup>२</sup>।

१ इस मत का विशेष अध्ययन करने के लिये उक्त लेखक की 'मेघदूत एक अध्ययन' का 'शिव का स्वरूप' नामक अध्याय देखिये।

२ श्री सुधीर कुमार शुभ, एम० ए०, शास्त्री (गुरजा यू० पी०) ने 'मेघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और उसका सांस्कृतिक सन्देश' नामक अपनी पुस्तक में मेघदूत के तत्तल पौराणिक कथाओं को वेद मन्त्रों के अर्थ से मिलाने का प्रयास किया है और सारे काव्य को स्वामी दयानन्दजी द्वारा निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार किये गये वेद मन्त्रों के अर्थ से अनुप्राणित सिद्ध करने की चेष्टा की है। लेकिन कालिदास की रचनाओं में जिस सृष्टि की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है, वह शुद्ध पौराणिक है, मले ही उसका मूल वेदों में ही क्यों न पाया जाये। कालिदास ने अपने समय में प्रचलित पौराणिक सृष्टि को लेकर ही अपने काव्यों की रचना की है। किसी सम्प्रदाय विशेष या

पहुत सभ्य है कि कवि ने केवल मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को लेकर ही यह काव्य लिखा हो। इस काव्य में जो कुछ भी सांस्कृतिक अथवा दार्शनिक विचार आ गये हैं, वे कवि की अन्तरात्मा तथा मन के परिष्कार को ही प्रमाणित करते हैं। पाठकों के मनोरंजन और आनन्दोत्पादन की सामग्री इस काव्य में पर्याप्त रूप से है। इसमें आभ्रकूट पर्वत के ऊपर बने हुये ऐसे कुञ्ज देवने को मिलते हैं, जिनमें यनचरों की स्त्रियों विहार किया करती हैं। पर्वतों के ऐसे दृश्य देवने में आते हैं जिन्हें वर्षा ऋतु में केवल उही लोग देख सकते हैं जो पर्वतवासी हैं या जो विशेष करके इसी निमित्त पर्वतों पर आते हैं। दर्शण की केतकी यदि किसी ने नहीं देखी है, त्रिदिशा की वेप्रयती की लहरों का भ्रम यदि किसी ने नहीं देखा है, उस प्रान्त के उपरनों में चमेली के पुष्पों को चुनने वाली पुष्पलारियों से यदि किसी का परिचय नहीं हुआ है, तो उसे मेघ सन्देश अग्रश्य पढ़ना चाहिये। उज्जैन की यदि सैर करनी हो अथवा उदयन का कीर्ति-गान सुनना हो, तो और कहीं न जाकर केवल मेघसन्देश पढ़ना ही पर्याप्त होगा। प्राचीन दशपुर प्राचीन ब्रह्मारत प्राचीन कनखल, प्राचीन कैलाश और प्राचीन अलका के दर्शन अब दुर्लभ है, तथापि उनकी छाया इस काव्य में पाई जाती है। यदि किसी को इन नगरों तथा उत्तरीय भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा देखने की उत्कण्ठा हो तो उसे मेघ सन्देश अग्रश्य ही पढ़ना चाहिये।




---

सिद्धान्त विशेष का निधिषत् उसके काव्यों में प्रतिपादन नहीं किया गया है। उसने अपने समकालीन ज्ञान, दर्शन तथा धर्म की परम्पराओं का ही काव्य में दर्शन कराया है। जो कुछ भी साहित्येतर गुण—उसकी रचनाओं में पाये जाते हैं, वे उसकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और सारग्राहिणी प्रवृत्ति के धोतक हैं, न कि उसके किसी सम्प्रदाय विशेष का अनुपायी होने के।



## द्वितीय अध्याय

द्वितीय भाग-मेघसन्देश के उत्तराख्यानकाव्य

१ परमेश्वर भक्त का यक्ष मिलन काव्य

२ मन्दिरकल रामशास्त्री का मेघ प्रति सन्देश

## परमेश्वर भा का यज्ञ समागम काव्य ( वि० सं० १९१३-१९८१ )

दरभगा राज्य के तत्त्वनी ( तरोनी ) नामक ग्राम में पौष शुद्ध प्रतिपदा वि० सन् १९१३ में इनका जन्म हुआ था। इनके पितामह श्री भोलानाथ भा व्याकरण के परम विद्वान् थे तथा दरभगा नरेश महाराज श्री छत्रसिंह (स० १८०७ ई०-स० १८२६ ई०) के सभापरिदत्त थे। इन भोलानाथ भा के ही पुत्र पूर्णनाथ भा उपनाम बाबूनाथ भा हुए। यह भी व्याकरण के अद्वैत विद्वान् थे। इन पूर्णनाथ भा उपनाम बाबूनाथ भा के दो पुत्र हुए। एक का नाम प्रयाग भा था तथा दूसरे का श्रीपरमेश्वर भा। यह परमेश्वर भा बड़े विद्वान् थे। वैयाकरणकेसरी तथा कर्मकाण्डोद्धारक और महोपदेशक इत्यादि पदविद्या इन्हें भारतवर्ष की विभिन्न संस्थाओं से सम्मान में मिली थीं। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने इन्हें महामहोपाध्याय पदवी से भी भूषित किया था। बिहार परिदत्त-सभा ने इन्हें विद्यानिधि पदवी भी प्रदान की थी। अपने समय के संस्कृत विद्वानों में इनकी यही प्रतिष्ठा थी।

इन महामहोपाध्यायजी ने स्वरचित 'कुसुम कलिका अख्यायिका' नामक ग्रन्थ में सक्षेप में अपभ्रंश, कुच्छ, यश, परिचय दिया है। यह कृत्यन्त-प्रतिभाशाली थे। वाट्यानस्था में अपने ग्राम की पाठशाला में ही व्याकरण तथा साहित्य का अध्ययन करने के बाद सोलह वर्ष की अवस्था में कर्जस कालेज बनारस में प्रविष्ट हुए। यहाँ श्री राजाराम शास्त्री तथा श्री बालशास्त्री से इन्होंने व्याकरण, धर्मशास्त्र, मीमांसा, सांख्य और वेदान्त इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन किया। वार्षिक परीक्षा में व्याकरण तथा धर्मशास्त्र विषय लेकर त्रिशिष्ट योग्यता के साथ उत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल श्री टी० एन० आर० ग्रीफिथ के समय में ता० १४ मार्च स० १८७७ ई० को लार्ड नार्थयुक् के दरबार में इन्हें पारितोषिक मिला। डा० बुलर जो कि दक्षिणप्रान्त के उच्च शिक्षाधिकारी थे, एक बार संस्कृत कालेज में आए थे। वे भी परमेश्वर भा के संस्कृत ज्ञान और शास्त्रीय विद्वत्ता से परम सन्तुष्ट हुए थे।

इस प्रकार १६ वर्ष की अवस्था में ही अध्ययन समाप्त कर राजस्थान के भालरापाटन नामक नगर में क्वैन्ट पाठशाला में कुछ दिनों तक इन्होंने संस्कृत व्यापक का कार्य किया। दूर होने के कारण इस स्थान को छोड़कर यह बिहार वापिस चले आए। इसका बाद पूर्णिया जिले के अन्तर्गत धनेली राज्य में कुछ दिनों राजपरिदत्त रहे। यहाँ भी जलवायु के स्वास्थ्य-कर न होने के कारण पुनः पद त्याग कर घर आ गए। फिर दरभंगा के निकट गन्धवारि स्टेट में राज्य पाठशाला में १२ वर्ष तक इन्होंने अध्यापन कार्य किया। गन्धवारि स्टेट के दरभंगा में मिला दिए जाने पर दरभंगा नरेश श्री रामेश्वरसिंह बहादुर जी० सी० आर० ई०, के० बी० ई० ने ता० १-७-१८८६ ई० को इन्हें दरभंगा का राजपरिदत्त नियुक्त कर लिया। ४० वर्ष तक श्री परमेश्वर भा ने दरभंगा राज्य की सेवा की। कुछ दिनों तक यह

राजकीय संस्कृत पुस्तकालय, दरभंगा के अध्यक्ष भी रहे। राजकीय रामेश्वर लता संस्कृत विद्यालय के प्रिंसिपल के पद पर भी इन्होंने कार्य किया।

धर्मान्ति तथा विद्योन्नति में निरन्तर लगे रहने के कारण इन्हें अनेक स्थानों से अनेक पदवियाँ भी प्राप्त हुईं। सर्वप्रथम कर्मकाण्ड के उद्धार करने के कारण विद्वन्मण्डली से इन्हें कर्मकाण्डोद्धारक पद प्राप्त हुआ। भारत धर्ममहा मण्डल बनारस से कार्तिक कृष्ण ४ सम्मत १९६३ में इन्हें वैयाकरण केसरी तथा महोपदेशक की पदवी प्राप्त हुई। ता० ११ १९१४ ई० में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने इन्हें महा महोपाध्याय पद प्रदान किया। बिहार पंडित सभा, बाँकीपुर ने ता० २८ ७ १९१७ ई० में विद्यानिधि पद से इन्हें विभूषित किया। प्रान्तीय संस्कृत कौंसिल के यह सदस्य थे। पटना विश्वविद्यालय, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस, हिन्दु विश्व विद्यालय, बंगाल, बिहार और उड़ीसा की संस्कृत परीक्षा समितियों में विभिन्न रूप से यह अपना सहयोग देते रहे। सन् १८०० ई० में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने सम्मान के रूप में रेशमी धोती तथा रेशमी चपकल इन्हें भेंट की।

इन्होंने कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र, नाटक, काव्य और कोप इत्यादि विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। महिषासुर उध नाटक, घाताह्वान काव्य, कुसुमकलिका आत्पायिका, ऋतु-वर्णन काव्य तथा यक्ष समागम काव्य यह इनकी साहित्यिक रचनाएँ हैं। कालिदास के ऋतुसंहार के आधार पर ऋतु वर्णन काव्य तथा मेघदूत के आधार पर यक्ष समागमकाव्य लिखा गया है।

साहित्य, कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र में विभिन्न ग्रन्थों का निर्माण कर महा महोपाध्याय परमेश्वर भू ने अतुल रियासि प्राप्त की। ता० जून ३०, सन् १९६४ ई० को इस विद्वान् का स्वर्गवास हुआ।

## काव्य की कथा

जैसाकि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इसमें यक्ष का उसकी प्रेयसी के साथ समागम वर्णित किया गया है। मेघदूत में अपनी प्रेयसी के लिये संदेश देते समय यक्ष कहता है —

१ यह काव्य दरभंगा से शके १८०७ में प्रकाशित हुआ है। अंत' वि० स० १९४० अथवा इससे कुछ पूर्व का समय इस काव्य का रचनाकाल होना चाहिये।

२ लेखक के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये मिथिला मापा में लिखा हुआ लेखक का 'मिथिला-तत्त्व विमर्श' उत्तरार्ध पृष्ठ ६८-११४ देखिये।

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शर्गपाणौ  
शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥

तदनुसार चार महीने बाद देवोत्थान होने पर यक्ष अपनी प्रेयसी के पास पहुँचता है। सर्वप्रथम अपनी प्रेयसी से वह कुशल-वार्ता पूछता है। कुछ कथाएँ भी उसे सुनाता है। बर्दा उत्सुकता से उसका किसी तरह दिन बीतता है। रात्रि होने पर यक्ष की अपनी प्रेयसी से फिर कुछ बातचीत होती है। इस प्रसंग में कवि ने दोनों प्रेमियों की विभिन्न प्रणयकथाएँ और प्रणयलीलाएँ बड़े सरस और मधुर ढंग से वर्णित की हैं। यक्ष की पत्नी द्वारा यक्ष को प्रेमपूर्णक हाला पिलाने तथा वीणा वादन द्वारा उसे प्रसन्न करने का वर्णन किया गया है। यक्ष भी इस अवसर पर अपनी प्रेयसी के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन करता है। इस प्रकार बड़े प्रेम से उनकी रात्रि बीतती है। प्रातःकाल होने पर धन्वीनक्षत्र मधुर गीतों से उन्हें जगाते हैं। पति पत्नी शय्या से उठकर सर्व प्रथम ब्राह्मणों के दर्शन करते हैं। उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर तथा प्रातःकालीन कृत्यों से निवृत्त होकर यक्ष अपने मित्रों के साथ डरता डरता कुबेर के पास जाता है और उन्हें प्रणाम करता है। कुबेर भी प्रसन्न होकर उसके लिये और भी अधिक उत्तरदायित्व का कार्य सौंप देते हैं। इस प्रकार यक्ष और उसकी पत्नी अपना जीवन फिर बड़े सुख से बिताने लगते हैं।

काव्य की कथा वहीं पर समाप्त हो जाती है।

## काव्य समीक्षा

यह काव्य आकार में तो छोटा ही है। केवल ३५ श्लोक ही इस काव्य में हैं। मेघदूत के अनुसार इसमें भी मन्दावर्णान्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। जैसा कि काव्य के नाम से भी कुछ प्रतीत हो जाता है, इसमें सभोग शृंगार का वर्णन किया गया है। मेघदूत में यक्ष केवल सन्देश बेकर ही रह जाता है। इस काव्य में कवि ने मेघदूत की कथा को ही पल्लवित किया है। मेघदूत में यक्ष कहता है कि भगवान् त्रिषु के भुजग शयन से उठने पर उसके शाप का अन्त हो जायगा, अतः केवल चार महीने का उसकी प्रेयसी को और कष्ट है। कवि ने इसी बात को लेकर अपनी काव्य प्रारम्भ किया है। चार महीने बाद यक्ष स्वयं अपनी प्रेयसी के पास पहुँच जाता है। इस मिलन-वेला में दोनों प्रेमियों को जो अपूर्व आनन्द हुआ होगा, उसे सहृदय पाठक स्वयं ही जान सकते हैं।

जैसाकि यक्ष ने मेघदूत में कहा था —

पश्चादावा धिरदगुणित त तमात्माभिलाष  
निर्येक्ष्याव परितुष्टशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥२६॥

उसी के अनुसार इस काव्य में यक्ष और उसकी प्रेयसी के मिलने का वर्णन किया गया है। यह छन्द-काव्य संयोग शृंगार की मधुर धारा से ओतप्रोत है। काव्य

क प्रत्येक पद्य में तो क्या, प्रत्येक पंक्ति में शृंगार रस की छटा विद्यमान है। अपनी प्रेयसी से मिलते समय सर्वप्रथम यक्ष कहता है—

ये ये क्लेशा सुमुखि त्रिरहे ते मया सोढपूर्वा-  
स्तानानन्दानुभवसमयेऽल पुन स्मारयित्वा ।  
सम्प्रत्येकीभव सह मया प्राण वद्गोपनीये  
भूयान्नेय पलमपि कदाऽप्याय्योविप्रयोग <sup>१</sup> ॥३॥

चिर त्रिरह के बाद मिलन होने पर यक्ष की ऐसी इच्छा स्वाभाविक ही है।

आगे चलकर कवि ने दोनों प्रेमियों के सयोग का बड़ा मधुर और भावपूर्ण चित्र अंकित किया है। फरपना की सुकुमारता तथा भावों की तीव्रता दर्शनीय है। यक्ष अपनी प्रेयसी के पास बैठा हुआ है। उसकी प्रेयसी उसे मंदिरा तो पिलाती ही है, साथ में धीणा भी बजा रही है —

पत्याऽऽघात्ये मधुरमुखरे पुष्करे यान्प्रवीणा  
धीणामेणीनयनतल्ली यारुणीधूर्णिताके ।  
कोणप्रान्ते लघु लघु तथाऽवाद्यत्सा यथाऽद्धा  
ताल कास्या इव समदद् ककणा निस्स्रणन्ते ॥१२॥

प्रेमियों के मिलन के अवसर पर कवि ने सुरा और संगीत का प्रसंग उपस्थित कर वातावरण को और भी मधुर बना दिया है। साथ में भावों के अनुकूल शब्द भी ऐसे प्रयोग किये गये हैं जो धीणा वादन का दृश्य उपस्थित करते हैं<sup>२</sup>।

जो विरहिणी नायिका विरहानुस्था में लम्बी-लम्बी रात्रियों को रोते-रोते बिताती थी, अब प्रत्येक रात्रि उसके लिये एक उत्सव बन गई है। कवि ने लिखा है —

१ इस पंक्ति की मेघदूत की— मा भूदेय क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग ॥२॥१४॥  
पंक्ति से तुलना की जा सकती है।

२ उद्धृत पद्य में लृकार बहुल शब्दों पर विचार कीजिये।  
कवि को नायिका के धीणा बजाने का दृश्य उपस्थित करने में मेघदूत के—

उत्सगे वा मलिनयसने सौम्य निक्षिप्य धीणाम् ॥२॥२५॥

इत्यादि पद्य से प्रेरणा अवश्य ही प्राप्त हुई होगी, क्योंकि विरहिणी नायिका अब विरह में भी धीणा बजाने की चेष्टा करती थी तो प्रियसयोग में तो उसका धीणा बजाना स्वाभाविक ही है।

‘यां या रात्रिमिप्रयविरहिता’ घाटेनेनेक्षमाणा  
 निद्राहीना कठिनकठिन क्षोषिपृष्ठे लुठन्ती ।  
 आलीबाक्यैरपि परिपल बोधिता नैव नेतु  
 शका सैषा दयितयुतया सोत्सवन्नीयते स्म ॥१३॥

इस पद्य में वियोग और संयोग का कवि ने एक साथ ही बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है ।

आगे चलकर यक्ष अपनी प्रेयसी के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन करता है । इस वर्णन में कवि ने बड़ी चमत्कारपूर्ण कल्पनायें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं । यक्ष बैणीवन्धन में सलझ अपनी पत्नी से कहता है—

“ बाले । यक्ष तव त्रिकलुष चन्द्रमुख्येक्ष्य पूर्ण  
 प्रस्त्यै १ पातस्त्वविरितमपतत्केशपाशापदेशात् ।  
 रञ्चेदानीं लकुचितकुचे पाणिनोद्गृह्य राहुम्  
 खोरकार चिकुरनिकर पृष्ठवन्ध यथान ॥१६॥

नायिका के मुख में चन्द्र, अलकों में राहु और बैणी वन्धन में खोर वन्धन की कल्पना कितनी चमत्कारपूर्ण है ।

यक्ष फिर अपनी प्रेयसी के लिये कहता है—

चणुर्लीलाकमलमतुला भिक्षते तेऽप्युदारे  
 पाच मोक्षामधुररचिरा कोकिल कूजितेन ।  
 बन्धूकश्चाप्यधर सुपमा नम्रभावेण कम्पे  
 मुप्याऽभिम्या तव नयनरा वर्धतेऽथापि काऽपि ॥१७॥

नायिका के नेत्र, पाणी और अधर सुपमा का कवि ने किस प्रकार भाव भंगिमा के साथ वर्णन किया है ।

अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये एक स्थान पर यक्ष कहता है—

बाले बाले रचिररचिर सूक्ष्मसिन्दूरविन्दु  
 कण्ठे पुष्प दशनरसने गाढताम्बूलराग ।  
 सीरीरन्ते दृशि नक्षततो यावक्श्चित्ररासो  
 गौरे गात्रे गुणिनि सुभगम्मावुक्त्य गृणन्ति ॥२३॥

१ घाटेन = मुद्राविशेषण, यत्र निर्जिमेयं दृश्यते

२ पात = राहु ।

कवि ने इस पद्य में नायिका का बड़ा ही उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किया है।

आगे चल कर कवि ने नायिका की वियोग-कालीन और सयोग-कालीन अरम्भाओं की बड़े सुन्दर ढंग से तुलना की है—

अक्रादधीना वररमयितु शपकालाच्च दीना  
'कीनाशाशा जिगमिपुरिवातीव सिन्ना नवीना ।  
मीनाक्षी या क्षणमिव शिला' स्नायन्ती सतीना  
सा दिष्ट्याच्च स्वपिति ललना कान्तदेहेऽतिलीना ॥२७॥

भावों के साथ साथ कवि ने भाषा भी बड़ी सुकुमार ही प्रयुक्त की है। अनु-  
प्रास की छटा तो दर्शनीय है ही।

इस प्रकार एक अन्य स्थान पर भी कवि ने वृत्त्यनुप्रास की छटा बाध दी है।  
यक्ष का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

अके पृथा कथमिव कला कोरिद् कामुकोऽसौ  
कान्ता कर्णे किमपि कुतुफाद्वक्तुकाम करेण । इत्यादि ॥१०॥

यद्यपि यह काव्य छोटा ही है, फिर भी इसमें स्थान-स्थान पर अनेक सुक्तियाँ  
शिवरी हुई हैं -

१ मध्यस्थाना लघु समुचित सन्धिकृत्य हि तत्र ॥७॥

२ नैव द्वेप्यो न च खलु सुहृत्कोऽपि कस्याप्यकस्मात्  
स्वस्याचारादुभजति हि जनो गर्हणामर्हणा वा ॥१४॥

३ अलगादत्तो भवति त्रियम कल्पकल्पो हि काल  
सकटात्त शमयसमयो ह्रस्वते द्राधितोऽपि ॥३४॥

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से पाठकगण जान सकते हैं कि यह लघु काव्य  
फिस कोटि का है। भाषा, भाव, और शैली की दृष्टि से यह एक प्राज्ञल रचना है।  
मायुर्य और प्रसाद गुण तथा वैदर्भी रीति का काव्य में बाहुल्य है। कालिदास ने  
मेघमन्देश में त्रिप्रलम्भ शृंगार की यदि वृष्टि की है, तो इस काव्य में शरद् श्रुतु  
की चादनी में समीप शृंगार बरसाया गया है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते  
हैं कि यह लघुकाव्य मेघदूत का सहोदर ही है। इस काव्य का एक-एक पद्य शृंगार  
की स्पष्ट छवि से अंकित हो रहा है। कवि ने काव्य के अन्त में उचित ही कहा है—

माऽस्याकारे कुरुत कृतिनो द्यप्रसार कथंचित्-  
 , गृहणीताग्र्य रसगुणममु यो न जम्यो बहुत्र ।  
 प्रेक्ष्य पक्व सुललित फल त्रिम्बक तुरिहदेर्या  
 स्त्यन्त्या विद्यास्तलितसरसम् पत्रमास्थादयन्ति ॥३४॥

कालिदास के मेघदूत की कथा को परलपित करते हुये जिस तरह इन्होंने यक्ष-समागम-काव्य लिखा, उसी तरह ऋतु संहार के विषय का उपसंहार करते हुये इन्होंने ऋतु-वर्णन नामक काव्य भी लिखा है। इस काव्य में भी कवि ने यही सुन्दर उत्प्रेक्षाएँ प्रयुक्त की हैं-

नयकिसलयदम्भाक्षित सिन्दूर मुष्टि  
 प्रतिचनतति लक्ष्म्याऽऽक्रीड्य होरयुत्सवेऽसौ  
 कमलवलमिपेणोत्कीर्य सारंगमध्र  
 सरसि कविसहाय स्नाति किंसिद्धसन्त ॥

वसन्त होली के महोत्सव में यनश्री के साथ नये किसलयों के गुलाल और कमलदलों के अघरख मिले हुये अघोर से होली खेलकर सरोवर में कवि अथवा जलपक्षियों के साथ नहा रहा है। रंग खेलने के बाद स्नान करना स्वाभाविक ही है।

महामहोपाध्याय परमेश्वर भा न केवल पद्यरचना में सिद्धहस्त थे, बरिक्त गद्य भी यही सुन्दर लिखते थे। इनकी लिखी हुई कुसुम कलिका आख्यायिका संस्कृत गद्य की एक प्रौढ़ रचना है। उदाहरण के लिये निम्न अवतरण पर्याप्त होगा -

वाचन्ते चाप्येकं मधुराणि पदानि बालम् इवाङ्गगा  
 कोमलागा मृदंगा, आलाप्यते चालिङ्ग्य नरोद्धा  
 कुशागीय तन्त्री, शयनीयशयेन शयेन सारङ्गी, सयोज्यन्ते  
 ययस्या इव तुल्य काला कास्थताला, परामृश्यते  
 च शनकं कामिनीय मानिनी शोडीकृताकरागुनिमि  
 सगुणा धीणा ।

उपर्युक्त अवतरण में कवि ने किस प्रकार श्लेषमूलक उपमा द्वारा वाद्यवादन का विवरण प्रस्तुत किया है।

कवि के सम्बन्ध में और कुछ अधिक न कह कर हमें बेचल यदा पर इतना ही कहना है कि मेघदूत की कथा को परलपित कर कवि ने अपनी लोकोत्तर प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि व्याकरण और कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड विद्वान् होने के अतिरिक्त एक सहृदय व्यक्ति भी है। मेघदूत की कथा को परलपित कर लिखे जाने वाले काव्यों में यक्ष समागम काव्य भाव, आपा और शैली सभी दृष्टि से एक सुन्दर काव्य है।



## मन्दिकल रामशास्त्री का मेघप्रतिसन्देश [ स० १६२३ ई० ]

दक्षिण भारत के आधुनिककालीन संस्कृत विद्वानों में श्री मन्दिकल राम शास्त्री का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इस विद्वान् का जन्म सन् १८४६ ई० में मैसूर राज्य के अन्तर्गत मन्दिकल नामक नगर में हुआ था। यह रथीतरगोत्र के श्री अण्णा स्वामी ज्योतिषी के पौत्र तथा वेंकट सुब्बाशास्त्री के पुत्र थे। इनकी माता का नाम अक्काम्मा था। आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथा मैसूर में श्री द्विवेदी गुरु से इन्होंने ऋग्वेद का अध्ययन किया। सोलह वर्ष की अवस्था तक यह वहा ऋग्वेद का अध्ययन करते रहे। इसी समय अपने पिता के स्वर्गवास का समाचार सुन यह अपने घर आ गये और अपने नगर में ही श्री वेंकट रामाचार्य के वहा चार वर्षों तक संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते रहे। तदनन्तर उत्तर भारत में आकर विभिन्न विद्वानों से इन्होंने न्याय, व्याकरण इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन किया। इसके बाद यह फिर मैसूर चले गये तथा महाराज कृष्ण राज वोडियर तृतीय के प्रासादाध्यक्ष श्री वल्ली नरसम्पा की देख रेख में परिङ्कतरत्नम् श्री सीताराम शास्त्री के पास न्याय तथा साहित्यशास्त्र का अध्ययन करते रहे। महाराजा संस्कृत कालेज मैसूर से संस्कृतविद्वत् परीक्षा इन्होंने उसी वर्ष उत्तीर्ण की जिस वर्ष कि यह वहा चालू की गई थी। बाद में श्री वल्ली नरसम्पा द्वारा स्थापित शारदा विलास-संस्कृत पाठशाला में चिरकाल तक इन्होंने अध्यक्ष पद पर कार्य किया और अपने अनेक शिष्यों को संस्कृत का विद्वान् बनाया।

श्री गेरी मठ के जगद्गुरु श्री शिरोभिन्ध सच्चिदानन्द भारती स अद्वैत वेदान्त की शिक्षा प्राप्त कर आर्य धर्म प्रकाशिका नामक कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का एक सुन्दर ग्रन्थ इन्होंने लिखा। प्रो० मैक्समूलर ने इस ग्रन्थ की भुरि भुरि प्रशंसा की थी।

इसके अतिरिक्त चामराजकर्त्याण्वम्पू, चामराज राज्याभिषेक-चरित्र और कृष्णराजाम्बुदय आदि ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे। स्वर्गीय हिज हार्नेस श्री चामराज वोडियर ने इन ग्रन्थों पर इन को कई पुरस्कार भी प्रदान किये। तदनन्तर स० १९१४ ई० में इन्होंने 'भैमी परिणय' नामक नाटक लिखा। इनकी विद्वत्ता पर सुग्ध दो श्रीमान् कृष्णराज वोडियर चतुर्थ ने इनको कवि रत्न की उपाधि प्रदान की तथा महाराजा संस्कृत कालेज मैसूर के प्रधान परिङ्क के पद पर नियुक्त कर दिया।

श्री गेरी मठ के महोत्सव वृत्तान्त को लेकर इन्होंने पुष्पामिषेक धम्पू लिखा। इस ग्रन्थ पर श्री श्री गेरी जगद्गुरु चन्द्रशेखर भारती ने इन्हें कवि-कुलात्तकार की उपाधि प्रदान की। अपनी विद्वत्ता और गम्भीर शास्त्र ज्ञान के कारण समग्र भारत में विभिन्न स्थानों से इन्हें अनेक उपाधियां प्राप्त हुईं। इस प्रकार उत्तरादि मठ के

श्री सत्य ध्यान तीर्थ गुरु से इन्हें 'कवि शिरोमणि,' गरल पुर स्थित श्री राखेन्द्र मठ के स्वामी श्री सुब्रह्मण्याभिनव सच्चिदानन्द भारती से 'कवि कुला-यतस' तथा भारतधर्म महामण्डल काशी से 'कवि विभूषण' की उपाधि प्राप्त हुई।

सन् १६२३ ई०के लगभग इन्होंने मेघप्रतिसन्देश की रचना की। इसके अतिरिक्त सस्कृत कथा सप्तति और भगवत्प्रार्थना आदि ग्रन्थ भी इनके लिखे हुये हैं।

### मेघप्रतिसन्देश की कथा

जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इसमें मेघ-सन्देश की कथा को ही पल्लवित किया गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। यक्ष के सन्देश को लेकर मेघ अलका नगरी पहुँचता है और उसकी पत्नी को यक्ष का सन्देश सुनाता है। अपने प्रिय के सन्देश को सुनकर यक्षी बड़ी प्रसन्न होती है, लेकिन प्रिय की गिरह ब्यथा से उसे वेदना भी कम नहीं होती है। तत्पश्चात् हाथ के सहारे किसी तरह उठकर धीरे धीरे वह मेघ से दार्तालाप प्रारम्भ करती है और उसे देव-स्वरूप मानकर उससे कृष्णा और औदार्य इत्यादि गुणों की प्रशंसा करने के बाद यक्ष के पास अपना प्रति सन्देश ले जाने की प्रार्थना उससे करती है।

प्रतिसन्देश में सर्वप्रथम यक्ष के सद्गुणों का वर्णन, अपनी विरहावस्था का निवेदन तथा अपने और यक्ष के दुर्भाग्य पर पश्चात्ताप प्रकट किया गया है। इसके बाद यक्षी ने अपने घर की दुरवस्था का वर्णन किया है और फिर यक्ष के सन्देश का यथोचित उत्तर दिया है। अन्त में यक्ष के शाप से सज्ज अभिमानस्वरूप कुछ घटनाये वर्णित कर और शिवजी की कृपा से शाप के शान्त होने का समाचार बता कर यक्ष से शाप ही घर लौटने की प्रार्थना की गई है।

प्रति सन्देश सुनाने के बाद मेघ को रामगिरि तक का सरल मार्ग भी बतलाया गया है। अलका नगरी से हिमालय पहुँच कर और वहाँ से फिर दक्षिण की ओर चलने पर सिन्धु नदी का जल पीते हुये काश्मीर पहुँचने का सर्वप्रथम मेघ को परामर्श दिया गया है। काश्मीर में श्रीनगर तथा वहाँ शारदाबा के दर्शन के बाद पञ्जाब में अमृतसर तथा शतद्र नदी देखते हुये देहली पहुँचने का फिर मेघ को परामर्श दिया गया है। वहाँ से फिर अजमेर, उदयपुर, चित्तौड़ और अरावली पर्वत प्रदेश होते हुये उज्जयिनी पहुँच कर तथा वहाँ महाकाल की पूजा करने के बाद विन्ध्य पर्वत जाने का मेघ को आदेश दिया गया है। विन्ध्य पर्वत से फिर तापती नदी, यदमं दश, पूर्णा नामक नदी, गोदावरी और कृष्णा नदी को पार कर आन्ध्र देश होते हुये राम दुर्ग पहुँचने का फिर मेघ को यक्षी ने परामर्श दिया है।

रामदुर्ग पर्वत पर ही वहाँ यक्ष के मिलने का समायना के साथ साथ उसकी विभिन्न विरहावस्थाओं का यक्षी ने वर्णन किया है। संभव है कि वहाँ (रामदुर्ग पर)

यज्ञ न मिले और विरह जन्य अधीरता के कारण घूमता हुआ दक्षिण देश की ओर कहीं चला गया हो, अतः मेघ से भी यक्ष की योज करते हुये दक्षिण की ओर जाने की प्रार्थना की गई है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम रामदुर्ग से पम्पा सरोवर तथा पम्पा नगर और तु गमट्टा नदी होते हुये शृण्णमूक पर्वत जाने का मेघ को आदेश दिया गया है। इसके बाद क्रमशः वेद भाष्यकर्ता श्री माधवाचार्य (अद्वैताचार्य त्रिघाराण्य) के विजयनगर, पेन्गोड, मन्दिफल, घोपाद्रि, चेनुशैल, नन्दि दुर्ग, कट्याणनगर (गलोर), रामगिरि, यदुगिरि, और कावेरी नदी के तट पर स्थित श्रीरंगपत्तन होते हुये महिसुरपुरी (मैसूर) जाने का मेघ को परामर्श दिया गया है। सभ्य है कि मैसूर नगर के वैभव और विद्याप्रसार इत्यादि से प्रभावित हो यक्ष यहाँ घूमने चला गया हो, अतः मैसूर नगर के विभिन्न महत्त्वपूर्ण स्थानों में भी यक्ष की योज करने के लिये मेघ से कहा गया है। इसके बाद चामुण्डा देवी के निवास स्थान महा-शलगिरि और फिर गरलपुर-क्षेत्र होते हुए केरल देश पहुँच कर अनन्तशयन भगवान् के दर्शन कर कोच्चि नामक स्थान से होते हुये कुछ पूर्व की ओर श्री शंकराचार्य के जन्मस्थान कालट्टी नामक ग्राम में जाने का मेघ को परामर्श दिया गया है। यहाँ से फिर पूर्ण नदी को पारकर पाण्ड्य देश पहुँच कर यहाँ मदुरा नगरी में मीनाक्षी देवी के दर्शन करने के बाद कृतमाला नदी, श्रीपति पदगिरि (तिरुमालिकुशले पर्वत) तथा दर्शनशयन तीर्थ होते हुये रामेश्वरम् और धनुष्कोटि पहुँचने तथा यहाँ यक्ष के दूढ़ने का परामर्श दिया गया है। अन्त में यक्षी मेघ से इन्हीं किन्हीं स्थानों में विरह से व्याकुल यक्ष को दूढ़कर अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना करती है और विजली के साथ स्यच्छन्द विहार करत रहना का उसे आशीर्वाद भी देती है।

अन्त में कवि ने लिखा है कि यक्षी के उपर्युक्त विरह वचन किसी प्रकार यक्षराज कुवेर के पास पहुँच जाते हैं। उन्हें यक्षी की दीन दशा पर दया आ जाती है। स्वयं अपना रथ भेजकर रामदुर्ग से यक्ष को अलका मुला लेते हैं। यक्ष दम्पती फिर पथापूर्व अपने घर पर सुखपूर्वक रहने लगते हैं।

यस, काव्य की कथा यहाँ पर ही समाप्त हो जाती है।

### काव्य समीक्षा

जैसा कि काव्य के नाम और कथा-वस्तु से स्पष्ट है, इसमें मेघसन्देश की कथा को ही पल्लवित किया गया है। मेघ-सन्देश में यज्ञ ने अपनी पत्नी के पास मेघ द्वारा सन्देश भेजा है। इस काव्य में मेघ द्वारा यज्ञ के सन्देश को सुन कर उसकी पत्नी मेघ के द्वारा ही यज्ञ के पास अपना उत्तर भेजती है। अतः इस काव्य का मेघ प्रति सन्देश नाम उचित ही है। मेघसन्देश में मेघ को अपना सन्देश सुनाने के बाद यज्ञ मेघ से कहता है—

सामिधानप्रदितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममपि

प्रातःकुन्द प्रसवशिथिल जीवित धारयेथा ॥२॥५२॥

इस कथन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास को भी यक्ष के सन्देश का प्रत्युत्तर अभीष्ट था। अतः यह मानना पड़ेगा कि रामशास्त्री कवि ने मेघ सन्देश के इस प्रसंग से ही प्रेरणा लेकर अपने काव्य की रचना की है।

मेघ-सन्देश की तरह इस काव्य में भी दो सर्ग हैं, लेकिन कथा का क्रम विलकुल विपरीत है। मेघ-सन्देश में पूर्व भाग में मार्ग वर्णन तथा उत्तर भाग में सन्देश कथन इत्यादि है। इस काव्य में कवि ने पूर्वभाग में यक्षी का प्रतिसन्देश दिया है तथा उत्तरभाग में अलका से रामेश्वर और धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित किया गया है। मेघ के द्वारा यक्ष के सन्देश को सुनकर विरह व्याकुल यक्षपथू का प्रथम यक्ष के लिये प्रति सन्देश देना ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि मार्ग तो मेघ का देखा हुआ ही है। यदि विचार किया जाय तो इस काव्य में मार्गवर्णन की आवश्यकता ही नहीं थी, लेकिन फिर भी जो मार्गवर्णन किया गया है, वह इसीलिये कि मेघ शीघ्र से शीघ्र यक्ष के पास पहुँच जाय, क्योंकि यक्ष के पास से मेघ वधे घटकर द्वार और लम्बे मार्ग से आया था, जैसा कि मेघ सन्देश के निम्न पद्य से प्रकट होता है—

वक्त्रं पन्था यदपि भवत प्रस्थितस्योत्तराशम्

सौधोत्सगप्रणवविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्या ॥१॥२॥

इसलिये इस काव्य में यक्ष की पत्नी मेघ को सरल मार्ग बताती है—

क्षिप्र गन्तु निशमय रुजु कथ्यते कोऽपि मार्ग ॥१॥६॥

विरह व्याकुल नायिका का अपने प्रिय के पास प्रतिसन्देश भेजते हुये विलम्ब न सहना स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त कवि को भी मार्ग वर्णन के द्वारा अपनी वर्णनशक्ति तथा तत्सदृश स्थानों के सौन्दर्य को पाठकों के समक्ष रखने का अग्रसर प्राप्त हुआ है। अलका नगरी से रामगिरि तक का एक नवीन मार्ग तो कवि ने बतलाया ही है। साथ में विरहजन्य चपलता के कारण यक्ष के दक्षिण देश चले जाने की समाचना द्वारा कवि ने रामगिरि से धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित कर काव्य को और भी सुन्दर और सरस बना दिया है।

काव्य में प्रथम सर्ग में ६८ और द्वितीयसर्ग में ६६ श्लोक हैं और मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है।

मेघसन्देश में जिस प्रकार यक्ष की विरहावस्था का वर्णन किया गया है तथा विप्रलम्भ गार की प्रधानता है, उसी प्रकार इस काव्य में भी यक्ष-पथू की विरहा

यस्था का बड़ा भावपूर्ण चित्र उपस्थित किया गया है। यक्ष वधू प्रिय विरह में अपने जीवन की व्यर्थता बताते हुये कहती है -

दूरीभूते दयित भवति त्वा विनाऽह वृथाऽसम्  
निर्यत्ना धीरिव निरहितैराकृतिस्सद्गुणेन ।  
भोगेच्छेव द्रमिणरहिता श्रीरिवारोग्यशून्या  
घाणी सत्यादिव विगलिता श्रूयता महशाऽपि ॥१॥२०॥

प्रिय विरह में नायिका की व्यर्थता का वर्णन करते हुये कवि ने कैसी सार्थक उपमाये प्रयुक्त की हैं।

अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये यक्ष वधू फिर कहती है -

भित्तेर्मूले भजन घरणार्धपट्टमा सनम्या  
द्वारे चक्षुर्जलकणचित न्यस्य पाणी कपोलम् ।  
ध्यायन्ती त्वा प्रचलति तृणेऽप्यागत तर्कयन्ती  
मासानष्टौ कथमपि भवदर्शनार्थिन्यनैपम् ॥१॥२१॥

इस पद्य में कवि ने नायिका की विरहकालीन चिन्ता और उत्सुकता का बड़ा स्वाभाविक चित्र अंकित किया है। आगे चल कर नायिका कहती है -

द्रष्टुं दृष्टिं प्रचलति मनः कर्पति ध्यातुमन्त-  
र्निनिद्रा धीं र्धशयति तनुः क्षीयते त्वामलब्ध्वा ।  
दिध्यान् भोगानपि मम रचिर्द्वेष्टि लज्जाप्रवासा-  
दुन्मत्ताऽस न विदितमथो मूर्च्छिता वाऽन्यथा वा ॥१॥२२॥

विरह की विभिन्न अवस्थाओं का एक ही पद्य में कवि ने कितना सुन्दर वर्णन किया है।

प्रिय विरह में नायिका बार बार अपना जीवन छोड़ना चाहती है, लेकिन प्रिय व दर्शनो की इच्छा से किसी तरह जीवित धनी रहती है -

त्यक्तुं प्राणान् त्वरयति मुहुर्स्वद्वियोगव्यथा मा  
शापोदन्त क्वचिद्दय मामन्तरेव क्षिणोति ।  
श्रीदास्यं ते मम न सहते जीवित जीवितु मे  
हस्तालम्ब्य पितरति पुनर्दर्शनेच्छा तवैका ॥१॥२३॥

प्रिय विरह में नायिका ही केवल दीन और दुःखी नहीं है, बल्कि घर का सारा धातावरण ही विपादमय हो गया है। मेघ-सन्देश में यक्ष ने भी अपनी अनुपस्थिति में अपने घर के सम्यन्ध में कहा है -

क्षामच्छायं भग्नमधुना मद्वियोगेन नूनम्  
सूर्यापाये न खल्वमल पुष्यति स्वामभिव्याम् ॥२॥१६॥

यक्ष का यह कथन ठीक ही है। यक्ष यक्ष भी गृह स्वामी के चले जाने पर गृह की दुरवस्था का वर्णन करते हुये कहती है -

उत्सार्यन्ते श्वसितपवनैर्देहलीधूलयो मे  
प्रक्षायन्ते गृहधरण्य प्रत्यह वाष्पसेकै ।  
मित्तेश्चित्र भवति विकृत रिजन्तगात्रानुयगै  
लूततन्तुप्रकरनिचिता मचकास्ते मनोशा ॥२॥१७॥

गृहस्वामी के वियोग में न केवल गृह पत्नी ही उदासीन है, बरिक्त घर की मैना, मोर और यहा तक कि पुष्पजाटिका और रक्ताशोक इत्यादि भी विरह का अनुभव करते हैं।

इसी प्रसंग में यक्ष पत्नी आगे चलकर कहती है -

माहारेऽपि प्रणयति मनश्शारिकादारिकाऽस्ती  
तुच्छ पुच्छ नम्रयति शिखी शोकमूकीकृतोऽयम् ।  
शशत्सिकाऽप्यनिशमयते शुष्कता पुष्पवाटी  
क्षामच्छाय भग्नमधुना त्वद्वियोगेन नूनम् ॥२॥१८॥

कवि ने मधुसूदन की मूलपंक्ति में केवल एक शब्द का परिवर्तन कर अपने भाषों को कौत्सी सुन्दर रीति से व्यक्त किया है।

यक्ष ने अपने गृह की पहिचान के प्रसंग में रक्ताशोक और केसर वृक्ष का उल्लेख किया है। उन वृक्षों की भी दशा इस समय बड़ी दयनीय बताई गई है -

रक्ताशोकस्तत्र विरहतन्तुप्यते केसरश्च  
क्षी मु चन्तौ परिणतिपतत्पाण्डुपत्राश्रुविन्दून् ।  
प्रोद्यच्छाखासमुद्य 'भुजालिङ्गितान्योन्यगात्रौ  
काकारयै प्रकटित इय प्राप्तकावुप्रकारै ॥२॥१९॥

रक्ताशोक और केसर वृक्ष पर कौए बैठे हुए हैं। उनके कलरव को लेकर कवि ने स्वामिविरह में उनके (रक्ताशोक और केसर) रीने की कौमी भावपूर्ण उम्रेझा की है।

अपने घर का वर्णन करते हुए यक्ष ने अपनी विलासवाषों को यहा वैभवपूर्ण बताया था -

वापी चास्मिन् मरुत शिलायुद्ध सोपान भार्या  
दिमैरुद्धन्ता निवचकमलै स्निग्ध-येद्व्यर्णनालै ॥२॥२०॥

इस विलासवापी की भी उही दीन अवस्था बतलाई गई है —

कीर्ण जीर्णोत्थणकमलै प्रातःकापायवेषा ।  
शैवालौघैर्विसपरिचितै शशीर्षत कीर्णकेशा ॥  
पद्माक्षौघे परिवृततनु भस्मितालक्रियाऽसौ ।  
वापी चापि व्यथयति मनो दीनकात्यायनीव ॥१॥३४॥

कवि ने शिलपट्ट विशेषणों की सहायता से वापी को दीन कात्यायनी की कितनी उपयुक्त उपमा दी है ।

अपनी विरहावस्था तथा गृहस्थायी की अनुपस्थिति में अपने घर की दुरवस्था का वर्णन करने के बाद यक्षरथू यक्ष के सन्देश का बड़ा ही भावपूर्ण प्रत्युत्तर देती है । प्रायः यक्ष की प्रत्येक बात का उत्तर दिया गया है । यक्ष ने अपने सन्देश में अपनी पत्नी से कहा था —

श्यामास्थग चकितहरिणीप्रेक्षणै दृष्टिपातम्  
धक्प्रचच्छाया शशिनि शिखिना यद्विभारेषु केशान् ॥२॥४३॥ इत्यादि

इस बात का उत्तर देती हुई यक्षपत्नी कहती है —

श्यामास्थग चकितहरिणी प्रेक्षणादौ च तत्त-  
न्मत्सादृश्यं कश्चिदपि न वेदृशिता प्रीतिरेषम् ॥  
ता मा हित्वा त्वणमिदं कथं दूरदेशं गतोऽभू ।  
तत्ते चित्तं ध्यरचि कुसुमै प्रस्तरैश्चेति मन्ये ॥१॥४२॥

यक्ष पत्नी के इस प्रति वचन में नायक के प्रेम की प्रशंसा के साथ साथ उसकी कठोरता पर उसे श्रुदु उपालम्भ भी दिया गया है ।

इसके बाद यक्ष पत्नी कहती है —

मामालिख्य प्रणयकुपिता नेक्षिताऽभूस्त्वमन्नै ।  
स्वप्ने वाह्यं क्षणमपि भयत्सगमिच्छामि यावत् ॥  
तावद्विद्रा प्रवसति मया प्रार्थ्यमानाऽपि सत्यम् ।  
भूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगम नो कृतान्त १ ॥१॥४४॥

१ इस पद्य की मेघसन्देश के —

त्वामालिख्य प्रणयकुपिता घातुरागै शिलायाम् ॥२॥४५॥  
इत्यादि पद्य से तुलना कीजिये ।

यक्ष तो चित्र में ही अपनी प्रेयसी से नहीं मिल पाता है, लेकिन उसकी प्रेयसी के लिये तो स्वप्न में भी प्रिय का समागम दुर्लभ है, क्योंकि प्रिय विरह में उसे नींद तो आती ही नहीं है, फिर स्वप्न का तो कहना ही क्या ।

इसी बात को लेकर वह फिर कहती है—

मामाकाश प्रणिहितभुज श्लिष्यसि स्वप्नलब्धाम् ।  
देवी निद्रा त्वयि सकुरुणा भाग्यमेवत्तवास्ते ॥  
उन्निद्राह दिशि दिशि समालोक्य ते रूपप्रेयम्  
गढाश्लेषोद्यतभुजलता त्वामनासाय लज्जे<sup>१</sup> ॥१॥४६॥

नायिका के इस कथन में कितनी दीनता मरी हुई है ।

विरहिणी नायिका को प्रिय के स्वस्थ बने रहने की भी चिन्ता है । इसीलिए तो वह यक्ष से हिमालय की ठठी हवाओं से बचने की प्रार्थना करती है—

भिरया सद्यः किसलयपुटान् यान्तु वातास्समन्वात्  
स्नात्वा भर्या कदशनमदन् निद्रितो वाऽस्पनिद्र ।  
माऽलिंग्यन्ता मदनुसृतये ते तुषाराद्रिधाता  
शीतार्तिस्त्या त्यजन्तु भगवान् शकरोऽव्यादुमन्तम् ॥१॥४७॥

उपर्युक्त वचन से नायिका का यक्ष के प्रति तीव्र प्रेम भी व्यक्त होता है<sup>२</sup> ।

यक्ष ने अपनी विरह व्यथा का निवेदन करते हुए कहा था —

सक्षिप्येत क्षण इय कथं दीर्घायामा प्रियामा  
सर्वावस्थास्यहरपि कथं मन्दमन्दातप स्यात् ॥२॥४७॥

१ । इस पद्य की मेघ सन्देश के—

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो  
लब्धायारते कथमपि मया स्वप्नसदर्शनेषु ॥२॥४४॥

इत्यादि पद्य से तुलना कीजिए ।

२ । इस पद्य का माघ समामने के लिए मेघसन्देश का—

भिन्या सद्यः किसलयपुटान् देवदादद्रमाणां ॥२॥४६॥

इत्यादि पद्य क्षमिए ।



इस बात का यस-वधू बड़ा ही भावपूर्ण उत्तर देती है —

सक्षिप्योक्ति रजनिदिनयोर्विम्भर स्व वियोगम्  
सर्वेषा नस्त्वमसि शरणं त्व कथं निश्शरण्यम् ।  
शुश्रूषुरा निजगुरजनान् गेहमायाहि तूर्णम्  
सन्त्यस्तानामिव तव कथं दन्यवृत्त्या व्यथेया ॥१॥४८॥

शीघ्र गृह लौटने की प्रार्थना को यक्ष-वधू ने प्रसंग बदल कर कितने सुन्दर ढंग से यक्ष के सामने रखवा है।

जिस प्रकार यक्ष ने अपनी प्रेयसी को सान्त्वना दी थी<sup>१</sup>, उसी प्रकार उसकी प्रेयसी भी उसे सान्त्वना देती है —

नम्येषाऽहं तव यचनतो मां गम कातरत्वम्  
त्व च धीमर्न मम गतिमनुस्मृत्य मां गा विपात्रम् ।  
दुःखी जातोऽस्म्यविदित सुखोऽस्मीति धैर्य लभेथा  
चित्तेऽधीने सपदि समता याति दुःखं सुखं च ॥१॥४९॥

यक्ष ने अपने सन्देश में अपनी प्रेयसी से कहा था कि भगवान् विष्णु के शेषशय्या पर से उठने पर उसका शाप समाप्त हो जायगा। अथशिष्ट चार महीने किसी तरह और बिता लिए जायें। याद में तो मिलन होगा ही<sup>२</sup>। इस बात का भी यक्ष की पत्नी बड़ा उचित उत्तर देती है —

शापान्तस्ते भवति हि हरी शेषशय्या जिहाने  
धात्ये तातकथमहमस्मिन् लोचने मीलियित्वा ।  
अथ इतो वा प्रयत्नं निरहं प्राणभगो यदि स्यात्  
निर्वेद्याय कथमिव सन्ने तन्तमात्रमाभिलाषम् ॥१॥५०॥

प्रिय विरह में व्याकुल नायिका के लिये एक २ दिन भारी बना हुआ है। चार महीने तक वह कैसे धीरज रख सकती है। अतः प्राणभग होने की उसकी आशका श्रमार्थिक ही है।

यक्ष ने अपने दाम्पत्य जीवन की साधारण होते हुए भी एक महत्त्वपूर्ण घटना अपनी प्रेयसी को बताने के लिये मेघ से कहा था ताकि उसकी प्रेयसी को मेघ के सम्बन्ध में प्रिय के दूत होने का विश्वास हो जाय—

१ नम्यात्मानं बहु शिवाण्यन्तामनैरायलम्ये  
तत्कल्याणि त्वमपि सुतरां भागम् कातरत्वम् ॥१॥४८॥

२ दे० मेघ० उत्तरभाग श्लो० स० ४८, शपातो मे भुङ्क्ष्यशयनादित्यादि ।

मृगश्चाह त्वमपि यने कण्ठलग्ना पुरा मे  
निद्रा गत्वा त्रिमपि रुदती सम्पर विप्रबुद्धा ।  
सान्निर्हास वधितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे  
दृष्ट स्वप्ने कितव रमयन् कामपि त्व मयेति ॥२॥१०॥

लेकिन इस घटना को अभिज्ञान स्वरूप न समझ कर यक्ष वधू यह समझती है कि यह केवल उसके अपराध को जताने के लिये कही गई है और यह बड़े प्रिय के साथ अपने प्रिय से क्षमायाचना करती है —

भूयोदृष्ट कितव रमयन् कामपि त्व मयेति  
स्वाप्न वृत्त मदभिहितमालोच्य रष्टोऽसि नूनम् ।  
ज्ञात तत्त्व पत्रकमलयोस्सन्निपत्याद्य याचे  
क्षान्त्या सद्य मदपचरित देहि मे सन्निधानम् ॥१॥११॥

पतिप्राणा प्रेयसी अपने प्रिय के रष्ट हो जाने को कैसे सह सजती है । क्षमा-याचना तथा शीघ्र जाने की प्रार्थना दोनों ही यही भावपूर्ण हैं ।

यक्ष के सन्देश का उत्तर देने के बाद यक्ष वधू कुछ अपना भी सन्देश यक्ष के लिए देती है । वह कहती है —

अर्धैराह तव शुभमभिप्रार्थये नाथ हर्षात्  
सार्धे मासे यदि मम दशोर्गोचरन्त्य न याया ।  
याचो बहूनी मृगयतु भगान् पातमध्ये ममासून्  
चक्षुस्सूये शशिनि हृदय द्योमनि मे पापि जीवम् ॥१॥१२॥

यक्ष वधू के उपर्युक्त वचनों में कितनी वेदना भरी हुई है । उसकी विरह वदना अनुभूति की चरमावस्था पर पहुँच चुकी है ।

प्रति-सन्देश के बाद अभिज्ञानस्वरूप कुछ घटनायें भी घेघ को बताई गई हैं । इनमें धनपति के क्रोध का कारण, शाप का स्वरूप तथा उसकी वर्ष भर की अवधि का वर्णन किया गया है । इसी प्रसंग में शकर भगवान् तथा कुबेर द्वारा यक्ष के अपराध को ममा कर देने का भी वर्णन किया गया है । अन्त में यक्ष वधू फिर कहती है—

स भ्याच्छार्गी भुजगशयनादुत्थितोऽनुत्थितो वा  
शापम्यान्तो धनपतिमुत्तेनोच्यता मोच्यता वा ।  
शापान्तस्ते समजनि सखे शकरोक्तं प्रभावात्  
सोभान्या दध्यधिकचलवत्स्याद्विशेषं दि शस्त्रम् ॥१॥१६॥

इस प्रकार भगवान् शंकर की कृपा से शाप के शान्त हो जाने का समाचार बताकर अन्त में फिर यक्ष से घर लौट आने की प्रार्थना की गई है —

मेहे स्वीये गमयतु भगान् शेषकाल सुगे न ॥१॥६६॥

इस प्रकार कवि ने प्रथम सर्ग में यक्ष उग्र की विरहाग्म्या, यक्ष के गृह की दुर्वस्था, यक्ष पत्नी का प्रतिसन्देश, अभिज्ञान घटनायें तथा आप के परिहार और यक्ष के घर लौट आने की प्रार्थना इत्यादि बातें दिखलाई हैं। द्वितीय सर्ग में कवि ने मार्ग वर्णन किया है। मार्ग वर्णन में कवि ने मेघ सन्देश में बताय हुए अलङ्कार रामगिरि तक के मार्ग से भिन्न मार्ग का तो निर्देश किया ही है। साथ में रामगिरि से धनुष्कोटि तक का मार्ग भी यक्ष के बड़ा चल जाने की सभासना द्वारा वर्णन कर काव्य में और भी सरसता ला दी है। मार्ग वर्णन में पञ्जाब, अमृतसर, बहली, जयपुर, उदयपुर, चित्तौर और उज्जयिनी इत्यादि नगरों का कवि ने बड़ा ही भावपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। चित्तौर के वर्णन में कवि ने बड़ा की स्त्रियों की धीरता का क्या ही उत्कृष्ट चित्र अंकित किया है —

चित्तौडाख्य जयति नगर तैर्बुधै पात्यमानम्  
घोरे युद्धे विनिहतधरा त्रिभुता वीरपत्न्य ।  
कुदरिभ्यो निज कुलभय शफमानाश्च यस्मिन्  
पातिप्रत्यप्रयण्मृतयो घृन्दशोऽग्नि प्रविष्टा ॥२॥२१॥

आगे चलकर विन्ध्य घन का भी कवि ने बड़ा स्थाभाविक वर्णन किया है —

तत्र क्रुद्धा लुथितहरयः क्वापि गर्जन्ति घोरम्  
प्रस्ता क्वापि द्विरदपतयो धातुतान्युद्विगरन्ति ।  
आकुर्वन्ति प्रदग्धतनै क्वाप्यहो निर्भरीषा  
शब्दायन्ते मधुर नितदै क्वापि कान्ताश्शकुन्ता ॥२॥३४॥

रामदुर्ग पर स्थित विरटा यक्ष का भी कवि ने उदा स्थाभाविक और भावपूर्ण वर्णन किया है। यक्षवध अपने प्रिय की तत्तद् विरहाग्म्याओं की सभासना करत हुए मेघ से कहती है —

मद्वृत्तान्ति शरण कुतुकात्तुवत्प्रतीक्षापरो वा  
मामुत्तप्ता मनसि गूणयन् मोहसम्मीलितो वा ।  
मृत्वा पूजन् स्मरन् वियमशान् स्तम्भयन्तिश्चततो वा  
निद्रालो वा कथमपि स ते नेत्र पात्री-वृत्तस्यात् ॥२॥४६॥

इसी प्रसंग में वह फिर कहती है —

निद्राहीनो निटिल-तटभून्यस्तमामार्धपाणिं  
पश्चात्तिर्यस्कृतपरस्करालम्बितासोर्ध्वभागः ।  
वामे जानीं निहित निज-ज्ञान्यन्तरश्शोकमूला-  
न्युत्तानेनोच्छ्वयनविधिना मन्दमालोचयन्वा ॥२॥८७॥

सस्तभ्य स्व कथमपि मन कन्दमूलान्यदन्वा  
ध्यात्वा ध्यात्वा तटदपदि मद्भायचित्र लिखन्वा  
वामे पालो त्रिनमति मणीबन्धशीर्षेण मन्द  
मच्चिन्तातो मुदुष्यचिता मार्जयन्वाऽधुधारां ॥२॥८८॥

बिरह व्याकुल यत्न का कवि ने कैसा कारणिक और स्वाभाविक भावचित्र इन पद्यों में प्रस्तुत किया है। बिरह अन्य चपलताजुसे ही तो यत्न के दक्षिण देश चले जाने की समावना की गई है। इसी समावना से कवि को फिर रामदुर्ग से धनु रकोटि पर्यन्त मार्ग के वर्णन करने का असर भी प्राप्त हुआ है।

इस मार्ग वर्णन में कवि ने श्री शंकराचार्य<sup>१</sup>, श्री रामानुजाचार्य और श्री व्यास राजाचार्य इत्यादि का तत्तद् स्थानों पर बड़ी भ्रष्टा के साथ उल्लेख किया है। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से काव्य की कथा से उत्तरकालीन व्यक्तियों का काव्य में उल्लेख होना असंगत ही है, फिर भी इस उल्लेख से कवि को इन व्यक्तियों के प्रति भ्रष्टा तो प्रकट होती ही है। इसी प्रकार बगलौर और मैसूर जैसे आधुनिक नगरों का वर्णन भी काव्य में कुछ खटकता है, लेकिन इन नगरों के वैभव और प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन से काव्य में रमणीयता की कुछ वृद्धि ही हुई है। जिस प्रकार मैथ-सन्देश में उज्जयिनी और अलका नगरियों के वर्णन में शृंगार रस का पुट पाया जाता है, उसी प्रकार इस काव्य में मैसूर नगर के वर्णन में भी शृंगार रस का पुट दीख पड़ता है। पद्या -

वीथ्या वीथ्या प्रतिगृहमपि स्थापिते लोकहेतो  
स्सर्पा रात्रि दिनपति तटिद्दीपजालप्रकाशे ।  
पु वेपेण प्रियगृहमभिप्रसिधता पद्ममालाह्व  
पार्श्वेप्यन्यैरविदितमिदास्तत्र धीर प्रयान्ति ॥२॥८९॥

आगे चलकर मैसूर नगर की सुशिक्षित स्त्रियों का वर्णन करते हुये कवि कहता है -

तस्या राजीविरचितमहापाठशालात्तविचा  
 प्रेक्ष्या प्रेष्टाभरण वसनै प्रौढविद्याप्रवीणा ।  
 धीखालापैर्विनयविभवै र्वटगुवाचा विलासै  
 मेहे मेहे निज निज जनान् प्रीणयन्ते तद्वयम् ॥२॥७५॥

मैसूर नगर में नल द्वारा जल की व्यवस्था का कवि ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है -

विद्युच्छ्रुत्या सतत रिततै मालिकान्तर्निवृद्धै  
 प्राप्ते रन्ध्रे पुरभिम्भसम्प्रेक्ष्येयोत्पतद्भिम् ।  
 कारेरीयैर्मधुरमधुरै पात्रनैश्चास्तुपुरै-  
 स्तोयाधाराश्चिरविरचितास्तत्र सर्वे परस्ता ॥२॥७६॥

इस प्रकार मैसूर के राज प्रासाद, विश्वविद्यालय, कौतुकागार और संस्कृत कालेज इत्यादि का कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन काव्य में प्रस्तुत किया है ।

मैसूर से फिर धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित किया गया है । अन्त में यहीं कहां पर यक्ष के मिलने की संभावना कर यक्ष यधू यक्ष को सन्देश सुनाने की मेघ से प्रार्थना करती है । इसके बाद मेघ की आशीर्वाद भी देती है -

सौदामन्या सह विचर ते सन्तु सम्मगलानि ॥२॥७७॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को इस काव्य के भाव, भाषा और शैली से परिचय तो हो ही गया होगा । लेखक ने मेघ सन्देश का प्रत्युत्तर लिखकर कालिदास की इच्छा तो पूर्ण की ही है, साथ में मेघसन्देश के समान ही भाषा और शैली अपना कर मेघ-सन्देश के समकक्ष ही एक खण्ड-काव्य संस्कृत साहित्य को प्रदान किया है । लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार है । क्लिष्ट तथा लम्बे समास तो काव्य में हैं ही नहीं । त्रिप्रलम्भ शृंगार के अनुकूल ललित भाषा का ही सर्वत्र प्रयोग किया गया है । माधुर्य तथा प्रसाद गुण और पैदमी रीति ही सर्वत्र देखने में आती है । अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास और हृद्यन्त जैसे सरस और सरल अलंकारों का ही प्रयोग किया गया है ।

कवि ने यक्ष सन्देश का बड़ा ही भावपूर्ण और उपयुक्त प्रत्युत्तर यक्ष यधू के द्वारा भिजवाया है । यदि सन्देश का एक एक पद्य विरह से ओत प्रोत है तो प्रति-सन्देश में यक्ष यधू की विरहवेदना और विरह की प्रिय के लिये उसकी चिन्ता भी कम नहीं है ।

यद्यपि कवि ने मेघसन्देश की समस्यापूर्ति नहीं की है, फिर भी कहीं कहीं मेघ-सन्देश की पकिया इस काव्य में स्थित आ गई हैं । यक्ष यधू यक्ष के फँलास पर्यंत छोड़ जाने तथा रामगिरि चले जाने पर उस पर आक्षेप करती दुई कहती है -

कैलासाद्रो स्थितिमगलयन् तापसीभूय भूय  
मर्त्यस्त्रीणामुखकमलवध्रीर्दिदृक्षुः किमासी ।  
नो चेदेव वद कितञ्च मे तेषु कस्मादकार्षीं  
स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥२६॥

इस पद्य में मेघ-सन्देश के प्रथम श्लोक का अन्त्यपाद ही कवि ने रख दिया है।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर उपर्युक्त श्लोक का द्वितीय पाद पाया जाता है। यम बधू यक्ष से उसके भाग्य की अनुकूलता का वर्णन करते हुए कहती है —

दूरीभूत दुरितमपि त्वं देवदेवप्रसादान्  
कालोऽतीतस्स खलु त्रिपमो राजराज प्रसन्न ।  
अस्मद्भूभाग्यं परिणतमभूदद्य नैराभरत्तम्  
शापेनास्नगमितमहिमा वर्पभोग्येषु भर्तु ॥१॥६०॥

इसके अतिरिक्त मेघ-सन्देश में जिस प्रकार विभिन्न लोकोक्तियाँ तथा जीवनों पयोगी सुभाषित पाये जाते हैं, उसी प्रकार इस काव्य में भी विभिन्न स्थानों पर अनेक सुभाषित तथा लोक नीतियाँ कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं। सज्जनों के सम्बन्ध में कवि की धारणा बड़ी ही उच्च है—

- ( I ) लोके सन्तो न हि खलु पर प्रार्थना व्यर्थयन्ति ॥१॥१॥  
( II ) स्त्रोपज्ञान्त महदपि यत्नात्साध्यन्त्येष सन्त ॥२॥१०॥  
( III ) मध्ये सन्तो न खलु सुहृदामभ्युपेत त्यजन्ति ॥२॥१०॥

दान के सम्बन्ध में भी कवि के विचार बड़े सतुलित हैं। कवि का कहना है कि दान दरिद्रों को ही देना चाहिये न कि सम्पन्न व्यक्तियों को —

पूर्णे दानं भवति हि वृथा धारिदानं यथाग्धी ॥१॥६॥

इसके अतिरिक्त स्थान स्थान पर कवि ने अपने विभिन्न विचारों को काव्य में व्यक्त किया है। यथा —

- ( १ ) स्वार्थं हित्वा परहितवृत्ता सन्तो गौरव हि ॥१॥६॥  
( २ ) शुद्धे चित्ते भुज्जनमखिल पुण्यतीर्थायते हि ॥१॥१२॥  
( ३ ) कष्टे काले जगति महता बुद्धयोऽपि स्पृहन्ति ॥१॥१३॥  
( ४ ) यत्तत्प्राप्ते जगति महता मोनमगीक्षिया हि ॥१॥१४॥  
( ५ ) कष्ट कष्ट विधिविलिखितं केन शस्यं प्रमादुर्गम् ॥१॥१७॥

जिस प्रकार मेघ-सन्देश में कालिदास ने लिखा है —

कान्तोदन्त सुहृदुपगत संगमार्त्तिकचिह्न ॥२॥३६॥

इसी प्रकार प्रिय के वृत्तान्त की इस काव्य में भी महत्ता बतलाई गई है -

प्रेयोवृत्तात्प्रणयगुणितानान्यदाश्रयासहेतु ॥१॥१॥

इस तरह उच्च कविता के साथ साथ काव्य में सासारिक ज्ञान की भी बहुत सामग्री भरी हुई है।

कवि ने मेघ-सन्देश में उल्लिखित न होने पर भी यक्ष - रूपाति का नाम, यक्ष का पद, धनपति के क्रोधका कारण तथा शाप इत्यादि की बड़ी सुन्दर कल्पना की है। कालिदास ने धनपति के क्रोध तथा शाप के केवल वर्णमोग्य रह जाने का भी कोई कारण नहीं दिया था। इसी बात को यक्ष यक्ष के द्वारा अभिज्ञान-स्वरूप बतलाकर कवि ने मेघ-सन्देश के कथानक को और भी पूर्ण कर दिया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह काव्य एक सुन्दर दूतकाव्य है। क्या नक, भार, भाषा, शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य सर्वांगपूर्ण है। मेघ सन्देश के समान विप्रलम्भ शृंगार ही इसका मुख्य रस है। यक्ष के सन्देश का यक्षी के द्वारा कवि ने बड़ा ही सुन्दर प्रत्युत्तर भिजवाया है। जिस प्रकार कालिदास के मार्ग वर्णन से उसकी लज्जत स्थानों से आत्मीयता प्रतीत होती है, उसी प्रकार रामशाली कवि का मार्ग वर्णन भी आत्मीयता लिए हुए है। दक्षिण देश का वर्णन प्रस्तुत कर कवि ने काव्य को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया है। मेघ सन्देश में तो केवल उत्तर भारत का ही वर्णन पाया जाता है, लेकिन इस काव्य में उत्तर और दक्षिण तथा काश्मीर से धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित कर कवि ने भारत देश का बड़ा ही सुन्दर शब्द चित्र प्रस्तुत किया है। तत्तत् स्थानों की भौगोलिक स्थिति का परिचय देने के साथ साथ उसका सांस्कृतिक महत्त्व भी बतलाया गया है।

यह काव्य भी मेघ सन्देश के समान सरस और आनन्द दायक है। कोई भी सहृदय पाठक मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।



## तृतीय अध्याय

जैन सन्देश काव्य

- १ जिन सेन का पार्वाम्युदय
- २ विक्रम कवि का नेमिदूत
- ३ मेरुतु ग का जैनमेघदूत
- ४ चरित्र-सुन्दर-गणि का शीलदूत
- ५ घादि चन्द्र का पवनदूत
- ६ अज्ञात कवि का चेतोदूत
- ७ विनय विजयगणि का इन्दुदूत
- ८ मेघ विजय का मेघदूतममस्यालेख



## जिनसेन का पार्वी युद्ध (वि० नवम शतक)

पार्वीयुद्ध के लेखक श्री जिनसेनाचार्य के रचना काल के सम्बन्ध में किसी विवाद की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्र-कूट यश के राजा अमोघवर्ष<sup>१</sup> प्रथम के शासनकाल में यह काव्य लिखा गया है। कवि ने काव्य के अंत में स्वयं इस बात का उल्लेख किया है—

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघ  
बहुगुणमपद्रोष कालिदासस्य काव्यम् ।  
मलिनितपरकाव्ये तिष्ठतादाशशाकम्  
भुवनमवतु देव सर्वदाऽमोघवर्ष ॥१॥

श्री वीरसेनमुनिपाद पयोजभृग  
श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान् ।  
तच्छोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण  
काव्यं व्यधापि परिवेष्टितमेघदूतम् ॥२॥

विनयसेन और जिनसेन यह दोनों श्री वीरसेन (वीरचार्य) के शिष्य थे। विनयसेन के कहने पर ही श्री जिनसेन ने इस काव्य की रचना की। काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में श्री जिनसेन को राजा अमोघवर्ष का शुरु बताया गया है। अमोघवर्ष राष्ट्रकूट यश का राजा था और कर्नाटक तथा महाराष्ट्र पर शासन करता था। यह शक सं० ७३६ (वि० सं० ८७१) में राज्यासन पर बैठा और शक सं० ७६८ (वि० सं० ९३४) तक शासन करता रहा। माणवतेट अथवा मालाखेड इसकी राजधानी थी। यह बड़ा साहित्यप्रेमी था। श्री जिनसेनजी के द्वारा जैन धर्म में दीक्षित कर लिये जाने पर इसने अपने पुत्र के लिये अपना राज्य सौंप दिया और हजय साधु बन गया। इसने प्राचीन कनाडी भाषा में अलकारशास्त्र पर 'कविराजमार्ग' नामक एक ग्रन्थ लिखा तथा 'प्रश्नोत्तरमाला' नामक एक संस्कृत लघुकाव्य भी इसका लिखा हुआ माना जाता है। इस प्रश्नोत्तरमाला के अन्त में ही निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है—

त्रिवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेय रत्नमालिका ।  
रचिताऽमोघवर्षेण सुधिया सदलश्रुति ॥

१ इससे शिलालेखों के लिये 'इण्डियन एन्टिक्वेरी', (१२, २१४.) (१३, १२३, १३३, २१५) पृष्ठ देखिये। फ्लिट का *Dynasties of kanarese Districts*, पृष्ठ ५०७ देखिये। इण्डियन एन्टिक्वेरी (१४, १०१) तथा (१५, १८१) में ५० बी० पाठक का लेख देखिये।

राजा अमोघवर्य श्री जिनसेन का परममत्त था और श्री जिनसेन श्री वीरसेन के शिष्य थे । उत्तर पुराण की प्रशस्ति के अन्त में इस वान का स्पष्ट उल्लेख किया गया है—

अमरदिह हिमाद्रेर्देवसिन्धुप्रवाहो  
धनिरिव सकलदात्सर्गशास्त्रैरुमूर्ति  
उदयगिरितटाद्वा मास्करो भासमानो  
मुनिरनु जिनसेनो वीरसेनादमुष्मात् ॥  
यस्य प्राशुनताशुजालरिसरदुधारान्तराविर्मर-  
त्पादाभ्रोजरज पिशगमुकुटप्रत्यप्ररत्ताद्युति ।  
सस्मर्ता स्वरमोघवर्यनृपति पूतोऽहमग्रेत्यल  
स श्रीमान् जिनसेन पूज्यमगजत्पादो जगन्मगलम् ॥

राजा अमोघवर्य और उनके गुरु श्री जिनसेन का वीरसेनकृत जयधरला टीका में जो कि शक सन् ७५६ (वि० स० ८६४) की लिखी हुई है, उल्लेख पाया जाता है—

इति श्री वीरसेनीया टीका सूत्रार्थदर्शिनी  
भट्टग्रामपुरे श्रीमद्गुरुर्जग्यानुपालिते ॥  
फारगुने मासि पूगार्द्धे दशम्याशुक्लपक्षके ।  
प्रवर्धमानपूजाया मन्दीजनमहोत्सवे ॥  
अमोघवर्य राजेन्द्र प्राज्य-राज्य गुणोदया ।  
निष्ठितप्रचय पायादाकरपान्तमनस्विका ॥  
पट्टिरेष सहस्राणि ग्रन्थानां परमाणुत ।  
श्लोकेनानुष्टुभेनात्र निर्दिष्टान्यनुपूर्वशः ॥  
त्रिमक्तिः प्रथम स्कन्धो द्वितीय सन्मोदय ।  
उपयोगश्च शेषास्तु तृतीयस्कन्ध इष्यते ॥  
एकोनपष्टिसमधिकसप्तशतशतैषु शकनरेन्द्रस्य ।  
समर्ततेषु समाप्ता जयधरला प्रामृतज्यारवा ॥  
गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णसूत्र तु यार्तिकम् ।  
टीका श्री वीरसेनीयाऽशेषा पद्धतिपत्रिका ॥  
श्री वीरप्रभु भाषितार्थघटना निर्लोडितान्यागम  
न्याया श्री जिनसेन सन्मुनि वरेरादेशितार्थमिधति ।  
टीका श्रीजयचिद्दिनतोम्धरला सूत्रार्थसंघोषिनी  
स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलना श्रीपालसपादिना ॥

श्री वीराचार्य गणितशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अपने गणितसारसंग्रह<sup>१</sup> की प्रशस्ति के अन्त में भी उन्होंने राजा अमोघवर्ष प्रथम का उल्लेख किया है। शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में जब कि अमोघवर्ष का पितामह और कृष्ण राज प्रथम<sup>२</sup> का पुत्र श्री वल्लभ शासन करता था, श्री जिनसेन ने अपना प्रथमग्रन्थ जैन हरिवंश पुराण<sup>३</sup> लिखा। पाश्चात्त्युदय<sup>४</sup> उनकी दूसरी रचना है और शक सम्वत् ७३६ (वि० सं० ८७१) के कुछ दिनों बाद ही यह लिखा गया होगा। आदिपुराण<sup>५</sup> उनका अन्तिम ग्रन्थ है। वे केवल ४५ सर्ग ही इसके लिख पाये। अन्त के पांच सर्ग उनके शिष्य श्री गुणभद्र ने पूर्ण किये और अपने गुरु के आदेशानुसार उनका नाम उत्तरपुराण रख दिया। कर्नाटक और महाराष्ट्र पर अमोघवर्ष प्रथम का पुत्र तथा उत्तराधिकारी कृष्णराज द्वितीय अकालवर्ष<sup>६</sup> जब शासन करता था, तब शक सं० ८२४ (वि० सं० ९५९) में धारवाड जिले के बाकापुर नामक स्थान में श्री गुणभद्र ने उत्तरपुराण का संपादन किया।

आदि पुराण और हरिवंश पुराण इन दोनों काव्यों के किसी एक जिनसेन के द्वारा ही लिखे जाने पर विद्वानों में मतभेद है। हरिवंश पुराण शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में लिखा गया है जब कि कृष्णराज प्रथम का पुत्र श्री वल्लभ दक्षिण में राज्य करता था। काव्य के मंगलाचरण में कवि ने निम्नलिखित विद्वानों की प्रशंसा की है—जीरसिद्धि और युक्त्यनुशासन के रचयिता समन्तभद्र, सिद्धसेन, इन्द्र, चन्द्र, अर्क और देव जैसे धैर्याकरण यज्ञसूत्रि, सुलोचन कथा के लेखक महासेन, पद्म पुराण के लेखक रविपेण, परागचरित, कुमारसेन, वीरसेन और जिनसेन। अन्तिम दो नामों के उल्लेख से यह निराद उठता है कि हरिवंश-पुराण के रचयिता जिनसेन तथा आदिपुराण के रचयिता जिनसेन में क्या समझ है। कुछ विद्वानों की धारणा

१ ग्रन्थकार का आत्मानुशासन, श्लोक १०२ देखिये।

२ इसके शिलालेखों के लिये जो कि शक सं० ६७५ के हैं, इपिडियन एन्टिक्वेरी (१२, २३८) देखिये।

३ बम्बई में मुद्रित।

४ श्री के० वी० पाठक द्वारा पूना से तथा सेठ नाथारंगजी गांधी द्वारा पण्डित चार्य योगिराट् की टीका सहित बम्बई से प्रकाशित।

५ तीन भागों में इन्दौर से प्रकाशित।

६ शक सं० ८०२ तथा ८३१ के इसके शिलालेखों के लिए 'इपिडियन एन्टिक्वेरी' (१२ २२०, २२१) और (१५ १४१) देखिये।

है कि आदि पुराण के रचयिता जिनसेन का ही इस मंगलाचरण में उल्लेख किया गया है और आदिपुराण तथा हरि वंश पुराण दोनों का लेखक एक ही है। लेकिन इन दोनों काव्यों के रचना काल में कम से कम ५० साल का अन्तर है जिसके कारण इन दोनों काव्यों का एक ही लेखक के द्वारा लिखा जाना नितान्त असम्भव जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त इन दोनों लेखकों की गुरु परम्परा भी अलग अलग है। हरिवंशपुराण का लेखक पुन्नतगण के कीर्तिसेन का शिष्य है और आदि पुराण का लेखक सेनगण के वीरसेन का शिष्य है। हरिवंश पुराण में जिस ढंग से जिनसेन का उल्लेख किया गया है, उससे भी यही प्रतीत होता है कि लेखक अपने से अतिरिक्त किसी और व्यक्ति का उल्लेख कर रहा है। श्लोक इस तरह है —

यामिताभ्युदये तस्य जिनन्द्र गुण सस्तुति ।  
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिस्सकीर्तयत्यसौ ॥

किसी भी लेखक का इस तरह से अपनी प्रशंसा करना गवोंति ही कहा जायगा। लेकिन इन दोनों लेखकों को यदि दो अलग अलग व्यक्ति माना जाता है, तो दूसरी समस्या यह उठती है कि हरिवंश पुराण के लेखक ने अपने ग्रन्थ का जो निर्माण काल दिया है उसके अनुसार जयधवला टीका के लेखक वीरसेन और आदि पुराण के लेखक जिनसेन का हरिवंश पुराण में उल्लेख युक्ति सगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि हरिवंश पुराण के लिखे जाने के बाद इन दो विद्वानों का नाम सुनने में आता है। अतः इस कठिनाई को दूर करने के लिये ऐसा मानना अनुचित न होगा कि हरि-वंश पुराण के लिखे जाने से पूर्व वीरसेन और जिनसेन नाम के कोई और दो व्यक्ति भी प्रसिद्ध हो चुके हैं तथा उन्हीं का इस काव्य में उल्लेख किया गया है ॥ कि जयधवला टीकाकार वीरसेन और आदिपुराण के रचयिता जिनसेन का।

पार्श्वभ्युदय काव्य पर मैसूरराज्यान्तर्गत श्रवण-बेलगुल निवासी जैन धर्म गुरु श्री पंडिताचार्य योगिराट्ट की एक प्राचीन टीका उपलब्ध है। इस टीका में महिल नाथ की शैली का ही अनुकरण किया गया है तथा शाकटायन व्याकरण और नानार्थरत्नमाला नामक कोष का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया गया है। यह कोष ग्रन्थ शक सम्वत् १३२१ (वि० स० १४५६) में विजयनगर राज्य में शासन करने वाले हरिहर द्वितीय के आश्रित जैन विद्वान् श्री, इरुगूदण्डनाथ का लिखा हुआ है। अतः यह निश्चित है कि पार्श्वभ्युदय का टीकाकार शक स० १३२१ वि० स० १४५६ के बाद का है। टीकाकार ने पार्श्वभ्युदय काव्य की रचना के प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा है—

श्री जिनन्द्रमताधीन्दुमूलसंघाम्बराशुमान् ।  
वीरसेनामिधानो पार्श्वार्तिप्राचार्यपु गव ॥१॥

तच्छिष्यो जिनसेनार्या धर्म्य मुनिनायक ।  
यत्कृतिर्भुवनोऽद्यापि चन्द्रिका प्रसरायते ॥२॥

बंकापुरे जिनैन्द्राग्नि सरोजैदिन्द्रोपम ।  
अमोघवर्षनामाऽमृन्महाराजो महोदय ॥३॥

स स्वस्य जिनसेनर्षि विधाय परम गुरुम् ।  
सद्धर्मं द्योतयस्तस्थौ पितृघत्पालयन्प्रजा ॥४॥

कालिदासाद्वय कश्चित्कवि कृत्या महोजसा ।  
मेघदूताभिध काव्य धाययन्गणेशो नृपान् ॥५॥

अमोघवर्षराजस्य समामेत्य मदोद्भुर ।  
विदुषोऽवगण्यैष प्रभुमधाययत्कृतिम् ॥६॥

तदा विनयसेनस्य सतीर्थस्योपरोधत ।  
विद्याहकृतिच्युतै सन्मार्गोद्दीप्तये परम् ॥७॥

जिनसेनमुनीशानस्त्रैविद्याधीश्वराग्रणी ।  
विशत्यप्रशतग्रन्थ ग्रन्थश्रुतिमात्रत ॥८॥

एक सधित्यतस्सर्वं गृहीत्वा पद्यमर्थत  
भूभृद्विद्वत्सभामध्ये प्रोचे परिहसन्निति ॥९॥

पुरातनकृतिस्तेयात्काव्यं रम्यमभूदिदम् ।  
तच्छ्रुत्वा सोऽग्रवीरुष्ट पठतात्कृतिरस्तिचेत् ॥१०॥

पुरान्तरे सुदूरेऽस्ति वासराष्टकमात्रत ।  
आनाम्य याचयिष्यामीत्यथोन्नयमिषु अर ॥११॥

इत्येतद्वलोक्याय सभापति पुरोगमा ।  
तथैवास्तिवति माध्यस्थ्यात्समयं चकिरे मिथ ॥१२॥

धीमत्पार्ष्यार्दिदीप्तस्य कथामाधित्य सोऽतनोत् ।  
धीपाद्वर्षाम्युदयं काव्यं तत्पादार्धादिषेष्टितम् ॥१३॥

संकेत दिवसे काव्यं याचयित्वा स संसदि ।  
तदुदन्तमुदीर्याथ कालिदासममानयत् ॥१४॥

धीमद्वेलगुल विन्ध्याद्रि प्रोत्थसहो बलीशिन ।  
धीपादाम्बुजमूलस्थं परिहृताचार्ययोगिराट् ॥१५॥

तन्मुनीन्द्रमतिप्रौढिप्रकटीकरणोत्सुकः ।

तद्वाप्या प्रार्थितश्चक्रे निजसुन्दरसनुना ॥१६॥

श्री पार्श्वनाथ साधु कमठात्खलत खल ।

पार्श्वाम्बुदयत काव्य न च क्वचिदपीष्यते ॥१७॥

ततः सौजन्य सम्पत्त्यै दीर्जन्यपरिहाणये ।

काव्य कोशल्य सधित्यै सदभिरप्यस्यतामद ॥१८॥

इस अवतरण से यह प्रतीत होता है कि कालिदास जिनसेन का समकालीन था। लेकिन यह बात नितान्त असंगत है, क्योंकि जैन कवि श्री रविकीर्ति ने शक संवत् ४४६ (वि० स० ६६१) के अपने पेवेल के शिलालेख में कालिदास का भी उल्लेख किया है और यह कवि चालुक्यवंश के पुलकेशी द्वितीय का राज्याश्रित था। चालुक्यवंश के पुलकेशी /द्वितीय का शासन काल शक स० ५४० शतक के आस पास ही पड़ता है। अतः यह निश्चित है कि कालिदास जिनसेन का समकालीन नहीं हो सकता। टीकाकार ने किसी भ्रान्त दन्त कथा का आश्रय लेकर ऐसा लिख डाला है।

### पार्वनाथ चरित्र

काव्य की कथा को पाठकों के हृदयगमन कराने के लिये सन्क्षेप में श्री पार्वनाथ का चरित्र नीचे दिया जा रहा है। श्री पार्वनाथ का जन्म जन्मान्तरों के अनुसार जीवन चरित्र इस तरह है। इसी जन्म द्वीप के भरत क्षेत्र में पोतनपुर नाम का एक नगर था। वहाँ अरविन्द नामका प्रतापी और जैन धर्म परायण राजा राज्य करता था। उसका विश्वभूति नामक एक पुरोहित था। उसकी पत्नी का नाम अनुद्धरा था। इस अनुद्धरा से विश्वभूति के कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र हुये। योग्य होने पर विश्वभूति ने कमठ का विवाह वरुणा और मरुभूति का विवाह वसुन्धरा के साथ कर दिया।

अपना अग्रजान समीप जानकार विश्वभूति पुरोहित अनशन करके शरीर त्याग देह-लोक को चला गया। विश्वभूति की स्त्री अनुद्धरा भी पति विधोग से दुःखित हो नयनकार मन्त्र का जप करती हुई शरीर छोड़ गई। अपने पिता के बाद कमठ और मरुभूति दोनों राजा अरविन्द के मन्त्री हो गये। इन दोनों भाइयों में छोटा भाई मरुभूति विषय भोग से पराङ्मुख था और पीपघादि धर्मक्रियायें करता रहता था तथा उसके मन में यह भावना रहा करती थी कि कब यह गुरु के समीप जाकर सर्वसाधन योग का त्याग करे।

इस बीच कमठ स्वच्छन्द हो गया था। उसमें समस्त दुर्गुण निवास करने लगे थे। वह परदारगामी और झुपारी भी था। एक बार मरुभूति राजा अरविन्द के

साथ युद्ध में गया हुआ था। उसकी अनुपस्थिति में अवसर पाकर दुराचारी कमठ ने उसकी पत्नी वसुन्धरा को अपनी पत्नी बना लिया। विपक्षियों को परास्त करने के बाद जब राजा अपने नगर में वापिस आया और उसे कमठ के इस दुर्वृत्त का पता लगा, तब उसने मरुभूति के परामर्श से कमठ को नगर से बाहर निकाल दिया। कमठ भी भाई पर क्रुद्ध होकर घन चला गया और तापसों के पास जाकर स्वयं तापस बनकर अज्ञान तप करने लगा।

कमठ के चले जाने के पश्चात् मरुभूति ने विचार किया कि मेरे भाई कमठ ने मेरा जो अपराध किया था, उसकी अपेक्षा मैंने कमठ का अधिक अपराध किया है, क्योंकि मैंने ही राजा से प्रार्थना करके कमठ को नगर से बाहर निकलवाया और उसे अपमानित कराया है। मरुभूति ने राजा से प्रार्थना की कि कमठ का अपराध क्षमा कर दिया जाय और उसे नगर से गहर जाने का दण्ड न दिया जाय, परन्तु राजा ने मरुभूति की यह प्रार्थना स्वीकार न की। तब मरुभूति कमठ से क्षमा मांगने के लिये उसके आश्रम में जाता है। कमठ के चरणों में पड़कर मरुभूति उससे क्षमा मांगता है, परन्तु कमठ के हृदय में जलने वाली अपमान की ज्वाला शान्त न हुई थी। वह क्रोध के बशीमूत होकर मरुभूति पर शिला प्रहार कर देता है। शिलाघात से मरुभूति का पीड़ा प्रारम्भ होती है। वह कि कमठ मरुभूति पर दूसरी शिला प्रहार कर देता है। शिलाघात के कष्ट से आर्त ध्यान करता हुआ मरुभूति मर जाता है और विध्याचल पर युत्यपति हाथी का जन्म प्राप्त करता है। दूसरी ओर कमठ की भी वरुणा भी क्रोधवश शरीर त्याग देती है और वह इसी युत्यपति हाथी की हथिनी होती है।

पोतनपुर के महागजा अरविन्द एक समय अपने महल की छत पर बैठे हुये थे। उन्होंने एक भय घटा को चढ़ते और विखरते देखा। इस घटना को देखकर उन्हें विरक्ति हो गई और वे समय में प्रवृत्त हो गये। अवधिमान से युक्त गीतार्थ अरविन्द मुनि एकलविदारी प्रतिभा को धारण करके निचरते हुये उसी घन में आ निकले जिसमें मरुभूति का जीव हाथी का भव धारण करके रहता था। परिवार सहित जलपान करके लौटता हुआ युत्यपति हाथी अरविन्द मुनि की ओर दौड़ा। अरविन्द मुनि कापोत्सर्ग करके ध्यानारूढ़ हो खड़े हो गये। हाथी ने मुनिको उपसर्ग तो देना चाहा परन्तु मुनि के तप-तेज से हाथी का क्रोध ही नष्ट हो गया। यह दौनता धारण करके मुनि सम्मुख खड़ा रहा। ध्यान समाप्त करके मुनि ने हाथी को उपदेश दिया और कहा कि तू अपने पूर्व भय को याद कर जिसमें तू मरुभूति थावक था। आरत रुद्रध्यान में मृत्यु पाने से ही तू इस भय में हाथी हुआ है। मैं भी पूर्वभय में अरविन्द राजा था। तूने यह मनुष्य भय तो दारा ही परन्तु अब इस भय को भी क्यों कुहल्य में लगाता है। इस प्रकार मुनि के उपदेश से युत्यपति हाथी की जातिस्मृति ज्ञान हुआ। उसने मुनि को प्रणाम करके उनसे थावक धर्म स्वीकार किया। युत्यपति हाथी की हथिनी भी पास ही खड़ी थी। मुनि का उपदेश सुनकर यह भी विचार करने लगी। विचार-करते करते हथिनी को भी जाति-स्मृति-ज्ञान हो गया।

और उसने भी श्रावक धर्म स्वीकार कर लिया। श्रावक धर्म स्वीकार करके हाथी तप करने लगा और वह भाजना करने लगा कि मनुष्य जन्म पाकर महाव्रत धारण करने वाला प्राणी ही धन्य हैं। मुझे धिक्कार है जो मैंने दीक्षा न लेकर मनुष्य जन्म को यो ही यो दिया। इस प्रकार की शुभ भाजना करता हुआ वह हाथी समय व्यतीत करने लगा।

कमठ अपने भाई मरुभूति को मारकर भी शान्त नहीं हुआ था। मनुष्य वध क दुरात्म्य को देखकर तापसों ने भी कमठ की निन्दा की। अन्त में वह आरत ध्यान पूर्वक मर कर कुक्कुट जाति का सर्प हुआ।

एक समय उक्त हाथी एक सरोवर में जल पीने गया था। तपस्या की निर्वलना के कारण वहा वह कीचड़ में फस गया और प्रयत्न करने पर भी न निकल सका। इतने में ही सर्प भयघारी कमठ भी वहा आ गया। पूर्व जन्म के बैर के कारण साप ने हाथी के कुम्भस्थल को इस लिया। हाथी को थिप चढ़ा। अपना अन्तकाल समीप जानकर हाथी ने अनशनादि कर शुद्ध भाव से शरीर त्याग दिया और अष्टम सहस्रार करप में सत्रह सागर की आयु वाला महर्द्धिक देव हुआ। इस हाथी की हाथिनी भी कठिन तप करती हुई शरीर त्याग कर ईशान्य करप में अनाभिग्रहीक देवी हुई और देव सखी सुख भोगने लगी। अनेक जीवों का सहार करके कुक्कुट नाग भी मरा और पाचवें नरक में सत्रह सागर की आयु लेकर उत्पन्न हुआ।

इसी जम्बू द्वीप में प्राग्विज्ञ की सुकन्ध विजय में धैताद्वय गिरि पर तिलका नाम की नगरी थी। वहा विद्युदुगति नाम का विद्याधरों का राजा रहता था। विद्युदुगति की कनकलतिका नाम की पत्नी थी। सहस्रार देवलोक का आयुष्य भोग कर हाथी का जीव कनकलतिका के उदर में आया और गर्भकाल समाप्त होने पर पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। विद्युदुगति ने पुत्र का नाम किरणतज रक्खा। किरणतज जब बड़ा हुआ तो एक समय वहा सुरगुरु नाम के आचार्य पधारे। उनके उपदेश से प्रभावित होकर किरणतज ने सयम स्वीकार कर लिया और गीतार्थ हो एकल विहारी प्रतिमा धारण करके विचरने लगा।

पाचवें नरक का आयुष्य भोगकर कुक्कुट नाग का जीव द्विमगिरि की गुफा में सर्प योनि में उत्पन्न हुआ। वहा भी वह अनेक प्राणियों के प्राण हरण करता हुआ कठिन और कूर कर्म करने लगा। किरणतज मुनि भी विचरत विचरते इसी गुफा में पधारे। एकल स्थल देखकर मुनि गुफा में ध्यान करके राबे रहे। ध्यान में खड़े हुए मुनि को उस सर्प ने देगा। पूर्व भय के बैर के कारण सर्प क्रोधित होकर मुनि के शरीर से लिपट गया और उसने मुनि के शरीर को कई जगह इस लिया। मुनि ने कर्म ह्य करने में सर्प को उपकारी मान और शुभ ध्यान करते हुए शरीर त्याग दिया। शरीर त्याग कर किरणतज मुनि का जीव बारहवें देवलोक में बारह सागर का



आयुष्य वाला उत्कृष्ट देव हुआ। वह सर्प भी महामर्यकर कर्म बाधकर दावानल में दग्ध हो अशुभ परिणामों के कारण छुट्टी तम प्रभा नरक में आईस सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाला नैरयिक हुआ।

इसी जम्बू द्वीप में पश्चिम महाविंदह की सुगन्धाविजय में शुभकरा नाम की नगरी थी। वहाँ यज्ञवीर्य नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम लक्ष्मीवती था। विरगतेज का जीव चारहवें वरप का आयुष्य समाप्त करके लक्ष्मीवती की कोख से उत्पन्न हुआ। यज्ञवीर्य ने बालक का यज्ञनाभि नाम रक्खा। बड़ा होने पर यज्ञनाभि अनेक कलाओं का ज्ञाता हुआ। यज्ञवीर्य ने यज्ञनाभि का विवाह अनेक राजकन्याओं के साथ कर दिया। कुछ काल पश्चात् राजा यज्ञवीर्य अपना राजपाट यज्ञनाभि को सौंपकर आत्म कल्याण में लग गया।

यज्ञनाभि के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम चक्रायुध रक्खा गया। बहुत काल तक राज्य करने के पश्चात् राजा यज्ञनाभि की इच्छा सयम लेकर आत्मकल्याण करने की हुई। पुण्ययोग से शुभकरा नगरी में क्षेमकर नाम के तीर्थंकर भगवान् पधारे। भगवान् क्षेमकर का उपदेश सुनकर राजा यज्ञनाभि सयम में प्रमज्जित हो गये। थोड़े ही समय में यज्ञनाभि मुनि सूत्र सिद्धान्त के पारगामी हो गये और अनेक प्रकार के तप करते हुए विचरने लगे। उन्हें आकाशनामिनी आदि अनेक लब्धियाँ भी प्राप्त हुई।

एक बार आकाशमार्ग से विहार करते हुए यज्ञनाभि मुनि सुकच्छ विजय में पधारे। छठे नरक से निकल कर कमंड का जीव भी इसी सुकच्छ विजय के ज्वलन गिरि धन में कुरगक नाम का भील हुआ। कुरगक भील उस जगल में भ्रमण करता हुआ शिकार द्वारा जीवन धिताता था। यज्ञनाभि मुनि भी विहार करते हुये उसी ज्वलनगिरि नाम के जगल में आ निकल। सध्या का समय हो गया था इस कारण यज्ञनाभि मुनि ज्वलनगिरि की एक कन्दरा में ही कायोत्सर्ग करके ध्यानारूढ़ हुये। जगल में भ्रमण करता हुआ कुरगक भील भी वहीं आ निकला जहाँ यज्ञनाभि मुनि कायोत्सर्ग करके ध्यान में थे। पूर्ण भय के बेर के प्रभाय से मुनि को देखकर कुरगक भील ने अपने लिए अपशकुन समझा। उसने क्रोधित होकर के मुनि के धाण मारा। धाण लगने म मुनि पीडित हुए। क्रूरकर्मी कुरगक भी समय पर घुरे परिणामों से मृत्यु पाकर सातवें नरक के रौरव नामक नरकावास में उत्पन्न हुआ।

इसी जम्बू द्वीप में पूर्व महाविंदह में पुराणपुर नामक नगर था। वहाँ कुलिश पाहु नामक राजा राज्य करता था जिसकी सुदर्शना नाम की पटरानी थी। मध्य-मैथव्य का आयुष्य भोग कर यज्ञनाभि का जीव महारानी की कोख में आया। महारानी सुदर्शना ने चौदह मदास्वप्न देखे। पति के स्वप्नों का फल सुन कर वि-तुम्हारी कोख से चक्रवर्ती या धर्म-चक्र की पुत्र उत्पन्न होगी, महारानी सुदर्शना प्रसन्न हुई और साधनार्थ के साथ गर्भ का पोषण करने लगी। समय पर रानी ने एक सुन्दर

और पुण्यवान् बालक को जन्म दिया। राजा कुलिश बाहु ने पुत्र-जन्मोत्सव मनाकर बालक का नाम स्वर्णशहू रखया। थोड़े ही समय में स्वर्णशहू सब प्रकार से योग्य हो गया। महाराज कुलिशबाहु ने राज्यभार स्वर्णशहू को सौंप दिया और स्वयं समय में प्रमत्त हो गये। स्वर्णशहू का प्रताप दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। कुछ काल पश्चात् स्वर्णशहू के यहाँ चौदह रत्न प्रकट हुये और वह छु खण्ड पृथ्वी साध कर चक्रवर्ती हुआ।

एक समय भगवान् तीर्थंकर पुराणपुर में पधारे। स्वर्णशहू चक्रवर्ती भगवान् को वन्दना करने गये। भगवान् की वाणी सुनकर स्वर्णशहू को ससार से प्रिकृति हो गई और वे समय में प्रवृत्त हो गये। कठिन तप और अर्हद्भक्ति आदि बीस बोलों की आराधना करके स्वर्णशहू ने तीर्थंकर नामक कर्म का उपार्जन किया।

सातवें नरक का आयुष्य भोगकर कुरंगक भील का जीव क्षीरगिरि के पास के क्षीरवणा जंगल में सिंह हुआ था। बिहार करते हुये स्वर्णशहू मुनि इसी क्षीरवणा जंगल में आ निकले। सिंह ने मुनि को देखा। पूर्वभय के बर से मुनि को देखकर सिंह क्रुद्ध हुआ और मुनि पर भपटा। उपसर्ग जान कर मुनि सचेत हो गये थे। इसलिये उन्होंने आत्मशुद्धिपूर्वक अनशन कर लिया सिंह ने मुनि की हत्या कर डाली। स्वर्णशहू मुनि समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर ढसवें कल्प के महाप्रभ विमान में बीस सागर की स्थिति के महद्भिक्क देव हुए और सिंह भी मर कर चौथे नरक में ढस सागर की स्थिति वाला नैगयिक हुआ।

## अन्तिम भव

इस प्रकार पूर्व जन्मों के इतिवृत्त के बाद अन्तिम जन्म की कथा प्रारम्भ होती है। मध्य जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्रान्तर्गत मध्यखण्ड में गंगा नदी के तट पर स्थित काशी देश में वाराणसी नाम की रमणीय नगरी थी। वहाँ इक्ष्वाकुवंश शिरोमणि अश्वसेन (विश्वसेन) नाम का राजा राज्य करता था। अश्वसेन की रानियों में यामादेवी (प्राद्वी देवी) सबसे श्रेष्ठ रानी थी। स्वर्णशहू चक्रवर्ती का जीव प्रणत कल्प का आयुष्य भोग कर चैत्र कृष्ण ४ को यामादेवी के गर्भ में आया। सुलग्न्या पर शयन किये हुए महारानी यामादेवी ने तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों को देखकर वे जाग उठीं। उन्होंने देखे हुए स्मरण अपने पति महाराज अश्वसेन को सुनाये और पति से स्वप्नों का फल सुनकर प्रसन्न होती हुई अपने शयनागार में लौट आई तथा शेष रात्रि धर्म जागरण में व्यतीत की।

गर्भकाल के समाप्त होने पर महारानी ने पीय कृष्ण की रात्रि को जब कि चन्द्रमा अनुराधा नक्षत्र में आया हुआ था, नीलमणि की शोभा को हरने वाले तथा सर्प के मुख्य चिह्न वाले पुत्र को जन्म दिया। इतिहास वेत्ताओं के अनुसार यह

घटना ई० पूर्व ८७७ की कही जाती है<sup>१</sup>। प्रातःकाल महाराजा अश्वसेन ने पुत्र जन्मोत्सव मनाकर पुत्र का नाम पार्श्वकुमार रखवा। धीरे धीरे पार्श्वकुमार बड़े होने लगे। जब वे युवक हुए उस समय उनका नव हाथ<sup>२</sup>, ऊँचा नीलवर्णीय<sup>३</sup> शरीर बड़ा शोभायमान मालूम होता था। वे बड़े लोकप्रिय,<sup>४</sup> चतुर, अद्वितीय<sup>५</sup> सुन्दर, इन्द्रियों को बश में रखने वाले, सौभाग्यशाली और नम्र स्वभाव के थे।

इन्हीं दिनों कुशस्थल<sup>६</sup> नगर के राजा प्रसेनजित् के प्रभावती नाम की एक अद्वितीय सुन्दरी कन्या थी। जब प्रभावती विवाह योग्य हुई, तब उसके माता पिता प्रभावती के अनुरूप घर की खोज करने लगे। एक दिन प्रभावती अपनी सखियों के साथ बाग में टहल रही थी। वहाँ उसे किन्नरियों द्वारा गाया जाने वाला एक गीत सुनाई दिया जिसमें अश्वसेनसुत पार्श्वकुमार के उत्कृष्ट रूप का वर्णन होने के साथ ही उस स्त्री को धन्य बताया गया था जिस पार्श्वकुमार की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो। इस प्रकार का गीत सुनकर प्रभावती के हृदय में पार्श्वकुमार के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उसने पार्श्वकुमार के ही साथ विवाह करने का हठ सकल्प कर लिया। प्रभावती की सखियों ने प्रभावती का यह निश्चय प्रभावती के माता-पिता को सुनाया। राजा प्रसेनजित् भी इस निश्चय को सुनकर प्रसन्न हुआ। वह प्रभावती को लेकर वाराणसी गया। इधर प्रभावती का सौन्दर्य, उसका शील और

१ Guerinot ने अपने Intro Bibliogra hica Jaina में पार्श्वनाथ को ई० पू० अष्टम शतक में कार्य करता हुआ माना है। श्री जगदीशचन्द्र जैन ने Life in Ancient India as depicted in the Jaina Canons में पार्श्वनाथ को ई० पू० नवम शतक के अन्त में माना है। Jacobi के अनुसार ई० पू० अष्टम शतक ही उचित है। उनके जैन-सूत्रों को देखिये।

२ श्री वापडिया द्वारा लिखित जैन धर्म और साहित्य, भाग १, पृ० २४ देखिये।

३ श्री नाहर और घोष द्वारा लिखित Epitome of Jainism 46 पृष्ठ देखिये।

४ पुरिपादानीये (पुरिपादानीय) करपसूत्र, १४६, १४४ पाली पुरिसाज्जानीय, अगुत्तर, १, २६०, २, ११४। इसका यह भी अर्थ हो सकता है—उच्च जन्म वाला या प्रतिष्ठित व्यक्ति। याकोबी ने इसको इस तरह समझाया है कि ऐसा आदर्मी जो अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा चुना जाय—जैन सूत्र १ S II E, Vol XXII P 271

५ यह नगर कान्यकुब्ज या वर्तमान कन्नौज ही था (महाभारत, ८७, १७ भागवतपुराण ६, १, २१, योगिनी तन्त्र २, ४, हर्षचरित, ६, विनय पिटक २, २६६)

ज्ञान सारे देश में प्रसिद्ध हो रहा था। कलिगदेश के राजा यवन भी प्रभावती से विवाह करना चाहते थे। प्रभावती के पार्श्वकुमार के यहाँ जाने का समाचार सुन कर उसने अपनी विशाल सेना के साथ कुशस्थल पर चढ़ाई कर दी और नगरी को घेर लिया। राजा प्रसेनजित् ने राजा अश्वसेन से सहायता मांगी। इसी बीच अपने एक वृद्ध मंत्री के सत्परामर्श से कलिगराज यवन ने प्रसेनजित् से युद्ध छेड़ने का विचार छोड़ दिया और क्षमा माग कर वापिस लौट गया। यद्यपि पार्श्वकुमार प्रारम्भ से ही ससार से विरक्त रहते थे और विवाह बन्धन में पड़ना न चाहते थे, फिर भी अपने पिता तथा राजा प्रसेनजित् के आग्रह से उन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया। तदनंतर दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक समय भरांचे में बैठे हुए भगवान् पार्श्वकुमार बाजार की छुटा देख रहे थे। उस समय भगवान् ने देखा कि झुण्ड के झुण्ड लोग हाथ में पल-फूलादि लिये हुये नगर से बाहर की ओर जा रहे हैं। पूछने से पता लगा कि कमठ नाम का तापस पत्वाग्नि तपस्या करता है। लोग उसी की मेंट पूजा के लिये सामग्री लेकर जा रहे हैं। इतने में ही माता यामा-देवी का भेजा हुआ यह सन्देश भी भगवान् के पास आया कि मैं कमठ तपस्वी की पूजा करने जा रही हूँ, आप भी वहाँ चलें। यद्यपि भगवान् पार्श्वकुमार इस प्रकार के तप को अज्ञान कष्ट समझते थे, फिर भी माता की आज्ञा का पालन करने के विचार से वे भी गया तट पर वहाँ गये जहाँ कमठ तापस ताप ले रहा था। यह कमठ तापस कोई अन्य व्यक्ति नहीं है प्रत्युत पूर्व जन्म में विश्वभूति के कमठ और महभूति के नाम के जो दो पुत्र थे, उन्हीं में से इस जन्म में भी कमठ तो वहाँ तापस के रूप में है और महभूति पार्श्वकुमार के रूप में है। भगवान् पार्श्वकुमार ने कमठ तापस की धूनी के पास जाकर देखा कि धूनी में जलते हुए एक लकड़ में बैठा हुआ एक नाग भी जल रहा है। पार्श्वकुमार ने कमठ तापस को उसके हिंसात्मक इस अज्ञान तप का बोध कराया और अपने सेतुओं से उस लकड़ को धूनी से बाहर निकलवाया तथा सावधानी से लकड़ फाड़ने की आज्ञा दी। लकड़ के फाड़ते ही उसमें से तरपता हुआ नाग निकल आया। भगवान् ने उस नाग को नयकार मन्त्र की शिक्षा दी। धर्म पर भ्रष्टा होने के कारण वह नाग अपना शरीर त्याग कर नागों का स्वामी धरणेन्द्र हुआ। इसके बाद भगवान् पार्श्वनाथ भी अपने महल को लौट आये।

इस घटना को देखकर लोगों ने कमठ तापस की बहुत निन्दा की। अपनी निन्दा होने के कारण तापस को भगवान् पार्श्वनाथ पर उहुत क्रोध आया परन्तु विषय था। अतः उसने अपने तप के फलस्वरूप यह कामना की कि वह अपने घेरी पार्श्वनाथ के लिये दुःखदायी बने। अज्ञान तप के फल से कमठ तापस मृत्यु पाकर मेघमाली देव हुआ और भगवान् पार्श्वनाथ से यदज्ञा लेने के समय की प्रतीक्षा करने लगा।

इधर तीस वर्ष की आयु हो जाने पर भगवान् पार्श्वनाथ भी आत्मकल्याण के

विचार से घर से निकल पड़े। धूमते २ किसी दिन भगवान् पार्श्वनाथ तापसों के आश्रम के समीप पधारे। सूर्यास्त हो चुका था, इसलिये भगवान् पार्श्वनाथ वहाँ कुएँ के समीपस्थ घट वृक्ष के नीचे कायोन्सर्ग करके खड़े हो गये। मेघमालि देव ने इस अवसर को अपना वैर चुकाने के लिये उपयुक्त समझा। उसने पहले तो रीछ-चीना, हाथी और सिंह वन कर भगवान् को डराने की चेष्टा की, परन्तु जब उसे सफलता न मिली, तब उसने आकाश से मेघ लाकर जल बरसाना शुरू किया। मेघ के गरजने-बरसने, विजली के कड़कने और वायु के वेग से बड़े २ वृक्ष भी उखड़ कर गिरने लगे। वन के पशु पक्षी इधर उधर भागने लगे। सारा वन जलमय हो गया। जल क्रमशः भगवान् पार्श्वनाथ की कमर, छाती और नाक तक पहुँच गया। फिर भी भगवान् ध्यान में अविचल रहे। अनायास धरणेन्द्र का ध्यान इस ओर गया। भगवान् पर यह सकट देखकर धरणेन्द्र शीघ्र ही भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ। भगवान् को नमस्कार करके धरणेन्द्र ने भगवान् के चरणों के नीचे स्वर्ण कमल वैभिय किया और भगवान् के मस्तक पर अपने ससफल का छुद्र करके भगवान् के शरीर को अपने शरीर से आच्छादित कर दिया। धरणेन्द्र ने इस प्रकार भगवान् का उपसर्ग निवारण किया। पश्चात् यह क्रुद्ध होकर मेघमालि देव से कहने लगा—अरे दुष्ट, तू यह क्या कर रहा है। या तो शीघ्र ही अपनी माया समेट कर भगवान् की शरण ले, अन्यथा मैं तेरे इस अपराध को क्षमा न कर गा। धरणेन्द्र की बात सुन कर मेघमालि बहुत लज्जित हुआ। अपनी माया समेट कर वह अपने मन में कहने लगा कि मैंने इन महापुरुष को कष्ट देने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी, तब भी ये महापुरुष धीरे धीरे रहे और मेरी समस्त शक्ति व्युत्था हो गई। ये महापुरुष अगूठे से मेरे पर्वत को हिलाने में समर्थ हैं, फिर भी इन्होंने मुझ पर क्रोध नहीं किया। अतः अब मेरी कुशल इन महापुरुष की शरण लेने में ही है। इस प्रकार विचार कर मेघमालिदेव अभिमान तज भगवान् के चरणों में गिर पड़ता है और भगवान् से क्षमा प्रार्थना करने लगता है। धीतराग भगवान् पार्श्वनाथ के लिए तो धरणेन्द्र और मेघमालि दोनों समान ही थे। अतः भगवान् पार्श्वनाथ ने मेघमालि को आश्रय दिया। अन्त में धरणेन्द्र और मेघमालि दोनों भगवान् को नमस्कार करके अपने अपने स्थान चले जाते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ भी अन्यत्र विहार करने लगते हैं।

आगे चलकर भगवान् पार्श्वनाथ ने अपना एक सप्रदाय चलाया जो कि तीर्थ कहलाया और यह तीर्थर कहलाए। इन्हीं अनेक नगरों की यात्रा की। ई० पू० ७७७ में अपने हाथों को फैलाते हुए तथा सर्व दुष्टों से मुक्त हो समेत पर्वत के शिखर पर अपने २३ शिष्यों के सामने वर्षा ऋतु के प्रथम मास

१ आचार्य नियुक्ति, ३३४, नायाधम्मकदाओं, २, २२२-२३० ला, Geography of Early Buddhism पृ० १८, १९, २८, ४३, ८६, ९६, १०३, ३२५ देखिए।

२ यह समेत शिखर नाम का ही पर्वत है जो कि बाद में पार्श्वनाथ पर्वत कहलाया है।

में मर्दाने भर तक अनशन करके यहाँ तक कि जल<sup>१</sup> तक न लेकर भगवान् पार्श्वनाथ ने निर्वाणपद<sup>२</sup> प्राप्त किया। भगवान् पार्श्वनाथ इस प्रकार १०० वर्ष तक इस ससार में जीवित रहे<sup>३</sup>। भगवान् पार्श्वनाथ का अभिनचरित सलेप में जान लेने के बाद पार्श्वभुदय काय का कथानक समझने में पाठकों के सामने अब कोई कठिनाई नहीं रह सकती। अतीत और वर्तमान जन्मों में भेदभाव न मानकर यह काय लिखा गया है, और मेघदूत के अनुकरण पर कमठ के यज्ञ होने, अलका में रहने तथा वर्ष भर के शाप की कल्पना कर ली गई है।

## काव्य की कथा

राजा अरविन्द के द्वारा नगर से बहिष्कृत कर दिये जाने पर कमठ सिन्धु नदी के तट पर तपस्या करने लगता है। अपने बड़े भाई की दुरवस्था का वृत्तान्त सुन कर पश्चात्ताप से प्रेरित हो उसका छोटा भाई मरभूति (पार्श्वनाथ) खोजते खोजते कमठ के पास पहुँचता है। मरभूति को देखकर कमठ के हृदय में पूर्ण वैर जागृत हो उठता है और वह मरभूति के मारने का उपाय सोचता है। अपनी माया के प्रभाव से वह घोरवृष्टि उपस्थित कर देता है, सिंह की तरह गरजता है और मरभूति को धिक्कारता है। इस पर भी अब मरभूति (पार्श्वनाथ) की ध्यानवृत्ति विचलित नहीं होती है, तब कमठ उससे युद्ध करने का आग्रह करता है और युद्ध में अपने हाथ से मृत्यु पाने के बाद स्वर्गलोकस्थित अलकापुरी जाने का मरभूति को परामर्श देता है। कमठ के विभिन्न दुर्वचनों को सुन कर भी मरभूति मौन ही रहता है। कमठ इस अरसर पर मरभूति को विभिन्न पूर्व कथायें वाद दिलाता है और अन्त में फिर युद्ध करने के लिये प्रेरित करता है। युद्ध में मरभूति के मर जाने की सम्भावना को लेकर न्यय मेघरूप के धारण करने के कारण कमठ मरभूति को भी मेघ का ही रूप देख कर उत्तर दिशा की ओर स्वर्गस्थित अलकापुरी जाने का परामर्श देता है।

इस प्रसंग में रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम रामगिरि से उत्तर की ओर चलने पर आन्नष्टट्ठ पर्वत, तत्पश्चात् पुन उत्तर की ओर चलने पर नर्मदा नदी, विन्ध्य-वन, दशार्ण देश और दशार्ण देश की राजधानी विदिशा नगरी का वर्णन किया गया है। विदिशा नगरी में प्रपञ्चती नदी के जल को ग्रहण करने के बाद किसी अट्टालिका के ऊपर दिन बिता कर रात्रि में

१ कल्पसूत्र १६८।

२ कल्पसूत्र १६६।

३ श्री तीर्थंकरचरित, द्वि० भा० रतनाम तथा वादिराजसूत्रि का श्रीपार्श्वनाथ चरितम् विशेष ज्ञान के लिये देखें।

नीच नामक किसी पर्वत पर विश्राम करने, तदनन्तर निर्विन्ध्या और सिन्धु नदियों पर से होते हुए मेघ को (मरुभूति) उज्जयिनी जाने का परामर्श दिया गया है। उज्जयिनी पहुँच कर सर्वप्रथम जिनेन्द्र के मन्दिर में जिनेन्द्र की स्तुति करने तथा महाराल नामक वन में स्थित जिनालयों के दर्शन करने के बाद नगरी की शोभा देखने का मेघ (मरुभूति) को परामर्श दिया गया है।

उज्जयिनी के बाद गम्भीरा नदी होते हुये देवगिरि पर्वत पर पहुँचने तथा यहाँ स्वन्द देव की पूजा करने और फिर चर्मएयती नदी में कुछ देर जलक्रीडा करने के बाद दशपुर नगर तथा सीता नामक किसी नदी पर से होते हुये ब्रह्मावर्त देश पहुँचने के लिये मेघ से कहा गया है।

ब्रह्मावर्त के बाद कुरुक्षेत्र, तदनन्तर कुरुक्षेत्र के निकट ही बलराम के पुण्य क्षेत्र होते हुए कनकल पर्वत के समीप गंगाजी पर पहुँचने के बाद हिमालय पर जाने का मेघ को आदेश दिया गया है।

हिमालय पर्वत पर पहुँच कर वहाँ के विभिन्न रमणीय दृश्यों को देखकर 'कौवरन्ध्र' में से होकर कैलास पर्वत पर जाने के बाद अलकापुरी में उतरने का मेघ को परामर्श दिया गया है। इस अग्रसर पर कवि ने अलकापुरी का शृंगारमयी निविध भाग भगिमाओं के साथ कमठ के मुख से यहाँ सरस वर्णन कराया है। इस तरह मेघ (मरुभूति) के अलकापुरी पहुँच जाने पर उसकी पूर्व जन्म की पत्नी बसुधरा से उसके मिलने का वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में बसुधरा की विरहा बस्था का मेघ-दूत के यक्ष की प्रेयसी के समान यहाँ ही भावुक तथा कदण वर्णन किया गया है।

कमठ के इतना सब कुछ कहने पर भी जय मरुभूति शान्त ही बना रहता है, तब कमठ उसे फिर युद्ध के लिये प्रोत्साहित करता है। युद्ध में मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग जाकर किसी देवागना के साथ रहने का उसे प्रलोभन देता है। विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहित किये जाने पर भी जय मरुभूति युद्ध के लिये तैयार नहीं होता है, तब कमठ अपनी माया शक्ति से स्त्री-समूह की सृष्टि करते हुए गाना प्रारम्भ कर देता है और स्त्रियों की प्रणय छेष्टाओं तथा प्रिय वचनों द्वारा उसे विमुग्ध करना चाहता है। इतनी शठता करने पर भी मरुभूति (पार्श्वनाथ) को शान्त देखकर कमठ को अपनी असफलता पर बड़ा क्रोध आता है और वह मरुभूति के मस्तक पर शिला प्रहार करना चाहता है कि उसी समय मरुभूति (पार्श्वनाथ) की पूजा के लिये सपत्नीक आये हुये नागराज धरणेन्द्र को स्वर्ग पृथ्वी पर पतथर फेंक कर वह भाग रहा

होता है। नागराज धरणेन्द्र उसे अमयदान देकर भागने में गेक लेता है और उसे उसके पूर्व जन्मों के अपराधों की याद दिलाता है। इसके बाद नागराज धरणेन्द्र पार्श्वनाथ की स्तुति करता है तथा कमठ पर भी कृपा दृष्टि के लिये भगवान् से प्रार्थना करता है। अन्त में कमठ द्वारा किये हुए उपसर्ग से भगवान् की रक्षा के लिये उनके प्रसक्त पर अपने फणों का छत्र फैला देता है। उसकी स्त्री भी भगवान् की धीरता पर विमुग्ध होकर अपने फणों को छत्र रूप से उनके ऊपर फैला देती है। तदनन्तर कमठ भी पश्चात्ताप से प्रेरित हो भगवान् पार्श्वनाथ की शरण में आकर उनसे अपने पापों के लिये क्षमायाचना करता है और सम्यग्ज्ञान की प्रार्थना करता है। प्रार्थना करते करते उसकी आँखों से निरन्तर अश्रुधारा बहने लगती है। देवगण इस दृश्य को देखकर आकाश से पुष्पवृष्टि करते हैं, पुन्दुभिया वज्राते हैं और स्वर्ग से उतर कर पार्श्वनाथ की स्तुति करने लगते हैं। दूसरे तापस भी भी पार्श्वनाथ की महिमा को देखकर उनकी शरण में आ जाते हैं।

यस यहा पर ही काव्य का कथानक समाप्त हो जाता है।

## समालोचना

मेघदूत के पदों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिखे गये काव्यों में पार्श्वभ्युदय सर्वप्रथम काव्य है। इसमें प्रायः मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मान कर कविता की गई है। कहीं कहीं दो पंक्तियाँ मेघदूत की हैं और दो कवियों की स्वरचित हैं। इस तरह यह एक चमत्कारपूर्ण रचना है। इसको दूतकाव्यों की परम्परा में साक्षात् सम्मिलित करना कुछ उपयुक्त तो कम ही जान पड़ता है, लेकिन मेघदूत के पदों को समस्या मानकर इसकी रचना की गई है, अतः दूतकाव्यों के अनुशीलन में इसका भी समावेश कर लिया गया है। लेखक ने स्वयं इस काव्य का नाम पार्श्वभ्युदय रक्खा है। अतः यह प्रतीत होता है कि लेखक को भी इसे दूतकाव्य के रूप में मानना अभीष्ट नहीं था।

सारा काव्य चार सर्गों में विभक्त है। प्रथम सर्ग में ११८, द्वितीय सर्ग में ११८, तृतीय सर्ग में ४७ तथा चतुर्थ सर्ग में ७१ इस तरह समग्र काव्य में कुल २६४ श्लोक हैं। समस्या पूर्ति होने के कारण सारा काव्य मन्दविान्ता छन्द में ही लिखा गया है। केवल चतुर्थ सर्ग के अन्तिम छह श्लोकों में से पांच मालिनीवृत्त हैं और छठा वसन्त तिलका है।

छन्द के साथ साथ भाषा भी मेघदूत जैसी ही है। लेकिन अनावश्यक और नीरस प्रसंगों के समावेश के कारण काव्य में मेघदूत जैसा प्रभाव नहीं है। वास्तव में मेघदूत से प्रतिस्पर्धा करने के लिये इस काव्य की रचना की गई है।

काव्य की कथावस्तु तो सक्षेप में दी ही जा चुकी है। काव्य की शैली कुछ ऐसी अटिल है कि काव्य की कथा एक दम पाठक के सामने नहीं आ सकती।



समस्या पूर्ति के रूप में लिये जाने के कारण तथा मूल पक्तियों के भाग को यत्र तत्र विपर्यस्त करने से काव्य जटिल हो गया है और प्रसाद गुण की काव्य में न्यूनता आ गई है। कथानक की दृष्टि से काव्य बहुत शिथिल है। चूँकि मेघदूत की समस्या पूर्ति कवि का मुख्य लक्ष्य है, इसलिये बहुत सी बातें विवश होकर उसे कल्पित करनी पड़ी है। इसी कारण से काव्य में वैसी श्यामाविकता नहीं है जैसी कि एक स्वतन्त्र रचना में होनी चाहिये।

इसके साथ समस्यापूर्ति के बन्धन ने जहाँ काव्य के कथानक को शिथिल और कुछ कृत्रिम सा बना दिया है, वहाँ इससे एक लाभ भी हुआ है कि कवि को विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों तथा कथानक के भागपूर्ण रम्य स्थलों के वर्णन करने का पर्याप्त अवसर मिला है। इन वर्णनों में कवि ने अपनी सहृदयता और कल्पनाशक्ति का पूर्णरूपेण परिचय दिया है। आत्रकूट पर्वत के शिखर पर मेघ के पहुँचते समय पर्वत की शोभा का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

कृष्णादि किं बलयिततनुर्मध्यमस्याधिशेते  
किं वा नीलोत्पलनिरचित शेखर भूभृत स्यात् ।  
इत्याशका जनयति पुरा मुग्धविद्याधरीणां  
त्यप्यारूढे शिखरमचल' स्निग्धवेलीसनयै ॥१॥७०॥

विद्याधरियों को पर्वत के शिखर पर स्थित श्यामवर्ण के मेघ को देखकर कृष्ण संपन्न अथवा नीले कमलों की माला का भ्रम हो जाना स्वाभाविक ही है। कवि ने आगे चल कर रेवा नदी का वर्णन भी बड़ा ही सुन्दर किया है—

गत्योदीचीं भुव इव पृथु हारयट्टि विभक्ता  
घन्येमाना रदनहतिभिर्मिन्नपर्यन्तरप्राम् ।  
धीना वृन्दैर्मधुरयिस्तैरात्ततीरोपसेवाम्  
रेवा द्रक्ष्यसुपलविषमे विन्ध्यपादे विशिर्णाम् ॥१॥७५॥

रेवा नदी को पृथ्वी की टूटी हुई बनी सी माला बताकर उसके तट पर घन्य हाथियों की दन्तकीड़ा तथा पक्षियों के मधुर कलरव का वर्णन कर कवि ने नदी के तट का चित्र सा खींच दिया है।

दशार्ण देश की राजधानी विदिशा नगरी का वर्णन करते हुये कवि ने बड़ी सुन्दर उल्लेख की है—

मत्या पश्ये पवनविचलत्वेतुहस्तेरमीक्षाम्  
दूरादुच्चैर्मथन शिखरेराह्यपन्तीमिथ त्याम् ।  
सालोदप्रा ध्रियमिथ भुवो रूपिणीं नाभिमृताम्  
(दशार्णानाम्) सेषा दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम् ॥१॥८३॥

प्रिदिशा नगरी के ऊँचे २ प्रासादों पर वायु के जोर से लहराते हुये भगदों को देखकर ऐसा लगता है मानों यह नगरी अपने हाथों के सकेन से मैत्र को बुला रही हो । नगरी इतनी सुन्दर है मानों पृथ्वी की शोभा ही साक्षात् खड़ी हुई हो ।

आगे चल कर सिन्धु नदी के वर्णन में किसी विरहिणी स्त्री की विरहजन्य लज्जा त्याग और काश्य अवस्थाओं का उदा ही सश्लिष्ट वर्णन कवि ने किया है—

हंसश्रेणीकलरिरतिभिस्त्वामिरोपाह्वयन्ती  
धृष्टा मार्गे शिथिलजस्नेरागना दृश्यते ते ।  
वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य<sup>१</sup> सिन्धु  
पागदुच्छ्रया तटदृढतरश्च शिभिर्जीर्णपणं ॥१॥१०७॥

क्षामा पागदु प्रतनुसलिला वेणिका धारयन्ती  
हसस्त्रानैरिष रिद्धती प्रार्थनाचाटुमेया ।  
सौभाग्य ते सुभग विरहानस्यया व्यजयन्ती  
काश्य येन त्यजति रिधिना स त्वयिरोपपाथ ॥१॥१०८॥

इन श्लोकों में सिन्धु नदी का वर्णन करते हुए कवि ने विरहिणी स्त्री का चित्र उपस्थित कर दिया है ।

इसके बाद उज्जयिनी नगरी का भी कवि ने बड़ा उदात्त और सरस वर्णन किया है । उज्जयिनी के राजमार्गों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

यस्या विभ्रत्यग्रनिपपथा रत्नराशीरुदग्रा  
शृणोन्मेयाजलधय इषापीनतोया युगान्ते ।  
हारास्तारास्तरलघुट्टिकान्कोटिश शरशुक्ती  
शण्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूषप्ररोहान् ॥११॥१०९॥

भूयो नानाभरणरचनायोग्य रत्नप्रवेका  
ज्योतिर्लक्षारचित रचिमत्सुक्रचापानुकारान् ।  
दृष्ट्वा यस्या विपणि रचितान्विद्रुमाणा च भगवन्  
मलदयन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रायशेषा ॥११॥११०॥

उज्जयिनी के राजमार्गों में शम्भ, मोती और रत्न तथा मरकत मणिया इतनी प्रचुर मात्रा में लगी हुई हैं कि मालूम पड़ता है अथ समुद्र में केवल पानी शेष रह गया हो । इसी तरह बाजार में भी तरह २ के रत्न और प्रवाल विकते हुए देखकर

लोगों को भ्रम होता है कि अब समुद्र में केवल जल ही रह गया होगा। इस तरह समुद्र से भी बढ़कर नगरी की सम्पत्ति बताई गई है।

उज्जयिनी के समीप की शिप्रा नदी की शीतल वायु का कवि ने कैसा सरस वर्णन किया है —

यस्यामुच्चै रूपनतरुन्नामयन्मातरिश्वा  
वीचिहोभादधिक शिशिर सचरत्यप्यङ्गो  
दीर्घा कुर्वन्पटुमदकल कृजित सारसानाम्  
प्रत्यूपेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकपाय ॥१॥११॥

कल्लोलान्तर्यलनशिशिर शीकरासारयाही  
धूतोद्यानो मदमधुलिहा ध्वजयन्सिजितानि ।  
यत्र स्त्रीणा हरति सुरतग्लानिमगानुकूल  
शिप्राजात प्रियतम इय प्रार्थना चादुत्तर ॥१॥१२॥

यद्यपि इन दो श्लोकों में दो दो पक्तियाँ मेघदूत की ही हैं, फिर भी समस्यापूर्ति के साथ साथ कवि ने मूलपक्तियों के भाव को बड़ी सुन्दर रीति से पहलवित किया है।

जिस तरह मेघदूत में अलकापुरी का वडा सरस वर्णन किया गया है, उसी तरह इस काव्य में भी अलकापुरी का वर्णन पाया जाता है। अलकापुरी के इन्डनील मणियों से युक्त छोटे २ पर्यंत श्रीर देवदारु वृक्षों के सुगन्धित घूम से युक्त, सुन्दर स्त्रियों के निवास स्थान तथा विधियों से सुसज्जित ऊँचे २ प्रासाद हमेशा वर्षामृतनु जैसा दृश्य बनाए रखते हैं —

यत्रातील हरिमणिमया सुद्रशीला नमोग  
प्रोदहं यद्रूपपरिसरद्वयधूमानुबन्धा ।  
प्रासादाश्च प्रथयितुमल सर्वदा मेघकालं  
विद्युद्वन्त ललितवनिता सेन्द्रघाप सचित्रा ॥२॥८५॥

अलकापुरी के वर्णन प्रसंग में कवि ने वडा के स्त्रीपुरुषों की विविध शृंगार-प्रयी चेष्टाएँ वड़े उत्कृष्ट ढंग से वर्णित की हैं। ऐसे ही एक स्थान पर कवि लिखता है —

यस्या कामद्विषमुखपटच्छायमास्त्रस्तनीवि  
धीमन्ध्रोणीभुलिनपरण वारि कार्वाविमंगम् ।  
पूर्य लज्जा विगलति ततो घर्मतोयं वधूना  
शोभं रागादनिभूतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु २॥११४॥

मेघदूत में जिस तरह अलकापुरी की स्त्रियों की मुग्धावस्था वर्णित की गई है, उसी तरह इस का य में भी अलका की रमणियों को वहा मुग्ध बतलाया गया है —

आक्षिप्तेषु प्रियतमकरैरशुकेषु प्रमोदा-  
दन्तलीलातरलितदृशो यत्र नाल नगोढा  
शय्योत्थाय वदनमरुताऽपासितु धारमाना  
अचिन्तु गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान् ॥२॥११५॥

अलका की रमणियों की मुग्धावस्था का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे रत्नों के दीपों को फूँक से बुझाने की व्यर्थ चेष्टा करती हैं ।

अलकापुरी की रमणियों के ऋगार का वर्णन करते हुए कवि ने अलका में हमेशा सब ऋतुओं का एक साथ होना बतलाया है —

पाणी पद्म कुरयफयुत ह्योचितेधाभि कुन्द  
लोधो रेणु स्तन परिसरे हारि कर्णे शिरीषम् ।  
व्यक्तिव्यक्तम् व्यतिकरमहो तत्र पण्णामृतनाम् ।  
सीमन्ते च त्र्यदुपगमज यत्र नीप यधूनाम् ॥

कमल से शरद, कुरवक से वसन्त, कुन्द से हेमन्त, लोध्र के चूर्ण से शिशिर, शिरीष पुष्प से प्रीति तथा कदम्ब से वर्षा ऋतु का एक साथ अलका में होना कवि ने निम्न किया है ।

प्रस्तुत काव्य में मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर कविता की गई है । अतः मेघदूत में केवल सजेत मात्र से निर्दिष्ट भाव इस काव्य में पूर्ण रूप से वहाँ २ विकसित पाया जाता है । मेघदूत में उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुए पक्ष ने मेघ को वहा की रमणियों के नेत्रों से फ्रीडा करने का आदेश देते हुए कहा है—

विद्यहामस्फुरितचन्द्रितै र्यत्र पीरागनानाम्  
लोलापार्श्वेयदि न रमसे लोचने वचित स्या ॥

इसी भाव को और अधिक विशद करते हुए इस काव्य में कवि ने लोचनों के वहे ही उपयुक्त विशेषण दिए हैं —

जैत्रैरांखी कुसुम धनुषो दूरपातैरमोघै  
मर्माविदिम हृदपरिचितधूधनुषैरिमुकै ।

लोचनों के इन विशेषणों से उज्जयिनी की अगनाओं की और भी अधिक विलासिता व्यक्त होती है ।

मेघदूत में उज्जयिनी स्थित महाकाल के मन्दिर में सायंकालीन पूजा के समय नगाड़े के समान धीरे २ गरजने के उपलक्ष्य में मन्दिर की वेश्याओं द्वारा अपने सुदीर्घ कटाक्षों द्वारा देखा जाना ही मेघ को उसकी शिव पूजा का फल बतलाया गया है —

पादन्यासे कण्ठितरसनास्तत्र लीलावधूतै  
रत्नच्छायावचितयलिभिश्चामरै कलान्तहस्ता ।  
वेश्यास्तप्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाप्रविन्दून्  
आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरध्रेणिर्दीर्घान् कटाक्षान् ॥१॥३६॥

इस श्लोक की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर प्रस्तुत काव्य में कवि ने पाठकों के समक्ष विभिन्न दृश्यों को रचने का प्रयास किया है । महाकाल नामक धन में स्थित जितालय में मेघ के सायंकाल पहुँचने की समारम्भ को लेकर कवि कहता है—

सायाह्ने चेत्तदुपगतवान्धाम तत्कालपूजा  
सगीतान्ते श्रमजलकणैराचितांगी सुकरुणी ।  
मन्द धान्तीश्चतुर गणिका शीकरै सन्नयेत्स्थं  
पादन्यासे कण्ठितरसनास्तत्र लीलावधूतै ॥

हे मेघ ! महाकाल धन में यदि सन्ध्या के समय तुम जैन मन्दिर में पहुँचो तो सन्ध्याकालीन पूजा के बाद स्वेद विन्दुओं से भीगी हुई, धीरे २ चलती हुई, अपने शरण निक्षेप के साथ करधनी का शब्द करती हुई कोमल कण्ठ वाली चतुर गणिकाओं को तुम लीला ( खेल ) में ही बिखेर द्यो अपने अलकणों से सिक करना ।

इसके बाद कवि कहता है —

तास्तप्राहर्मणिमकरशङ्खनूपुरा पश्ययोषा  
प्रोदुगायन्ती सुललितपदन्यासमुद्भूतिलासा ।  
पश्योत्पश्या नखजलकणद्वित्रसिता तिलोला  
रत्नच्छायावचितयलिभिश्चामरै कलान्तहस्ता ॥

हे मेघ ! यदि जैन मन्दिर में दिन में तुम पहुँचोगे, तो तुम्हें वहाँ मणियों से युक्त तथा यज्ञोपवीत नूपुरोंवाली, सुललित पदन्यास के साथ गायत्री हुई, भ्रूतिलास में युक्त, रत्न अङ्गे हुए दण्ड वाले चामरों से धके हुए हाथों वाली, वर्षा के नवीन विन्दुओं से सिक तथा चञ्चल ओर ऊपर को देखती हुई गणिकाएँ वस्त्रों को मिलेंगी ।

अन्त में गणिकाओं को लेकर कवि कहता है —

भूयश्च त्वत्स्तनितचकिता किंस्विदित्यात्तशुका  
किंचित्तिर्यग्यलितमदनास्तत्र परयागनास्ता ।  
वदोत्कम्पस्तननटलुटलोलहारा सलीला  
नामोद्यन्ते रयि मधुकरध्वेक्षिदीर्घान् कटाक्षान् ॥

हे मेघ । जैन मन्दिर में तुम्हारे गर्जन से जकित, 'यह क्या है' इस तरह शका करती हुई, मुख को कुछ टेढ़ा किए हुई तथा स्तननट पर चंचल हार को धारण किए हुई परयागनाएँ, तुम्हारी ओर बड़े हाव भाव के साथ देखेंगी ।

मेघदूत में अलकापुरी की विशेषता बतलाते हुए एक कल्पवृक्ष से क्षी लियों के विविध शृंगार की सामग्री के मिल जाने का वर्णन किया गया है—

वासश्चित्र मधु नयनयोर्भिभ्रमादेशदक्षं  
पुष्पोदुभेद सह किसलयैर्भूषणाना विकल्पान् ।  
लाक्षारगं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्याम्  
एक सूते सकलममलामण्डन कल्पवृक्ष ॥२॥१३॥

इसी विचार को और भी अधिक पल्लवित करते हुए कवि ने किस सुन्दर ढंग से समस्यापूर्ति की है —

यस्मिन् कल्पद्रुमपरिकर सर्वकालोपमोग्या  
निष्ठान्भोगान्सुठतिनि जने शृङ्खलान्पङ्कलीति ।  
वासश्चित्र मधु नयनयोर्भिभ्रमादेशदक्षम्  
पुष्पोदुभेद सह किसलयैर्भूषणाना विकल्पम् ॥३॥१६॥

रञ्ज्याहार रसमभिमतस्त्रयिकल्प विपची  
माहायांशि स्थरुचिरचिदान्यशुकान्यगरागम्  
लाक्षारगं चरणकमलन्यास-योग्यं च यस्मिन्  
एक सूते सकलममलामण्डन कल्पवृक्ष<sup>१</sup> ॥३॥७॥

प्रस्तुत काव्य में मेघदूत की समस्यापूर्ति विभिन्न ढंग से की गई है । मेघदूत को केवल एक पंक्ति वहाँ छन्द के आदि या अंत में पाई जाती है, तो वहाँ दो पक्तियाँ एक साथ छन्द के अंत में देखने को मिलती हैं । यही नहीं, वहाँ २ मेघदूत की दो पक्तियों के बीच में बीच की दूसरी और तीसरी पक्तियाँ कवि की स्वरचित हैं । वहाँ २ छन्द में दूसरी और चौथी पंक्ति कवि की स्वलिखित है तथा प्रथम और प्रतीय मेघदूत से ली गई हैं ।

मेघदूत में यह अपनी प्रेयसी की विरहा-स्था का वर्णन करते हुए मेघ से कहता है—

( आलोके ते निपतति )

उत्सगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणा  
मदुगोत्राक विरचितपद गेयमुदगातुकामा ।  
तन्त्रीमाद्री नयनसलिलै सारयित्वा कथंचित्  
भूयोभूय स्वयमपि कृता मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥२॥२५॥

प्रस्तुत काव्य में इस श्लोक की एकान्तरित तथा द्वयन्तरित रूप से समस्या पूर्ति का खमत्कार देखिये । कमठ मेघ ( मरभूति ) को उसकी पत्नी वसुन्धरा का हाल बताते हुए कहता है—

उत्सगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणा  
गाढोत्फण्ड करणविस्त रिप्रलापायामानम् ।  
मदुगोत्राक विरचितपद गेयमुदगातुकामा  
त्वामुद्दिश्य प्रचलद्गलक मूर्च्छना भाषयन्ती ॥३॥३८॥

तन्त्रीमाद्री नयनसलिलै सारयित्वा कथंचित्  
स्वाशुत्यमै कुसुम मृदुभिररलकीमास्पृशन्ती ।  
ध्याय ध्याय त्रुदुपगमन शन्यचिन्तानुकराडी  
भूयोभूय स्वयमपि कृता मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥३॥३६॥

मूल श्लोक के भाव को सुरक्षित रखते हुये कवि ने जिस सुन्दरता से यहाँ समस्यापूर्ति की है ।

कालिदास का यह अपनी प्रेयसी से चित्र में ही नहीं मिल पाता है, लेकिन इस काव्य में विरहिणी स्त्री की दीनता का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि यह स्वप्न में भी अपने प्रेमी से नहीं मिल पाती है—

तीव्रास्थे तपति मदने पुण्यशैर्मेदगम्  
तत्पेऽनल्प दहनि च मुह पुण्यभेदै प्रकल्पते ।  
तीव्रापाषा त्वदुपगमनं स्वप्नमात्रेऽपि नाऽयम्  
भूर स्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नो वृणान्त ॥४॥३९॥

समस्या पूर्ति के साथ साथ भाव सौन्दर्य भी इस पद्य में दर्शनीय है ।

समस्यापूर्ति के यन्त्रन में आकर कवि को कहीं कहीं मूलपंक्ति के भाव को रिपयस्त भी करना पड़ा है और प्रसगातर में कहीं हुई बात को प्रसगातर में कहना पड़ा है—

यत्नमोढ्याद्बहु विलसित न्यायमुत्लक्ष्य वाचा  
तन्मे मिथ्या भगवतु च मुने दुष्कृत निन्दितस्वप्न  
भक्त्या पादौ जित विनमत पादौ मे तत्प्रसादात्  
मा भूदेनं क्षणमपि सखे विद्यता विप्रयोग ॥४॥६५॥

काव्य के अन्त में कमठ भगवान् पार्श्वनाथ से अपने अपराधों के लिए क्षमा  
याचना करते हुए प्रार्थना करता है—हे भगवान् ! आपके चरणों की कृपा से मेरा  
सम्यग्ज्ञान ( विद्युत्=विशेष दीप्ति=सम्यग्ज्ञान ) से विश्लेष न हो। यहाँ पर कवि ने  
विद्युत् शब्द का विजली अर्थ न लेकर सम्यग्ज्ञान अर्थ लिया है।

मधुत में यक्ष अपनी प्रेयसी क वाम ऊर को लेकर कहता है —

वामश्वास्या कररुहपदै मुच्यमानो मदीयै  
मुकाजाल चिरपरिचित स्याजितो दैवगत्या ।  
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्नसगहनानाम्  
यास्यत्यूर सरसकदलीन्तम्भगौरश्चलत्वरम् ॥३॥३५॥

इस श्लोक की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर कवि ने विभिन्न प्रसंग प्रस्तुत  
किए हैं। कमठ मधुमति को अलकापुरी के मार्ग उर्णन तथा रसुन्दरा की अस्थायी  
वतने के बाद कहता है —

सदिष्ट च प्रणयमधुर जातया मे द्वितीयै  
प्राणै प्राणै नवनगर सन्निधि द्या प्रतीदम् ।  
तत्कर्तुं त्वं त्वरेण लघुन किंकमेव न कुप्या  
वामश्वास्या कररुहपदै मुच्यमानो मदीयै ॥१॥३६॥

हे मेघ ! ( मरभूते ) प्राणों के समान प्रिय मेरी पत्नी ने भी इस तरह के प्रणय  
मधुर वचन कहे हैं। इस कार्य के करने के लिए तुम शीघ्रता करो। मेरे नारनों से  
पक्षकर ( न मर कर ) तथा अपनी प्रेयसी के लिए मनोहर ( वाम ) होकर अर्थात् उस  
पाकर तुम क्या क्या नहीं करोगे अर्थात् सब कुछ करोगे।

दूसरी पंक्ति की समस्यापूर्ति करने हुए कवि कहता है —

भो मो भिक्षो मयि सदरपि क्व प्रयाम्यन्धरश्च  
त्यामुद्धतिप्रलिपतनकै सारयिष्य तद्गम् ।  
न प्राणान्स्थान्वटपितुमल तारको निर्णयो वा  
मुकाजालं चिरपरिचितं स्याजितो दैवगत्या ॥२॥३७॥

कमठ के बहुत कुछ कहने पर भी मधुमति शान्त ही रहता है, तब कमठ उसमें  
बढ़ता है—हे भिक्षो ! मेरे क्रुद्ध होने पर तुम क्या आश्रोग ? मैं तुम्हें अपनी तलवार



की नोक का अवश्य शिकार बनाऊंगा। चिरकाल से अभ्यस्य मौक्तिक आभूषणों को देववश छोड़ देने का तुम्हारा निर्णय भी तुम्हारे प्राणों को बनाए नहीं रख सकता।

इसके बाद तृतीयपंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुए कवि ने लिखा है —

किं ते वैरि द्विरदनघटा कुम्भ समेदनेषु  
प्राप्तस्थेमा समरविजयी वीरलक्ष्म्या करोऽयम् ।  
नास्मत्पत्रा श्रुतिपथमगाद्रक्षणानोत्सवानाम्  
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसगाहनानाम् ॥८॥३॥

कमठ मरभूति से कहता है—हे भिक्षो ! वैरियों के हाथियों के कुम्भस्थल को विदीर्ण करने में अभ्यस्त, समर विजयी, युद्ध में कार्य करने के बाद (सम्भोगान्ते) मेरे हाथों द्वारा सगाहन करने योग्य तथा वीर लक्ष्मी के बाहुम्बरूप इस मेरे खग का क्या तुमने माम नहीं सुना है ?

अन्त में अपनी तलवार के आघात से मरभूति की अंघा के काप जाने का प्रसंग लेकर कमठ कहता है —

अस्युद्गुणीणे मयि सुरभटास्तेऽपि विभ्यस्त्यसभ्य  
कस्त्वं स्थातु भण मम पुर किं न जिह्मेपि भिक्षो ।  
मायत्कोऽयं मयसिग्नितसखण्डनात्तत्पुरस्ता  
द्यास्यायूढ सरसकदलीस्तभगीरश्चलत्वम् ॥४॥४॥

कमठ कहता है—मेरे तलवार हाथ में होने पर स्वर्ग तक के योद्धा डरते हैं। असभ्य ! तू तो क्या ही है ? हे भिक्षो ! तुम्हें लज्जा नहीं आती। मेरी तलवार के विस्तृत आघात से सरस कदलीस्तभ के समान गौरवपूर्ण धाली सेरी यह अथा काप उठेगी।

इन श्लोकों में पाठकों ने देखा होगा कि मूल पंक्ति के भाव को किस तरह प्रसंगान्तर में कवि ने बँटाने की चेष्टा की है। इसी तरह के अन्य स्थल भी विश्व पाठकों के सामने काव्य में आ सकते हैं। काव्य की अटिलता ऐसे ही स्थलों से बढ़ गई है।

जैसा कि पहिले कहा गया है कि कथानक की दृष्टि से काव्य शिथिल है और अनावश्यक वर्णनों की काव्य में भरमार है। इसी तरह रस के विचार से भी यही कहना होगा कि काव्य में इसका पूर्ण परिपाक नहीं हुआ है। कवि का मूल लक्ष्य केवल मेघदूत की समस्यापूर्ति ही रहा है और इसमें कवि को पूर्ण सफलता भी मिली है, लेकिन स्थान २ पर काव्य में दुरुहता और नीरसता आ गई है। पाश्र्वनाथ और कमठ की विभिन्न ऊर्मों की कथाओं को एक साथ लेकर लिखे जाने से

कथानक में वह सरलता और स्वाभाविकता नहीं, जैसी कि किसी खण्डकाव्य में होनी चाहिए। मार्ग-वर्णन में काव्य मेघदूत का पूर्ण अनुकरण करता है। इसके बाद मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा की प्रियदायस्था भी मेघदूत जैसी ही वर्णित की गई है। फिर जिस स्थान से मेघदूत में सन्देश कथन प्रारम्भ होता है वहां से मेघदूत और इस काव्य में कोई समानता नहीं दिखलाई पड़ती है। पार्श्वभूयुक्त काव्य में सन्देश कथन जैसी कोई चीज ही नहीं है। कमठ मरुभूति की धीरता, सौजन्य और सहिष्णुता से प्रभावित हो चैरभाव को छोड़कर उसकी शरण में चला जाता है और अपने अपराधों के लिए पश्चात्तापपूर्ण क्षमायाचना करता है तथा सम्प्राप्त की भिक्षा मांगता है। उसके नेत्रों से अग्रिम अश्रुधारा बहने लगती है। अन्त में और भी तापस भक्ति भावना के साथ पार्श्वनाथ की शरण में आते हुए बतलाए गए हैं। इस तरह काव्य के अन्त में पार्श्वनाथजी की महिमा बतलाकर कवि ने काव्य को भक्तिपरक अवश्य बना दिया है।

यों तो काव्य में जैन धर्म का कहीं पर भी कोई विशेष सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया गया है लेकिन कहीं कहीं कवि ने जिनालयों तथा अर्हत् का अवश्य उल्लेख किया है। कैलास पर्वत पर भी जैन मन्दिर के होने का कवि उल्लेख करता है। मेघदूत में उज्जयिनी के पास महाकाल का मन्दिर बतलाया गया है, लेकिन इस काव्य में महाकाल नामक किसी अग्रह को लेकर यहां पर जैन मुनियों तथा जैन मन्दिरों की स्थिति बतलाई गई है और मेघ को यथामय जैन मन्दिरों में पूजा करने का आदेश दिया गया है। काव्य के अन्त में तो भी पार्श्वनाथजी की महिमा वर्णित की ही गई है। इसके अतिरिक्त काव्य में जैन धर्म का और अधिक कुछ भी प्रभाव नहीं है।

काव्य में कहीं कहीं पर बड़ी सुन्दर सूक्तिया भी पाई जाती हैं -

( I ) दातादम्यन्नं खलु सुहृत् देहिना श्लाघ्यमस्ति ॥१॥३८॥

( II ) पापापाये प्रथममुदित कारण भक्तिरेष ॥२॥६५॥

( III ) रम्यस्थानं त्यजति न मनो दुर्विधान प्रतीदि ॥१॥७५॥

समस्त काव्य के अनुशीलन करने के बाद यह निष्पन्न रूप से कहा जा सकता है कि समस्या पूर्ति की दृष्टि से यह काव्य अपने ढंग का अद्वितीय है। कहीं कहीं कालिदास के मूलभाषों को कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से पल्लवित किया है और

कहीं ० कालिदास के भाव को प्रसंगान्तर में कवि ने बड़ी सूक्ष्मता से सन्निविष्ट करने की चेष्टा की है। मेघदूत को समस्या मानकर लिखे गए काव्यों में यह काव्य सर्व प्रथम है। जैन कवियों ने आगे चलकर इसी काव्य से इस क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्राप्त की है। काव्य में विभिन्न नदी, शैल, नगरी और ऋतुओं के सरस वर्णन से लेखक की भावुकता और कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है। जैन धर्म के आचार्य होते हुए भी लेखक का ऐसी सरस रचना लिख सकना वस्तुतः उनकी विद्वत्ता और सहृदयता सिद्ध करता है। साथ में भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र को गुम्फित कर देने से काव्य की धार्मिक दृष्टि से भी उपादेयता बढ़ गई है। संस्कृत साहित्य में अद्वितीय काव्य रत्न होने के साथ साथ जैन साहित्य में भी इस काव्य का विशिष्ट स्थान है।

### विक्रम कवि का नेमिदूत ( वि० चतुर्दश शतक )

नेमिदूत काव्य किसी विक्रम कवि का लिखा हुआ है। यह कवि कहा का रहने वाला था, इसका जन्म कब हुआ और इस काव्य की रचना इसने कब और कहा की—इन प्रश्नों का उत्तर अभी तक नहीं मिल सका है। इस काव्य के निम्न लिखित श्लोक —

सदुभूतार्थप्रवरकविना कालिदासेन काव्या  
दन्त्य पाद सुपदरचितान्मेघदूताद् गृहीत्वा ।  
श्रीभन्नेमेश्वरितविशद् सागण्म्यागजन्मा  
चक्रे काव्यं युधजनमन प्रीतये विज्रमात्य ॥१२६॥

॥ कवि ने अपने लिए सागण्म्यागजन्मा बताया है। मूल की कितनी ही प्रतियों में 'सागण' के स्थान पर 'आमण' मिलता है, किन्तु काव्य की पुरातन प्रतियों एवं टीका के आधार पर सागण ही ठीक प्रतीत होता है।

---

१ पाश्चात्त्युदय काव्यम्—श्री के० बी० पाठक द्वारा पूना तथा श्री योगिराज पण्डिताचार्य, अण्णबेलगोलनिवासी की टीका के साथ बम्बई से प्रकाशित।

द्वय कवि के सम्बन्ध में विद्वत्समाज में निम्नलिखित मत पाए जाते हैं —

१. जैन साहित्यमहारथी श्री मोहनलाल दमाईजी के 'जैन साहित्य' जो सन्निवृत्ति 'इतिहास' में एवं श्री छोटालालजी द्वारा लिखित 'जैन मेघदूत की प्रस्तावना' में इस कवि को सागण सुत मान कर गुर्जर महाकवि ऋषभ दाम का भ्राता माना गया है।
२. प० नाथूराम प्रेमी ने अपने "जैन साहित्य का इतिहास" में स्वभात के शिला लेख को देखकर तथा यश कीर्ति सहस्र कीर्ति की कीर्ति शायी और हुम्नद शायी को देखकर इस ग्रन्थकर्ता को १४ वीं शताब्दी का दिगम्बर माना है।
३. मुनि त्रिपायिजयजी ने नेमिदूत पद्यानुवाद की प्रस्तावना में इस कवि को १० वीं शताब्दी के कर्णवती के मन्त्री सागण का पुत्र बतलाया है।

इन मतों के अनिरिक्त श्री मुनि त्रिपायसागरजी ने स्व संपादित नेमिदूत की भूमिका में अपना मत सतोप में इस तरह दिया है। उन्हें मूल काव्य की ३ प्रतिया प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक तो वि० सं० १९१६ की लिखित है और दूसरी सोलहवीं स० की। एक प्रति अजमेर के ढड्डाजी के संग्रह में देखने को प्राप्त हुई है। यह वि० सं० १८७२ की लिखी हुई है। अत्र मूल काव्य की ३ प्रतिया १५ और १६ वीं शताब्दी की लिखित प्राप्त हुई हैं, तब काव्यकर्ता १७ वीं शताब्दी में कवि ऋषभ दाम या भाई कैसे हो सकता है।

दूसरे, चरतर गच्छालनार युग प्रधानाचार्य गुर्जरालि (जो कि १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की रचना है) में श्री जिनपति सुरिजी के शिष्य श्री जितेश्वर-सुरिजी ने स० १०८५ से स० १३३० तक लगभग १२-१५ शिष्य नीति नदी के दीक्षित किए थे। उनमें यश नीति का उल्लेख मिलता है। इसके अनिरिक्त इसी गुर्जरालि में एक बात और है कि वि० सं० १००६ में श्री जितेश्वर सुरिजी की अध्यक्षता में यात्रायें जो मध्य निशला था यह क्रमशः यात्रा करता हुआ समाप्त पहुँचा था। वहाँ मंदिर में पूजा माला की बोलिया हुई थीं, उनमें सागणसुत ने चमरधारक पद धारण किया था।

तीसरे, जिस हुम्नद शायी को देखकर कवि को दिगम्बर बतलाया गया है, यह हुम्नद शायी श्वेताम्बरों में ही होती है और आज भी मालव-शम्य प्रतापगढ़ में लगभग ७५ घर हुम्नद शायी के हैं, वे सब श्वेताम्बर ही हैं। पहिल भी १० वीं शताब्दी के युगप्रधान शदापद धारक श्री जिनदत्त सुरिजी मदारराज भी श्वेताम्बर हुम्नद शायी के ही थे।

चौथे, जो प्रथम प्रति स० १४७२ की उपलब्ध हुई है, केवल उसी में मन्त्री

विक्रम ऐसा शब्द मिलता है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि मन्त्रिदलीय होने के कारण मन्त्रि शब्द कवि का विशेषण रहा होगा।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि विक्रम कवि न तो ऋषभदास का भाई था, न हुम्नह क्षात्रीय दिगम्बर ही था और न उनके गुरु ही दिगम्बर थे, किन्तु यह खम्भात का रहने वाला तथा १४ वीं शताब्दी के ज्योतम्बर एवं दरतर गच्छाधीश श्री जिनेश्वर सूरि का श्रावक भक्त था।

इस कवि का केवल यही एक ग्रन्थ उपलब्ध है।

### नेमिदत्त की कथा

इस काव्य की कथायस्तु जैनियों के २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी के जीवन से सज्ज है। काव्य की कथा यस्तु को सम्यक् हृदयगम कराने के लिये कुछ पूर्ण कथा भी दी जा रही है। द्वारिका के यदुवशी राजा समुद्रविजय श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी के भाई थे। श्री नेमिनाथजी इन्हीं समुद्रविजय के ज्येष्ठ पुत्र थे। यह बचपन से ही विषय पराङ्मुख थे। अपने माता पिता तथा श्रीकृष्ण के आग्रह से यह मथुरा के राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती से विवाह करने को तैयार हो जाते हैं। द्वारिका से वरान मथुरा आती है। ज्योंही वरान महाराज उग्रसेन के महल के पास आती है, उसी समय भगवान् नेमिनाथ को पशुपत्तियों की करुणापूर्ण चीत्कार सुनाई देती है। पशु पक्षी मूक भाषा में भगवान् से अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं। सारथि के मुख से यह सुनकर कि उनके विवाह के उपलक्ष्य में दी जाने वाली रसोई में बनने वाले मांस के लिये इन पशु पक्षियों को बाँधे और पिंजरे में बन्द किया गया है और मरने का भय से यह सब चिल्ला रहे हैं, करुणानिधान भगवान् नेमिनाथ उन पशु पक्षियों को बन्धन मुक्त करने का सारथि को आदेश दे देते हैं। भगवान् की आज्ञा मानकर सारथि बाँधे और पिंजरे में धिरे हुये समस्त पशु पक्षियों को मुक्त कर देता है। सारथि ने इस कार्य से प्रसन्न होकर भगवान् नेमिनाथ मुकुट के सिंहा अपने समस्त आभूषण उसे पुरस्कार में द देते हैं और रथ को वापिस लौटाने की आज्ञा देते हैं। श्री नेमिनाथजी के रथ को वापिस लौटता देख उनके सार सपथी उनसे वापिस न लौटने तथा राजा उग्रसेन की कन्या से विवाह करने का अनुरोध करते हैं। श्री नेमिनाथजी उत्तर देते हैं आप मुझे जिन सम्बन्ध में जोड़ना चाहते हैं, मैं उससे अधिक परित्र और विशाल सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ। मैं किसी एक को ही अपना नहीं बनाना चाहता, न मध्य ही किसी एक का बंधना चाहता हूँ, किन्तु ससार के समस्त प्राणियों में प्रेम सम्बन्ध जोड़कर मैं सभी का बनना चाहता हूँ। तदनन्तर ग्यारह दो भगवान् आगे बढ़ जाते हैं और द्वारिका के लिए प्रस्थान कर देते हैं। द्वारिका पहुँच कर भगवान् नेमिनाथ समार से विरक्त हो नगरी छोड़कर रैवतक (गिरनार) पर्वत पर योगाभ्यास और तपश्चर्या में लग जाते हैं।

जय राजीमती को यह वृत्तान्त मालूम होता है, वह मूर्छित होकर गिर पड़ती है। वसियों द्वारा शीतोपचार किए जाने पर किसी तरह उसकी मूर्छा दूर होती है। श्री नेमिनाथजी द्वारा परित्याग कर दिए जाने पर भी उसका मन उनकी ओर ही लगा रहता है। वह उन्हें अपने मन में पति रूप से ही मानती है और एक वृद्ध ब्राह्मण को श्री नेमिनाथजी के पास उनकी कुशलवार्ता जानने के लिए भेजती है। तदनन्तर पिता की आज्ञा से वह स्वयं रैतक पर्वत पर एक सखी के साथ पहुँचती है। इस प्रकार गिरह विधुरा राजीमती के अपने प्रिय के साथ अनुनय प्रिय से काव्य का प्रारम्भ होता है।

अपनी दीन दशा का वर्णन करते हुए राजीमती श्री नेमिनाथजी से पर्वत शृंग छोड़कर द्वारिका चलने की प्रार्थना करती है। इस प्रसंग में विविध प्रकार से द्वारिका नगरी के सौंदर्य और वैभव का वर्णन किया गया है। राजीमती विविध उपायों से श्री नेमिनाथजी को सासारिक सुखों का उपभोग करने के लिए प्रेरित करती है। रैतक पर्वत से द्वारिका तक के मार्ग तथा मार्ग में पड़ने वाले विविध प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है। रैतक पर्वत से नीचे उतरने पर स्वर्ण रेखा नदी के दूबरे तट पर स्थित वामनपुरी, तदनन्तर समुद्र के किनारे किनारे बलते हुए भद्रा नामक नदी और फिर उसको पार कर पौर नामक एक नगर का उल्लेख किया गया है। इसके बाद गन्धमादन तथा वेणुल नाम के एक और पर्वत के घाट द्वारिका पहुँचने का श्रीनेमिनाथजी से अनुरोध किया गया है। इस प्रसंग में द्वारिका नगरी का विविध भाग भगिमाओं के साथ बड़ा ही सरस विव्र अंकित किया गया है। राजीमती के विविध प्रश्न से द्वारिका लौटने के आग्रह करने पर भी जय श्री नेमिनाथजी का हृदय दृवीभूत नहीं होता है, तब उसकी सखी राजीमती की प्रियदास्या का बड़ा ही कण्ठ वर्णन करती है और श्री नेमिनाथजी से द्वारिका लौट चलने की प्रार्थना करती है।

अन्त में श्री नेमिनाथजी राजीमती पर दयाभास दिखलाते हैं और धर्मापदेश द्वारा मोक्षमुक्त की प्राप्ति के लिए उसको योग की शिक्षा देकर अपनी सहचरी बना लेते हैं। सासारिक सुखों को त्यागकर राजीमती भी मोक्षपुरी के सतत आनन्द की श्री नेमिनाथजी के साथ उपभोग करने लगती है।

## काव्य समीक्षा

मेघदूत के पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर समस्यापूर्ति के रूप में यह काव्य लिखा गया है। सम्पूर्ण काव्य में १०६ श्लोक हैं। पृथ्वी भाग और उत्तर भाग जैसा काव्य में कोई विभाजन नहीं है। काव्य के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें श्री नेमिनाथजी को दूत बनाया गया होगा पर ऐसी बात नहीं है। यस्तुत समग्र काव्य राजीमती के विरह तथा विलाप के वर्णन से भरा हुआ है। अतः यदि इस

काव्य का नाम राजीमती विप्रलम्भ अथवा राजीमती विलाप रक्खा गया होता तो कुछ भी अनुचित न होता। मेघदूत के पद्यों के अंतिम चरणों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिगे जाने के कारण इस काव्य को भी दूत काव्य जैसा मानकर श्रीर श्री नमिनाथजी के चरित्र की प्रधानता होने के कारण इस काव्य का नाम नेमिदूत रखा दिया गया है।

मेघदूत में अपनी प्रियसी के त्रियोग में नायक की त्रिरहायस्था वर्णित की गई है। इसका विपरीत नेमिदूत में नायिका की त्रिरहायस्था का चित्रण पाया जाता है और सत्कार से त्रिस्त नायक को अपनी ओर अनुरक्त करने के लिये नायिका उससे अनुनयाननय करती है। काव्य में किसी को दूत बना कर नहीं भेजा गया है। स्वयं राजीमती अपने प्रिय के पास जाकर अनुनय प्रिय करती है। अन्त में उसकी सखी ही थी नमिनाथजी से राजीमती की मानसिक अवस्थाओं और त्रिरहवेदना का निवेदन करती है। इस प्रकार कवि ने राजीमती के शील और लज्जा की वंदे सुन्दर ढंग से रक्षा की है और राजीमती को एक पति परायणा साधरी भारतीय स्त्री के रूप में अंकित किया है। काव्य में विप्रलम्भ शृंगार और शान्तस का अपूर्ण सगम दिखलाया गया है काव्य का प्रारम्भ राजीमती के त्रिरह वर्णन से ही होता है। श्री नमिनाथजी के विग्रह में व्यथित राजीमती उनसे द्वारिका लौटने की प्रार्थना करते हुये कहती है -

सा त दूना मनसिजशरैपादपेश उभापे  
रक्षत्यात्त शरणगमसी हनियम्वति धर्म ।  
तन्मा स्वामिन्न भवदधीनासुमभ्यर्चये त्वा  
याञ्जामोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥६॥

तन्न प्राणान्न तन्न मतो जीवरक्षेन्न धर्मा  
यासार्थं य सुरविरचिता ता पुरीमेहि यस्या ॥७६॥

त्वा यावेऽहं न पथि भयता क्वापि कार्यो विलम्बो  
गन्तयात् सपदि नगरी स्था यत् सा त्वदम्भा ।  
मुक्तादाग सज्जनयना त्वद्वियोगार्तिदीना  
काश्येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्य ॥३१॥

अपनी प्रार्थना को और भी सजल बनाने के लिये राजीमती ने श्री नमिनाथजी की माता की दशा का वर्णन कर वही सुन्दर युक्ति प्रदान की है।

प्रार्थना के अन्त में राजीमती श्री नमिनाथजी से कहती है -

नत्वं पूर्वं पितृमुग्गगुरुन् तान्विसृज्याथ यन्धून्  
सोधं मा च ह्यमपि ततोऽलकुरूप्याद्रंविचत् ।

यन्ति श्रीक हरति न मनस्त्या पिना यादवेन्दो  
सूर्यापाये न चनु कमल पुष्पति स्वामित्याम् ॥८७॥

इस श्लोक में सीध के साथ अपनी करुण दशा की भी बड़े-गूढ़ ढंग से राजीमती ने व्यञ्जना की है।

राजीमती के अनुनय विनय करने पर भी जब श्री नेमिनाथजी उससे विरक्त हो गइते हैं, तब उसकी मन्त्री फिर उसकी विरह-वेदना और करुण-दशा का वर्णन करती है। राजीमती के विरह वर्णन में काव्य में ३३ छन्द (६०-१२१) लिखे गए हैं। क्या भार और क्या भाषा दोनों ही दृष्टि से यह पद्य बड़े सुन्दर हैं और राजीमती का करुण चित्र पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। सखी राजीमती का वर्णन करते हुए कहती है —

अस्वीकारात्सुमग भगवत् निवृत्तशोभा कियदुभि-  
मृद्विमलविग्रहशिशिना-वासरेर्दहमानाम् ।  
एतां शुष्यद्वृत्ताकमला दूरविघ्नस्तपाशाम्  
जाता मन्ये तुहिनमपिना पद्मिनीं वाऽन्य रूपाम् ॥६०॥

आकाङ्क्षया मृदुस्पर्शित्पद्मसीत्यानि सख्या  
पश्यासुष्या मुपमनुदित ग्लानमस्मेरमथि ।  
उपसापातु मुश्मिन् त कौरविया प्रियोगा  
विन्दोर्दन्य एवदनुसरणविलष्ट कान्तेरिभति ॥६१॥

प्रिय प्रियोग में राजीमती को समय काटना भी फटिन हो गया है। सखी कहती है —

या प्रागन्या क्षणमिव नवैर्गोतजातिविनोदं,  
रासीन् शय्या-तल प्रियलितै र्गल्लभांग विलम्ब ।  
रात्रि सगरसंगशतसंभा त्यरहते तत्तगात्री  
तामैरोष्णी विरहजनिनैरश्रुभिर्पापयन्ती ॥६७॥

प्रिय विरह विलस राजीमती ने अच्छी तरह मे सोती है और मैं उमे जागता हुआ दी कद सकता हूँ

अन्तमि नो मनसिंजशरै र्मौलिनाक्षी मुहूर्त  
करुणा सगामियमय दशाऽपीक्षमाणाऽसिर्दिना ।  
शुष्योत्सर्गं नय किञ्चलपद्मन्तरे शर्म लेभे  
साधेऽहं य स्थलकमलिनी न प्रयुज्य न सुता ॥६६॥



राजीमती स्वप्न में भी नेमिनाथ को देखती है, लेकिन दुर्भाग्य कि वार्तालाप करने की चेष्टा करते ही उसकी निद्रा भग हो जाती है —

रात्रौ निद्रा कथमपि चिरात् प्राप्य यावदुभयवन्तं  
लब्ध्वा स्वप्ने प्रणयवचनै किंचिदिच्छामि वक्तुम् ।  
तावत्तस्या भवति दुरितै प्राकृतै मंत्रिराम  
कूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगमं नो कृतान्त ॥११३॥

कामदेव के क्रुद्ध होने का राजीमती ने बड़ा ही उपयुक्त कारण दिया है । यह कहती है —

मन्नायेन ध्रुवमवजितो रूपलक्ष्म्या तपोभि-  
स्तदु वैराग्यामिषुभिरबला हन्त्यशक्तो मनोभू ।  
हग्न्या तपोधिति मम निशि अस्तरे चिन्तयन्त्या  
मुक्तास्यूलास्तकसिखयेष्वधुलेषा पतन्ति ॥११४॥

सन्देश के अन्त में राजीमती अपनी सखी के द्वारा श्री नेमिनाथ को कहलाती है —

सचिन्त्यैव हृदि मयि दया धारयन् तत्प्रसीद  
स्वामिन्निर्वापय वपुरिद स्वागसंगामुत्तेन ।  
यत्सन्तप्यानिशमतिताम प्राणलावण्यशेष  
गाढोष्माभि कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभि ॥११५॥

दुःख येनानवधि बुभुजे त्वद्वियोगादिदानीं  
सयोगासंऽनुभवतु सुखं तद्वपुर्मे चिराय ॥११७॥

राजीमती के सन्देश को सुनाने के बाद उसकी सखी अन्त में फिर कहती है —

तस्मादुवाला स्मरशरचयै दुःसहैर्जर्जरागीम्  
सम्माप्येना नय निजगृहान् सत्वरं यादवेन्द्र ।  
प्रीत्या चास्या मधुर वचनाऽश्वासनाभि वृषार्द्र  
प्रात कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथा ॥१२१॥

राजीमत्या सह नवग्रनस्येष वर्षासु भूयो  
मा भूदेव क्षणमपि न ते विद्युता विप्रयोग ॥१२३॥

इस प्रकार प्रारम्भ से अन्त तक काव्य में विप्रलम्भ शृंगार ही पाया जाता है । स्थान स्थान पर द्वारिका नगरी, उपवनो और क्रीडाशैलों का शृंगारमय ही वर्णन किया गया है, लेकिन काव्य के अन्त में शृंगार रस एकदम शान्त रस में बदल

जाता है । श्री नेमिनाथजी राजीमती को स्वीकार तो कर लेते हैं, सासारिक सुख भोग के लिए नहीं, प्रत्युत उसे भी मोक्ष मार्ग का अधिक बनाने के लिए—

तत्सख्योक्तं वचसि सदयस्ता सतीमेक चित्ता  
सरोध्येश स भवविरतो रम्यधर्मोपदेशे  
चक्रं योगान्निजसहचरिं मोक्षसीध्यासिद्धेति  
केवा न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥१२४॥

तामानन्द शिपपुरि परित्याज्य ससार-भाजा  
भोगानिष्ठानभिमतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥१२५॥

इस तरह शृंगार रस का शान्त रस में पर्यवसान कर कवि ने मानव व्यवहार में एक उदात्त आदर्श की प्रतिष्ठा की है ।

शान्त रस में पर्यवसान होने पर भी काव्य में शृंगाररसपूर्ण अनेक भावचित्र पाए जाते हैं । दैवतक पर्यंत से द्वारिका के निकट क्रीडाशील पर पहुचने के समय श्री नेमिनाथजी को देखकर यहाँ की सुन्दरियों की चेष्टाओं का बड़ा भावपूर्ण चित्र कवि ने अंकित किया है—

तस्मिन्नुद्यन्मनसिजरसा प्राशुशालारनाम  
ध्याजदायिष्कृत कुचयलीनाभिकाचीकलापा ।  
संधास्यन्ते त्ययि मृगदृशता विचित्रान् विलासान्  
स्त्रीणामार्घ्यं प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु ॥३०॥

द्वारिका नगरी का वैसा ही सरस और शृंगार रसयुक्त वर्णन किया गया है, जैसा कि मेघदूत में अलका नगरी का पाया जाता है । द्वारिका नगरी की रमणिया भी अलका की रमणियों की ही तरह बड़ी मुग्ध हैं । कवि कहता है—

रात्रौ यस्यामुपसपि भृश गात्रसंकोचमाजा  
रागेणाग्धे शयनभवनेपूलसहस्रियत्सु ।  
प्रेम्णा कान्तेरभिषुचयुगं हृष्यगन्धर्वधूना  
हंमूढाना भवति विफलं प्रेरितश्चूर्णमुष्टि ॥३१॥

द्वारिका नगरी में भी अलका नगरी की तरह रात्रि में रमणिया स्वच्छन्द अभिसार करती रहती हैं ।—

पणांकाशमावनिषु शिशिरे बु बुमाद्रे पदाके  
शीतोत्कण्ठादृगतिविगलिते वलिके केष्टपाशान् ।  
अष्टे धीनस्तनपरिसरद्रोघमाल्यैश्च यस्या  
नैषो मार्गे सविनुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥३२॥

समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते हुए भी कवि ने अपनी रचना में कहीं पर भी कृत्रिमता नहीं आने दी है। हर चतुर्थ पक्ति ऐसी ही प्रतीत होती है मानों पद्य का स्वाभाविक अंग हो। काव्य की भाषा प्रसाद-गुणयुक्त है और काव्य में सर्वत्र प्रसाद दीप्त पड़ता है। लम्बे २ क्लिष्ट समास बहुत कम काव्य में आए हैं। काव्य की शैली का निम्नांकित कुछ छन्दों से पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।-

श्री नेमिनाथजी को द्वारिका लौट चलने का परामर्श देती हुई राजीमती कहती है -

रम्या हर्म्ये क्व तव नगरी दुर्गमं क्व च आदि  
क्वैतत्काम्यं तव मृदु वपु क्व मन दुःखवर्मम् ।  
चित्तप्राप्ता हितमिति वचो मन्यसे चेन्ममाल  
किंचित्पश्चाद् मज लघुगतिर्भूय एवोत्तरण ॥१६॥

एक अन्य प्रसंग में द्वारिका नगरी का बड़ा ही आदर्श वर्णन किया गया है-

व्याधिदेहान्पृशति न भयाद् रक्षितुं शागपाणे  
मृत्यो र्धासां शयलपथगा कुत्रचिद् वामभाजाम् ।  
काम्पकाङ्क्षारससुखशुभा यदुनामर्षिकामान्  
चित्तेषाना न च खलु वयो योऽनवादन्यदस्ति ॥३०॥

तु मे शृंग परिहर निरेरेहि यद्विपुली हंग  
रत्नश्रेणीरचितमनद्योतिताशातरालाम् ।  
शोभासाम्य कलयति प्रनागं नालका नाथ यस्या  
वाङ्मोघान स्थित हर-शिरश्चन्द्रिका धीतहर्म्या ॥३॥

समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते हुए भी कवि की कल्पना कहीं २ मेघदूत से टकरा लेती है। मेघदूत में वक्ष अपनी प्रेयसी के लिये कहता है-

श्यामास्यगं वकित-हरिणी प्रेक्षणे दृष्टि पालं  
वक्त्र-च्छाया शशिनि शिखिना वदं भारेपु केशान् ॥१४२॥ इत्यादि

इसी प्रकार नेमिदूत में भी श्री नेमिनाथजी के सम्यन्ध में कहा गया है -

दुर्लभत्व शिररिणि पयोधो च गाम्भीर्यमुज्यां ।  
स्थैर्यं तेज शिरिणि मद्ने रूप मीन्द्यलक्ष्मीम् ।  
वुदे हान्नि नृधर कल्योमीति मृन्द गुणानां  
हन्तेकस्य क्यचिदपि न ते मीनं सादृश्यमस्ति ॥१११॥

जिस प्रकार मेघदूत का यत्न हिमालय से आती हुई वायु के सस्पर्श में प्रेयसी के स्पर्श सुख का अनुभव करता है, उसी प्रकार काम-सतत राजीमती भी श्री नेमिपत्तजी के पास से आने वाली वायु के सस्पर्श से आनन्द का अनुभव करती है -

अस्मिन्नेते शिखरिणि मया यादवेशान्तिकाते  
जीमूताम्भ कण्वयमुच सचरन्त पुरस्तत् ।  
संसेज्यन्ते त्रिपमविशिखोत्तप्तया नीपगता  
पृथ स्पृष्टं यदि किल भवेद्गमेमिस्तवेति ॥११५॥

मेघदूत में उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुये शिखा नदी से उठते हुये पवन के सम्यन्ध में कालिदास ने लिखा है -

दीर्घीकुर्ण्णपटु मदकल कूजित सारसाना  
प्रत्यूषेपु स्फुटितकमलामोदमेघी कपाय ॥११६॥ इत्यादि

नेमिदूत में कवि ने अपनी कल्पना को और भी प्रौढ़ता प्रदान की है। यहाँ पर शिखा पवन को प्रियतम के रूप में और भी अधिक साकार रूप दे दिया गया है:-

यस्या सान्द्रानुपवनलतावेश्मसु स्वेद विन्दून्  
मुष्णन्नगासुरतज्जितानुज्जपन्तां त्रिगाह्य ।  
कुर्मन्तीरे त्रिगलितपटां सेषते धारनारी  
शिखायात प्रियतम इय प्रार्थनाच्चाटुकारी ॥११७॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि ने समस्यापूर्ति के साथ साथ अपनी रचना में मूल भावों की भी रक्षा की है। मेघदूत के पदों की चतुर्थ पंक्तिया प्रसंगान्तर में वदाचित् ही प्रयुक्त की गई हैं। क्या भाव और क्या भाषा, दोनों ही दृष्टि से काव्य सरस और सुन्दर है। अन्त में शान्त रस की प्रधानता होते हुये भी काव्य को विरह काव्य ही कहा जायगा। मेघदूत की समस्यापूर्ति के रूप में लिखे गये अन्य काव्यों की अपेक्षा यह काव्य कहीं अधिक प्रसाद गुण-युक्त है और लेखक की सहृदयता का परिचय देता है।

## मेरुतुंग का जैन मेघदूत ( वि० पचदश शतक )

जैन समाज में मेरुतुंग नाम के दो तीन विद्वान् हुये हैं। उनमें ग्रन्थकार के रूप में केवल दो ही प्रसिद्ध हैं। एक मेरुतुंग तो चन्द्रप्रभसूरिका शिष्य है और विक्रमीय चतुर्दश शतक उसकी समयमर्यादा है। इस विद्वान् ने महापुरुष-चरित्र अध्याय उपदेशशत, प्रबन्ध चिन्तामणि, विचार श्रेणी, धर्मापदेश, घेरावली, पद् दर्शन विचार आदि ग्रन्थ लिखे हैं। जैन साहित्य में यह विद्वान् आचार्य मेरुतुंग के नाम से विख्यात है। द्वितीय मेरुतुंग अञ्चल-गच्छीय महेन्द्र प्रभसूरी का शिष्य है। यह द्वितीय मेरुतुंग ही जैन मेघदूत काव्य का रचयिता है और विक्रमीय पचदश शतक इसका कार्यकाल है।

मारवाड़ में स्थित नाली ग्राम में पोरवाल वंशीय बहोरा वैरसिंह का एक प्रसिद्ध परिवार था। बहोरा वैरसिंह की पत्नी का नाम नालदेवी था। उसके गर्भ से वि० स० १४६३ में हमारे काव्यकार का जन्म हुआ। बचपन का इसका नाम 'वस्तिक', 'वस्तो' या 'वस्तपाल' था। अञ्चल-गच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्री महेन्द्रप्रभसूरी विहार करते करते इस ग्राम में आये। बहोरा वस्तिक ने उनसे दीक्षा ली। उस समय इस बालक का नाम मेरुतुंग रच दिया गया। शारदावस्था के साथ ब्रह्मचर्य का भी संयोग होने से इस बालक का विद्याध्ययन सुचारु रूप से चलता रहा। अपने समय की शिक्षा प्रणाली के अनुसार इस शिष्य ने संस्कृत, प्राकृत तथा इनसे सम्बन्ध विविध विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया। कालक्रम से उसके चरित्र, ज्ञान और क्रियाओं का अथ सम्पूर्ण विकास हो चुका, तब उसके गुरु ने उसे वि० स० १४०६ में पाटन में सूरिपद प्रदान किया। इसके बाद वि० स० १४४५ फाल्गुन वदि एकादशी को उसे गच्छ नायक की पदवी दी गई। गच्छ और अपने सघ पर उसका अच्छा प्रभाव था। यह बात उसके बाद की कुछ टिप्पणियों से भी ज्ञात होती है। वि० स० १४५१ में मार्गशीर्ष सुदि पूर्णिमा के दिन पाटन में हम विद्वान् का स्वर्गवास हो गया। अपने १८ वर्ष के दीर्घ जीवन काल में यह विद्वान् सर्वदा अपने और समाज के विकास में लगा रहा। अञ्चल-गच्छ की पट्टावली तथा उसके शास इत्यादि से लेखक के समय के सम्बन्ध में उपरिर्तन निर्णय हो सका है।

इस कवि ने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है —

- १ जन मेघदूत
- २ सप्ततिका भाष्य टीका
- ३ लघुशतपदी
- ४ धातुपागण
- ५ पद्दर्शन समुच्चय
- ६ बाल बोध-व्याकरण

- ७ इस व्याकरण की वृत्ति तथा  
= सूरिमप्रकटपसारोद्धार इत्यादि ।

लेखक ने प्रायः, प्रत्येक ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति तो दी है परन्तु वह रचना काल का शिघररा नहीं है । इसलिये प्रत्येक ग्रन्थ का समय निर्णय करना कष्ट साध्य है । केवल सप्ततिका भाष्य टीका की प्रशस्ति में लेखक ने ग्रन्थ रचना का समय दिया है -

हस्य प्रशस्यस्मरणार्थमेतैर्विनेयवात्सल्यरसाभ्युपेतै ।  
व्यतानि नन्दाभ्युधि वेद सोम सयत्सरे (१४४६) सप्ततिभाष्य टीका ॥

इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों के रचनाकाल का निर्णय करना समझ नहीं है । लेखक ने इस मेघदूत के अन्त में ग्रन्थकार के रूप से अपना नाम नहीं दिया है, लेकिन सप्ततिकाभाष्य की वृत्ति की प्रशस्ति में अपने रचित ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए कवि ने मेघदूत का भी नाम लिया है -

काव्य धी मेघदूताख्यं पद्दर्शन समुच्चयं ।  
वृत्तं बालानयोधाख्या धातुपारायणं तथा ॥  
एवमादि-महामग्न्यनिर्माण-परायणा ।  
चतुर्गणा विर चेतश्चमकाराय येऽग्नहम् ॥

इसके अतिरिक्त इस मेघदूत के टीकाकार धी शील रत्न-सुरि ने अपनी टीका की भूमिका में ग्रन्थकार के रूप से धी मेरुगुंग का स्पष्ट उल्लेख किया है । टीकाकार ने लिखा है -

माधुर्येण मनोहरा परिणतो सौख्यैकसंपादिका  
काम्या कटपतरो फलाश्लिरिष स्फारा यदीया मुदम् ।  
वाग्दत्त विगुधमजाय स नयं धीमेरुदूतं महा  
काव्यं धी गुरुमेरुगुंगण भृन्चूडामणि निममे ॥

प्रबन्ध चिन्तामणि का रचयिता मेरुगुंग इस मेघदूत का रचयिता से भिन्न है और प्रथम मेरुगुंग उसे ही समझा जाना चाहिये । महापुरुषचरित इत्यादि ग्रन्थों का लेखक भी यही है ।

काव्य की कथा:—

पटुबुल शिरोमणि प्रभु नेमिनाथजी बाल्यावस्था से ही इन्द्रिय सुखों से उदासीन रहते थे । पटुबुली जनों के आग्रह से वे विवाह करने के लिये उद्यत हो जाते हैं । विवाह के अथवा पर सदस्यों पशुओं के बलि किये जान का समाचार पाकर

घरबार, सहोदर और पत्नी आदि को त्याग कर मोक्षप्राप्ति के निमित्त तपस्या करने के लिये वे रैवतक ( गिरनार ) पर्वत पर चले जाते हैं । अपने पति का सर्पदा के लिये गृह छोड़कर चले जाने का वज्रपात सम समाचार सुन कर प्रभुनेमिनाथजी की पत्नी राजीमती एकदम मूर्च्छित हो जाती है । उसकी सखिया चन्दन और भीगे वस्त्र इत्यादि के शीतोपचार से जब उसे होश में ले आती हैं तब वह महीन मेघों को देख-कर एकदम पुकार उठती है—

एक तावद्विरद्विहृदयद्रोहदृग्मेरकालो  
हैतीथीक प्रकृतिगहनो योवनारम्भ एष ।  
तार्तीयिक हृदयदयित सैव भोगाह्वराक्षी-  
सुय न्याप्यान्न चलति पथो मानसं भायि हा किम् ॥४॥

इस प्रकार प्रिय विषयों में व्यथित राजीमती मेघ के द्वारा प्राणनाथ के पास अपना सन्देश पहुँचाने के विचार से सर्वप्रथम उसका स्वागत सत्कार करती है और फिर उसे अपने पति का परिचय देती है । इस प्रसंग में श्री नेमिनाथजी की बाल क्रीडा, उनके पराक्रम पूर्ण चरित, विविध वसन्त क्रीडाएँ, विराह महोत्सव और गृह त्याग का वर्णन किया गया है । तदनन्तर राजीमती अपनी विरहावस्था का वर्णन करती है और फिर प्राणनाथ के लिये दिये जाने वाले अपने सन्देश को मेघ के लिये सुनाती है । मेघ द्वारा प्रभु नेमिनाथजी को सुनाये जाने वाले राजीमती का सन्देश को सुनकर उसकी सखिया उससे कहती हैं—हे सखि, तू कहा और प्रभु नेमिनाथ कहा ? मेघ कहा और तेरा यह सन्देश कहा ? तेरा और उनका सम्बन्ध और असम्बन्ध है । तू चाहे जितना प्रयत्न करे, वीतरागी प्रभु और तुझ से अनुराग नहीं कर सकते । तू उनकी आशा छोड़ दे । इस महामोह का प्रति योध रुपी शस्त्र से नाश कर । राजीमती सखियों के वचनों को सुनकर शोक का परिस्थान कर देती है और वीर राग प्रभु नेमिनाथजी के पास आकर प्रव्रत ग्रहण कर लेती है । स्वामी के ध्यान से उसे तन्मयत्व ( न्यामिमयत्व ) प्राप्त हो जाता है । श्री नेमिनाथजी के ही समान वह भी रागद्वेष से रहित होकर मुक्ति पद प्राप्त करती है ।

यस यहाँ पर ही काव्य समाप्त हो जाता है ।

## काव्य समीक्षा

कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर लिखे जाने पर भी यह काव्य कालिदास के मेघदूत से सर्वथा भिन्न है । जैनपरम्परा में उल्लिखित अन्य दूत-काव्यों की तरह इसमें समस्यापूर्ति भी नहीं है । हा, मन्दायान्ता छन्द अक्षर अपनाया गया है । काव्य ( सम्पूर्ण ) चार सर्गों में विभाजित किया गया है और कुल १६६ श्लोक इस काव्य में हैं । काव्य की नायिका राजीमती अपने पति के पास मेघ को दूत बनाकर भेजती है । इसलिये इस काव्य का नाम मेघदूत है और जैनियों के २० वें तीर्थंकर

श्री नेमिनाथ के जीवन चरित पर आधारित होने तथा एक जैन विद्वान की कृति होने के कारण इसे जैन मेघदूत कहा जाता है । लेकिन भाषा, शैली, विचार तारतम्य और रस की दृष्टि से यह काव्य एक स्वतन्त्र रचना है ।

यत्रि का भाषा पर पर्याप्त अधिकार है, लेकिन जानबूझ कर काव्य को जटिल बनाया गया है । एक पद्य में एक साथ चार चार या पांच पांच अलंकार भी पाये जाते हैं । देखिये, निम्नलिखित श्लोक में कामदेव की युद्ध-सज्जता का वर्णन करते हुये कवि क्या कहता है—

यानस्पत्या कलकिशलयैः कोशिकाभिः प्रयासैः  
तस्या राजन्निज तनुभृतो रागलक्ष्मीनियामाः ।  
उद्यन्मोह प्रसचरजसा चाम्बर पूर्यन्तोऽ  
भीकामीष्टा मलयमरुत कामवादा प्रसङ्ग ॥२॥२॥

सुन्दर पत्रों और नज़ीन पल्लवों द्वारा कामदेव की राग रूपी लक्ष्मी के साक्षात् नियास स्थान की तरह वृक्ष शोभायमान थे । मन में राग उत्पन्न करने वाले पुष्पों की रज से आकाश को भरती हुई, कामियों के लिये प्रिय और स्वेच्छा से प्रेरित मलयचल की हवायें चल रही थीं ।

इस श्लोक के पूर्वार्ध में अपह्नुति और रूपक अलंकार हैं । जिस तरह किसी और राजा की सेवा में लक्ष्मी-युक्त नियास होते हैं, उसी तरह कामदेव की सेना में भी राग रूपी लक्ष्मी से युक्त नियास बताये गये हैं । इस तरह रूपक और साथ में अपह्नुति है । उत्तरार्ध में उन्मेष्टा तो है ही । साथ में 'कामवादा' में वाद शब्द अश्रु का पर्यायवाची है । अश्रु के सम्यन्ध में 'उद्यन्मोह प्रसचरजसा' का अर्थ है—अज्ञान को प्रयत्न से उत्पन्न करने वाली धूल के द्वारा । इसी तरह 'अभीकामीष्टा' में भीश्लेष है । मलयमरुत के सम्यन्ध में अभीक शब्द का अर्थ है कामी पुरुष और अश्रु के प्रसंग में अभीक शब्द का अर्थ है—अमय । निर्मय लोग ही घोड़ों पर चढ़ सकते हैं । इस तरह इस पद्य में चार अलंकारों का प्रयोग है । यह तो केवल एक उदाहरण है । प्रायः काव्य का प्रत्येक पद दिलष्ट है और क्लिष्ट कल्पना से भरा हुआ है । काव्य प्रशश में—

श्रुतिमात्रेण शब्दानां येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।  
साधारणं समप्राणा स प्रसादो गुणः स्मृतः ॥

इस रूप से निर्दिष्ट प्रसाद-गुण तो इस काव्य में बहुत ही कम है ।

कालिदास के मेघदूत की तरह इसमें भी मेघ को दूत बनाते समय उसकी चुरल-धार्ता पृथ्वी गई है, उसका स्वागत किया गया है और उसका चरित्र की प्रशंसा की गई है । फिर नेमिनाथ के चरित्र का वर्णन किया गया है । लेकिन मार्ग



वर्णन मिलकुल नहीं है। अतः भौगोलिक ज्ञान की कोई बात इस काव्य में देखने में नहीं आती है।

काव्य का प्रारम्भ तो विप्रलम्भ शृंगार से ही है। अपने प्रिय के वियोग में राजीमती अत्यन्त व्याकुल है और मेघ को देखकर सहसा उसका हृदय और भी विचलित हो उठता है। यह कहती है—

हेतो कस्मादहिरिज तदाऽऽसञ्जिनीमप्यमु ख  
न्मा निर्मोक्यचमिष लघु ऽप्यसौ तन्न जाने ।  
यद्वा दैवे दधति विमुखीभावमातोऽप्यमित्रे  
सर्वस्य स्यात्किमु नियमने मातृजया न कील ॥७॥

तत्तारमेव स्फुटति हि हिहक् प्रेयसो हृन्ममैत  
सत्कारणायैवमुपतद् प्रेयसाम्यन्दमैतम् ॥८॥

अस्मासार पुरु विसृजनी वारि कादम्बिनीध-  
रीना दुःखादथ द्रुमुच्चमुग्धयाधेत्युवाच ॥९॥

नेमिनाथ क खरित्र वर्णन के बाद अन्त में राजीमती फिर अपनी दीनारस्था का वर्णन करती हुई कहती है—

प्रग्निर्दग्ध दिनदिनवस्तीप्रवर्धेजशुष्म-  
प्रक्ष्यासीक्ष्ये अंगदिनजगज्जीवनापानपीनम् ।  
सम्प्रत्युष्णोच्छ्वसितवशतो वाष्पधूमयमान  
स्फोटं स्फोटं हृदयमिदं चूर्णस्फुरदीपते मम ॥१०॥७॥

कोकी शोकाह्वसतिविगमे वासरान्ते चकोरी  
शीतोष्णतुं प्रशमसमये मुच्यते मीलकण्ठी ।  
त्यक्ता पत्या तरुणिममरे कचुकश्चक्रिणे वा  
ऽमत्र गाराहद इव शुचामामर्षं त्वामर्षं मी ॥११॥८॥

फिर अन्त में श्री नेमिनाथ के प्रति अपना संदेश बताते हुये यह कहती है—

हे नाथ ! विवाह के अरसर पर अत्यन्त शान्त, ( शीतल ) नवीन शृंगार ( माधुर्य ) युक्त तथा उत्कृष्ट प्रेम ( घृत ) से, पूर्ण मुक्त को आपने झेरेंपी की तरह अपने हाथ से हुया तक नहीं। आज मैं कामानल से अत्यन्त तप्त हूँ। किसी और से मेरा सम्पर्क भी नहीं हुआ। आप मुझे स्वीकार क्यों नहीं कर लेते ?

हे नाथ ! यदि आपको मुनि बनकर मुझे छोड़ना ही था, तो प्रथम मुझे स्वीकार

ही क्यों किया। आप पशु पक्षियों पर तो दया करते हो, लेकिन अपने इस भक्त को अपनी वाणी नक से सतुष्ट नहीं करते ?

हे नाथ ! अपने सप्रधियों के आप्रह से प्रथम तो आपने विवाह म्यीकार किया। फिर अपने प्रथमुर के द्वार तक से लौट गये। इस तरह तो चार वर्ष के पच्चे तक को धोना नहीं दिया जाता है।

हे नाथ ! यदि बाल-कीड़ाये तथा अन्य पराक्रम स्त्रीलाये आपने केवल अपने शूराओं के मन को प्रसन्न करने के लिये ही कीं, तो मेरी-प्रसन्नता के लिये आप विवाह क्यों नहीं कर लेते। फिर वृद्धावस्था के निकट आने पर तपस्या कर लेना।

हे नाथ ! यह कामदेव अपने विषम वाणों से मुझे बहुत सता रहा है। अपने तिरस्कार की ज्वाला मुझे व्याकुल कर रही है। अपनी इस अचेतनावस्था में यदि मैं किसी खार्द में छूट पड़ तो क्या होगा ? हे नाथ ! मुझ में किसी दोष का आरोप करके यदि मुझे छोड़ा होता तो उचित भी था। इस तरह तो आप पर एक निर्दोष स्त्री के परित्याग का कलक लगेगा। बिना किसी बढ़ाने क यम-राज भी प्राणियों को नहीं मारता है।

हे नाथ ! तुम्हारे वियोग में मुझे शीतल नदी अगारपरिखा की तरह, वैशमी वस्त्र मुषाग्नि की तरह, चन्द्रमा दायाग्नि की तरह, कमल वृश्चिक की तरह और सारे आमूयण विकटु की भीषधि की तरह अभिय लगते हैं। पुण्य, ताम्बूल और मधुर भोजन विष के समान लगता है।

हे नाथ ! मुझे तुमने तरह तरह की आशायें दीं लेकिन प्रव्रज्या व बढ़ाने तुमने मेरा परित्याग कर दिया। फिर भी प्रव्रज्या के बाद अमृत ( मोक्ष ) को प्राप्त करने वाल ! तुमको मेरा नमस्कार है।

उपर्युक्त संदेश में कवि ने वाञ्छीप्रती के विरह की वहे अन्धे दग से व्यञ्जना की है। इसके अतिरिक्त वसन्त वर्णन इत्यादि व प्रसंग में श्रुगारमय वर्णन भी पा जाते हैं। भीष्मपु की रानियों की नेमिनाथ के साथ विविध कीड़ाओं का वर्णन यह सरस दग से किया गया है। यथा —

अन्या लोकोत्तर ! तनुमता गगपाशेन बद्धो  
मोक्ष गासे कथमिति मित सस्मिन् मायमाण्डा ।  
व्यक्त रक्तोत्पल विरचितेन दाग्ना वट्टीर  
काञ्चीव्याजप्रवृत्तिरिय तं चेननेश वन्द्ये ॥२॥१॥

कान्तिद्वामा अवदं विदध वन्दनस्यन्दसिक्तं  
पतिव्यम्नै सरसकुमुमे दंगमुण्यन्य वत्स ॥२॥२॥

पूरं पूर सुरभि सलिलै स्वर्णं शृ गणि रगात् ।  
सारगाद्य स्मितकृतममु सर्वतोऽप्यभ्यर्पिचन् ।  
धारा धाराधर ! सरलगास्ताश्च वारमपारा  
स्मारादोऽंगप्रसृमरशरासारसारा विरेजु ॥२॥४५॥

नित्योन्निद्र पुरपरिमल राजतेजोविराजि  
स्पष्टधीक वदनकमल देव ते सेवतेऽद् ।  
स्थानभ्रष्टं जिनमिति पदन्त्येव कर्णवितसी  
चक्रं काचिद्दशशतदल लीलयोरल्य तस्य ॥२॥४६॥

इस तरह कवि ने कृष्ण की पत्नियों की श्री नेमिनाथ के साथ सरस क्रीडाओं का वहाँ ललित वर्णन किया है। राजीमती के विरह वर्णन में उसकी सासारिक सुखों के प्रति उत्फट-उत्सुकता छिपी हुई है। कृष्ण पत्नियों की नेमिनाथ के साथ तरह तरह की विलासप्रय क्रीडाये भी शृ गार रस को ही पुष्ट करती हैं। पर अन्त में कवि ने काव्य का पर्यस्मान शान्त रस में किया है। राजीमती की विरहवेदना देख कर तथा उसके सन्देश कथन पर उसकी सखिया उससे कहती हैं—

कयासौ नेमिर्विषयविमुल्लस्तसुखेच्छु कय वा त्यम्  
कयासजोऽब्द, कय पटुयचनैर्वाचिकं वाचनीयम् ।  
किं कस्याग्रे कथयसि सखि ! ग्राह च्छामलेखा  
नो दोषस्ते प्रकृतिविकृते मोह एवात्र मूलम् ॥४॥४७॥

फिर वे महामोह को बोध रूपी शस्त्र से नष्ट करने का परामर्श देती हैं—

धीमान्नेमि र्व्यजयत महामोहमरल तदेव  
त्यातत्पत्नीं सखि ! मनुमहे बाधते यद्वरैर ।  
किं त्वेव ते यदुकुलमणैर्यौरपत्न्या विसोदु  
नैतम्याप्य तदिममधुना बोधशस्त्रेण हिन्दिध ॥४॥४८॥

इसके बाद धी नेमिनाथ की विशेषता बतलाते हुये व कहती हैं—

रागाम्भोधी ललित-सलना-चाट्ट वाग्मगिभिर्व  
संस्लान्वेत प्रतनुगारिमा स क्षमाभुदगणोऽन्य ।  
ओन्नत्यं तत्तदचलशुरुश्चैव माध्यस्थ्यमिधो  
धत्ते येन स्फुटयसुममु स्पष्टमप्यक्षमास्ता ॥४॥४९॥

अन्त में सखिया राजीमती से कहती हैं—

हे पुदिशालिनि ! जिस तरह कोई असली हीरा कृत्रिम रंगों से नहीं रंगा जा सकता है, उसी तरह श्री नेमिनाथजी को भी तुम अपने दाय भाव और मधुर वचन इत्यादि से अपने में अनुरक्त नहीं कर सकती।

सखियों के इन वचनों को सुनकर राजीमती का मन शान्त हो जाता है और वह अपने स्वामी की तरह ही रागद्वेष से रहित हो जाती है। अन्त में कुछ ही दिनों में मुक्तिपद प्राप्त कर शाश्वत सुख का उपभोग करती है। इस प्रकार अन्त में काव्य का शान्त रस में पर्यवसान हो जाता है।

विचार तारतम्य और रस की दृष्टि से काव्य बड़ी उच्च कोटि का है। कवि न पदे २ शिल्प वाक्य रचना और अलंकारों की भगमार से काव्य को दुरुद्ध अशुभ बना दिया है। अलंकारों के बाहुरस से भाषा और भाव दूरे हुए हैं। प्रसाद गुण की रचना में कमी है। लेखक ने अपने व्याकरण ज्ञान का परिचय देने की पदे २ प्रयत्न खेपे की है। पदलालित्य और प्रसाद गुण की दृष्टि से विक्रम ऋषि का नेमिकृत और चारित्रसुन्दरगणि का शीलदूत वहाँ उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। फिर भी जैन साहित्य में यह रचना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

### चारित्रसुन्दरगणि का शीलदूत ( वि० सं० १४-७ )

मेघदूत के पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर समस्यापूर्ति के रूप में यह काव्य लिखा गया है। श्री चारित्रसुन्दरगणि के सवध में शीलदूत के अन्त में आया हुआ -

द्रुगे रगेरतिवजतर स्तम्भतीर्धामिधाने  
धपे हपाञ्जलधिसुजगाम्मोधि चन्द्रप्रमाले ।  
चक्रं काव्य परमिह मया स्तम्भनेशप्रसादात्  
सदृभि शोध्य परहितपरैस्तदोपरसादात् ॥१३१॥

यह श्लोक सिद्ध करता है कि लेखक ने वि० सं० १४-७ में गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत स्तम्भन तीर्थ ( खभात ) में इस ग्रन्थ की रचना की। श्री चारित्रसुन्दरगणि सत्तपोगच्छ के नेता श्री रत्नमिह सूरि के शिष्य थे। लेखक ने स्पष्ट रूप से इस बात को माना है जैसा कि काव्य की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है -

सोऽयं श्रीमानवनिविदिनो रत्नसिंहारग्यसूरि  
जीयाद् नित्य नृपतिमदित सत्तपोगच्छनेता ॥१०६॥

१. श्री जैन आत्मानन्द समा भावनगर से प्रकाशित।

शिष्योऽमुं प्याऽपिलघुधमुदे दक्षमुष्यस्य सरे-  
श्चारिणश्चि धरणिऽलये सुन्दराख्याप्रसिद्ध ।  
चक्रं काव्य सुललितमहो शीलदूताभिधानम् ॥१३०॥

इस काव्य के अतिरिक्त लेखक ने श्री कुमारपाल महाकाव्य, श्री महीपालचरित और आचारोपदेश आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं ।

## काव्य की कथा

स्थूलभद्र नाम का एक जैन राजकुमार अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुन कर सगर से विरक्त हो जाता है और एक पर्वत पर अपना आश्रम बना कर रहने लगता है । एक बार श्री भद्र बाहु स्वामी से उसका साक्षात्कार होता है । वह उनसे जैन धर्म की दीक्षा लेता है तथा उनके आदेश के अनुसार अपनी नगरी में वापिस लौट आता है । वहा पर उसकी रानी कोशा उसको पुन गृहस्थाश्रम में आने के लिये प्रेरित करती है । इस प्रसंग में वह अपनी दीनावस्था का वर्णन करती है, सयम के अतिरिक्त दानधर्म का भी महत्त्व बताती है और स्थूलभद्र से कहती है कि यदि तुम्हें पुण्य ही प्राप्त करना है तो कूप, बापी और तडाग इत्यादि के निर्माण से भी प्राप्त कर सकते हो । तुम्हें अपने वन्धुओं की उन्नति करनी चाहिये । पुन गंगा में भी हुई अपनी जल क्रीडाओं का भी वह स्थूलभद्र को स्मरण कराती है । दयाभाव को मुख्य धर्म बताकर परिजनों पर दया करने का भी स्थूलभद्र को परामर्श देती है । नगर छोड़कर वन जाने की अपेक्षा प्रासाद के बाहर राज्य में ही स्थित क्रीडाशैल पर विहार कर पुन राजधानी लौट आने का वह अपने पति से अनुरोध करती है । इस प्रसंग में राजधानी का वषा उदात्त और शृंगारमय वर्णन करती है ।

अपनी रानी के अश्रुगद्गद वचनों को सुनकर स्थूलभद्र कहता है— हे भद्रे ! मैंने पवित्र जैनधर्म स्वीकार कर लिया है । गुरु का उपदेश मेरे मन से नहीं हट सकता । तत्त्वस्वरूप को जान जानकर मेरा मन विरक्त हो गया है । मुझे अब विषयों से कोई राग नहीं रहा है । चित्रशाला भी वन के तुर्य दीप पड़ती है । सुपावस्था में शरीर का जो सौन्दर्य रहता है, वह घृष्टावस्था में नहीं रहता । ससार को अनित्य मानकर मेरा मन धर्म में ही कल्याण समझता है । मैं अब स्त्री को विष तुर्य समझता हूँ । मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है, मोह मूर्च्छा भी समाप्त होगई है । मेरा चित्त निर्विकार है । मैं अपने शरीर को मृत्यु की बहिन घृष्टावस्था के द्वाग प्रस्त समझता हूँ ।

स्थूलभद्र के पैराग्य पूर्ण इन वचनों को सुनकर उसकी रानी की धनुरा नाम की सती फिर उससे कहती है —

हे सुमग ! क्या तुम्हारा हृदय यस्तुत इतना कठोर हो गया है । तनिक अपनी प्रेयसी के मुख की ओर तो देखो । इसने कल्पतुर्य इतने दिनों को रोते-रोत पिताया

है। प्रायः यह मूर्च्छित हो जाया करती है और प्रातः सायं तुम्हारे आने के सम्बन्ध में पूछती रहती है। ज्योतिषियों से तुम्हारे आने के सम्बन्ध में पूछ पूछ कर उगलियों पर दिन गिनती रही है। कभी घर में और कभी द्वार पर जाकर यह दिन काटती रही है। इसने अपना गृह तो अगार की तरह छोड़ दिया है। सारी रात इसे रोते २ बीतती है। आँखों से आसुओं को पोछकर अपने मन में यह संसार को शून्य ही समझती है। तुम्हारे गुणों को याद कर कर भूमि पर लोटती रहती है। यदि तुम मेरा कथन न मानोगे तो यह शीघ्र ही प्राण छोड़ देगी। त्रिभिध घातालाप में व्यग्र रहने के कारण दिन तो इसका किसी तरह कट जाता है लेकिन रात में तुम्हारा त्रियोग इसे बहुत दुःख देता है।

हे देव ! मेरी प्रार्थना पूर्ण करो। मेरी सखी के साथ त्रिभिध भोगों को भोगते हुए अपना मन प्रसन्न करो। घर आकर भी तुम कठोरता को क्यों धारण किए हुए हो ? अपनी प्रेयसी की ओर तनिक प्रेम से देखते भी नहीं, उसकी कुशल तक नहीं पूछते और घर के भीतर तक नहीं जाते। अपने प्रासादमें ही पराए आदमी की तरह रहते हो। हे देव ! कोशा रानी के तुम ही रक्षक हो, तुम उसके प्राण हो और उसके हृदय हो।

अपनी रानी की सखी के वचनों को सुनकर स्थूलभद्र फिर अपनी रानी से कहता है—आयें। तुम भी जैन धर्म स्वीकार कर लो। मेरे लिए छी और तुण दोनों समान हैं। मैं अब अपने गुरु के चरणों की वन्दना करने के लिए वापिस जाता हूँ। जैन धर्म स्वीकार कर लेने पर तुम्हारे लिए भी कोई दुःख न रहेगा। तुम्हारे त्रियोग में भी जैन धर्म की शिक्षाओं के कारण मेरा मन कभी दुःखी नहीं होता है। तुम भी जैन धर्म को स्वीकार कर लो, शील को अपनाओ, गुणी पुरुषों के लिए दान दो और तप द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करो।

पति के उपदेश को सुनकर कोशा की भोग वृत्ति नष्ट हो जाती है। यह पति से ऐसी द्वितीयवधि मागती है जिससे कि उसके मन की कामवासनायें नष्ट हो जायें और फिर भक्ति पुरुष अपने पति के चरणों में गिर पड़ती है। स्थूलभद्र उसे जैन धर्म की शिक्षा देता है और स्वयं अपने गुरु के चरणों में भज्जाजलि अर्पित करने के लिये वापिस लौट जाता है। इस बीच जैन धर्म का पालन करती हुई कोशा अपने घर पर ही रहती है। स्थूलभद्र भी शनैः शनैः सूर्योदय पद को प्राप्त कर लेता है और अपनी शीलशक्ति से सारे भू मण्डल में जैन धर्म का प्रसार करता है। अन्त में समग्र दुःखों से रहित होकर स्वर्ग चला जाता है। कोशा भी जैन धर्म को पालन करती हुई तथा शील की साधना करती हुई पति प्रेम के प्रभाव से स्वर्ग के लिए सिधार जाती है।

### समीक्षा

मेघदूत के पद्यों के चतुर्थ चरण को लेकर समस्यापूर्ति के रूप में यह काव्य लिखा गया है। काव्य में कुल १३१ श्लोक हैं तथा पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा

काव्य का कोई विभाजन भी नहीं किया गया है। काव्य का नायक स्थूलभद्र अपनी प्रेयसी कोश को अपने शील के प्रभाव से जैन धर्म में दीक्षित कर लेता है। इसी आधार पर इस काव्य का नाम शीलदूत रख दिया गया है। यों तो इसमें किसी ने भी किसी के पास किसी को दूत बना कर नहीं भेजा है। एक स्थल पर कोशाकी सखी चतुरा अग्रथ कोशा की तरफ से स्थूलभद्र को पुनः गृहस्थाश्रम में आने के लिये प्रेरित करती है। मेघदूत के प्रत्येक पद्य के अन्तिम चरण को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिखे जाने के कारण ही इस काव्य को भी दूत काव्य का रूप देकर तथा शील की प्रधानता होने से इसका नाम भी शीलदूत रख दिया गया है।

दूत काव्यों में प्रायः विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता होती है। नायक या नायिका अपनी विरहावस्था में अपनी प्रेयसी अथवा प्रिय के पास किसी को दूत बनाकर अपने सन्देश भेजता है और प्रसंगानुसार आश्रयस्थ तथा सात्व्यना देता है। शीलदूत में काव्य का नायक स्थूलभद्र जैन धर्म में दीक्षित होकर अपने गुरु के आदेश ने अपने नगर में वापिस आता है। वहाँ पर उसकी स्त्री कोशा उसे अपनी दीन द्वाँन अवस्था बताती है और पुनः गृहस्थाश्रम में आ जाने के लिये उससे अनुरोध करती है। यहाँ तक तो विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है लेकिन स्थूलभद्र के पञ्चर्त्तमों शान्तरस भरा हुआ है। वह वैराग्य की ओर मुका हुआ है तथा जैन धर्म में दीक्षित हो जाने की अपनी पत्नी को भी सम्मति देता है। उसकी पत्नी भी अन्त में जैन धर्म में दीक्षित हो जाती है और नसार के सुखों से विरक्त हो जाती है। अतः हम शीलदूत को शान्तरस प्रधान ही मानेंगे। कोशा स्वयं कहती है -

स्वामिन ! धर्माभूतरसमय देहि दिव्यौषध तद्  
येनाय मे तुदति न मनो मन्मथाख्यो विकार ॥११॥

इसमें उच्चर में स्थूलभद्र कहता है—

तामूचेऽसौ मनसि सतत मन्त्रमेव स्मरत्य  
नित्यमस्त्या विभुवनगुरो जंम सार्थं खृजं स्मृ ।  
शीलेनाऽल विमलममले जैनधर्मं भजेथा ॥१२॥

काव्य की भाषा उड़ी सरस तथा ललित है। लम्बे-समाम तो प्रायः नहीं दी हैं। कहीं कहीं पर यही सुन्दर उपेक्षाएँ प्रयोग में लाई गई हैं। स्थूलभद्र को घर पर रहने के लिये समझाती हुई कोशा कहती है—

सोलच्छायाशयिलसिते स्वामिषाकारयन्ती  
भृगालापेविव तत्र तप साम्प्रतं वाग्यन्ती ।  
वृत्तार्त्तं कुसुमपुलकं दर्शयन्तीव पश्य  
स्वर्णामाघं प्रणयचचनं विभ्रमो हि मियेषु ॥३०॥

' वृक्ष पति में विश्रमपती नायिका का व्यङ्ग्य कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से आरोपित किया है ।

गंगा की उठती हुई तरंगों को लेकर भी बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की गई है -

दीक्षामेवा तत्र सुरनदी धारयत्यूर्मिगर्भं  
पश्य स्वामिन् गृहपरिचिता प्रेयसीवैयमुच्चै ॥८४॥

अपने ऊपर दया भाग दिखलाने के लिये कोशा ने अपने पति से बड़ा ही उपयुक्त तर्क किया है -

धर्मोपाध्यामिह खलु दयामादिदेवो जगाद्  
प्रोज्झन्नेता निजपरिजने वेत्ति धम न सम्यक् ।  
स्वीदन्तं तन्निजजनममु पालय म्याजितै स्वै-  
रापन्नार्तिप्रशमनफला सपदो ह्युत्तमानाम् ॥८७॥

कवि ने राजधानी का भी बड़ा उदात्त और शृंगारमय वर्णन प्रस्तुत किया है -

गंगागोरा सितपरहृषाकारच्रीगस्तुरगा  
शृ गोक्षु गा ललितगतयो दानयन्तो गजेन्द्रा ।  
ललायत्योऽगिलयुवतयो यत्र वीरायतसा  
प्रत्यादिष्टाभरणवचयश्चन्द्रहासमणिकै ॥९०॥

स्नेहादन्यत् न भवति पर वन्धन यत्र किञ्चि-  
द्विचिन्ता काचिन्न भवति परा यत्र धर्म विहाय ।  
पश्चिद् यस्मिन् न भवति परो राजद्वंसात् सरोगो  
वित्तेशाना न च खलु धवो यौवनादन्य दस्ति ॥९१॥

इस श्लोक की तृतीय पंक्ति में 'सरोग' पद में बड़ी सूक्ष्मता से श्लेष का प्रयोग किया गया है ।

परम्पराभुक्त होत हुये भी स्त्रियों का बड़ा ही सरस चित्र काव्य में अंकित किया गया है -

वेलीदण्डो जयति भुजगान् मध्यदेशो मृगेन्द्रान्  
यासामास्य प्रिय । परिभयन्युच्चकेशचन्द्रधियम् ।  
सर्वं नून्यन्यनुलमसदृद् यत्र वारागनाम्ना  
स्तपद्गमर्मारण्यनिषु शनकं पुष्करेत्यादतेषु ॥९२॥

समस्यावृत्तिमय होत हुये भी काव्य में कवि ने अपनी मौलिक करपना शक्ति का



यथास्थान परिचय दिया है। मेघदूत में उत्तरभाग में कल्पवृक्ष के सम्बन्ध में कहा गया है—

वासश्चित्र मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्ष  
पुष्पोद्भेद सह किसलयैर्मूर्धणानां विकल्पान् ।  
लाक्षाराम चरणकमलन्यासयोग्य च यस्याम्  
एकं सूते सकलमवलामण्डन कल्पवृक्ष ॥१३॥

इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति को लेकर —

त्यागो यस्या भनिभिरनिश दीयमानोऽयिना द्रा-  
गेव' सूते सकलमवलामण्डन कल्पवृक्ष ॥८०॥

में त्याग के सम्बन्ध में किस प्रकार बिठा दिया गया है।

( अयलानाम् = नि स्थानाम्, प्रासमन्ताद् मण्डनम् अवलामण्डनम् )

मेघ के सम्बन्ध में कही हुई—

खद्योतालीविलसितनिभा विधुदुन्मेषदष्टिम् ॥२॥२०॥

को कोशा के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है—

मुग्धे स्निग्धा रचयसि मुग्धा मामुदीक्ष्य स्वकीया  
खद्योतालीविलसितनिभा विधुदुन्मेषदष्टिम् ॥८८॥

स्यूलभद्र को घर पर रहने के लिये प्रोत्साहित करती हुई कोशा कहती है—

ताते याते त्रिदशमयन युष्मदाशानिबद्धा  
ये जीवन्ति प्रिय परिहरस्तान् किं लज्जसे त्वम् ।  
आप्यामायात् त्वयि सति गते बान्धवास्तेऽस्तयिस्ता  
सपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्यापिदंसा दशार्णा ॥२५॥

अंतिम पंक्ति मेघदूत में दशार्ण नामक जनपद के लिये प्रयुक्त की गई है। यहा पर दशार्ण' को बान्धवों का विशेषण बनाकर 'हंस' शब्द प्राणों के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार अनेक स्थलों पर कवि ने अपनी काव्यशक्ति का परिचय दिया है।

ऋ गार रस के प्रसंग में कही गई उक्तियों को वदे सुन्दर ढंग से शान्तरस परक बनाया गया है। स्थूलभद्र अपने वैराग्य का वर्णन करते हुए कहता है—

नारी यस्मिन्नमृतसदृशी मे वभूनाथ थायद्  
रागग्रस्ते मनसि मदनज्वालविष्यस्तसजे ।  
ध्वस्ते रागे गुरुभिरभवत्<sup>१</sup> ह्येडयत् साऽप्यनिष्टा  
या तत्र स्याद् युवतिविषये स्मृतिराद्येव धातु ॥६॥

जैन धर्म में दीक्षित हो जाने का परामर्श देते हुए स्थूलभद्र अपनी प्रेयसी से कहता है—

तुर्य स्त्रैण लणमपि च मे शुद्धशीलप्रभावात्  
प्रागासीना भवति भवती येषु येषासनेषु ।  
नेहे प्रलयतहत रति स्तन्नि तत्रासितु तत्  
पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेद्गमेमिस्तमेति ॥१२॥

इस पद्य की अन्तिम पंक्ति यहाँ मेघदूत से नितान्त विपरीत अर्थ में प्रयुक्त की गई है। ऋ गाररस की उक्तियों को इस प्रकार कई स्थानों पर शान्तरस में प्रयुक्त किया गया है।

विरह वर्णन में भी कवि ने अनुभूति की तीव्रता और विरह व्याकुलता का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। कोशा की सखी चतुर्ग कोशा की विरहव्यथा का वर्णन करते हुए कहती है।

एषाऽनैवीत् सुमग । दिवसान् कटफुल्लानियन्त  
काल वाला बहुल सलिलं लोचनाय्या द्रवन्ती ।  
अस्याद् दुःस्या तव हि विरहे मामिषं पालय ती  
कच्चिद् भर्तुं स्मरसि रसिके त्वहि तम्य प्रियेति ॥८०॥

पृष्ट्वा पृष्ट्वा गणकनिचयं जीजित धारयन्ती  
नीत्या नीत्या कथमपि दिनान्यगुलीमिर्बिबन्ती ।  
गत्या गत्या पुनरपि पुनर्द्धारि तस्यो च गेहे  
प्रादेर्णे रमणविरहेष्वगनाना विनोदा ॥६४॥

विरहिणी कोशा की उत्सुकता, स्मृति और उत्कर्ष का कवि ने कैसे सजीव चित्रण यहाँ उपस्थित किया है।

काव्य के आद्योपान्त पढ़ने से प्रतीत होता है कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। कवि का यह कथन —

चक्रं काव्य सुललितमहो शीलदूताभिधानम्।

अक्षरशः सत्य है। इसमें कोई गवोंकि नहीं है। भेददूत की समस्या पूर्ति स्वरूप लिखे गए काव्यों में तथा जैन साहित्य में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। काव्य का नाम भी कवि ने बड़ा सुन्दर रखा है। शील जैसे भाव को दूत का रूप देकर कवि अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है<sup>१</sup>।

### वादिचन्द्रसूरि का पञ्चनदूत ( वि० सप्तदश शतक के लगभग )

यह पञ्चनदूत एक स्वतन्त्र रचना है। ग्रन्थकर्ता ने काव्य के अंतिम श्लोक में ही अपना परिचय दिया है। यह श्लोक इस प्रकार है —

पादौ नत्वा जगदुपपृत्तौ वर्धसामर्थ्यरन्तौ  
निजध्वान्तप्रसरतरणौ शान्तिनाथस्य भक्त्या ।  
श्रोतुं चैतस्सदसि गुणिना वायुदूताभिधानम्  
काव्यं चक्रं विगतमसन स्वरपङ्क्तिगोदिचन्द्र ॥१०१॥

इस श्लोक से यह सिद्ध होता है कि लेखक श्री शान्तिनाथजी का भक्त हैं। विगतमसन विशेषण यह भी बताता है कि लखन दिगम्बर जैन हैं। लखन के काल के सम्यन्ध में कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता। इस सम्प्रदाय काव्य व अति गति लेखक ने 'ज्ञानसूर्योदय' नामक एक नाटक भी लिखा है। इस नाटक में जैनियों व दिगम्बर सम्प्रदाय के धार्मिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। ओफ्रीट के कैंटालोगस लोगो प्रथम भाग, पृष्ठ २१० पर इस नाटक का उल्लेख किया गया है। ओफ्रीट महाशय इस नाटक को ई० १५८० का लिखा हुआ मानते हैं।

१ यशोविजय ग्रन्थमाला, बनारस, से प्रकाशित।

२ जैन ग्रन्थावली, बम्बई में प्रकाशित।

तदनुसार पवनदूत भी इसी के आसपास का लिया होना चाहिये। श्री एस० के० दे० के अनुसार ई० सत्रहवीं शताब्दी लेखक का कार्यकाल है।

## काव्य की कथा

विजयनरेश नामक उज्जयिनी का एक राजा था। उसकी रानी का नाम तारा था। राजा अपनी रानी तारा से बहुत प्रेम करता था। एक दिन अशनिवेग नामक एक विद्याधर तारा को हर कर ले गया। रानी के प्रियोग में राजा बड़ा दुःखी रहने लगा। अपनी विरहानुस्था में वह पवन को दूत बनाकर रानी के पास भेजने का प्रयत्न करता है। अपने विरह वर्णन के बाद वह पवन को प्रिया के पास पहुँचने का मार्ग बताता है। इस प्रसंग में विभिन्न धन, नदी, पर्वत, नगर और नगरों में रहने वाली स्त्रियों तथा उनकी विलासमय खेलाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। राजा के सन्देश को लेकर पवन अशनिवेग के नगर में पहुँचता है। फिर अशनिवेग के महल में जाकर तारा को उसके प्रिय का सन्देश सुनाता है। तदनन्तर अशनिवेग की सभा में जाकर उसे तारा के वापिस दे देने का परामर्श देता है। अशनिवेग विजय नरेश को युद्ध की धमकी देता है लेकिन उसकी माता उसे युद्ध न करने का परामर्श देती है और तारा को पवन के हाथ सौंप देती है। पवन तारा को लेकर वापिस लौट आता है और विजयनरेश को सौंप देता है।

## सारित्विक समीक्षा

समस्यापूर्तिमय न होते हुए भी यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखा गया है। इस काव्य की कथा कार्पनिक ही है। काव्य में कुल १०१ श्लोक हैं। सय मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखे गए हैं। भाषा सरस और प्रसाद गुण-युक्त है। क्लिष्ट और लम्बे समास प्रायः नहीं ही हैं। कथा का पूर्व भाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन नहीं है। कविता में सर्वत्र प्रवाह रिचमन है। विजय नरेश पवन से प्रार्थना करते हुए कहता है—

दुःखानि त्वं मम गत यद्योमित्र जानासि सम्य  
निष्पन्नप्राणं धिततनुमता घृद्धकादत्यभाय ।  
तस्मात्तेऽहं पदमुपगत सर्वलोकानपेक्ष  
हृत्प ॥ यदुभयति सद्यं तस्यपाऽपादनीयम् ॥२६॥

भाषा के प्रवाह और सारल्य का अनुमान कराने के लिए यह एक श्लोक ही पर्याप्त है।

१ दे० एस० एन० दास गुप्त का 'संस्कृत साहित्य का इतिहास,' क्लामिकल पोरिपेड, प्रथम भाग, पृष्ठ ३७३, पादटिप्पणी।

जिस तरह धोयि कनिने अपने पवनदूत में पवन को कुवलपयती का दूत बनाते हुए —

धीक्ष्यामस्यां विरहविधुरा रामचन्द्रस्य हेतो  
यात पार पवन सरिता पत्युरप्याजनेय  
तत्तातस्याप्रतिहवगतेर्यास्यतस्ते मदर्थं  
गौडी क्षोणी कति नु मलयदमाधराद् योजनानि ॥५॥

लिखा है, उसी तरह इस पवनदूत में भी पवन को दूत बनाते, समय कवि कहता है, —

पुत्र सीता दशमुखहता तावको दूरनाथा  
तत्सन्देशे हं पित कुशलं जीयामास वेगात् ।  
तत्किं चित्र स्त्रकमिह पदे सस्थितस्ता च पैत्र्ये  
प्राय काय लघुजनकृत नाभिके चित्रकारी ॥१३॥

विजयनरेश का अपनी रानी तारा के प्रति बड़ा गम्भीर और सच्चा प्रेम है। वह तारा को ससार की सब स्थितियों में धेष्ट समझता है। तारा के सम्बन्ध में विजय नरेश के बड़े उच्च भाव कवि ने दिखलाए हैं। राजा कहता है —

नार्यस्तारामनु च भुवने भाग्यसौभाग्यवत्यो  
नार्यस्तारामनु च भुवने शीलसम्पन्निगासा ।  
नार्यस्तारामनु च भुवने भर्तृ मन्त्र्येकरागा  
नार्यस्तारामनु च भुवने दीनदानप्रदानूय ॥३३॥

तारा के सौभाग्य, शील, पतिभक्ति और दयालुता आदि गुणों का विजयनरेश ने बड़ा ही उत्कृष्ट चित्र अंकित किया है।

आगे चलकर फिर भी विजयनरेश तारा के गुणों की प्रशंसा करता है —

सा मे सेना भद्रं विजये सारसर्वांगयुक्ता  
सा मे मित्र परमहित कृतसर्ग लोकेऽप्यनूतम् ।  
सन्तापाना सहजहरणात्सा च दृष्टि प्रवृत्ते  
सा मे भूषा तनुवचिक्का सा च केल्यास्तडाग ॥५०॥

सा निधेयि परपदगतो सार्गला दुःखरोधा  
त्सा मे मन्त्रो नगरघनिता-दृष्टि दोष विदन्तुम् ।  
सा मे वल्लि विपुल फलदा सा सरित्तद्दिशनाशा  
त्सा मे लक्ष्मी त्रिभिधविमयानन्दसंसाधनाच्च ॥५३॥

तारा क प्रति अपने अनन्य प्रेम का परिचय देते हुए राजा कहता है—

भृग पुष्प जलधरजल चातको गा प्रवत्स  
आम्र पद्म पिक इव घने राजद्वसस्तडागम् ।  
चक्रश्चक्रां तरुविसलयं नागराजस्तटिन्या  
स्तद्वत्कान्ता कलितकमला चिन्तयेद्यत्र शून्य ॥६४॥

राजा का तारा से अनन्य प्रेम है, इसीलिए तो उसके प्रियोग में राजा का मन और बुद्धि शिलशुल काम नहीं करते हैं —

तद्विचिन्तात सकलविषये शून्यमासीन्ननो मे  
तस्माज्जाने न हितमहितं किं प्रकुर्वे ह्युपायम् ।  
नो वा बुद्धिं प्रसरति परा किं प्रजल्पामि वाच  
प्रेम्यं पत्रं मम कथमयो सप्रभापे ह्यभिधाम् ॥६५॥

अपनी रानी की विरहवस्था का भी राजा ने वहा भावपूर्ण चित्र अंकित किया है । राजा पथन से कहता है—

उष्णोच्छ्वासे श्रुयितवदना शीलरक्षार्त्तचिन्ता  
स्यक्तस्नानामसिनवदना नेत्रमुक्ताधुपाते  
स्यं ता दूना रगपरिचिते मंदपु क्षेमयाचा  
सतोप्यारं व्यपगतशुच्यं सर्वथा सप्रकुर्या ॥६६॥

इस प्रकार यदि ने इस काव्य में अनन्य प्रेम तथा विरह के सुन्दर भाव वर्णित किये हैं ।

मेघदूत के समान इस काव्य में भौगोलिक वर्णन शिलशुल नहीं है । स्थान स्थान पर मेघदूत की छाया काव्य में स्पष्ट देखा पड़ती है । मेघदूत में मेघ को दूत बनाते समय कालिदास ने लिखा है—

कामार्ता हि प्रवृत्तिरुपखाश्चेतनाचेतनेषु ॥

इसी प्रकार पथन के दूत कार्य के सम्यन्ध में कवि कहता है—

दूतं मोक्षात्पथनमद्वैतं प्राद्विणोदधुनेत्र  
प्रापो मोक्षो भवति भविना बोधशून्यवहेतु ॥११॥

मेघदूत में पक्ष सूर्यदर्शन के बाद शीघ्र ही यात्रा पर चलने का मेघ से आग्रह करता है—

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् पादयेदध्यशेषं  
मन्दायते न गन्तुं सुहृदामभ्युपेनार्थवत् ॥३६॥

इसी तरह विजयनरेश पवन से कहता है -

( घण्टो विद्याधर कुलभजा )

तास्त्वं पश्यन्निधरतरगतिं धीं स्म भूर्मित्र मार्गे  
धीरा श्यातास्त इह भुवने येऽन्तराये न मन्दा ॥१८॥

अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में राजा के द्वारा कहा गया पवनदूत का यह पद्य -

पादौ दृष्ट्वा यन्मुवि तयानन्ददौ प्रेमरंधा  
दात्मानं स्रप्रणतमभितो यावदीहे प्रकर्तुम् ।  
तावत्पुष्पै स्तरुक्पिण्गते सञ्च्युतैश्छादितौ तौ  
पापं तस्मिन्नपि न सहते सगम सौख्यहेतुम् ॥१९॥

मेघदूत के 'त्वामालिख्य प्रणयकुपिताम्' इत्यादि श्लोक की ही प्रतिच्छाया है ।

चन्द्रमा को लक्ष्य करते हुये विजय नरेश ने कहा है -

चन्द्रश्चायं दहति विरहे योयितोऽयं क्षपाया  
त्वद्यान तत्प्रकृतिपुरुषस्तेन सरोधयाब्जम् ।  
ससारे भो मम विचरत केवल मेव दुःखं  
सर्वेषा स्यात्कृततनुमर्ता चक्रनेमिक्रमेण ॥२४॥

इस पद्य में मेघदूत के -

कस्याल्यन्त सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा  
नीर्वाणच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

इन पदों की छाया विद्यमान है ।

पवनदूत की यह पंक्ति -

त्यक्तुं को वा प्रभुरिह हृदो वस्तुतो वामनेत्राम् ॥७२॥  
मेघदूत की 'शतास्वादो विवृतप्रधना को विहातु' समर्थ ॥१॥४८॥

इस पंक्ति की ही प्रतिध्वनि है ।

यों तो पवनदूत एक विरह-काव्य ही है। श्रियोम नगर का चित्रण ही काव्यका प्रमुख उद्देश्य है। फिर भी काव्य में मनोरञ्जन के अतिरिक्त शिक्षा की भी बहुत सी सामग्री विद्यमान है। लेखक का नैतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण बड़ा ऊँचा है।

उदाहरणार्थ कुछ उद्धरण पाठकों के समक्ष रखे जा रहे हैं —

- १ प्रायः सन्त सकलसमये रगमगे न शय ॥ ४॥
- २ कार्ये कार्ये परमरिदुषाऽहिंस्यैवात्र लोके ॥१५॥
- ३ प्रायः सन्त शिशुतरुणिषु द्यार्द्रचित्ता भवन्ति ॥१६॥
- ४ (भूया) सन्तो नहि परकृतं चोपकारं सहन्ते ॥१७॥
- ५ म्यान्नैवान्तर्गिपुलकण्ठं सत्यरक्षानपेक्ष ॥३॥
- ६ प्रायो भवति महता संगते पाप-दानि ॥५॥

स्थान स्थान पर काव्य में सुभाषित भी पाये जाते हैं—

- १ केवा स्थानं भवति पुरतः स्थायिना सदुचलानाम् ॥८॥
- २ प्रायः कार्ये लघुजनकृतं नात्रिके भिन्नकारी ॥१३॥
- ३ प्रायः कार्ये क्वचिदपि पुनर्वागिनीऽपि प्रमोहा ॥१६॥
- ४ दीपं तस्माच्चतुरमतिना नैव सर्वत्र योज्यम् ॥६॥

इस प्रकार एक जैन विद्वान् की रचना होने के कारण शृंगार रस के साथ साथ काव्य में परोपकार, दया, अहिंसा और दान भावि सदृशाओं की भी प्रशंसा पाई जाती है। रचना प्रसादगुणयुक्त है। भाषा प्रवाहपूर्ण है। लेखक को इस सम्प्रेष काव्य के लिखने में पर्याप्त सफलता मिली है। उच्च कोटि की कविता के साथ साथ काव्य में उच्च नैतिक भाव भी पाये जाते हैं<sup>१</sup>।

---

१ पवनभूत वादिचन्द्रसूरि हिन्दी अनुवादक-उदयलाल कारणीयाल प्रकाशक हिन्दी जैनसाहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई, चम्पापाई, गिरगाय ।



## अज्ञात कवि का चेतोदूत (सम्यग् अनिश्चित)

यह सदेश काव्य मेघदूत के पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिखा गया है। इसके लेखक के सम्वन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। ग्रन्थ में कोई अन्तरंग साक्ष्य भी ऐसा उपलब्ध नहीं जिससे लेखक के सम्वन्ध में कुछ ज्ञान हो सके।

### काव्य की कथा

काव्य में कोई विशेष कथा नहीं है। एक शिष्य अपने गुरु के श्री चरणों की प्रसन्ति (कृपादृष्टि) को प्रेयसी के रूप में मान कर उसके पास अपने चित्त को दूत बनाकर भेजता है। सर्व प्रथम गुरु की धन्दा की गई है। फिर गुरु की प्रसन्ति का इच्छुक शिष्य अपने चित्त को गुरु की नगरी जाने का आदेश देता है। गुरु के यश, शिष्य और वैराग्य का यथास्थान वर्णन किया गया है। गुरु की नगरी में पहुँचकर चित्त ने गुरु की स्तुति करने तदनन्तर उसकी प्रसन्ति (कृपादृष्टि) को अपना सन्देश सुनाने के लिये शिष्य ने प्रार्थना की है। अन्त में गुरु की प्रसन्नता के वर्णन के साथ शिष्य की सफलता बतलाते हुये काव्य समाप्त हो जाता है।

### साहित्यिक समीक्षा

मेघदूत की समस्या पूर्ति होने के कारण काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। कुल १०६ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तर भाग जैसा काव्य का कोई विभाजन भी नहीं है। जैसाकि कथासार से विदित है, काव्य का प्रिय शृंगारिक गीत होकर धार्मिक है। चूँकि चित्त को दूत बनाया गया है, इसलिये काव्य का नाम चेतोदूत रखा गया है। नगरी इत्यादि के वर्णन में मेघदूत जैसा ही तारतम्य है। काव्य का दृष्टिकोण धार्मिक और ज्ञानपरक होते हुये भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह काव्य जैन धर्म से ही सम्बन्धित है। शिष्य ने अपने गुरु के लिये 'श्री सूरिन्द्रा' और 'श्री सूरिश्वर' जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है तथा श्लोक सं० ६८<sup>१</sup> और ७१<sup>२</sup> में जैनधर्म का उल्लेख किया है, अतः यह कहा जा सकता है कि यह किसी जैन कवि की ही अभिनव रचना है।

१ श्रीमान् श्रेय प्रवर्ति सुमग सत्फल प्राप्तिहेतु  
स्फारोदारागमपरिणतो जैनधर्मं क्षमाभृत् ॥६८॥

२ सम्यग्धर्माधिगमसञ्जया शासन जैनचन्द्र  
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीय दधूगम् ॥७१॥

मेघदूत में विप्रलम्भ शृंगार के प्रसंग में कही गई उक्तियों को बड़े कुशल ढंग से शान्ति और भक्ति के वातावरण में प्रयुक्त किया गया है। मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी से कहता है -

भित्तु मा मद्य विशलयपुटान् देवदारु द्रुमाणा  
ये तत्तीरं स्मृतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ता ।  
आलिंग्यन्ते गुण्यति मया ते तुषाराद्रियाता  
पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेद्गमेभिस्तवेति ॥२॥८६॥

इस पद्य को लेकर चेतोदूत में साधु महात्माओं के सपर्क की परिश्रमा बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त की गई है -

धन्या मान्या जिनयनिता ज्ञानसम्यक्समृद्धा  
पुण्यामान वृणुणनिधय साधवो ये मिलन्ति ।  
आलिंग्यन्ते प्रणयसुभगं ते मयाऽति प्रमोदात्  
पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेद्गमेभिस्तवेति ॥१॥८६॥

यक्ष अपनी प्रेयसी की अद्वितीयता बतलाते हुए कहता है -

श्यामाम्बुग चित्रित हरिणी प्रंक्षणे दृष्टिपान  
यक्षप्रच्छाया शशिनि शिगिना यद्भारं पु कशान्  
उपश्यामि प्रतनुषु नदीप्रीतिषु भूषितामान्  
दन्तैर्यक्ष कश्चिदपि न ते च गिऽ स्मादप्यममि ॥२॥८३॥

चेतोदूत में गुरु की प्रसन्नि के सम्यग्ध में भी ऐसे ही समानांतर भाव व्यक्त किये गये हैं। शिष्य कहता है -

छौदार्य स्वस्तदुपगमना मेऽशौले शुचिर्ध  
मोन्दर्प मा शरदिप्रविधौ शीतलं न मुधापाम् ।  
उपेतेऽन उगदनुषं द्रष्टुकाम स्वरूपम्  
दन्तैर्यक्ष कश्चिदपि न ते मीऽ स्मादप्यममि ॥ १ ॥

यक्ष ने अपनी प्रेयसी के लिये कहा ही है -

श्यामालिख्य प्रणयपुपिना धातुरागं शिनायाम्  
दन्तैर्यक्ष नपि न मदते मंगमं नो दना ॥

इसी प्रकार शिष्य भी प्रसन्नि के सम्यग्ध में कहता है -

वृत्तोदारे हृदयसदने कल्पनातल्पना त्वा  
कृत्वा यान्द्रमस विषय किंचिदिच्छामि वकम् ।  
तावद्देवाद्भुतमुपनता मूढता घाघते मां  
कूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगम नो कृतान्त ॥११७॥

इस श्लोक में भी कालिदास की कल्पना के समान ही बड़ी कोमल कल्पना की गई है।

शुक्र की प्रसस्ति के विरह में शिष्य भी इतना व्याकुल है जितना कि कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के विरह में व्याकुल हो सकता है। शिष्य प्रसस्ति से कहता है -

प्राणाधारस्त्यमसि द्युतिरे तद्धिना संगम ते  
प्रत्यर्थीव व्यययति सृष्ट मेऽघपूरं कृष्ट माम् ॥११०॥  
राशौ यद्भुजवति विरहाच्छक्रवाकोऽतिशोका  
क्रातस्वान्तोऽहमपि तथा सर्वथाऽप्यस्मि दुःखी ।  
कान्ते । तन्मे न सन्तु हृदये सौख्यलेश कदाचित्  
सकरपै स्त्रैरिगति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गं ॥११२॥

तिष्ठन् गच्छन् स्वयमुपविशन् वाऽपि जाग्रत्स्वपना  
गाढ दुःखी सन्निवशमना ध्यायति त्वत्प्रसस्तिम् ॥१०४॥

मेघदूत में प्रसंगान्तर में आई हुई पंक्तियाँ यही कुशलता से दूसरे प्रसंग में इस काव्य में वित्तियुक्त कर दी गई हैं। वह ने अपने घर के पास बालमन्दार वृक्ष के होने का उल्लेख किया है। चेतोदूत में शुक्र का वर्णन करते हुये शिष्य कहता है -

स्निग्धच्छाय सुपरिष्कृतं साधुपात्रैरमात्रै  
मंगल्यधीरभिमतफलश्लाघनीयस्त्वमेव ।  
विभ्रामार्थं अगति विधिना निर्मितं शर्महेतुं  
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दार वृक्ष ॥२५॥

शुक्र को बाल मन्दार वृक्ष का रूपक देकर कवि ने उनकी उदारता की बड़ी सुन्दर व्यञ्जना की है।

मेघदूत में वह अपनी पिरहिणी प्रेयसी के लिये -

'साध्रं ऽक्षीय स्थलकमलिनीं न प्रयुजा नसुताम्' कहता है। चेतोदूत में कवि ने यही पंक्ति मत्त की बुद्धि के लिये प्रयुक्त की है -

गाढोद्देशप्रभवजडतायोगतो मुद्रितत्वम्  
तत्प्राप्त्याशाजनितपरमानन्दत स्मेरमाश्रम् ।

आविभ्राणा स्फुरति नियत साम्प्रतं तस्य युद्धिः  
साऽध्रेऽर्द्धाज स्थलकमलिनी न प्रमुखा न सुता ॥१०६॥

मेघदूत में अपनी गिरहिली प्रेयसी के नेत्र को लेकर यक्ष कहता है—

रुद्धापागप्रसरमलकैरजनस्नेह शून्यं  
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।  
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शके भृगाव्या  
भीनक्षोभाच्चलकुपलयध्रीतुलामेप्यतीति ॥

चेतोदूत में यही उपमा बड़े कौशल के साथ शिष्य से सज्ज कर दी गई है—

आशावद्धो गमयति दिनान् दैन्यवानेव साक्षा-  
तस्य स्थाग्निन् ! यदि न भविता सगमस्त्वत्प्रसक्ते ।  
स स्तोकाभ्यस्त्यगणपरिचयेत्यातिदुःखानिरेका-  
ग्भीनक्षोभाच्चलकुपलयध्रीतुलामेप्यतीति ॥

इस प्रकार विभिन्न उदाहरणों से यह स्पष्ट ही है कि कवि को समस्यापूर्ति में पर्याप्त सफलता मिली है। लेखन शैली तथा विचार-तारत्वम् इत्यादि में मेघदूत की छाया होन पर भी विषय की नवीनता तथा पुराने पातावरण में नये भावों का समा-  
वेश करने के कारण हम इस काव्य को मौलिक माने बिना नहीं रह सकते। काव्य में परोपकार, कठणा और अहिंसा आदि पूत भावनाओं पर कवि ने बड़ा जोर दिया है। इस प्रकार काव्य-गुणों के साथ-साथ एक धार्मिक ग्रन्थ की भी विशेषतायें इस काव्य में पाई जाती हैं। अप्रत्यक्ष रूप से यह काव्य यह शिक्षा भी देता है कि भक्ति के क्षेत्र में मनुष्य सभी सफल हो सकता है जब यह सासारिक प्रेम की तरह भग-  
वान् व प्रेम में वैसा हो व्याकुल हो जाये। लौकिक प्रेम की तीव्रता के समान भगवत्प्रेम में भी तीव्रता होना आवश्यक है। इससे अतिरिक्त गुण की एपादष्टि का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। गुण की एपादष्टि का प्रभाव बतलाते हुये कवि ने कहा ही है—

चिन्तार्ताखिलसुखकरौ त्वत्प्रसति नुराग  
प्राप्य स्वयं परिमितसुखं च सर्वाहेत विद्वान् ॥२१॥

लेखक अपने काव्य की रचना में गुण की एपादष्टि को ही प्रमुख कारण मानता है। उसने काव्य के अन्त में कहा है—

सन्ति धीमत्परमगुरवः सर्वदाऽपि प्रसन्ना  
स्तेषां शिष्यं पुनरनुमान्यन्तमक्षिप्रलुन् ।  
तमाहात्म्यादपि जटमति मेघदूतान्यपादं  
चेतोदूतामिधमभिनव काव्यमेतद् व्यथत् ॥२२॥

काव्य के अनुशीलन से यह प्रत्यक्ष ही है कि मेघदूत के शृंगार-रस पूर्ण वातावरण से प्रेरणा लेकर भी कवि ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से शान्त रस के एक सुन्दर सदेश काव्य की सृष्टि कर दी है। समस्यापूर्ति होते हुए भी काव्य में प्रसादगुण है। भाषा प्रवाहमय है। भाव भी बड़े सुन्दर हैं। मनोरजन के साथ साथ यह काव्य पाठकों में धार्मिक अभिरुचि भी उत्पन्न करता है<sup>१</sup>।

### विनय-विजय गणि का इन्दुदूत (वि० अष्टादश शतक का पूर्वार्ध),

श्री विनय विजय गणि का सत्ता समय वि० सप्तदश शतक का उत्तरार्ध तथा अष्टादश शतक का पूर्वार्ध है। यह वैजय यश के थे।<sup>२</sup> इनके पिता का नाम भेष्टितेज पाल था। इनके जीवन के सम्बन्ध में व्यवस्थित रूप से कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। फिर भी संस्कृत, प्राकृत और गुजराती भाषाओं में लिखे गए इनके अनेक ग्रन्थों की प्रशस्ति से इनके सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है।

जिस समय इन्होंने दीक्षा ली थी, उस समय तपोगच्छ में महारकाचार्य श्री विजयदेवसूरि का शासन चल रहा था। उसके बाद श्री विजयसिंह सूरि का शासन चला। तदनन्तर श्री विजयप्रभसूरि का शासन प्रारम्भ हुआ। इन विजयप्रभसूरि से ही श्री विनय विजय गणि ने दीक्षा ली थी। लगभग १० वर्ष तक यह विविध ग्रन्थों की रचना करते रहे। इनका सम्पूर्ण जीवनकाल ७५ वर्ष के लगभग रहा होगा। यह प्रायः गुजरात में ही चातुर्मास्य बिताते थे। कभी कभी मारवाड़ और मालवा में भी रह जाते थे। इन्होंने वि० स० १७३८ के आस पास श्रीपालरास नामक काव्य लिखना प्रारम्भ किया। इस काव्य को लिखते लिखते इनका स्वर्गवास हो गया। तदनन्तर उस समय के महान् तार्किक और इन के मित्रासपात्र दार्दिक मित्र श्री यशोविजयजी महाराज ने इस ग्रन्थ को पूर्ण किया। श्री विनय विजय गणिकी हस्त लेख की पंला में भी यह प्रतीय है। अपने गुरु के लिखे हुए विचार-रत्नाकर नामक ग्रन्थ को इन्होंने बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा है। ग्रह प्रतिलिपि वि० स० १६६० की लिखी हुई मानी जाती है। इनके गुरुमाई श्रीकान्तिविजयजी ने यहीदा के महार में इसकी स्थापना कराई थी।

<sup>१</sup> जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से वि० स० १९७० में प्रकाशित।

<sup>२</sup> क्योंकि इनके पिता के नाम के साथ भेष्टि शब्द लगा हुआ मिलता है।

इन्दुदूत काव्य भी थी विनय विजय गणि का ही लिखा हुआ है। काव्य के प्रथम श्लोक -

धीं पूज्यानां गुरुगुण्यतामिन्दुदूत प्रमूतो  
दन्त लेख लिम्पति विनयो लेखलेखानतानाम् ॥१॥

से पता चलता है कि लेखक का नाम विनय है तथा निम्न श्लोक -

शिष्योऽस्मीयान् विनयविजयो द्वादशवर्तभाजा  
विशतिं व्याहरति महता वन्दनेनाभिरुध्य ॥२६॥

से प्रतीत होता है कि लेखक का नाम विनय विजय है। हैम-लघु प्रक्रिया, लोकप्रकाश, करपत्रप्रसुयोधिका तथा श्रीभाल चरित इत्यादि ग्रन्थों के रचयिता, उपरश पंथ के तेजपाल के पुत्र और तपोगच्छ के विजय प्रभु स्त्री के शिष्य विनय विजय तथा इन्दुदूत काव्य के लेखक विनयविजय दोनों एक ही व्यक्ति हैं। अतः इन्दुदूत काव्य की रचनाकाल वि० सं० १७३४ अथवा इससे कुछ पूर्व हो सकता है। इस काव्य में यस्तुपाल के चैत्य और प्रासादों का उल्लेख पाया जाता है -

(अर्चुदाचले)

तत्र धीमान् विमलवसती भाति नाभेयदेव  
सेवायत्तत्रिदशनिकर पूर्णपादोपकण्ठ ।  
नेमिगर्भा दिशति च शिशान्यातताना निविष्ट  
साक्षादिन्द्रालय इय धरे यस्तुपालस्य चैत्ये ॥१३॥

रूप्यस्त्रिद्वोपलदलमयी चित्रदोर्त्कर्णचित्रौ  
चचच्चन्द्रोदय चयचिती करिपतानरुपशिल्पी ।  
जीयास्ता ती विमलनूपते धंस्तु पालस्य चोच्छी  
प्रासादां ती स्थिरतरप्यशोरूपदेहाविष ह्यौ ॥१४॥

यद् यस्तु पाल ढोलका ( गुजरात ) के राजा धीर धवल का मन्त्री ही है। अतः किसी भी ग्रन्थ में ई० प्रयोदश शतक से पूर्व की तो यह रचना हो ही नहीं सकती।

लेखक ने अपने गुरु को भी तप-गणपति कहा है। चन्द्रमा को संबोधन करते हुए यह कहता है -

वन्देया धीं तप-गणपति सार्यमेदयुगीनं  
पीन पुण्यप्रमथमुद्धर्नन्दन । त्वं लभेया ।

प्राच्यै पुरायै फलितमतुलैस्तोत्रैकीनै सुलब्ध  
जन्मेतत्ते नमसि च गतिर्भाविनी ते कृतार्था ॥१२१॥

अतः यह स्पष्ट ही है कि लोक प्रकाश इत्यादि ग्रन्थों के रचयिता की तरह इन्दुदूत का रचयिता भी तपगण का अनुयायी है तथा यह दोनों लेखक एक ही व्यक्ति हैं और इन्दुदूत काव्य वि० स० १७३४ या स० १६७८ ई० का लिखा हुआ है। इन्दुदूत काव्य के अतिरिक्त लगभग ३४ अन्य रचनायें भी संस्कृत, प्राकृत तथा गुजराती भाषा में इनकी लिखी हुई पाई जाती हैं। संक्षेप में उनका परिचय इस प्रकार है -

अंक	नाम	भाषा	काल	स्थान
१	आनन्द लेख	संस्कृत	१६१४ धनतेरस	—
२	श्री कल्पसूत्र सुबोधिका	संस्कृत	१६१६ जे० शु० २	—
३	श्री विजयदेवसूत्रि विज्ञप्ति	संस्कृत प्राकृत	१७०५ धनतेरस	देवघाटन ; प्रभासपाटन
४	लोक प्रकाश	संस्कृत	१७०८ वै० शु० ५	—
५	हैमलघुप्रक्रिया	संस्कृत	१७१० विजयदशमी	राधनपुर
६	शान्त सुधारस	संस्कृत	१७०३	गाधार
७	जिन सहस्र नाम स्तोत्र	संस्कृत	१७३१	—
८	हैम प्रकाश	संस्कृत	१७३७ विजयादशमी	रतलाम
९	नयकरिक्ता	संस्कृत	—	दीनघाट
१०	पट्ट त्रिशत्-अष्टसप्रह	संस्कृत	—	—
११	अर्हन्तप्रस्कार स्तोत्र	संस्कृत	—	—
१२	श्री आदि जिन-स्तवन	संस्कृत	—	—

इन रचनाओं के अतिरिक्त अन्य रचनायें गुजराती भाषा में लिखी हुई हैं। उनमें श्रीपाल रास (१७२८) ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है। समझ ली कि संस्कृत प्राकृत के उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे हों।

### काव्य की कथा

श्री विजय प्रभु सूर्यश्वर महाराज सूर्यपुर ( सूरत ) में चानुर्मास पिताने हैं। उनकी आज्ञा से उनके शिष्य श्री विनय विजयगणेशजी मारवाड़ में जोधपुर नगर में चानुर्मास पिताने के लिये आ जाते हैं। चानुर्मास के अन्न में मादपद पूर्णिमा की रात्रि ॥ चन्द्रमा को देखकर उनका विचार होता है कि उसके हाग अपने गुरु के पास वे अपना सावत्सरिक द्वापण सन्देश और अभिषन्दन भेजें। चन्द्रमा को दूत कार्य में नियुक्त करने से पूर्व वे उसका स्वागत करते हैं, उसकी कुशलपार्ता पूछते हैं

और फिर उसकी तथा उसके सवधियों समुद्र, पारिजात, लक्ष्मी और रात्रि इत्यादि की भी प्रशंसा करते हैं। अन्त में वे उससे सूर्यपुर (सूरत) जाने और वहां पहुंचकर अपने गुरु श्रीतपगणपति को अपनी विग्रहि सुनाने के लिये कहते हैं।

इस प्रसंग में जोधपुर से सूरत नगर तक का मार्ग काव्य में वर्णित किया गया है। चूंकि जोधपुर से सूरत दक्षिण की ओर है, इसलिए चन्द्रमा को दक्षिण की ओर जाने का परामर्श दिया गया है। जोधपुर से चलकर सुयर्णाचल पर्यंत पर कुछ विभ्राम करने और वहां श्री महाश्रीरत्ना तथा श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिरों में उनकी पूजा करने के बाद जालन्धर नगर (जालोर), श्रीरोहिणी नगरी (सिरोही) और बहा के तीन मन्दिरों को देखते-देखते अर्जुदाचल (आबू पर्यंत) पहुंचने के लिये चन्द्रमा से कहा गया है।

अर्जुदाचल पर्यंत पर स्थित श्री ऋषभदेव और श्री नेमि श्वाप्ती के मन्दिरों तथा विमल रूपनि और चम्तुपाल के प्रासादों को देखने के बाद निकट में ही स्थित अचल दुर्ग (पर्यंत) जाने तथा इसके कुछ मीचे श्री कुमारपाल राजा के द्वारा निर्मित शिवगृह में पूजा करने और अर्जुद पर्यंत की सैर करने का चन्द्रमा को परामर्श दिया गया है।

इसके बाद सरस्वती नदी के तट पर बसे हुये सिद्ध द्रग (सिद्धपुर) में कुछ समय विभ्राम कर साध्वमती (साधरमती) नदी के तट पर स्थित राजद्रग (अहमदा) बाद) जाने के लिये चन्द्रमा से कहा गया है।

तदनन्तर फिर दक्षिण की ही ओर आगे बढ़ने पर षटपद्म पुर (बड़ौदा), भृगुपुर (भरौच), नर्मदा नदी और तापी नदी होते हुए चन्द्रमा के सूर्यद्रग (सूरत) पहुंच जाने का उल्लेख किया गया है। सूरत नगर के वैभव का वर्णन करने के बाद कवि ने वहां के गोपीपुर नामक स्थान, आयको के विद्यामलय तथा वहां के व्याख्यान भण्डप और व्याख्यान-पीठ का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। इसके बाद इन्द्रामन के समान अनुपम सिंहासन पर विराजमान श्री तप-गणपति महाराज श्री विजय-प्रमथुरि की प्रशंसा करते हुए कवि ने चन्द्रमा से उनकी वन्दना करने का अनुरोध किया है। गुरु चरणों के दर्शन से चन्द्रमा के सारे दोषों और बध्नों के नष्ट हो जाने की आशंसा कर फिर कवि ने एकान्त में अभियन्दन-गूर्यक गुण को अपनी विग्रहि सुनाने के लिए चन्द्रमा से प्रार्थना की है। अपनी विग्रहि में कवि कहता है—हे गुरुवर्य ! इसादुर्ग (इहमगढ़) में आपने श्री चरणों के दर्शन के लिए मैं गया था। अर्थसह के लिए भी मैं आपका उपकार नहीं मूल सकता। आपने वही कृपा करके मुझे जो उपदेश दिया था, वह अब भी मुझे बड़ी प्रसन्नता दे रहा है और मेरी इन्द्रियों को संतुष्ट कर रहा है। मेरा चित्त आपके चरणों में आने के लिए अग्रगण्य उत्कटित रहता है। संसार में निद्रा को शेष माना जाता है और जागने को भोग गुण समझते हैं, लेकिन मुझे तो हमारे विपर्यय निद्रा ही अरुही लगती है, क्योंकि



इसके द्वारा स्वप्न में आपके दर्शन तब भी हो जाते हैं। जब मैं जागता रहता हूँ तो आपका ही नाम जपता रहता हूँ। सोते समय भी मेरा मन आप में ही लगा रहता है। इस तरह दिन रात मैं आपका ध्यान करता रहता हूँ। आप अपनी प्रेम दृष्टि से मुझे अनुगृहीत करें ताकि मेरी समस्त प्रार्थनाएं पूर्ण हो जाय।

## साहित्यिक समीक्षा

इस सदेश काव्य में केवल १३१ श्लोक हैं। समग्र काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा गया है। काव्य का पूर्व भाग और उत्तर भाग जैसा कोई विभाजन भी नहीं किया गया है। काव्य के अन्त में “इति श्री मेघदूतच्छाया काव्यमिन्दु-दूताभिध काव्य समाप्तम्” ऐसा लक्षण मिलता है। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि काव्य मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया है। लेकिन प्रक्रिया और छन्द में ही इस काव्य में मेघदूत का अनुकरण पाया जाता है। काव्य का विषय बिलकुल नयीन है। मेघदूत में शृंगार रस की प्रधानता है। इस काव्य में शान्त रस प्रधान है। काव्य का नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण भी बहुत उच्च है। जालधर नगर (जालोर) में वेश्याओं की स्थिति बतलाते हुए कवि चन्द्रमा को उनसे दूर रहने का ही परामर्श देता है —

तस्मादासा युधजनपृषदुयागुराणामप्रश्य  
दूरात्त्यागो भवति हि नृणां श्रेयसेऽमुत्र चात्र ।  
तत्राप्यगीकृत निज सुहृद् व्याहते स्वरारण्य  
व्यासगो नोचित इति हित द्विस्मिरेतद् वदामि ॥४६॥

गुरु की महिमा और उदारता का भी कवि ने बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है। गुरु का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

स्फूर्जद् भाग्यान्कतिचन दृशा स्निग्धया लोकयन्तं  
काश्चिच्चेषत्स्मित-कलनया स्वायतीन् प्रीणयन्त ।  
पूर्वोपात्तास्खलितसुकृतार्थं शिसोभाग्यभाजं  
काश्चिन्मोली करघटनया लब्धसिद्धीन् सृजन्तम् ॥११४॥

अर्हदधम तनुभृगमिमास्तोक-लोकोपकृत्यै  
कौटुब्यं वा विदितभुवनं पुस्त्यरूपोपपन्नम् ।  
प्रत्यक्षं वा सुकृतनिचयं शासनस्यार्द्धतस्य  
मूलं निश्चये सपदतरोर्जगमं कल्पदृक्षम् ॥११६॥

इस प्रकार गुरु की प्रशंसा में कवि ने अनेक पद्य लिखे हैं।

चन्द्रमा के सयधियों की प्रशंसा में कवि ने बड़े सुन्दर विचार प्रस्तुत किए हैं। लक्ष्मी की प्रशंसा करते हुए कवि ने क्या ही सच्चे भाव व्यक्त किए हैं—

मूर्ध्नि प्राक्षीयति च कुत्तु, कामरूपीयति द्रा  
 म्दीन शूरीयति च कुटिल प्राञ्जलीयत्यश्वम् ।  
 क्रूर शान्तीयति गतकल सत्कलीयत्यजघ्रम् ।  
 लोकं सोऽयं जयति निश्चिलसन्द्भमिण्या प्रभाय ॥२३॥

रात्रि का भी कवि ने यदा सच्चा स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है ।

या ते (चन्द्रम्य) श्यामा सुभग ! दयिता वर्धयत्युग्र-लन्मी  
 पक्वं पर्णं तुलयसि यथा त्रिप्रयुक्तस्तगमिन्दो ।  
 साऽपि श्रान्तं भुषणमखिल स्वम्यकर्मधमेण  
 निद्रादानात् सुप्यति सदाभीष्टविशयोपकारा ॥२४॥

रात्रि को चन्द्रमा की पत्नी माना जाता है । उसके विरह में चन्द्रमा को पके  
 हुये पसे की तरह पीला बसा कर कवि ने उनके अनन्य प्रेम की व्यञ्जना की है ।

काव्य में स्थान-स्थान पर नदियों और नगरों का यदा सरस और समृद्ध चित्र  
 प्रस्तुत किया गया है । सिद्धपुत्र के निकट बहती हुई सरस्वती नदी का वर्णन करते  
 हुए कवि कहता है—

यथा कदापि प्रचुरतरलैः पाननैः कञ्चन  
 कदापि क्रीडयुनिनिकरैरप्सरःसेवितैः ।  
 सहेषेय कवचन यिततैरम्बरैर्धौतमुक्तैः  
 मुस्ताशुक्लपयलि रुचितैः कषायलकारितैः ॥२६॥

प्रीणात्येषाऽपिलपुरजनान् सपयपानदाना  
 दुत्संगम्यान्मयति च तान्केलि स्त्रीला विलोलान् ।  
 दूरादालिगति च यितनैर्वाचि-दम्नैः पुनीते

॥२७॥

इसी प्रकार सर्पट ॥ (मूरत) नगर का भी कवि ने यदा भाव्य वर्णन किया है —

मीलच्छाद्यं कचचिद्विरलैः मांगरलीन्मौर्षैः  
 शुभ्रच्छाद्यं कचचन बुभुमैर्विम्बुनैः विप्रयाप ।  
 पिमं चंगिरतिपरितनैः कुञ्च चिच्छसुदगटैः  
 मान्वाण्यं पुरमिदमिति घोतते मर्षदाऽपि ॥२८॥

मूरत के जैन मन्दिरों को देखकर तो श्रेयसा भी चकित हो जात है —

शिल्पिप्रप्यै रञ्जितशिशिभानेश्विशालद्वयम्  
 द्विगुत्तशये वनकञ्चनैर्भङ्गैर्दोर्गनाथम् ।

दत्ताऽनन्द सहृदयहृदा वृन्दमर्दद्गृहाणाम्  
चित्रैश्चित्र क इह न जतो धीक्ष्य चित्रीयतेऽन्त ॥१०॥

यद्यपि काव्य का शान्ति रस में पर्यवसान है, फिर भी यत्र तत्र शृंगारिक वर्णन भी पाये जाते हैं। राजद्रग (अहमदाबाद) की रमणियों का वर्णन करते हुए कवि चन्द्रमा से कहता है —

क्रीडाहम्य प्रिय सह चरी प्रेरणाभि प्रविष्टा ।  
शय्योत्सग प्रणयचटुभि प्रेयसा प्रापिताश्च ।  
ग्रीडोद्रेकाद् गृहमणिमुपाहृत्य कर्णोत्पलेन ।  
कान्तोपान्ते तमसि कथमप्यासने या विमुग्धा ॥३०॥

राजद्रग की रमणिया घड़ी मुग्ध हैं। इसलिये कवि फिर चन्द्रमा को परामर्श देता है कि वह जाल मार्ग के द्वारा महलों में प्रकाश न करे —

मा कार्षीत्स्व तदणुकिरणैर्जालमार्गप्रविष्टै-  
स्तासा कान्तप्रसभ हृतसचर्चांगराणा प्रकाशम् ।  
किं कुर्यु सन्नितुमनलभूषणवस्तास्त्वदशन-  
मोग्ध्यादेयानवगतधयाद्यन्जसवृत्त्युपाया ॥३१॥

इन पद्यों में राजद्रग की मुग्धा नायिकाओं का कैसा भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है।

जैन विद्वान् की कृति होने के कारण काव्य में यत्र तत्र जैन धर्म का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। काव्य के आरम्भ में ही —

स्वस्तिश्रीणा मजनमयनीकान्त पक्ति प्रणय्यम्  
प्रोढप्रीत्या परमपुरुष पार्श्वनाथ प्रणय्यम् ।

इस प्रकार श्री पार्श्वनाथजी की वन्दना की गई है। स्थान-स्थान पर जैन मन्दिरों का वर्णन किया गया है। काव्य के आकार को देखते हुए शिष्य का स्पष्ट हो बहुत थोड़ा ही है। परीषकार, सदाचार, धृष्टा और गुरुभक्ति इत्यादि सद्भावों पर यथा स्थान कवि ने बड़ा जोर दिया है। जीवन सम्बन्धी अपनी अनुभूतियों को भी कवि ने अर्थान्तरन्यास के रूप में पाठकों के समक्ष रक्खा है —

’ अलका की रमणियों भी कुछ ऐसी ही हैं।

- १ न भ्रान्तानां सुखयति कथा स्निग्धवर्णोदिताऽपि ।  
स्वस्थे चित्ते प्रणयमधुरा पुद्गयो ह्युद्गमयन्ति ॥१७॥
- २ विश्व दोषान् गणयति जनो को हि राज्ञो भगिन्या ॥३०॥
- ३ प्रोक्तुं गानां भवति महत्तैरापनेयो विरोध ॥३५॥
- ४ पञ्चात्तापस्तुदति हृदयं दर्शनीये ह्यदृष्टे ॥३६॥
- ५ कण्ठप्राणा नहि विरहिण कृच्छ्रमोपत्सहन्ते ॥६८॥
- ६ स्थायीय स्यात् कदशनमपि स्नेहघातोपसिक्तम् ॥१२॥

सम्पूर्ण काव्य के अनुशीलन से यह तो स्पष्ट ही है कि मेघदूत से वर्णन शैली और प्रक्रिया का सहारा लेकर कवि ने नितान्त नवीन विषय पर यह सन्देश काव्य लिखा है। भाषा भी प्रसाद गुण से पूर्ण है। काव्य में सर्वत्र प्रसाद पाया जाता है। कवि की वर्णन शक्ति और उच्च विचारों से सन्देश काव्यों की परम्परा में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। जोधपुर, जालोर, सिरोंही, आबू पर्यंत, सिद्धपुर, अहमदाबाद, बंबई, भोंव और सूरत जैसे विख्यात नगरों के मध्यकालीन वैभव पर भी यह काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। भारतवर्ष के इस भूभाग के भौगोलिक तथा सामाजिक अध्ययन के लिए इस काव्य की उपयोगिता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।<sup>१</sup>

### श्री मेघ-विजय का मेघदूत-समस्या-लेख ( वि० सं० १७०७ )

श्री मेघ विजयजी जैन मुनि थे। यह अकबर बादशाह से जगद्गुरु की उपाधि प्राप्त करने वाले तथा वृहत्तपोगच्छ के नायक श्री कृपा विजयजी के शिष्य थे और श्री हरि-विजय-सुरेश्वर की शिष्य परम्परा में इनका पाँचवा स्थान था। व्याकरण ज्योतिष, न्याय, धर्मशास्त्र और अध्यात्म इत्यादि के यह प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन विषयों पर लिखे हुए इनके ग्रन्थ विद्वत्समाज में बड़े आदर के साथ देखे जाते हैं।

१ श्री जैन साहित्यसंघ के संभा, शिरपुर (पश्चिममहाराष्ट्र) से प्रकाशित।

सप्तसन्धान नामक काव्य से इनकी त्रिशष्ट कवि प्रतिभा का परिचय मिलता है। इस काव्य में एक साथ सात कथानक सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में वर्णित किए गए हैं। देवतन्दाभ्युदय नामक सात सर्गों के काव्य में त्रिजय देव-सुरि का जीवन वृत्त का इन्होंने वर्णन किया है। वि० स० १७२७ (ई० स० १६२१) में इस काव्य की रचना की गई।<sup>१</sup> शान्तिनाथ चरित में इन्होंने शान्तिनाथ का जीवनचरित वर्णित किया है। इन दोनों काव्यों में शिशुपाल वध और नैपथीय से पक्तियाँ लेकर समस्या-पूर्ति की गई है। उदाहरणार्थ निम्न श्लोकों को देखिए —

श्रियामभिव्यक्त-मनोऽनुरक्तता विशालसालव्रितया श्रिया स्फुटा ।  
तया यभासे स जगत्त्रयीभिर्भुज्यतत्प्रतापावलि कीर्तिमण्डल ॥

।नैपथ) निपीय यस्य क्षितिरक्षिण कथा सुग सुरज्यादिसुख बहिर्मुखम् ।  
प्रपेदिरेऽन्त स्थिरतन्मयाशया सदा सदानन्दभृत प्रशसया ॥  
यथा श्रुतस्येह निपीततत्तथास्तथाद्रियन्ते न बुधा सुधामपि ।  
सुधाभुजा जन्म न तन्मन प्रिय भवेदुभवे यत्र न तत्कथाप्रथा ॥

सप्त-सन्धान महाकाव्य में श्री मेघविजयजी ने प्रत्येक पद्य में वृषभनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीर-स्यामी, कृष्ण और बलराम इन सात महापुरुषों का जीवन-वृत्त एक साथ ही वर्णित किया है। प्रथम पांच महापुरुष तो जैनियों के तीर्थंकर हैं। इस काव्य में सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में अनेक कथानक वर्णित किए गए हैं। कवि ने इस काव्य द्वारा संस्कृत भाषा की महान् वर्णन शक्ति का पाठकों को परिचय दिया है। उदाहरणार्थ—

अवनिपतिरहासीद्विश्रसेनाग्रसेनाभिधदशरथनाम्ना य सनाभि सुरेश ।  
यलि विजयिसमुद्र प्रौढसिद्धार्थसह प्रसृतमरुतेजस्तस्य भूकच्छपस्य ।।१४।

आचार्य हेमचन्द्रजी के संरक्ष में कहा जाता था कि उन्होंने सप्त सन्धान नामक एक काव्य लिखा था, लेकिन चूंकि यह खो गया था, इसलिए मेघ विजयजी ने इस ग्रन्थ की रचना की। मेघविजयजी ने स्वयं लिखा है—

श्री हेमचन्द्र सूर्यो सप्तसन्धानमादिमम् ।  
रचित तदलाभे नु स्यादिदं तुष्टये सताम् ॥

द्विजय महाकाव्य में भी तेरह सर्गों में त्रिजयप्रभसुरि का जीवन वृत्त इन्होंने वर्णित किया है। युक्ति प्रयोध नामक एक Allegorical नाटक भी इन्होंने लिखा है। इसमें अपने समकालीन कुछ विरोधी दार्शनिक सिद्धान्तों का इन्होंने खण्डन किया है।

१ यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, बनारस से इसका कुछ अंश प्रकाशित हुआ है।

मेघदूत समस्या लेख भी इन्हीं का लिखा हुआ है। मेघदूत के पदों की अतिम पंक्ति को समस्या मानकर यह काव्य लिखा गया है। यद्यपि इस काव्य में कहीं भी लेखक के गुरु का नाम तथा उसका रचना काल नहीं उल्लिखित है, फिर भी काव्य के अतिम श्लोक से कवि के सवध में हमें कुछ ज्ञान अग्रय प्राप्त होता है। यह श्लोक इस प्रकार है —

मात्रकाव्य देवगुणोद्भूत प्रमप्रभो  
समस्यार्थ समस्यार्थ निर्गमे मेघपरिडट ॥१३॥

इस श्लोक के प्रथम और द्वितीय चरणों से यह सिद्ध होता है कि त्रिजयदेव-सूरि के जीवन वृत्त को लेकर लिखा गया समस्यापूर्तिपरक माधकाव्य तथा विजय-प्रभसूरि के लिए विनंति स्वरूप लिखा गया मेघदूत समस्यालेख दोनों ही एक कवि की रचना हैं। तदनन्तर जब हम मात्रकाव्यसमस्यापूर्ति काव्य की प्रशस्ति में आए हुए निम्न श्लोकों को देखते हैं —

तत्सेवासक्तचेता अनुरततया प्राप्त लक्ष्मीर्निशिष्य  
शिष्य श्रीमन्कृपादेर्विजयपदभूत सत्त्वेषाञ्चकधी ।  
मेघ पदमाप्रसादाद्विशदमनिजुषा धान्यकाव्य चकार  
देवानन्द मदैन्द्रोज्ज्वलत्रिपुलधिया शोभ्यता शोध्यमथ ॥  
मुनिनयनाम्बुधुमिते १७२७ वर्षे हपेण सादहीनगरे ।  
ग्रन्थ पूर्ण समजनि त्रिजयदशम्यामिति श्रेय ॥

तब ज्ञात होता है कि श्री मेघविजयजी श्री कृपाविजय मुनि के शिष्य थे तथा वि० अष्टादश शतक में विद्यमान थे। यों तो जैन मुनियों का कोई निवास स्थान नहीं, पर उपर्युक्त श्लोक से यह प्रतीत होता है कि यह मारवाड़ में सादही नामक नगर में रहा करते थे। इनके प्रगाढ़ पारिडट के कारण ही इन्हें महामहोपाध्याय कहा जाता रहा है।

### काव्य की कथा

इस काव्य में कवि ने देवपत्तन में स्थित अपने गुरु तपगणपति श्रीमान् त्रिजय प्रभसूरि के पास मेघद्वारा कुशलवार्ता इत्यादि का सन्देश भेजा है। काव्य की कथा इस प्रकार है। श्री मेघविजयजी अपने गुरु श्री त्रिजयप्रभुजी के आदेश से नव्यरग पुरी (औरंगाबाद) में ज्येष्ठ मास में अपना चतुर्मास्य प्रारम्भ करते हैं। भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की पंचमी आते २ गुरु के चिरवियोग से उनका हृदय व्यथित हो उठता है। इसी अवसर पर आकाश में उठते हुये मेघ की देखकर उसे वे अपना सन्देश लेकर देवपत्तनस्थित अपने गुरु के पास भेजते हैं। इस प्रसंग में औरंगाबाद से देवपत्तन [गुजरात] तक का मार्ग बड़ी सरस रीति से वर्णित किया गया है। सर्व प्रथम मार्ग

मैं आते वाले श्री शान्तिनाथ के मंदिर में पूजा करने का मंत्र को परामर्श दिया गया है। तदनन्तर औरंगाबाद नगर का बड़ा समृद्ध वर्णन काय में पाया जाता है। औरंगाबाद में पूर्व की ओर देवगिरि नामक पर्वत पर पहुँचने के बाद देवगिरि नामक नगरी की शोभा देखने के उपरान्त एलोर पर्वत पर जाने का मेघ को आदेश दिया गया है। एलोर पर्वत पर श्री पार्श्वनाथजी की स्तुति करने के बाद आगे बढ़ने पर मार्ग में तु गिआ नामक पर्वत के मिलने का उल्लेख किया गया है। यहाँ पर मेघ को किसी भ्रमणवृत्त को प्रणाम करने का आदेश दिया गया है। आगे बढ़ने पर मार्ग में श्रीसूर्याख्य किसी मन्दिर का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर तापी नदी, भृगुपुर, नर्मदा नदी और मही-नदी को क्रमशः पार करने के बाद हस्तिनपुर नामक नगर में मेघ के पहुँचने का वर्णन है। यहाँ से समुद्र तटवर्ती पर्वतशिखरों में कुछ विश्राम करने के बाद पश्चिम दिशा की ओर सिद्धशैल (शत्रुजय नामक जैनतीर्थ) नामक पर्वत पर पहुँचने का मेघ को आदेश दिया गया है। यहाँ पर श्री शत्रुजय तथा भगवान् बुधभद्र की पूजा करने के बाद आगे बढ़ने पर मेघ के द्वीपपुरी (देवफण्क्त) पहुँच जाने का उल्लेख किया गया है। इस द्वीपपुरी में ही कवि ने अपने गुरु का आश्रम बताया है। इस अवसर पर गुरु के प्रताप, सयम और ब्रह्मचर्य व्रत का बड़ा प्रभावपूर्ण वर्णन किया गया है। प्रसंगान्त 'गुरु के जीवन वृत्त पर भी कवि ने कुछ प्रकाश डाला है। कवि ने लिखा है कि भारतवर्ष में कच्छ देश यहाँ ही रमणीय प्रदेश है। यहाँ पर श्रीमनोरम्य नामक एक बहुत ही सुन्दर नगर है। यहाँ पर शिवगुण नामक एक मेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम भाणी था। कालान्तर में उनके एक समग्र गुणयुक्त तथा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम उन्होंने वैरिसिंह रख डोड़ा था। बड़े होने पर श्री विजयदेवसुरि के उपदेश को सुनकर उसे वैराग्य हो गया। उसने मातासे व्रत में दीक्षित होने की आज्ञा मांगी। माता अपने पुत्र के इस आश्रमिक विचार को देखकर बड़ी व्यथित हुई। माता की असह्य वेदना को देखकर पुत्र ने अपना विचार स्थगित कर दिया। तदनन्तर माता पिता के स्वर्गवास हो जाने पर उसने स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली। तबसे उनके गुरु ने वि० सं० १७१० वैशाख शुक्ल दशमी को गन्धपुरी में उन्हें गच्छ का नायक बना दिया। यही श्री विजयप्रभुस्वामी हैं। इनके आश्रम में निरन्तर श्राव्याय, व्रतचर्या और करपाठ इत्यादि चलता ही रहता था। आरम्भ सद्यः निरन्तर धर्मचर्या में इनके आश्रम में लीन रहता था। इस प्रकार गुरु के जीवन वृत्त, प्रदिमा और आश्रम का वर्णन करने के बाद मेघ से कवि ने गुरु को अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है।

सन्देश में कवि ने सर्व प्रथम गुरु के प्रताप का वर्णन किया है। तदनन्तर गुरु के वियोग में अपनी व्याकुलता और असहायवस्था का वर्णन किया है। अन्त में गुरु से प्रार्थना की गई है कि वह अवसर कब आयाग जय ध्यान मुद्रा के साथ वह गुरु की साक्षात् स्तुति कर सकेगा। फिर कहा गया है कि बचपन से ही गुरु की

सेवा करने वाले शिष्य को केवल इतनी ही विनती है कि उसे गुरु के हृदय में कुछ आश्रय मिल जाय ।

गुरु को सन्देश सुनाने के बाद गुरु से कुछ प्रत्युत्तर लाने का भी मेघ को पगमश दिया गया है ।

कवि की प्रार्थना सुनने के बाद मेघ उसके गुरु के पास जाता है और कवि का सन्देश सुनाता है । तदनन्तर गुरु के प्रतिसन्देश को लेकर वह लौट आता है और कवि को उसके गुरु का प्रतिसन्देश सुनाना है । गुरु की कुशलवार्ता तथा कृपादृष्टि का समाचार पाकर कवि को बड़ी प्रसन्नता होती है ।

यस यहाँ पर ही काव्य समाप्त हो जाता है ।

## काव्य समीक्षा

जैसाकि काव्य के नाम से स्पष्ट है इस काव्य में मेघदूत की समस्यापूर्ति की गई है । मेघदूत के पद की चतुर्थ पंक्ति को समस्या मानकर यह काव्य लिखा गया है तथा साथ में मेघ को दूत भी बनाया गया है । अतः दूतकाव्य तथा समस्या पूर्ति इन दोनों दृष्टिकोणों से यह काव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है । काव्य में कुल १३१ श्लोक हैं । अंतिम श्लोक अनुष्टुप् छन्द में है । इसमें कवि ने लेखक के रूप में अपना उल्लेख किया है । अवशिष्ट १२० श्लोकों में काव्य की कथा उपनिबद्ध है । पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन भी काव्य का नहीं किया गया है । यों तो भाषा तथा शैली की दृष्टि से यह मेघदूत का ही अनुकरण है, लेकिन प्रिय तथा भान की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत से नितान्त भिन्न है । किसी प्रिय का अपनी प्रेयसी के लिए सन्देश न डोकर इस काव्य में एक भक्त शिष्य द्वारा अपने श्रव्य गुरु के पास सन्देश भेजा गया है । काव्य का मुख्य रस अथवा भाव भक्ति ही है ।

जिस तरह मेघदूत में मेघदर्शन, मेघ स्थागत, सन्देश ले जाने की प्रार्थना और मार्ग वर्णन इत्यादि पाया जाता है, ठीक उसी तरह इस काव्य में भी यही वर्णनक्रम करि ने रखा है । मेघदूत में मेघ के सम्बन्ध में कहा गया है —

धूमज्योतिः सलिलम्रुता सन्निपातः क्व मेघः  
सन्देशार्थं क्व पटुकण्ठे प्राणिभिः प्रापणीयः ॥

इसी तरह इस काव्य में भी मेघ को दूत बनाने समय कवि कहता है—

कथाय प्रायः पवनसलिलज्योतिषा ॥ सन्निपातः  
कथार्थश्चार्थः प्रवणकण्ठे यों प्रियेयः सः यं ॥१४॥



यहां भाव तथा भाषा दोनों में ही बड़ी समानता है। जिस प्रकार उज्जयिनी नगरी का मेघदूत में बड़ा उदात्त वर्णन किया गया है, उसी तरह औरंगाबाद का भी कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। कवि मेघ से कहता है —

धन्योऽसि त्व जलद पटले ! दक्षिणस्या प्रविश्य  
दृष्ट येन प्रवरनगर सारमेतज्जगत्या ।  
मुन्ते भाग्ये भुवि नु मरता देवशैलाद्विधाऽपि  
शेषे पुण्यैर्ह तमित्र दिव कान्तिप्रत्नएडमेकम् ॥३२॥

आगे चलकर औरंगाबाद की समृद्धि का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

अस्या मुक्तामरकतपवित्रीप्रसूनेन्दुरक्ष  
पूगान् दृष्ट्वा तरणिशिखि ध्रान्तकान्तिस्वरूपान् ॥  
पण्यधेणीधिपणिगणितान् बिद्रु मध्वेदराशीन्  
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्राशेषा ॥३४॥

देवकपत्तन नगर के वर्णन में भी अलका के वर्णन की छाया दिखाई पड़ती है। कवि नगर का वर्णन करते हुए कहता है —

दण्डश्चैत्ये कुसुमनिधये बन्धन विप्रयोगो  
दातुर्द्वारे चलकुटिलता सुभ्रुवोर्नान्य लोके ।  
कोशासक्त्या ह्यगुरुदहनो द्यूतधूमस्य मन्ये  
विसंशाना न खलु च वयो यौवनादन्यदस्ति ॥३३॥

अलका नगरी का जिस तरह शृ गाररसपूर्ण वर्णन किया गया है, उसी तरह इस नगर का भी शृ गार रस-युक्त चित्र अंकित किया गया है —

रात्रौ यस्या कथमपि सप्रानीय संचारिकाभि  
यासावास प्रणयिसन्निधे स्थापिता या मशोदा ।  
तासा भोगादरिणि (१) रमणे दीपमुद्दिश्य मुक्तो  
ह्रीमूढाना भवति विफलप्रेरणश्चूर्णमुष्टि ॥३४॥

अलका नगरी की तरह देवकपत्तन नगर में भी रात्रि में अभिसारिकाएं अपने प्रियतमों के पास आती हैं —

कामादेशाद्गमनसमयऽलक्षक यत्कपाद  
न्यासेवासंमृगणुसुखालेपने यंत्र भित्ती ।  
मुत्तमगम्यो विलुलितकण्ठे कंकणे शीर्षगन्धे  
नरो भागं सयितुर्दये सूच्यते कामिनीनाम् ॥३६॥

जिस प्रकार मेघदूत में यक्ष के यहा वापी इत्यादि का वर्णन किया गया है ,  
इसी प्रकार देवपत्तन नगर में भी तडाग और वापिया वर्णित की गई हैं —

सिन्धोम्वत्रानुज इव लसद्दीचिगमास्तडाग  
उद्यानान्तस्तरण्यसो दीर्घिकास्तस्य कान्ता ।  
सासा चचन्नयननलिनैर्मोहिता मानसाम्भो  
न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्तग्रामपि प्रेक्ष्य हसा ॥८७॥

इस प्रकार विष्ट पाठक देख सकते हैं कि समस्या पूर्ति के साथ २ कवि ने  
मेघदूत के मूल भाग को भी स्थान २ पर सुगन्धित रक्खा है ।

कहीं २ कवि ने २४ गार रस के वातावरण की पंक्ति को प्रसगाश्वर में रही  
कुशलता से व्ययहृत कर दिया है । मेघदूत में यक्ष अपने वियोग में अपनी प्रेयसी  
को सभायना करते हुए कहता है —

जाता मन्ये तुहिनमथिता पदुमिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥

इस काव्य में लेखक ने अपने गुरु के आश्रम में मोह इत्यादि की परिषद् का  
वर्णन करते हुए लिखा है —

प्राप्तस्तोभा धिजयिनि गुरो देवनाम्नीह पूर्वम्  
मोहादीनाम समपरिषच्छ्रकया शकुकरपा ।  
साम्राज्येऽस्य प्रथमपवनैर्वेपमाना भयात्ता  
जाता मन्ये तुहिनमथितापदुमिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥८३॥

मेघदूत में यक्ष की पत्नी के सम्बन्ध में कहा गया है —

पृच्छन्ती वा मधुर-यचना सारिका पञ्जरस्थाम्  
कञ्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥८४॥

इस काव्य में कच्छ देश का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

। ११ अम्बूद्वीपे भरतपुत्रसुधामण्डनं कच्छदेशे  
यत्राम्भोधिर्भुवमनुकल पूज्यत्येव रत्नैः ।  
पृच्छन् पृता जननललनैः सुरिणा यैरमूनि  
कञ्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥८५॥

। हे रसिके ! सुरिणा ये जनन-ललनैः त्वं पृता, भर्तुः अमूनि जनन-ललनानि  
त्वं कञ्चित् स्मरसि , हि त्वं तस्य प्रिया इति पृच्छन् अम्भोधि यत्र भुज पूज्यती  
त्यर्थयोमना ।

कवि ने कितने कौशल से प्रसंगान्तर में मूल पंक्ति को प्रयुक्त किया है।

मेघदूत में यत्न अपनी प्रेयसी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहता है—

साभ्रेऽह्नीव स्थल कमलिनी न प्रनुदा न सुप्ता ॥२॥२६॥

इस काव्य में घेरिसिंह जय व्रतचर्या के लिए माता की आज्ञा मांगता है, तब माता की अवस्था का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

जाता माताऽवचनेनपियाऽसह्यदुःखाभिघातात्  
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनी न प्रनुदा न सुप्ता ॥१०३॥

विरहावस्था के प्रसंग में आई हुई पंक्ति को यात्सल्य भाव के प्रसंग में कवि ने कितनी कुशलता से व्यवहृत किया है। —

कहीं कहीं कवि ने भृगवरस की पंक्ति को शाल्यरस के अनुकूल बना दिया है—

मेघदूत में यत्न अपना सन्देश सुनाते हुए कहता है कि यह—

अगेन/ग प्रतनु तनुना गाढेत्पेने तप्तम्  
साक्षेणाक्षप्रतमयिरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।  
उप्योच्छ्वास समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती  
सकरपैस्तेरिषति विधिना वैरिणा ददमार्गं ॥२॥४१॥

उपयुक्त पद्य की चतुर्थ पंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुए कवि ने इस काव्य में लिखा है—

कर्तुं कश्चित्स्पृहयेति पुन स्तीर्थं यात्रा ससंगम्  
कश्चिद्बोद्धुं प्रतयिधिमर्षं बोधनानि वाचित् ।  
इत्थं संघो गुरुगुरुलसद्मकिरणापि धर्मे  
सकरपैस्तेरिषति विधिनाऽवैरिणाऽदमार्गं ॥११४॥

श्री विजय प्रभु स्वामी के आग्रह का यह वर्णन है। यद्य प्रत्येक व्यक्ति अनुकूल दैव से स्वतन्त्र मार्ग पाकर विभिन्न सक्त्तियों के द्वारा धर्म में प्रवेश कर रहा है। माय के विषयास करने में कवि को कुछ सन्धि-वशेष भी उठाना पड़ा है लेकिन फिर उसका प्रयास सफल है।

इसी तरह विरहिणी यक्षियों की स्मृति में यत्न कहता है कि उसका सौन्दर्य अनुपम है। कहीं भी उसका सादृश्य नहीं मिलता है।—

हन्तैरुस्य कचचिदपि न ते भीरु सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

इस काव्य में गुरु क तेज, शान्ति, धीरता और परोपकार का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

पूर्णाचन्द्र स्तम्भगग्निभा भाग्यत्येष पूर्णाम्  
तेजस्वित्व स्पृशति तरणिर्गौरता मेरुद्वि ।  
अम्भोवाह प्रवहति तथाऽन्योपकारप्रकारम्  
हन्तैरुस्य कचचिदपि न तेऽभीरुसादृश्यमस्ति ॥

जहाँ २ कवि ने समस्या पूर्ति में भाव परिवर्तन किया है, वहाँ उसे मूल पंक्ति में भी कुछ झिझक दर्शाना करनी पड़ी है। मेघदूत में यत्तिथी का विविध चोष्टाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है —

प्रायेणैतेऽरमणिरिहेष्यगनाना विनोदा ॥२॥४६॥

इस पंक्ति की समस्या पूर्ति में श्री विजय प्रभु-रामों के उत्पन्न होने पर भी उनकी भाता के दर्प का वर्णन करते हुए कवि न लिखा है —

गायत्युच्चैर्हंसति रमते मोदते स्मालिरगै  
प्रायेणैतेऽरमणिरिहेष्यगनाना विनोदा ॥१००॥

प्रिय विरह में गाना, हसना और मखियों के साथ खेलना हो ही कैसे सकता है। अतः कवि को सधिनश्लेश उठाना अनिवार्य सा ही हो गया है।

कहीं कहीं समस्या पूर्ति के लिए कवि को बड़ा मानसिक परिश्रम करना पड़ा है। मेघदूत में उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुए कहा गया है —

यय स्त्रीणा द्रुगति सुरत ग्लानिमगानुकूल  
(सि शिप्रागत प्रियतम इव प्रायेणावाद्भुकार ॥१॥३७॥

इस पंक्ति की समस्या पूर्ति करते समय कवि औरंगाबाद का वर्णन कर रहा है। मेघ को सम्बोधन करते हुए कवि कहता है —

प्राश्लेष्टु कमल उदना वीचिहस्तै सरस्य  
प्रोक्ता वान्ता इव सुखयसा त्वा विजानन्ति शब्दे ।  
मुक्ता नस्तत्र विरहप्रियुग कुत्र गन्तासि भोग्योऽ  
सि प्राधात प्रियतम इव प्रायेणावाद्भुकार ॥३३॥

‘अभि, प्राय + (प्र + अय = रक्ष) अतः ऐसा पदच्छेद मानकर त्व भोग्य असि, अतः प्राय = रक्ष’ यह अर्थ सिप्रागत पद का निष्कालना पड़ता है। समस्यापूर्ति

के कारण 'सिप्रागत' पद का जो अग भग हुआ है, उससे उसका मूल अर्थ तो लुप्तप्राय ही हो गया है। साथ में बड़ी स्तिए कल्पना भी करनी पड़ी है।

यद्यपि कई स्थानों में समस्या पूर्ति के कारण कवि को मूल पंक्ति के भाव को उल्टा करना पड़ा है अथवा भागान्तर में बदलना पड़ा है, फिर भी समस्या पूर्ति में कवि प्रायः सफल ही है। उपर्युक्त स्थल काव्य में थोड़े ही हैं। कदा<sup>२</sup> तो काव्य में मेघदूत के समान ही भाव और भाषा दृष्टिगोचर होती है। औरंगाबाद का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

गीर्वाण स्त्री सदृश सुदृशा तस्य सौधोर्ध्वगामी  
लोलापागै र्यदि न रमसे लोचनै यचितोऽसि ॥२६॥

इसी प्रकार दजगिरि नगरी का वर्णन करते हुए मेघ को परामर्श दिया गया है।

तारुणेन स्मरपरधरा शिक्षितानाग्रयुस्तिम्  
रात्रौ स्त्रीणामुपपतिगतौ श्रोणिभारालसानाम् ।  
देहालम्ब्य त्रिमलतडिता दशंयस्तत्र माग  
तोपोत्सर्गं स्तनित मुखरो मा स्म भू र्निक्लमास्ता ॥४१॥

उपर्युक्त दोनों पद्य मेघदूत के पूर्व भाग के 'वक्त्रं पन्था यदपि भवत' इत्यादि तथा गच्छन्तीनां रमण्य वसति योविता तत्र नक्तम्' इत्यादि पद्यों से पूर्णतया मिलत जुलते हैं। इस प्रकार समस्यापूर्ति की दृष्टि से मेघदूत को समस्या मानकर लिखे गए हुए दूत काव्यों में यह काव्य सर्वोत्तम रचना है।

जैसाकि काव्य की कथा से स्पष्ट ही है, कवि ने अपने गुह के लिए विव्रति स्वरूप यह काव्य लिखा है। अतः गुरु भक्ति तथा जैनधर्म का यत्र तत्र काव्य में स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। कवि की गुरुभक्ति श्लाघनीय है। गुरु के वियोग में अपनी अरुन्धा का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

नित्यं वेत स्फुरति चरणाभ्योजयो सुरिराज<sup>१</sup>  
कायं सर्वं समयविषये सनिवद्धान्तभाव ।  
नो<sup>२</sup> चेद्दी दग्गुरु सुरतरु प्राप्य क स्यादुद्वीषान् ।<sup>३</sup>  
न स्यादन्योऽप्यहमिह जना य पराधीनवृत्ति ॥८॥

१ सुरिराजस्येत्यर्थः ।

२ कायस्य त्रिपयवृत्तविघ्न शून्यत्वे ।

३ अतिदूरवर्ती ।

कवि ने अपनी गुरुभक्ति का कितनी सरल और भावपूर्ण शैली में वर्णन किया है।

आगे चलकर अपने गुरु का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तत्राम्माक विभुरभिनये पात्रवृद्धे परीत  
स्फीतच्छायोऽकुलम्भला सनिधत्ते प्रतीकै ।<sup>१</sup>  
त्रिभुवनधो मनसि भगवाश्चादित्या त्रिलासै  
काक्ष्यन्त्योऽदनमदिरा दोहदच्छदुमनाऽस्या ॥८८॥

गुरु के प्रभाव, सौन्दर्य और शील का कवि ने कैसा सुन्दर चित्र यहाँ पर अंकित किया है।

जैन-धर्म का कोई विवरण तो काव्य में नहीं पाया जाता है, लेकिन स्थान २ पर जैन प्रतिमाओं और तीर्थकरों का अस्त्र के साथ उल्लेख किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मेघ को देवपत्तन नगर में जैन प्रतिमाओं की स्तुति करने तथा तज्जन्य अर्पण कान्ति प्राप्त करने का परामर्श देते हुए कवि कहता है—

नाना रत्नाभरण किरणैर्भूषिताघपितार्च्याम् ।<sup>२</sup>  
जैनभर्चा<sup>३</sup> तत्र त्रिमत्त काऽपि कान्तिर्भवित्री ॥९७॥

प्रतिमा के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

लोका बुष्टाद्गलित वपुषो निर्मिरोका सशोका  
अर्हत्स्नानामृतभरसर स्नातमात्रा क्षणेन ।  
भूतग भाग्यललिततनयो दिव्यभोगे भजन्ति  
सो कण्ठानि प्रिय सहचरी सभ्रमालिगितानि ॥९८॥

इसी प्रकार एलोर् पर्यंत पर पार्व्यनाथ<sup>४</sup> और तु गिआ पर्यंत पर धूपमनाथ<sup>५</sup> तथा सिद्ध शैल पर भी धूपम भगवान् की प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है।

१ अंगी ।

दित्रिस्वर्गे उषिता घूषिता देवा स्तैरर्च्या पूज्याम् ।

३ अर्चाम्=प्रतिमाम् ।

४ दे० श्लोक सं० ४२ ।

५ दे० श्लोक सं० ४८ ।

६ दे० श्लोक सं० ६३ ।

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को काव्य के विषय, भाव, भाषा, और शैली का सम्यक् ज्ञान हो गया होगा। काव्य का मुख्य रस शान्त रस है। माधुर्य और प्रसाद गुण तथा वैदर्भी रीति ही इस काव्य में पाई जाती है। कवि ने समस्या पूर्ति करते हुए भी काव्य को निलष्ट नहीं होने दिया है। काव्य के पढ़ते समय मेघदूत जैसा ही आनन्द आता है। इसका एक कारण तो यह भी हो सकता है कि इसमें मेघ को ही दूत बनाया गया है अतः बिना किसी भाव विपर्यास के समस्या पूर्ति हो गई है। समीक्षा के प्रसंग में इस बात का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि इस काव्य का लेखक भी मेघ नाम का है, समस्या भी मेघदूत से ली गई है तथा दूत भी मेघ को ही बनाया गया है। दूत वाक्यों तथा मेघदूत की समस्या पूर्ति परक वाक्यों में यह काव्य अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।



## चतुर्थ अध्याय

### जैनेतर सन्देश-काव्य

- १ धोयि कवि का पवन-दूत
- २ पूणसारस्वत का हम सन्देश
- ३ वेदान्त-देशिक का हस-सन्देश
- ४ अनिर्ज्ञात कवि का हम सन्देश
- ५ लक्ष्मीदास का शुरु मन्देश
- ६ वासुदेव कवि का भृगु मन्देश
- ७ उद्दण्ड कवि का कोकिलमन्देश
- ८ उदयकवि का मयूर मन्देश
- ९ धामन-भट्ट-वाण का हसदूत
- १० विष्णुदाम का मनोदूत
- ११ विष्णुघात का कीरुसन्देश
- १२ रूप-गोस्वामी का उद्धव-सन्देश
- १३ रूप-गोस्वामी का हस-दूत
- १४ माधवकवीन्द्र का उद्धव-दूत
- १५ शतावधानकवि का भृगु-दूत
- १६ रुद्रन्यायपचानन का भ्रमर-दूत
- १७ रुद्रन्यायपचानन का पिक-दूत
- १८ कृष्ण-सार्वभौम का पटाकदूत
- १९ तैलग ब्रजनाथ का मनोदूत
- २० श्रीकृष्ण न्याय पचानन का वात-दूत
- २१ भोलानाथ का पान्थ-दूत
- २२ नित्यानन्द-शास्त्री का हनुमद्दूत



## धोयि कवि का पवनदूत ( वि० द्वादश त्रयोदश शतक )

पवनदूत एक सुन्दर सदृश नायक है। यह कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया है। 'धूयि' 'धोयी' 'धोई' अथवा 'धोयिक' नामक कवि इसका रचयिता है। यह कवि वगाल के मन-वश के राजा लक्ष्मणसेन की सभा में राज कवि था। कविराज इसकी उपाधि थी। पवनदूत के श्लोक स० १०१ तथा १०३ में कवि ने अपने लिए स्वयं 'कविन्माभूता चक्रवर्ती' और 'कविनरपति' कहा है। पवनदूत के अन्त में भी 'इति श्री धोयीकविराजविरचितम्' इत्यादि श्लोक मिलता है। लक्ष्मणसेन की सभा में रजल पाच रत्नों का उल्लेख करने वाले—

गोमर्धनश्च शरणो जयदेव उमापति ।

कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ॥

श्लोक में कविराज पद धोयि कवि के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। किसी कवि की केवल उसकी उपाधि से ही उल्लिखित करना कोई नई बात नहीं है। पहले राजाओं का भी केवल उपाधियों से ही कभी कभी उल्लेख होता है, यहाँ तक कि सम्राट् अशोक के लिए भी केवल प्रियदर्शी ही अधिक स्थलों पर लिखा हुआ पाया जाता है।

धोयी कवि राजा लक्ष्मणसेन की सभा में राज कवि था। राजा लक्ष्मणसेन का समय सर्वसम्मति से केवल इतना ही निश्चित है कि यह ई० पारहवीं शताब्दी के प्रथम या द्वितीय भाग में राज्यसिंहासन पर बैठा था। अतः धोयि कवि का कार्यकाल भी ई० द्वादश शतक या वि० द्वादश शतक का उत्तरार्ध और त्रयोदश शतक का पूर्वार्ध ही ठहरता है। धीरदास के सदुक्तिर्णामृत में जो कि शक स० १०७ अथवा स० १००६ ई० का लिखा हुआ है, धोयि के पद्य पाए जाते हैं। तेरहवीं शताब्दी के मध्य में जटहण द्वारा लिखी हुई सुभाषितमुक्तावलि तथा चौदहवीं शताब्दी में लिखी गई शाङ्गधरपद्धति में भी धोयिरचित पद्यों का उल्लेख मिलता है। अतः तेरहवीं शताब्दी के मध्य या चौदहवीं शताब्दी से पूर्व का समय ही धोयि कवि का समय मानना चाहिए।

धोयि कवि के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में केवल इतना ही पता है कि यह राजा लक्ष्मणसेन का सभापंडित था। उसके जन्मस्थान का कुछ भी पता नहीं है। उसकी जाति निश्चित करना और भी कठिन है। इस सम्बन्ध में दो अत्यन्त विरोधी विचार हमारे सामने आते हैं। प्रथम यह कि धोयिकवि ब्राह्मण था। द्वितीय यह कि यह वगाल की वंश जाति का था। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने

लिखा है कि वशाजलियों के अध्ययन से धोयिकवि पालधि गणि और कश्यप गोत्र का राष्ट्रीय ब्राह्मण ठहरता है ।

धोयि कवि के वैद्यजातीय होने का विचार वैद्यवशावलीग्रन्थों में आए हुए दुहिसेन या धूयिसेन नाम के धोयि नाम से तादात्म्य पर निर्भर है ।<sup>१</sup> इस प्रकार धोयि कवि की जाति के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं है । कविराज उपाधि केवल वैद्य जाति के लोगों की ही हो, ऐसा भी कुछ निश्चित नहीं है । ब्राह्मण जाति के जयदेव कवि को भी कविराज कहा ही जाता है ।

धोयि कवि की केवल एक रचना पञ्चदूत ही हमें प्राप्त है । यह कुछ निश्चित नहीं कि इसने और भी ग्रन्थ लिखे या केवल इसी एक काव्य के आधार पर उसे कविराज कहा जाता है । कुछ छुटकर पद्य जो पञ्चदूत में नहीं हैं, सुभाषित ग्रन्थों में धोयि कवि के नाम से पाए जाते हैं । लेकिन धोयि के किसी और ग्रन्थ का इन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है । पञ्चदूत के श्लोक सं० १०४ में 'वाक्सन्धर्भा कतिचिद् मृतस्यन्दिनो निर्मिताश्च' इन शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है कि धोयि कवि ने और भी ग्रन्थ लिखे होंगे । कवि के कथन से, सुभाषित ग्रन्थों में उसके नाम से दिए गये पद्यों से तथा कविराज उपाधि से यह सिद्ध होता है कि उसने अन्य भी कई ग्रन्थ लिखे होंगे । लेकिन इस समय केवल पञ्चदूत ही हमें उपलब्ध है ।

धोयि कवि अपने समय का एक प्रसिद्ध कवि था । उसके आश्रयदाता राजा लक्ष्मणसेन की सभा में सभी प्रकार के विद्वान् थे । जयदेव कवि ने उमापतिधर, शरण, गोवर्धन और धोयि तथा स्वयं का उल्लेख किया है ।<sup>२</sup> यह पांच उसकी सभा के रत्न थे । कहीं २ इसको श्रुतिधर नाम से भी निर्दिष्ट किया गया है । सद्भुक्ति-कर्णामृत में एक श्लोक आता है । उसका पूर्ण भाग तो पञ्चदूत के श्लोक सं० १०१ के पूर्ण भाग से विरकुल मिलता है । यथा—

दन्तिव्यूह कनककलित चामर हेमदण्डम्  
यो गीडेन्द्रादलभन कयिष्माभूता ध्वजगतां ।

और उत्तरार्ध इस प्रकार है—

रमातोयश्च श्रुतिधरतया विक्रमादित्यगोष्ठी  
विद्यामर्तुं यत्नं धरद्वेराससाद् प्रतिष्ठान् ॥

१. पुण्डरीकाक्षसेनस्य दुहिसेन सुतोऽभवत् ।

धरस्य त्रिपुरारयस्य तनयागमं सम्मन ॥ कविकण्ठहार ।

सुधाशोरत्रैविष पुण्डरीकसेनात्तनूजोऽजनि धूयिसेन ॥ चन्द्रप्रभा पृ० २१३

२. २० गीत गोविन्द । १।४।

जयदेव ने भी धोयि करि के लिए श्रुतिघर विशेषण का प्रयोग किया है। अतः धोयि और श्रुति घर को एक ही व्यक्ति मानना चाहिये।

## पवनदूत की रूथा

गौड नरेश क राजा लक्ष्मण सेन की दक्षिण दिग्विजय में मलयपरंत पर कनक नगरी में रहने वाली कुञ्जलयवती नाम की एक गन्धर्व कन्या राजा को देखकर उससे प्रेम करने लगती है। राजा लक्ष्मणसेन बंगाल में जब अपनी राजधानी में लौट आता है, तो कुञ्जलयवती उसके विरह में बड़ी व्याकुल रहने लगती है। वसन्त ऋतु के आने पर उसन्त की वायु को अपना सदेशवाहक बना कर वह राजा के पास अपनी विरह व्यथा सुनाने के लिए भेजती है। काव्य की मूल कथा इस इतनी ही है। मलयपरंत से बंगाल तट के मार्ग का करि ने बड़ा ही कश्चित्कम्य वर्णन किया है। राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर के वर्णन के बाद कुञ्जलयवती की नियोगा यस्था का बड़ा उल्लेख वर्णन किया गया है। अन्त में फिर कुञ्जलयवती का सन्देश दिया गया है।

## पवनदूत का ऐतिहासिक आधार

पवनदूत क श्लोक सं० २ में 'हृष्ट्या देव भुवनविजये लक्ष्मण क्षीणिपालम्' ऐसा उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि राजा लक्ष्मणसेन दिग्विजय के लिए अग्रय निजला था और दक्षिण में मलयपरंत तट गया था। अब प्रश्न यह उठता है कि यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य है या करि ने अपने आश्रय दाता की प्रशंसा करने के लिए अपनी कल्पना से ही ऐसा लिखा है।

सेन राजाओं के अब तक प्राप्त हुए शिलालेखों से राजा लक्ष्मणसेन की दिग्विजय यात्रा का कोई घुनान्त उपलब्ध नहीं होता है, लेकिन विभिन्न साम्रपत्रों में पाये गये फुटकर उद्धरणों से हम उसकी विजय-यात्रा क सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष अग्रय निदाल सकते हैं। राजा लक्ष्मण सेन क मधवाई नगरपाल साम्रपत्र में ऐसा उल्लेख है—

यस्य कांमारनेलि कलिगागनाभि ।

यह यनि राजा लक्ष्मणसेन क कलिग देश पर किय गये आक्रमण की ओर ही संशय करती है। इसी साम्रपत्र में 'येनामी काशिराज समग्रभुवि जित' ऐसा आया है। इससे लक्ष्मण के काशीविजय की भी पुष्टि होती है। लक्ष्मणसेन क पुत्र विजय

रूप सेन के एक ताम्रपत्र में लक्ष्मणसेन की विजयों का और भी विस्तृत वर्णन मिलता है—?

वेलाया दक्षिणाधोर्मुसलधरगदापाणिसत्रासवेद्या  
क्षेत्रे विश्वेश्वरस्य स्फुरदसिखरणाश्लेषगगोर्मिभाजि ।  
तीरोत्सग त्रिवल्या कमलमयमपारम्भनिर्व्याजपूते  
येनोच्चैर्यज्ञयूपै सह समरजयस्तम्भमाला न्यधायि ॥

इस श्लोक से राजा लक्ष्मणसेन की दक्षिण में तामिलविजय तथा उत्तरपश्चिम में काशी और प्रयाग तक की विजय का प्रमाण मिलता है ।

मधवाई नगर के ताम्रपत्र में 'विक्रम उशीकृत कामरूप' विशेषण से लक्ष्मणसेन की पूर्व में आसाम विजय तक का प्रमाण मिलता है ।

यद्यपि किसी भी शिलालेख से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजा लक्ष्मणसेन की दक्षिण-पश्चिम, काशी तथा प्रयाग और आसाम की विजय का प्रमाण नहीं मिलता है, फिर भी विभिन्न ताम्रपत्रों द्वारा और उसके समकालीन धोयि कवि के वर्णन से हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं दीखती कि राजा लक्ष्मणसेन ने भी दूसरे भारतीय शक्तिशाली राजाओं की तरह दिग्विजय के लिये यात्रा की थी । इतना सच

निश्चित होने पर भी धोयि कवि का यह कथन कि राजा लक्ष्मणसेन अपनी दिग्विजययात्रा में मलयपर्यंत माला तक पहुंचा था, ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि मलय प्रदेश की विजय का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । सभर है कि कवि ने केवल अपने अत्युक्ति प्रेम के कारण तथा अपने काव्य की नायिका को उपयुक्त स्थान प्राप्त करने के लिये राजा लक्ष्मणसेन की मलयपर्यंतमाला तक की यात्रा का वर्णन कर दिया है । अथवा यों भी कहा जा सकता है कि चूंकि उसकी माता चालुक्य वंश की थी, इसलिये चालुक्य वंश के किसी राजकुमार के साथ या स्वतंत्र रूप से राजा लक्ष्मणसेन घूमने के लिये कभी मलयपर्यंत पर गया होगा और उसी यात्रा का इस काव्य में कवि ने उल्लेख किया है ।

### पवनदूत में भौगोलिक विवरण

मलयपर्यंतमाला से बंगाल में राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर तक के मार्ग के वर्णन से भौगोलिक महत्त्व की बहुत सी बातें हमें इस काव्य में मालूम होती हैं । कवि ने समय में दक्षिण भारत और बंगाल के मध्य में आने वाले के सहरी मार्ग का तो कवि के वर्णनों से हमें वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि कवि ने उसी मार्ग का अनुसरण नहीं किया है । प्रत्युत दक्षिणभारत के बहुत से महत्त्वपूर्ण स्थानों

और प्राकृतिक दृश्यों का आनंद लेने की इच्छा में चलने लग पड़ा, यद्यपि वे सब स्थान साधारणतया काम में आने वाले मार्ग में नहीं पड़ते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पूर्व में स्थित काचीनगरी से वायु को केरलदेश ल जाया गया है, ताकि मातृशान् पर्यंत और पन्थासर सरोवर तक पहुँच करने का कवि को अपसर मिल सके। वास्तव में इनमें से कोई भी व्याग दक्षिण से उगल कर क सीपे मार्ग में नहीं पड़ता है।

वायु की कथा मलयपर्यंतमाला ( पश्चिमी घाट के दक्षिण भाग ) पर स्थित एक काव्यनिरुद्ध गन्धर्वनगरी कनकनगरी के वर्णन से प्रारम्भ होती है। वायु से मलयपर्यंतमाला से चल कर पाण्ड्य देश जाने के लिये कहा गया है। यह देश मलयपर्यंत श्रेणी से केवल दो कोस के अन्तर पर बताया गया है। यह अन्तर केवल आनुमानिक ही प्रतीत होता है और यह सूचित करता है कि मलयपर्यंत पाण्ड्य देश के सीमा प्रदेश पर स्थित या तथा पाण्ड्य देश में सम्मिलित नहीं था। ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित उरगपुर नाम के नगर को पाण्ड्य देश की राजधानी बताया गया है। उस उरगपुर का कालिदास ने भी रघुवंश के षष्ठ सर्ग में श्लोक सं० ५६-६० में वर्णन किया है। वर्तमान उरगूर जिससे कि उरगपुर मिलता जुलता है, न तो ताम्रपर्णी नदी के तट पर है और न कभी इसके पाण्ड्य देश की राजधानी रहने का कोई प्रमाण मिलता है। चोल राजाओं की राजधानी तो यह बहुत दिनों तक रहा है। मदुरा और कोरकई में से जिनका कि इतिहास में पाण्ड्य राजाओं की राजधानी होना सिद्ध है, कोरकई ताम्रपर्णी नदी के मुहाने पर अवश्य स्थित थी। संभव है कि कवि ने भूल से इस कोरकई को ही उरगपुर समझ लिया हो।

उरगपुर के बाद वायु से सेतुगुर-रामेश्वर जाने के लिये कहा गया है। इसके बाद काचीपुर ( आधुनिक काजीवरम् ) जाने का वायु को परामर्श दिया गया है। काचीपुर की 'वृत्तिश्रुत्या दिशोभूषणम्' कहा गया है। श्लोक सं० १३ से पता चलता है कि काचीनगरी सुयला नाम की नदी के तट पर स्थित थी। लेकिन आज कल काजीवरम् के आस पास इस नदी का कोई चिह्न उपलब्ध नहीं होता है। पालार नाम का एक नदी काजीवरम् के आस पास बहती है। लेकिन पालार और सुयला नाम में ध्वनिशाम्य के आधार पर कोई सम्बन्ध स्थिर नहीं किया जा सकता। वर्तमान काजीवरम् के पास बहने वाली वेगवती नाम की नदी को हम बहुर सुयल नदी या ही दूसरा नाम समझ सकते हैं, क्योंकि सुयला और वेगवती का अर्थ एक ही है।

काचीनगरी के बाद वायु से कावेरी नदी की ओर जाने के लिये कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मलयपर्यंत से काची तक के मार्ग में इस नदी का वर्णन करना कवि भूल गया और फिर इस नदी के मदुरा को देखकर किसी तरह इसका वर्णन कर दिया गया है। कावेरी नदी के बाद पूर्व की ओर मातृशान् पर्यंत पर जाने

का फिर वायु को परामर्श दिया गया है। बिलारी (Bellary) के पास कुपल, मुद्गल और रायचूर के पटोस में पार जाने वाली पहाडिया ही माट्यमान् पर्वत हैं<sup>१</sup>। माट्यमान् पर्वत के पूर्व में पचाप्सर भील की स्थिति कुछ निश्चित नहीं है। केवल इतना ही निश्चित है कि यह विदर्भ या वरार के पूर्व में थी<sup>२</sup>।

इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि रामचन्द्रजी के वनवास में सत्रह स्थानों में से कति ने केवल दो स्थानों माट्यमान् पर्वत और पचाप्सर भील का ही उल्लेख किया है स्थान, जन दण्डकारण्य, किष्किन्धा और ऋष्यमूक पर्वत न्यादि का कोई उल्लेख नहीं किया है।

इसके बाद आन्ध्र देश में से होते हुए कलिंग देश की राजधानी कलिंग नगरी जाने को वायु से कहा गया है। श्लोक सं० २२ से ऐसा प्रतीत होता है कि यह नगरी समुद्र से बहुत दूर नहीं थी। गजम् जिल के मुखलिंगम् स्थान से जो कि समुद्र तट से बहुत दूर नहीं है, कलिंग नगरी का तादात्म्य निश्चित हो चुका है। कलिंग देश के गग राजाओं की यह राजधानी थी।

कलिंग नगरी के बाद वायु से सीधा उत्तर की ओर बढ़ने और विंध्यप्रदेश पहुँचने के लिये कहा गया है। विंध्य प्रदेश से अमरकंटक पहाड़ी के पास पास का प्रदेश ही समझा जाना चाहिये, क्योंकि विंध्य पर्वत श्रेणी पर पहुँचने के बाद ही नर्मदा नदी के तट पर जाने का वायु को परामर्श दिया गया है। विंध्य प्रदेश में रहने वाली भिरल जाति का भी इस अवसर पर उल्लेख किया गया है। कथा सरित् सागर ( १३, ३०-४० ) में भी विंध्यप्रदेश का भिरल जाति से सम्बन्ध बताया गया है।

नर्मदा के बाद वायु से ययाति नगरी जाने के लिये कहा गया है। ऐतिहासिक प्रमाणों से यह नगरी महानदी नदी के तट पर स्थित प्रतीत होती है। मध्यप्रदेश में सोनपुर राज्य में स्थित विनीतपुर ( आधुनिक बिनका या बीना ) नामक नगर को ही ययाति नगर समझना चाहिये। ययाति के जिसको कि महाशिवगुप्त भी कहा जाता है, शासन काल में विनीतपुर को ही ययातिनगर कहा जाने लगा था।

ययातिनगरी के बाद वायु से सुह्य देश ( दक्षिण पश्चिम बंगाल ) पहुँचने को कहा गया है। सुह्य देश बंगाल का ही एक भाग है। दूसरे भागों को पुण्ड्र, वग और उत्तरराष्ट्र कहते हैं। इसके बाद हुगली जिले में स्थित जिउली नामक स्थान

१ जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी १८६८ पृ० २५६-७

२ " " " " " " पृ० २६६

३ द० एपिग्रेफिया इंडिका, भाग ११ पृ० १८६

पर जाने का वायु को आदेश दिया गया है। तदनन्तर राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर का उल्लेख किया है। विजयपुर को स्कन्धासार और राजधानी दोनों ही बताया गया है। इस राजधानी की स्थिति के सम्बन्ध में ग्रिहानों में बड़ा मतभेद है। कुछ तो राजशाही जिले में स्थित विजयनगर<sup>१</sup> को और कुछ नदिया<sup>२</sup> को विजयपुर समझते हैं।

पवनदूत में पाये जाने वाले राजधानी के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह राजधानी सुल्लदेश में सम्मिलित थी और गया व तट पर स्थित थी तथा त्रिवेणी पार कर लोग यहाँ पहुँचते थे। इन सब बातों से यह निर्णय निरुल्लता है कि नदिया प्रदेश में ही विजयपुर राजधानी सम्मिलित थी। मुस्लिम इतिहासकारों ने भी लक्ष्मणिया नामक किसी राजा की राजधानी नदिया में बताई है<sup>३</sup>।

### साहित्यिक मभीक्षा

यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखा गया है। केवल भेद यह है कि इसमें प्रियसी की ओर से प्रिय के पास सन्देश भेजा गया है। समस्त काव्य में मन्दा क्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। काव्य में कुल १०४ श्लोक हैं। अन्तिम चार श्लोकों में कवि ने अपना कुछ परिचय तथा तत्परिचय की स्पष्टता व्यक्त की है। काव्य में पूर्वभाग और उत्तर भाग जैसा विषय विभाग भी नहीं किया गया है। माधुर्यव्यञ्जन वर्णों के साथ ललित भाषा में मिलष्ट समासों का परिहार करते हुए वैद्वर्मी रीति में यह काव्य लिखा गया है। मेघदूत का अनुकरण होत हुए भी इसमें यत्र तत्र मनीष उद्गमना के साथ सुन्दर कविता पाई जाती है। निम्न लिखित उदाहरणों से कवि की कल्पना शक्ति का पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। मात्पमान् पर्यंत का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तत्राद्यापि प्रतिभूरजलैर्जंजरा प्रस्थभागा

सीताभर्तु पृथुतरशुच स्वयन्मथुपतान् ॥१८॥

मात्पमान् पर्यंत से बहने वाले झरनों में रामचन्द्रजी के अधपात की क्या ही सुन्दर कल्पना की गई है।

विजयपुर राजधानी के वर्णन में भी कवि ने यहाँ ही प्रगल्भ कल्पना की है। कवि कहता है—

१ ६० गोदगजमाला पृ० ७४

२ ६० जर्नल एशियाटिक सोसायटी बंगाल १९०५ पृ० ४५

३ ६० तथाकृत-ए नासिरी ( रेवर्टी द्वारा अनूदित ) पृ० ५५४

मकीभूता मरन्तमयीं हाग्यष्टि दधाना  
 यस्मिन् बाला मृगमदमर्सापिच्छित्तु स्तनपु ।  
 चेतोर्तिस्मरहृतगृह दीपित स्नेहपरै  
 कृत्या यान्ति प्रियतमगृहानन्धकारे घनेऽपि ॥४५॥

प्रासादानां दिनपरिखतो गर्भदग्धागुरुणा  
 आलोदुगीर्णं सजलजलदश्यामलो यत्रधूमः ।  
 सद्यः क्रीडाकुतुकरभसारूढपोरीमुखेन्दु-  
 ज्योत्स्नासगप्रसृमरतम श्रेष्ठिशका तनोति ॥४६॥

विजयपुर राजधानी की समृद्धि निम्न श्लोक ॥ कितने प्रगल्भ रूप से व्यक्त की गई है—

स्निग्धश्यामारमणमणिभिर्नृधमुग्धालाला  
 पौरह्यामि क्रमुन्तरधो रोपिता प्रागणेषु ।  
 यत्रायत्नोपगतसलिलैर्नक्तमासितभूला  
 नापेक्षन्ते परिजनबधू पाणि विश्राणिताम्भ ॥३८॥

राजधानी की स्त्रियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

वाच ध्रोत्रामृतमनुगतभ्रूविलासा कटाक्ष  
 रूप हस्तोच्चयसमुचित स्निग्धमुग्धाश्च हारा ।  
 यात लालाक्षितमकृतक यत्र नेपथ्यमेतत्  
 पौरस्त्रीणां द्रविणसुलभा प्रक्रिया भूषण च ॥५२॥

यहां की स्त्रियों का सौन्दर्य स्वाभाविक ही है। उन्हें किसी बाह्य प्रसाधन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है।

धोयि कवि ने कुजलयन्ती के विरह वर्णन में काव्यगत परम्पराओं का ही अनुसरण किया है। कमलवृन्त, चन्दन और कर्पूर इत्यादि शीतोपचार सामग्री यथास्थान वर्णित की गई है। फिर भी कवि ने कुछ सुन्दर और नयीन परिस्थितियों का चित्रण किया है। कुजलयन्ती के विरह वर्णन में ३० श्लोक लिखे गए हैं। संस्कृत साहित्य में यह पद्य सर्वोत्तम कविता माने जाने योग्य हैं। यह विरह वर्णन बड़ा ही विशद, सजीव और करुणापूर्ण है। केवल परम्पराभुक्त वर्णन की ही भरमार नहीं है।

कुजलयन्ती की उत्सुकता का वर्णन करते हुए कवि ने उसका कैसा भावपूर्ण चित्र अंकित किया है—



विन्यस्याग्र भुवि चरणयो कोतुमोत्तमिनाक्षी  
 त्वत्सम्पर्कं प्रकृति सुभगामुन्नत ग्रीवप्राशाम् ।  
 उत्पश्यन्ती किमपि सुतनुर्लब्धते सौधशृगात  
 उद्भिन्नान्ध्रुस्थगितमसकृत् त्वत्समीपं विद्यासु ॥११॥

चिरहृदयथा में कुञ्जलयती के शरीर की कृशता का दृश्य करते हुए कवि कहता है—

मुष्टिप्राह्य किमपि विधिना कुर्वता मध्वभाग  
 मन्ये वाक्सा कुसुमधनुषो निर्मिना कर्मुजाय ॥१२॥

आगे चलकर नायिका की विरहावस्था का कवि ने और भी भावपूर्ण वर्णन किया है—

विन्यस्यन्ती शशिनि मयने दुर्गैरधुनारा  
 धाराश्यासैरकुलकुसुमामोद्घातुनामा ।  
 शुद्धपुच्छं भ्रमरविहग मूर्च्छया गतितासौ  
 वीक्ष्यान्त्या क इष करुणाकारं स्थानं तस्या ॥१३॥

कोकिल के पवम स्वर से अब वन उपवन गूँज रहे हों, तब कौन विरहिणी ऐसी होगी जो अपने को मिरार रख सके। कुञ्जलयती की इसी दशा का दृश्य करते हुए कवि कहता है—

यात कृच्छ्रात्तुहिन समय सम्प्रति रजस्मकाशा  
 दागच्छन्ती पवन लहरीमप्यनासादयन्त्या ।  
 फ सन्नदधे परभृतमग्नलिवाचाल लोल  
 चैत्रे तस्या कथय सुभग प्राणरक्षाभुषाव ॥१४॥

लीलोद्याने परभृतवधुपचमै धीइयमान  
 ताम्यन्मूर्तिर्मलयमस्ता कलिशतपनेषु ।  
 सा नैकत्र कथयिदपि पद पातराक्षी विधत्ते  
 यत् सत्यं । त्रिमुनमपि प्रीनयेतु गितानाम् ॥१५॥

कुञ्जलयती के शील और उसके प्रेम की परिश्रम का यल ही दिशद स्वरूप कवि ने प्रस्तुत किया है। कुञ्जलयती राजा से कहती है कि यदि उसे भावों रूप में न माना जाए तो दासी ही मान लिया जाए—

गजवन्मनु प्रणयचतुगे दूरत प्रेमशब्ध  
 पुण्येन स्या तत्र चरणयो केन सयाद्विदपि ॥१६॥

मेघदूत की तरह इस काव्य में भी विप्रलम्भ शृंगार प्रधान है। विचारतास्तस्य त ग शैली भी मेघदूत जैसी ही है। कहीं २ तो भावसाम्य के साथ साथ शब्दसाम्य भी। या जाता है। नीचे कुछ ऐसे स्थल उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

१ तेनार्थित्य त्वयि त्रिधिरशाद् दूरवन्धुर्गतोऽहं  
याच्ना मो ग प्रमथिगुरो नाधमे त्ना धकामा ॥मेघ १ ६॥

१ तस्मादेव त्वयि त्वनु मया सप्रसीनोऽर्थिभान्  
प्रायो भिक्षा भवति रिफला नैव युष्मद्विप्रेषु। पवन। ८।

२ अलका नगरी के लिए मेघदूत में  
“शहयोदयानम्वित हर शिरश्चन्द्रिकाधीत हर्म्या”। कहा गया है।  
पत्रदूत में गौडदेश के लिए

२ “सान्द्रोदयान स्वगित गगन प्रागखो गौडदेश” कहा गया है।

३ मेघदूत में यद्य अपनी प्रेयसी से कहता है—

भिक्षा मृदुष त्रिशलयपुटान् देवशस्त्राणां  
ये तत्क्षीरक्षुति सुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ता ॥२॥४६॥ इत्यादि।

इसी प्रकार पत्रदूत में भी कुशलवती राजा से कहती है—

३ यात रुच्छात्तुहिनसमय सम्प्रति त्वत्सकाशा  
दागच्छन्ती पत्रनलहरीमप्यनासादयन्त्या ॥५॥

४ मेघदूत में—

प्रियदुर्गम स्तिमितनयना त्वत्सनाथे गराते  
यन्तु धीर स्तनितनचनैर्मनिर्ना प्रक्रमेथा ॥२॥३७॥

४ पत्रदूत में—

आसादयात कमपि समय सौम्य यन्तु विरिन्ते  
देवं नीचैर्निनयचतुर कामिन प्रक्रमेथा ॥६॥१॥

५ मेघदूत में उज्जयिनी की शिप्रायात के लिए—

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमगानुकूल  
शिप्रायात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ॥१॥३२॥

कहा गया है

५ पवनदूत में विजयपुर की गंगायात्र के लिए ऐसे ही भाव व्यक्त किए गए हैं—

गंगायात्रमन्यमित्र चतुर्गे यत्र पौगागनाना  
समोगान्ते सपदि प्रितनोत्यगसराहनानि ॥३६॥

यद्यपि धोयि कवि ने कालिदास का पर्याप्त अनुकरण किया है, फिर भी इसकी रचना में मौलिक कल्पनाएँ यत्र तत्र पाई जाती हैं और अनुकरण स्थलों में भी नवीन उद्भावना दृष्टिगोचर होती है। कतिपय उदाहरणों से करि की प्रतिभा का पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं—

१ श्रोष्यत्यस्मान् पद्मयहिता सौम्य सीमन्तिनीनाम्  
फान्तोदन्त सुट्टुपगत सगमात् किंचिदून ( मे २ ३६।

१ त्यक्त श्रोष्यत्यरहितमना सोऽनुरक्तागनानाम्  
जायन्ते हि प्रणयिनि सुधार्मीचयो वाचिकानि ॥ पवन २६।

२ गत्युत्सृग्पादलकपतितैर्यत्र मन्दार पुष्पै  
पत्रच्छदैः फनरूपमलैः कर्षयिभ्र शिभिश्च ।

मुक्ता जालै स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च द्वारै  
(अलकापाम्) नैशो मार्गं सरितुरदये सूच्यते कामिनीनाम् । मे० २ ११

२ भ्राम्यन्तीनाम् तमसि निविहे धरलमाकाशिलीनाम्  
लाक्षरागाश्चरणगलिता पौरसीमन्तिनीनाम् ।

रत्नाशोकस्तनललिते रत्नमानोर्मयूतै  
नालक्ष्यन्ते रजनिविगमे पौरमाणेषु यत्र ( विजयपुर ) पवन २ ४३।

दोनों स्थलों में भाव साम्य होते हुए भी कल्पना में तो भेद है ही।

मेघदूत में मेघ के सन्ध में कहा गया है—

यो वृन्दानि त्वरयति पयि ध्राम्यता प्रोषिताना  
मन्द्रस्निग्धैर्धनिभिर्गलाघेणिमोक्षोत्सुकानि ॥२॥३॥

कालिदास का मेघ तो प्रजासी पतियों को घर आने के लिए प्रेरित ही करता है, लेकिन धोयि कवि का मलयपवन तो प्रियही प्रेमियों को मिला ही देना है—

दूतं तस्या कलय मलयोपत्यकामागत मा  
कामिद्वन्द्व घटयति मिथो विप्रयुक्त य एव ॥६२॥

इस प्रकार अनुकरण स्थलों में भी कवि ने कुछ विशिष्ट चमत्कार दिखाया है।

स्थान स्थान पर काव्य में कुछ सूक्तियाँ और सुभाषित भी पाए जाते हैं—

- ( १ ) कायोत्तप्तं मनसि लभते नावकाशं तिलास । ६० ।  
 ( २ ) कन्या लोके न खलु सुधियो दूषयित्वा त्यजन्ति । ६८ ।  
 ( ३ ) पाराध्यकप्रणमनसः वाष्पमिश्रान्  
 आपन्नानां न खलु बहुश काकुवादान् सहन्ते । १०० ।

मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से यह काव्य एक सफल सन्देशकाव्य है। बंगाल प्रान्त में उपलब्ध सस्कृत के सन्देशकाव्यों में यह सन्देशकाव्य सर्वप्राचीन है। साहित्यिक महत्त्व के साथ-साथ इस काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व भी है, क्योंकि इस काव्य का नायक एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती का कथन है कि समस्त भारत में मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गए सन्देशकाव्यों में यह सन्देशकाव्य प्राचीनतम है।<sup>१</sup> लेकिन अब वस्तु-स्थिति कुछ और ही है। कलकत्ते के डा० जे० पी० चौधरी ने किसी जम्बू कवि द्वारा प्रणीत चन्द्रदूत काव्य भी प्रकाशित किया है। जैसलमेर के सभ्यनाथ मंदिर के पुनरुद्धार में चन्द्रदूत की एक हस्त लिखित प्रति उपलब्ध हुई है<sup>२</sup>। इस पर वि० स० १३४० (स० १९८६ ई०) लिखा हुआ है। अतः यह तो निश्चित ही है कि चन्द्रदूत ई० त्रयोदश शतक के मध्य से बाद का लिखा हुआ नहीं है। श्री शान्तिस्वरि ने जम्बूस्वरि के चन्द्रदूत पर टीका भी लिखी है। उत्तराध्ययनसूत्र पर वेवेन्द्रगणिन् की टीका<sup>३</sup> तथा शान्तिस्वरि के शिष्यहिता<sup>४</sup> नामक ग्रन्थ से यह तो स्पष्ट ही है कि शान्तिस्वरि ई० एकादश शतक में हुए। स० १०४० ई० के लगभग उनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार इन प्रमाणों के आधार पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि जम्बूस्वरि ई० एकादशशतक से पूर्व ही हुए होंगे। जिनशतक<sup>५</sup> तथा मुनिपति

- १ दे० चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित पद्मदूत की भूमिका, पृ० १।
- २ दे० भाण्डारकर, स० १९०४-१९०५ और १९०५-६ ई० में राजपूताना और सेन्ट्रल इण्डिया में उपलब्ध सस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की रिपोर्ट पृ० २५।
- ३ दे० कापेन्टियर, उत्तराध्ययन सूत्र, पृ० ५४ तथा इण्डियन ए टिक्वेरी, भाग ११, पृ० २५३ और इ डिश्वे म्टडोन, भाग १७ पृ० ४४
- ४ हसयिजय मुनि द्वारा संपादित जैन मंदिरों में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची।
- ५ काव्य माला के सप्तम गुच्छक में स० १९२६ ई० में प्रकाशित।

चरित' नामक ग्रन्थ भी किसी जम्बू कवि के ही लिखे हुए हैं। यद्यपि जिन शतक का रचनाकाल स्पष्ट रूप से कहीं नहीं दिया गया है, फिर भी शक सत्र १०२५ (स० ११०३ ४ ई०) में इस पर टीका करने वाले साम्प्र कवि के कथन से यह स्पष्ट है कि टीकाकार के समय में जम्बूकवि जीवित नहीं थे। टीकाकार ने जिस ढंग से जम्बूकवि का उल्लेख किया है उससे भी यह तात्पर्य निकलता है कि जम्बूकवि टीकाकार से बहुत बरस पहिले हुए। अतः ई० दशम अथवा एकादश शतक से पूर्व का ही समय इस जम्बू कवि का निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त मुनिपति चरित या मणिपतिचरित नामक ग्रन्थ भी इस कवि का लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ वि० स० १०१५ या स० १५६ ई० का लिखा हुआ है। इस प्रकार जम्बूकवि का कार्यकाल ई० दशम शतक का पूर्वार्ध ही ठहरता है। यह जम्बूकवि तथा चन्द्रदूतकाव्य का रचयिता जम्बू कवि दोनों एक ही व्यक्ति हैं<sup>१</sup>। अतः जम्बूकवि का कार्यकाल ई० नवमशतक के अन्त से ई० दशम शतक के मध्य तक निर्धारित होता है। इस प्रकार राजा लक्ष्मणसेन (ई० द्वादश शतक) के समकालीन तथा पद्मदूत के रचयिता धीरकवि से यह जम्बूकवि दो शताब्दी पूर्व का ठहरता है और इस जम्बूकवि द्वारा प्रणीत चन्द्रदूत काव्य ही मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गए अद्यायधि उपलब्ध सन्देश काव्यों में सर्व प्राचीन सन्देशकाव्य ठहरता है। अतः पद्मदूत को अथ मेघदूत का प्राचीनतम अनुकरण नहीं माना जाना चाहिये।

१ जैन श्वेताम्बर काफ़ेस, बम्बई (१६०६) के संयोजकों द्वारा सङ्गृहीत जैनग्रन्थ माला पृ० २२६ देखिये।

२ शब्द। सपञ्चविंशे शतदशके १००५ स्वातिमे च रविवासरे ।  
निवरणमिदं समाप्त वैशाखसितप्रयोदश्याम् ॥

इस प्रकार साम्प्र कवि ने अपनी टीका का समय दिया है। जम्बूकवि के सग्रन्थ में उन्होंने लिखा है—

जम्बूनाम गुरुर्गुरुस्तमगुणोऽमृच्चन्द्रगच्छान्वये  
विदुषन्ममदि क्षयगोरषपद साधुक्रियासूचन ।  
किं वा तस्य निगद्यते प्रतिगुणो यस्येदृशीनिर्गता  
सुरिलया पदसधिभिः सुघटितैः स्वराऽऽसुराली मुग्धा ॥

३ इस विषय के विशेष ज्ञान के लिये डा० जे० बी० चौधरी, कलकत्ता द्वारा संपादित चन्द्रदूत काव्य की भूमिका देखिए।

## पूर्णसारस्वत का हस-सन्देश ( त्रि० त्रयोदश शतक का प्रारम्भ )

हम हस सन्देश के लेखक के सम्यन्ध में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं है ।  
काव्य के अन्तिम श्लोक—

अथ त्रिषो पदमनुपतन् पक्षपातेन हस  
पूर्णज्योति पदयुगजुष पूर्णसारस्वतस्य ।  
क्रीडत्येव स्फुटमरुलुपे मानसे सज्जनानाम्  
मेघेनोच्चैर्निजरसभर वर्षता धर्षितेऽपि ॥१०२॥

से इतना अनुमान किया जा सकता है कि लेखक का नाम पूर्णसारस्वत रहा होगा ।

लेखक का और कुछ इतिवृत्त उपलब्ध नहीं है । कुछ लोग कहते हैं कि लेखक काट्टमाट्स (Kattumadat) वश का केरलीय ब्राह्मण था । कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि वह काचीपुर का त्रिषु धर्मागलम्यी ब्राह्मण भी हो सकता है । लेकिन लेखक के केरलीय ब्राह्मण होने का विचार कुछ अधिक समत माना जाता है । इसे त्रिचम्बूर (Trichambur) नामक स्थान का निवासी ही माना जाता है तथा इसका पूर्ण-सारस्वत नाम उचित ही है, क्योंकि काचीन के पूर्णत्रयी नामक सुप्रसिद्ध मंदिर के देवता की रूपा से ही इसे कविप्रतिभा प्राप्त हुई थी । मार्ग में सुपरिचित तथा सुप्रसिद्ध स्थान पूर्णत्रयी को छोड़कर त्रिचम्बूर होते हुए इस से जाने की जो प्रार्थना की गई है, उससे कवि की देशभक्ति का परिचय मिलता है । निम्नलिखित पद्यों से कवि का त्रिवेन्द्रम् के प्रति उत्कट प्रेम तथा प्रशंसा प्रकट होती है—

( केरलाना ) तेषा भूपामणिमनुपम सेधित योगिमुख्यै  
प्राप्यान्त पुरमहिशर्य ज्योतिरानम्य भस्त्र्या ।  
अन्विष्येस्त जनमकरुण मन्मनश्चोरमाराद्  
देशे तस्मिन् स खलु रमते देवकीपुण्यराशि ॥२६॥

तत्रत्याना तरुणधयसा सुन्दरीणा रिक्तसै  
माभूत् सोमस्तव मतिमतो बन्धुकार्योद्यतस्य ।  
वेशं सान्द्रैरसितकुटिलै केकिपिन्धोपमेयै  
केषा न स्युर्भूतिविद्वतये केरलीना मुखानि ॥२७॥

हम्यं हर्म्यं हरिमणिमये हेलया सञ्चरन्ती  
हंष्ट्या तन्वी प्रसरदण्डस्वच्छलावण्यदीप्ता ।  
मेघयूहस्फुरितवपुषा विद्यता सत्यसिन्धो !  
स्मार स्मार मनसि किमपि व्याकुलो मा च भूत्स्यम् ॥२७॥

श्रीनगरी में शङ्कोपाचार्य की स्तुति करने के बाद ताम्रपर्णी नदी में विहार करते हुए पाण्ड्य देश से आगे बढ़ने का हस को फिर परामर्श दिया गया है। इस प्रकार करल देश और अनन्तशयन नगर ( त्रिवेन्द्रम् ) पहुँच कर वहाँ फिर हस से कृष्ण के दूढ़ होने का अनुरोध किया गया है। यदि अनन्तशयन नगर में भी कृष्ण न मिलें, तो फिर रक्तद्रुम ( Cernmarum ) नामक स्थान पर जाने का हस से आग्रह किया गया है। यदि वहाँ पर भी कृष्ण न मिलें तो उत्तर की ओर समुद्र के किनारे २ केरल देश से यादर चले जाने की हस को आशा दी गई है। इस प्रकार विभिन्न प्रदेशों को पार करते हुए मार्ग में यत्र तत्र विहार करते और कमल का पाठ्य करते हुए तथा वहीं २ निर्मय स्थान में राजि प्रितते हुए अन्त में यमुना तट पर पहुँचने का हस को आदेश दिया गया है। तदनन्तर यमुना के किनारे २ चलते हुए घृन्दावन पहुँच कर मन्द क घोष में कृष्ण से हस के निश्चित रूपसे मिलने की सम्भावना की गई है।

इसके बाद कृष्ण के स्वरूप का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। उनकी विविध-लीलाएँ भी वर्णित की गई हैं। तदनन्तर उचित अरसर तथा कृष्ण की प्रसन्न मुद्रा देखकर हस से सन्देश कथन की प्रार्थना की गई है।

सन्देश में नायिका ने सर्व प्रथम अपनी विरहावस्था का वर्णन किया है। तदनन्तर अपनी विरह बेछाएँ कृष्ण को बताई हैं। अन्त में कृष्ण के दैत्य-दमन, दीन-रक्षण, शरणागतपालन तथा श्रोत्रदी की रक्षा इत्यादि का उल्लेख किया गया है और फिर नायिका ने अपनी रक्षा के लिए कृष्ण से प्रार्थना की है।

सन्देश सुनाने के बाद कृष्ण के कण्ठ की तुलसीमाला लेकर लौट आने का हस को आदेश दिया गया है।

अन्त में कृष्ण के प्रसन्न होने की आशा के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

## काव्य-समीक्षा

जैसा कि काव्य की कथा से स्पष्ट है, इस काव्य में नायिका ने नायक के पास हस द्वारा अपना सन्देश भेजा है, अतः काव्य का नाम हस-सन्देश उपयुक्त ही है। समग्र काव्य में कुल १०२ श्लोक हैं तथा मन्दारान्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कथावस्तु का पूर्ण भाग और उत्तर भाग जैसा कोई विभाजन भी काव्य में नहीं किया गया है। इस काव्य के लेखक ने मेघदूत पर विद्युत्तता नामक टीका भी लिखी है। अतः यह तो निश्चित ही है कि मेघदूत की प्रेरणा और अनुकरण पर यह काव्य लिखा गया है। काव्य में मन्दारान्ता छन्द का प्रयोग भी इसी बात की पुष्ट करता है। काव्य के अन्तिम पद्य में कवि ने स्वयं मेघदूत की उत्कृष्टता स्वीकार की है—

अथ्य विष्णो पदमनुपतन् पक्षपातेन हसः  
 पूर्णज्योति पदयुगजुष पूर्णसारस्वतस्य ।  
 क्रीडत्येव स्फुटभक्तलुपे मानसे सज्जनानाम्  
 मेनेनोर्चर्चनिजरसमर वर्धता धर्षितेऽपि ॥१०२॥

लेकिन फिर भी कवि ने अपने काव्य में कुछ नमीनता रखी है। मेघदूत में नायक यक्ष की ओर से त्रिरहिणी यक्षिणी के लिए सन्देश दिया गया है। इसमें त्रिरहिणी कृष्ण भक्त नायिका की ओर से कृष्ण के लिए सन्देश भेजा गया है। विशुद्ध त्रिप्रलम्भ २४ गार के स्थान पर इस काव्य में दिव्य कृष्ण भक्ति का आलोक पाया जाता है। कवि ने प्रेम का दिव्य स्वरूप काव्य में विव्रित किया है।

जहां तक शिल्पनिधान का प्रश्न है, कवि ने मेघदूत का ही अनुसरण किया है। इसदर्शन, उसका सत्कार तथा कुशलवार्ता इत्यादि पूछना सब मेघदूत के समान ही है। मार्गार्णन में भी कवि ने मेघदूत से प्रेरणा ग्रहण की है। विभिन्न देशों, नगरों तथा नदियों का बड़ा सुन्दर और आकर्षक चित्र काव्य में प्रस्तुत किया गया है। चोल-देश का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

चोलान् देशाननितिलकान् याहि तावत् समृद्धान्  
 पुत्रस्त्रेढात् प्रबुरपयसा पोषितान् सहपुत्र्या ॥११॥

सहपुत्री कावेरी नदी में चोल देश के मातृभाज की श्लेष द्वारा कवि ने कैसी सुन्दर व्यञ्जना की है। जिस प्रकार उत्तरभारत में गंगाजी को धन्दा की दृष्टि से देखा जाता है, उसी प्रकार दक्षिण भारत में कावेरी नदी को भी लोग बड़ा महत्त्व देते हैं।

आगे चलकर श्रीरंगपुर का भी विविधभाजपूर्ण वर्णन कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। श्रीरंगपुर का वर्णन प्रारम्भ करते हुए कवि कहता है—

कटापापायेऽप्यविगतलय कटापक भुक्तिमुक्त्यो  
 श्रीरङ्गारव्यं पुरमथ विशेषार्म भौम त्रिधाम्न ।  
 पौरस्त्रीणा सह रतिकलामटिगरङ्गैरपाङ्गै  
 स्निग्धा दृष्टिर्निपतति अने यत्र मुक्त्यङ्गनाया ॥१४॥

भुक्ति और मुक्ति दोनों के देने वाले नगर में पौरस्त्रियों के भाजपूर्ण कटाक्षपाज के साथ मुक्त्यङ्गना की स्निग्ध दृष्टि का लोगों पर पटना उपयुक्त ही है।

श्रीरंगपुर की विविध सुगन्ध से न केवल बड़ा की जनता का मन प्रसन्न होता है बल्कि सारा विश्व ही सुवासित बताया गया है—



नार्भापट्टेरेरुपरिमलो नामशय्यस्य त्रिष्णो  
 पूगश्रेणिस्फुटितकुहलीसीरमश्च प्रसर्पन् ।  
 पौराणा च प्रथमयसा स्फारतरण्यगन्धो  
 वार वार मद्यते मनो वासयन् यत्र विश्वम् ॥१८॥

श्री रंगपुर की स्त्रियों के सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में कवि कहता है—

वामाक्षीणा वहनि महति सञ्चलान्तरण्यपूरे  
 सलद्वयाणि स्मितपित्तसितान्याननानि प्रपश्यन् ।  
 माध्वीलुधं सरसिजवनीकौतुकादुत्पतिप्यन्  
 मा गा भ्रान्ति पद्मपनतेर्नैव मौढ्य गुणाय ॥१९॥

सुन्दर रमणियों के हस्तों हुए मुखों को देखकर हस का उन्हें कमल समझ बैठना स्वाभाविक ही है। इस पद्य में कवि ने किस सुन्दर भाव भगिनी के साथ स्त्रियों के सौन्दर्य का चित्र अंकित किया है।

केरल देश का जो प्रसंग आता है, तब एक ही पद्य में कवि ने वहाँ की धार्मिकता, सप नता और प्राकृतिक रमणीयता चित्रित करदी है।

धर्म साक्षात् कृतयुगसलो येषु सानन्दमास्ते  
 मालिन्याढ्य फलिपित्तसित मन्यमानस्तृणाय ।  
 वेलास्थान कमलदुहितु केरतास्तानुपेया  
 शीतोत्सङ्गान्मरिचतिलकालिगिताट्गैर्लङ्गैर् ॥२५॥

केरल देश की मित्रता भी कम आकर्षक नहीं हैं। इसलिए हस को उन्हें देखकर दुःख तथा रोकबुल न होने का समुचित परामर्श भी दिया गया है।

तत्रत्याग तरुणयसा सुन्दरीणा वित्तसै  
 माभूत् शोभस्तत्र प्रतिमतो धन्धुकायोद्यतस्य ।  
 पेशे सान्द्रैरसितकुटिलै केकिपिन्टोपमेयै  
 वेपा न स्युर्धृतिविहतये केरलीना मुग्गानि ॥२७॥

यद्यपि फार्नपुर से वृन्दावन बहुत दूर है तथा मार्ग में अनेक रमणीय स्थान पड़ते हैं और उन स्थानों तथा वहाँ के दृश्यों का वर्णन कर कवि अपने फार्न को और भी अधिक सरस तथा आकर्षक बना सकता था, लेकिन न कि नायिका की थिरक व्यथा बर्दाश्त है, इसलिए केरल देश से एक दम यमुना और वृन्दावन पहुँचन का वद हस को आदेश देती है—

कालक्षेप न यत्तु सदते कामवाण कठोर ॥३०॥

धन्या भानो श्रुतिमित्र यति कटपयन् याहि सीमाम् ॥३३॥

८ इस प्रकार हंस के यमुना पहुँचते पहुँचते नायिका कहती है—

आदो नाद मधुमदफल क्रीडता सारसाना  
पद्मामोदी तदनु पवन पात्रितस्तोयलेशै ।  
भानो पुत्र्यास्ततमथ तट स्फात्मालैस्तमालै—  
मूर्ति पश्चान्मरतकशिलामोहिनी ते मुदे स्यान् ॥३४॥

इस पद्य में कवि ने सारसों का मधुर निनाद, कमलों से सुजासित शीतल पवन, तमालवृक्षों से ढका हुआ यमुना का तट और तदनन्तर यमुना का कैसा सुन्दर प्रेम प्रस्तुत किया है। इस तरह के रमणीय स्थल को देखकर हंस का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है।

घुन्धारन में नन्द के घर का कवि ने वहाँ समृद्धिपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। नन्द ने घोष में पाषाणों को न केवल धन बटता है, बल्कि मोक्ष भी उड़ी आसानी से लुटती हुई गताई गई है—

दीनै प्राप्तैरिफसितमुलै निष्पतद्विभ कृतार्थ—  
रधिघातै सह धनभरै लुंठयमानापरगम् ।  
राजन्वन्त महिततपसा नन्दगोपेन पश्ये—  
घोष घोषैर्दिशि दिशि गवा घोषित वत्सकानाम् ॥४०॥

इस प्रकार के घोष को देखकर हंस के मन में अनेक प्रकार की शकाप प्रवण्य उत्पन्न हो सकती है। इसी बात को लेकर हंस से कहा गया है—

दयाना किं भयनभयनी दैत्यभीत्या निलीन  
लक्ष्म्या किं वा निरिलभुवनभ्रान्तिप्रिधामधाम ।  
कोशागार किमिदमथरा शेखधीनामिति ट्राक्  
तस्मिन् दृष्टे तत्र गृहमुखी भाविनी तान चिन्ता ॥४१॥

नन्द के घोष के सम्बन्ध में हंस की सम्भाषित चिन्ताओं ने घोष की अनुल सम्पत्ति का पाठक स्थयम् अनुमान कर सक्त हैं। कवि ने किस प्रकार व्यर्थ रूप से घोष की समृद्धि का वर्णन किया है।

नन्द के घोष में गोपिकाएँ हमेशा ही दृष्टि की बाल लीलाएँ गाती रहती हैं। इसलिए तो हंस से कहा गया है—

गायन्तीना कलिमलमुप बाललीला मुरारे—  
गीर्णं नन्दन् गलितमनसा गृहगद गोपिकानाम् ॥४२॥

नन्द के घोप के निकट ही कृष्ण के मिलने की समावना की गई है। इस प्रसंग में कवि ने कृष्ण के मधुर स्वरूप का जो चित्रण किया है, वह बड़ा भावपूर्ण और सर्जीव है। कृष्ण को किसी वृद्ध के नीचे वेदिका पर विराजमान हो अपने सुरभित हास तथा मधुर वशीरव से तीनों लोकों को मोहित करता हुआ बताया गया है—

तस्योदारा शशिमणिमयीं वेदिकामासन्तम्  
कञ्च पश्य कमपि सुभग कल्पक कटपकस्य ।  
लीलाहासे सुरभि कुसुमे पाणिपादै प्रवालै-  
धंशीनादैरपि मधुरसंमोहयन्त त्रिलोकीम् ॥११॥

इसके बाद उनके अग प्रत्यंग का कवि ने बड़ा उत्कृष्ट वर्णन प्रस्तुत किया है। कृष्ण की भक्त नायिका हस से कहती है—

घोणादण्ड लगकुलपते घोपनाथस्य पश्ये  
सरक्ताभ्या सुभगमभित पीडित लोचनाभ्याम् ॥१५॥

तदनन्तर कानों का वर्णन करते हुए वह कहती है—

माणिन्याशुज्जलितमकरीशुण्डकाशिलएगण्डो  
कर्णौ शोरे कलय सुकृतिन् शिल्पकरहारनालो ।  
धर्मस्पश मृदुनि वदने कर्कशाकाशुज्ज्वलम्  
यालाशोकद्रुमकिसलपैर्वारयन्तावियोर्ध्व ॥१६॥

इसी प्रकार ओष्ठ और दन्तश्रेणि का भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है—

उर्ध्वालवमोर्दशनकदने त्रिलएमोष्ठप्रवालं  
दन्तश्रेणौ निजरुचिसुधावृष्टिभिस्तपंपयन्तीम् ।  
स्तोकालक्ष्या स्मितनिकसिते पश्य वक्त्रे मुरारे-  
रन्तर्लंग्नाममृतकणिरापहक्तिमज्जद्विपीय ॥१७॥

कवि ने अग प्रत्यंगों के उत्कृष्ट सौन्दर्य को हृदयङ्गम कराने के लिए कितनी सुन्दर उल्लेखाए दी हैं। अन्त में उनके स्वरूप के सम्बन्ध में कहा गया है—

माधुर्याणां परममग्रधि मङ्गलं मङ्गलाग  
मायायोग कमपि सुदृशा मण्डनं मण्डनानाम् ।  
किं वा जल्पैरिह बह्विधै किञ्चिद्वर्ण्यं पदार्थम्  
पार्थ पार्थ नयाञ्जुलकैरेधि पात्र स्पृहाया ॥६३॥

कृष्ण न केवल सुन्दर ही हैं, प्रत्युत धर्म, ज्ञान, आनन्द और तेज की साक्षात् मूर्ति' बताया गया है —

धर्मा मूर्त किमयमथवा ज्ञानराशिर्गुप्मान्-  
आनन्दो वा निखिलजगतामात्तलीलाशरीर ।  
किञ्चित् तेज स्फुरतु भवत किंशुकापाटलोष्ठ  
वेणुस्त्राणश्चरणविमर्शोऽदित वत्सयूयै ॥६४॥

इस प्रकार कृष्ण को न केवल सौन्दर्य और माधुर्य का बरिक्त धर्म, ज्ञान, आनन्द और तेज का भी चरमोत्कर्ष बताया गया है ।

श्रीकृष्णजी के प्रभाव और गौरव का तो अनुमान पाठक इसी से लगा सकते हैं कि इन्द्र इत्यादि देवता भी देवकार्य में परामर्श करने के लिए स्वयं उनके पास आते हैं—

मालायालव्यजनमुकुटच्छत्रमित्रा त्रिभूति  
कृत्या दूरे स्वयमुपगते कुड्मलीकृत्य हस्तान् ।  
दृष्यद्दैत्यप्रवरदमितैर्दीनता दर्शयद्दिभ  
शक्राद्यैर्वा रहसि त्रिवुधैर्मन्त्रयन् देवकार्यम् ॥६५॥

इस प्रकार कृष्ण के स्वरूप तथा प्रभाव का वर्णन करने के बाद उचित अरसर देखकर भक्त नायिका कृष्ण को अपना सन्देश सुनाने की इस से प्रार्थना करती है । नायिका के सन्देश में कवि ने उसकी विरहानस्था का घटा करण और भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है । कृष्ण के प्रथम दर्शन में ही नायिका के हृदय में प्रेम का संचार बताया गया है—

राकाचन्द्र क्षितिमित्र गत राजमार्ग व्रजन्त  
लाजै सादृ पुरयुजतिभि कीर्यमाण मनोभि ।  
पश्यन्ती त्या त्रिभुवनपते वेपितस्विन्नगात्री  
तस्यो तन्यी नयनसरणि यावदुल्लङ्घ्य यासि ॥७३॥

वक्त्रेन्दोस्ते मधुरिममुवा गाढमास्त्राय मत्ता  
राजीवस्य स्फुटमित्र रस राजहसी सत्पणा ॥७४॥

कवि ने नायिका के पूर्णराग जन्य कम्पन, स्वेद और वृष्णा का कैसा सुन्दर वर्णन किया है । आगे चलकर कहा गया है—

साक घृत्या तनुतरतनो स्र सते कङ्कणाली  
यका + स्ते सह मधुपते वर्धते मोदमुद्रा ।

दाण्डेपिन्नश्रितमहो बालसारङ्गनेत्रया  
बाण साध हृदि गतिपते वाणधारा पतन्ति ॥७७॥

कहि ने किस सुन्दर भावभगिनी के साथ नायिका के विरहजन्य अधैर्य, कृशता, मोह और निरन्तर रोते रहने का वर्णन किया है।

नायिका के वृश शरीर को देखकर किसी हृदय में कण्ठा उत्पन्न न होगी।  
यसन्त श्रुतु तो उसका लिए मृत्यु की ही सूचना समझो—

फ सा कसान्तर । सकरण नेत्र कुर्यात् वृशगी  
काल काल कुसुमसुरभि कल्पयन्ती पुरस्तात् ॥७८॥

प्रिय प्रियोग में व्यथित नायिका तत्तद् यन्तुओं में कृष्ण के तत्तद् अंगों का सादृश्य ढोजती है—

रक्ताम्भोजे नयनमरण राजहसे तिलासान्  
रत्ने शोणे ललितमधर कान्तिमिन्द्रीग्रपु ।  
नीलम्भजे तत्र च भुजयोर्नातिमुत्प्रक्षमाणा  
नीलापाङ्गी स्वययति कुची निर्मलैरश्रुलेशै ॥७९॥

इसी प्रकार नीलवर्ण तथा त्रिचुद्रूपी पीताम्बरयुक्त मेघ को देखकर नायिका को कृष्ण के नीलवर्ण शरीर का ध्यान आ जाता है और वह ऐसा रोती है कि पृथिवी और आकाश का भी हृदय द्रवित हो जाए—

याता दृष्टि तरणजलदं न्यस्य याष्यायमाणा  
त्रिचुद्रूपीताम्बरपरिगते मेघरु भिनन्धकान्तो ।  
रोदित्यन्तर्प्रिलसितगिरा रोदसी द्रावयन्ती  
स्मार स्मार मन्त्रिनयना माननीय उपुस्त ॥८०॥

इस पद्य में कहि ने नायिका की विरहावस्था का बड़ा ही करुण चित्र अंकित किया है—

कृष्ण विरहिणी नायिका को सत्रांमना कृष्ण में ही लीन रताया गया है—

१ इस पद्य में मंगदूत क—

श्यामास्वग चकितहरिणीप्रक्षणे दृष्टिपानं  
यक्षप्रन्दाया शशिनि शिपिना बर्धमारुपु पशान् ।

इत्यादि पद्य का भावानुकरण किया गया है।

कर्णौ पूर्णौ तत्र गुणगणौ कथ्यमाने सचीप्रि-  
 मूर्त्या तान्त हृदयमनिश मुद्रित नामभिर्वा ।  
 चित्ताह्लादप्रसभपुलकैदक्षिता गात्ररली  
 वृत्तिस्तस्यास्त्वयि यदुपते योगिनामप्यभूमि ॥८३॥

इसके अतिरिक्त आगे पीछे, जागते सोते, दिन रात तथा उठते बैठते हमेशा ही उसे कर्ण की भावना करते हुए बताया गया है। और तो और, सारी सृष्टि ही इसके लिए कर्णमय हो गई है—

अग्रे पश्चादुपरि च चितौ जागरे स्वप्नयोगे  
 रात्रादह्नि स्थितिषु गतिषु त्वा सदा भाज्यन्त्या ।  
 उन्मादिन्या धुल्लयदृशो मुक्तसर्पप्रवृत्ते—  
 तस्या स्वामिन् किमिह बहूना तन्मयी विश्वसृष्टि ॥८४॥

उपर्युक्त पक्तियों में कवि ने नायिका के प्रेम की तीव्रता तथा प्रत्यक्षता का कितना उत्कृष्ट वर्णन किया है।

विरहिणी नायिका का मन कर्ण में इतना लीन है कि यह कर्ण का चित्र भी एकान्त में बनाती है—

दिग्ध कान्त्या रहसि भजतो दिव्यमङ्ग लिरान्ती  
 सद्यः म्रियच्चलन्मरणात् तृतिरामुद्धहन्ती ।  
 मध्ये मध्ये बहति पिहिता भावना मोहवेगै  
 घाला नीलैरिय जलधरैश्चन्द्रिकामिन्दुरक्षा ॥८५॥

नायिका की मोहवेग सी ढकी हुई भावना के लिए कवि ने ऐसी सुन्दर उपमा दी है। घाला, भावना और मोहवेग के लिए क्रमशः इन्दुरक्षा, चन्द्रिका और जलधर कैसे सुन्दर उपमान दिए गए हैं। उपमेय और उपमान में धर्म की समानता का साथ ही लिंग और घटन की समानता भी दर्शनीय है।

प्रियविरह में नायिका को नींद तो आती ही नहीं है। एक एक रात्रि उसका लिए सौ रात्रियों के समान लगती है—

एकैवास्या शतमिव समा शर्वरी याति यज्ञात्  
 कोकैः साक विरह विधुरैः कोक्त्रिलामञ्जुनाच ॥८६॥

१ इस पद्य में मेघदूत के—रामालिरय प्रहयकुपिता धातुगमै शिलायाम्-  
 इत्यादि श्लोक का प्रभाव पाया जाता है।

यद्यपि उसकी सविया उमे तरह तरह की आशाएं बधाती हैं, फिर भी प्रिय मिलन की आशा से किसी तरह जीवन धारण करती हुई नायिका के लिए एक एक दिन कल्प के समान बीजता है—

चित्तासगैरपि च भवतो जीवन धारयन्त्या  
यद्यास्तस्या कथमपि त्रिभो कल्पकटाश्चलन्ति ॥८६॥

गिरिहिणी नायिका के लिए चन्द्रमा कोकिल, हंस और सुरभित पत्रन सब एक साथ ही दुःख पहुंचा रहे हैं। अपना सन्देश सुनाती हुई वह कहती है—

चन्द्र, काल्या स्फुटमपि जित कोकिलो मञ्जुव्रतै  
ईसा गत्या वकुलसुरभिर्मोरत इवासरतै ।  
पते सर्वे युगपदधुना हन्त निघ्नन्ति भुग्धा  
प्राप्ते काले क इव सहते प्राग्प्रयुक्तापराधम् ॥८७॥

इस पद्य में कवि ने नायिका की विरहाग्दशा का वर्णन तो किया ही है, उसके उत्कृष्ट सौन्दर्य, मधुर पाणी, अलसगति तथा सुरभित निश्वास की भी प्रकाशान्तर से व्यञ्जना की है।

गिरिहिणी नायिका को कोक, कीर, मोर, भौरें, कोकिल और सारस पक्षी भी बड़ा दुःख पहुँचाते हैं। इस प्रसंग में कवि ने यही सुन्दर उल्लेख प्रस्तुत की है—

कृत पक्षी यव इति पुरा कृष्णचन्द्र त्रयासी  
ग्नये तेन क्षुभित हृदयै बांधितु त्वाममीशै ।  
बाढमेमा भवति यलनदं बाध्यते हन्त बाला  
कोकै कीरै शिबिभिरलिभि कोकिलै सारसैश्च ॥८८॥

अपनी विरहव्यथा के घण्ट के बाद नायिका विभिन्न प्रकार से कृष्ण से अपनी रक्षा करने का अनुरोध करती है। फिर वह कहती है कि पाणासुर जैसे भयंकर राक्षसों को जो तुमने मार डाला, तो अगहीन इस पक्षराण को, जो कि मुझ विचारी को पीड़ित कर रहा है, दण्ड क्यों नहीं दते—

भूतै सार्धं समिति दमितो भूतपाल । त्वयासीद्  
पाणी विभ्रदं भुवनमयद् बाहुशाखासद्वक्षम् ।  
अद्वेगे गन्य कुसुमविशिखैरर्दयस्ता पराकी  
दण्ड्यै कस्मान्न सन्तु स नलो दम्यते पञ्चपाण ॥८९॥

आगे चलकर नायिका कहती है कि जो समग्र गोकुल की रक्षा कर सकते हो, तो इस दर्शन और असहाय जन की रक्षा करने में तुम्हें क्या भारी बोझ पड़ता है—

प्रातु दीन जनमशरण तात कस्तेऽनिभार ॥६४॥

अन्त में नायिका कृश से निवेदन करती है—

त्वामायुष्मन् । विपदि पततामाहुरेक शरण्य  
कादृष्याद्र तत्र किल मन काममेव जिधोऽसि ।  
तन्वीं बाला त्वयि परधता चेतसा वर्तमाना  
कण्ठे लग्नैरसुभिरवला मन्यसे नानुकम्प्याम् ॥६७॥

नायिका के इन वचनों में कितनी कातरता छिपी हुई है । कवि ने उसको 'कण्ठ लग्नप्राणा' यथा कर उसकी दयनीय दशा का बड़ा कारण चित्र प्रस्तुत किया है ।

अपनी प्रार्थना का उपसहार करते हुए नायिका कहती है—

दीना दूना स्त्रियमशरणा त्वत्कृते त्यक्तसर्गा  
मङ्गोदिव्यैरमृतसरसैर्हंसि, प्रातुमेनाम् ।  
दाक्षिण्यान्धे तत्र सुरगुरो दादृषे दुःखसिन्धौ  
मग्नान् जन्तून् ननु सुखयितु मर्त्यलोकापतार ॥६६॥

अपनी दीन हीन और असहाय अवस्था तथा प्रेम में सर्वत्याग का उल्लेख करते हुए नायिका ने कृष्ण भगवान् से कौसी नम्रता से अपनी रक्षा की प्रार्थना की है ।

इस प्रकार प्रेम और दैन्य से भरे हुए सन्देश के बाद इस से कृष्ण के पास जाने, सन्देश सुनाने और उनके कण्ठालिंगन की प्रतिनिधिरूप तुलसीमाला लेकर शीघ्र ही वापिस लौटने के परामर्श के साथ साथ काव्य समाप्त हो जाता है ।

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को प्रतीत हो गया होगा कि यह काव्य बड़ा सरस और सुन्दर है । विप्रलम्भ शृंगार के आश्रय में कवि ने नायिका की उत्कट कृष्णभक्ति का वर्णन किया है । नायिका का कृष्णप्रेम कृष्णभक्तों के लिए एक उत्कृष्ट आदर्श है । प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि यह रचना कवि की स्वानुभूतिपरक कृति है । कवि ने अपनी मनोवृत्ति को ही नायिका का रूप देकर मन रूपी इस द्वारा उसे कृष्ण के लिए अर्पित कर दिया है । कवि की उत्कट कृष्ण भक्ति का अनुमान तो इस व प्रणि कहे गए काव्य के अन्त में नायिका के निम्नलिखित वचनों से ही लगाया जा सकता है—

मन्ये साधो भवति भविता प्रीतिमान् वासुन्—  
स्तस्मिन् प्रीति सकलवर्दे को हि न म्यात कृतार्थ ॥०१॥



दक्षिण भारत में लिखे गए सन्देश काव्यों में विषय की दृष्टि से यह काव्य सर्वथा नवीन है। इसके अतिरिक्त कवि की कल्पना तथा भाव विन्यास भी यह सुन्दर है। सुकुमार भाव तथा अनुभूति के वर्णन के उपयुक्त माधुर्य और प्रसाद गुणयुक्त भाषा का ही काव्य में व्यवहार किया गया है। इसी तरह वैदर्भी रीति को ही कवि ने सर्वत्र अपनाया है। मेघदूत से प्रेरणा लेने पर भी कवि ने इस काव्य का अन्धानुकरण नहीं किया है। केरल शैली में ही मेघदूत का प्रभाव कुछ दृष्टिगोचर होता है। काव्य का प्रारम्भ तो मेघदूत की तरह से ही किया गया है—

काचित् कान्ता प्रिरदृशिपिना कामिनी कामतप्ता  
निध्यापन्ती कमपि दयित निर्दय दूरसस्थम् ।  
भूयो भूयो रत्नरत्नकत पुष्पगटों भ्रमन्ती  
लीलागपीजमलपयिक राजरस ददर्श ॥१॥

विभिन्न अत्ररणों से काव्य की भाषा का तो विष पाठक स्वयम् अनुमान लगा सकत है। छन्द तथा शैली की समानता होते हुए भी काव्य में मेघदूत की पदावली की छाया बिरकुल नहीं पाई जाती है। स्थान स्थान पर कवि ने सुन्दर उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का भी प्रयोग किया है। वहाँ २ अनुप्रास की सुन्दर छटा भी दर्शनीय है—

१ माधुरी माद्यन्मधुपमहिलामण्डलीमण्डितानाम्  
पादपानाम् ॥४४॥

२ कुञ्ज कुञ्जे कुसुमिततले कान्तमग्निरप्य यत्नाद् इत्यादि ॥४६॥

किन्हा स्थानों के वर्णन में इस काव्य तथा दक्षिण के अन्य सन्देशकाव्यों में पद्यान साम्य पाया जाता है। केरल देश के समुद्र तट का वर्णन करते हुए इस काव्य में कहा गया है—

यलामेलानमुरमिता वीक्षमाण पयोधे-इत्यादि ॥३२॥

उद्गण्ड शास्त्री के कोरिल सन्देश में भी एक स्थान पर ऐसी ही पदावली पाई जाती है—

कोलानेलावनमुरमिलार् यादि यत्र प्रयन्ते-इत्यादि ॥१॥६०॥

यहाँ २ कवि ने वही सुन्दर सुनिचा भी काव्य में उचित स्थान पर प्रयुक्त की हैं—

१ तन्द्रानुत्थ न मनु गटते धर्मकार्याद्यतानाम् ॥२६॥

२ सत्पक्षाणा द्रवति हि मन सटममे बाधयानाम् ॥३७॥

३ सन्त प्राणैरपि विदधते सम्मद सद्यिताना  
कामान् कुर्युः कथमिव न ते कर्मणा केवलेन ॥८॥

इस प्रकार काव्य के विभिन्न अंगों का विचार करने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह सन्देशकाव्य एक सुन्दर और अभिनव रचना है। मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी कवि की मौलिक प्रतिभा इस काव्य में पाई जाती है। तत्तद् स्थानों और भावों के वर्णनों में कवि ने बड़ी चतुरता दिखाई है। पाठकों को कृष्ण मातृ का सन्देश पहुंचाने में भी कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। सन्देश काव्यों में विषय की दृष्टि से नवीनता उत्पन्न करने का कवि का प्रयास स्तुत्य है। कृष्ण भक्ति साहित्य में यह काव्य शैली तथा भाव की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान पाने के योग्य है।<sup>१</sup>

**वैकुण्ठनाथ या वेदान्त देशिक का संसददेश ( ११० स० चतुर्दश शतक )**

श्री वैकुण्ठनाथजी रामानुज सम्प्रदाय के एक बहुत बड़े आचार्य हो गए हैं। वास्तविक होने हुए भी यह कवि थे। इनका जन्म फार्जीयरम् के निकट तुप्पिल नामक ग्राम में स० १२६६ ई० ( वि० स० १३२५ ) में हुआ था। इनकी माता का नाम तोतरम्मा और पिता का नाम अन्तर्त्तुर्गि था। इनको तिरुपति के भगवान् वैकुण्ठ के घण्टे का अवतार स्वरूप माना जाता है। इन्होंने अपने मामा श्री आश्रेय रामानुज के पास अध्ययन किया था। अपने सकल सूर्योदय नामक नाटक में इन्होंने लिखा है कि २० वर्ष की आयु में इनका अध्ययन समाप्त हो चुका था। कवित्प्रशक्ति की प्रगल्भता तथा शास्त्रार्थ निपुणता के कारण यह कवितार्किकसिंह कहलाते थे। वेदान्त के महान् व्याख्याता होने के कारण इन्हें वेदान्तदेशिक भी कहा जाता था। साथ ही न्याय, मीमांसा, साहित्य और अन्य विषयों का विद्वान् होने के कारण सर्व तन्त्रस्तन्य भी इनकी उपाधि थी। इनके तथा इनकी अलौकिक शक्तियों के सम्बन्ध में बहुत सा दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। यह जन्म से वरिष्ठ ही वैदा हुए थे

और दरिद्र रहने में ही खुश थे। जब कभी इन्हें कोई दान दिया जाता था, यह प्रसन्नता के साथ अस्वीकार कर दिया करते थे। कह देते थे—

नास्ति पित्रार्जितं किञ्चित् न मया किञ्चिज्जितम् ।

अस्ति मे हस्तिशैलाग्रे वस्तु पैतामहं धनम् ॥

कुछ समय तक चुड़डलूर के निकट तिरुवद्दीन्द्रपुरम् में तथा श्रीरगम् में भी यह रहे। सर्वज्ञ सिंह के दरबार में भी यह गए थे। जय मलिकोफर ने दक्षिण पर आक्रमण किया, तब वे मैसूर भाग आए और उसी समय इन्होंने अपने अभीतिस्तव की रचना की। इन्होंने श्री वैष्णव सम्प्रदाय भी चलाया। वैष्णव लोग एक महात्मा के रूप में इनकी पूजा करते हैं और दक्षिण भारत के प्रायः प्रत्येक विष्णु मन्दिर में इनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। प्रसिद्ध विद्यारण्यस्वामी इनके सहपाठी थे और इन्हें बड़े आदर से देखते थे। उन्होंने कई बार इनको गिजयनगर के दरबार में आदर पूर्वक बुलाया था परन्तु निःस्पृहता के कारण यह वहाँ न गए। यह बड़े मन्न स्वभाव के थे। इन्होंने एक स्थान पर लिखा है—

कर्मोत्तमम्यका केचित् केचिज्ज्ञानात्तलम्यका ।

यद्य तु हृदिदासाना पादप्राणावलम्यका ॥

विद्यारण्यस्वामी तथा माध्वसम्प्रदायचार्य अक्षोभ्यतीर्थ के शास्त्रार्थ में यह मध्यस्थ भी माने गए थे। कार्तिक पूर्णिमा त्रि० स० १४२६ (स० १३७० ई०) में इनका स्वर्गवास हो गया। अपने इस दीर्घ जीवन काल (१०१ वर्ष) में यह लगातार साहित्य और धर्म की साधना करते रहे। इनके लिखे हुए करीब १२१ ग्रन्थ हैं। जिनमें से बहुत से विशिष्टाद्वैत वेदान्त पर हैं और पद्य में हैं। न्याय के ग्रन्थ गद्य में ही हैं। अनेक स्तोत्र भी इन्होंने लिखे हैं।

कालिदास के मेघसन्देश, रघुवंश और कुमारसंभव से प्रतियुद्ध करने के लिए इन्होंने इस सन्देश, यदुवंश (यादवाभ्युदय) और मारसंभव जैसे काव्यों की रचना की। यादवाभ्युदय २१ सर्ग का एक महाकाव्य है तथा श्रीरुष्ण का जीवन और यदुवंश का इतिहास इसमें वर्णित किया गया है। इस काव्य में काव्य की तीनों वृत्तियों का प्रयोग किया गया है। कवि ने स्वयं कहा है—

गौडवैदर्भपाचाल मालाफारा सरस्वतीम् ।

यस्य नित्यं प्रशंसन्ति सन्तस्तोत्रमवदिनं ॥

इस काव्य में कवि ने कालिदास का अनुकरण तो किया ही है, स्थान स्थान पर अन्य कवियों का भी अनुकरण देखने में आता है। यों तो प्रसाद और मातुल्य गुण से यह काव्य परिपूर्ण है तथा यह सर्ग में कवि ने चित्रशाय की भी योजना की है। काव्य के मूल २ सर्गों में भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस

पर प्रसिद्ध अण्णय-दीक्षित की विस्तृत टीका भी है।<sup>१</sup> पादुकासहस्र नामक काव्य श्रीरामचन्द्रजी की पादुकाओं की प्रशंसा में लिखा गया है। कहा जाता है कि एक बार नान्यप्रतिस्पर्धा में एक रात्रि में केवल ३ घण्टों में १ हजार श्लोकों की रचना की गई थी।<sup>२</sup>

सकरपसूर्योदय १० अकों का एक महानाटक है। इस नाटक के आरम्भ में कहा गया है—

न तच्छास्त्रं न सा विद्या न तच्छिल्पं न ता कला ।

नाऽसौ योमो न तज्ज्ञानं नाटके यन्म दृश्यते ॥

इसी कथन के अनुसार कवि ने इस नाटक में वेदान्तशास्त्र और अध्यात्मज्ञान को अपने विशिष्टाद्वैत मत के अनुसार प्रेक्षकों के अन्तःकरण पर प्रतिबिम्बित करने की चेष्टा की है। श्रीकृष्णमित्र के प्रयोधचन्द्रोदय नाम के नाटक के अनुकरण पर ही इसका नाम सकरप सूर्योदय रखा गया है। इस नाटक का प्रधान रस शान्त रस है। इस रस की प्रशंसा में नाटक में कवि ने लिखा है—

शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्तदेवो रस

अनवमशुणो यस्मिन्नाहूये रसो नयमस्थितः ॥

इस नाटक पर अहोरिल, कौशिक श्रीशैलताताचार्य, नारायण और रामानुज इन विद्वानों की चार टीकाएँ हैं<sup>३</sup>।

अच्युत शतक विष्णु भगवान् की प्रशंसा में लिखा गया एक प्राकृत काव्य है<sup>४</sup>।

श्री वेदान्त देशिक की लघुरचनाओं में निम्नलिखित रचनाएँ सम्मिलित हैं—

हृयभीरुस्तोत्र,	देवराजपचाशत्,	गोपालविंशति,	देहली-स्तुति,
यथोक्तकारिस्तोत्र,	अष्टभुजाष्टक,	परमार्थस्तुति,	भगवद्दुध्यानसोपान,
दशायतारस्तोत्र,	अभीतिस्तव,	न्यास दशक,	न्यासविंशति,
न्यासतिलक,	श्रीस्तुति,	भूस्तुति,	नीलास्तुति,
गोदास्तुति,	सुदर्शनशतक	षोडशायुधस्तुति,	गरुडपंचक,
यतिराजसप्तति,	धारीपंचक,	वैराग्यपंचक ।	

१ मद्रास और धीरगम् से प्रकाशित ।

२ मैसूर और बम्बई से प्रकाशित ।

३ मद्रास, धीरगम्, बम्बई और बांग्लि से प्रकाशित तथा नारायणाचार्य और रघुनाथस्वामी ( धीरगम् ) द्वारा अंग्रेजी भाषा में अनूदित ।

४ मद्रास से प्रकाशित ।

रघुनीरगथ और गरुडदण्डक नाम और गरुड की प्रशंसा में लिखे गए गद्य काव्य हैं। मर्तुहरि के नीतिशतक क समान सुभाषित नीरी भी उपदेशात्मक कृतियों से भरा हुआ एक काव्य इनका, लिखा हुआ है<sup>१</sup>।

श्री वेदान्तदेशिक क जीवन पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। इनमें फौशिक गोत्र के वैकटाचार्य के सुपुत्र कजितार्थिक सिद्ध वेदान्ताचार्य का आचार्य-विजय चम्पू मुख्य ग्रन्थ है। इसमें चम्पू शैली में श्री वैकटनाथ ( वेदान्तदेशिक ) का जन्म और जीवनवृत्त वर्णित किया गया है। यह ग्रन्थ तेलगु भाषा में मद्रास से प्रकाशित हो चुका है। निगमान्त चरित, वेदान्तदेशिक-नाथ, वेदान्तदेशिक-चरित और वेदान्त देशिक मंगलाशासन इत्यादि अन्य काव्य भी श्रीवैकटनाथ क जीवनवृत्त और कार्यों पर लिखे गए हैं।<sup>२</sup>

श्री वेदान्तदेशिक का पुत्र वरद अग्रज नारायणाचार्य वि० सं० १३७३ में उत्पन्न हुआ था। यह भी बड़ा विद्वान् था। इसने भी दो सन्देश काव्य कौकिल सन्देश और शुक्लसन्देश लिखे हैं।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीप्रतिष्ठादिभर्षकर श्रीवेदान्तदेशिक के मित्र थे। उनका पुत्र वैरुदेश वेदान्तदेशिक का शिष्य था और उसने भी वैष्णव भविरों की यात्रा के प्रसंग में अनेक स्तोत्र ग्रन्थ लिखे हैं।

### हंस-सन्देश की कथा

इस काव्य की कथास्तु रामायण से संबद्ध है। सीताजी की शोच करने के बाद जब हनुमानजी लका से लौट आते हैं, तब श्री रामचन्द्रजी रावण से युद्ध करने की तैयारियां करने में पूर्व अन्तरिम काल में सीताजी को सान्त्वना देने के लिए राक्षस को अपना दूत बनाकर लका भेजते हैं। इस प्रसंग में प्रथम तो हंस की प्रशंसा और उससे प्रार्थना की गई है। फिर उसे मार्ग की सुविधाएँ बताते हुए लका जा की कहा गया है। माल्यवान् पर्वत से लका जाने के लिए दो मार्ग बताए गए हैं—सह्य पर्वत होत हुए एक पश्चिम मार्ग तथा मद्रास प्रान्त के पूर्वी समुद्र तट से होते हुए दूसरा पूर्वी मार्ग। पश्चिम मार्ग में निरन्तर वर्षा होते रहने के कारण इस को पूर्वी मार्ग प्रदण करने का परामर्श दिया गया है। इस प्रकार पूर्वी मार्ग से लका की ओर

<sup>१</sup> काव्यमाला, भाग = चम्पू में प्रकाशित।

<sup>२</sup> डॉ० सत्यप्रभुमिह, पृष्ठ ५, पी ५८ की का वेदान्तदेशिक उनके जीवन, प्रयोग और दर्शन का 'अध्ययन' नामक ग्रन्थ भी दर्शनीय है। यह ग्रन्थ घोसम्या बनारस से प्रकाशित हुआ है।

चलने पर कर्णाट और आन्ध्र देश होते हुए अजनाद्रि<sup>१</sup> (वेंकटाद्रि) के मिलने का उल्लेख किया गया है। अजनाद्रि से दक्षिण की ओर चलने पर वनरु मुखरी [सुवर्णमुखरी] नदी के तट पर विश्राम करने के बाद तुण्डीरमण्डल<sup>२</sup> में घूमते हुए सत्यव्रत-क्षेत्र तथा काचीनगरी जाने का इस को परामर्श दिया गया है। इस अगसर पर काचीनगरी के मध्य में से बहती हुई वेगा नाम की नदी तथा उसके उत्तरी तट पर स्थित हस्तिशैल पर्यंत का भी उल्लेख किया गया है। तुण्डीरमण्डल के बाद चोलदेश जाने का इस को फिर परामर्श दिया गया है। चोलदेश के वर्णन में कवि ने पुगवृक्षों के समूह, वायेरी नदी इन्देशैल, नीलीयन तथा चन्द्रपुष्करिणी का उल्लेख किया है। चन्द्रपुष्करिणी के तट पर श्री रंगधाम की स्थिति बताई गई है। चोलदेश और पाण्ड्य देश के मध्य में चोरो इत्यादि से युक्त भयंकर वन की स्थिति बताई गई है। अतः इस वन को लुपचाप शीघ्र गति से पार करने का इस को आदेश दिया गया है। पाण्ड्यदेश में पहुँचने पर सुन्दर विष्णु के निवासस्थान धृगभाचल को तमस्कार करने के बाद ताम्रपर्णी नदी और वहा से बाई ओर चलने पर दक्षिण समुद्र तट के मिलने का वर्णन किया गया है। इस समुद्र-तट से लका नगरी के लिए उड़ने पर मार्ग में सुवेल पर्यंत के मिलने तथा वहा से फिर इस के लका पहुँचने का उल्लेख किया गया है। लका में राजा के प्रासाद से सीधे अशोकशटिका में जाने और वहा शिरषा वृक्ष के नीचे सीताजी से मिलने का इस को परामर्श दिया गया है। इस प्रकार सीताजी के पास इस के पहुँचने की सभायना कर कवि ने सीताजी की विभिन्न विरहावस्थाओं का रामचन्द्रजी के मुख से वर्णन किया है ताकि इस को सीताजी के पहिचानने में कोई कष्ट न हो। अन्त में कवि ने रामचन्द्रजी का सीताजी के प्रति दिया जाने वाला सन्देश इस को बताया है। सन्देश में सर्वप्रथम सीताजी के त्रियोग में उठाए हुए रामचन्द्रजी के अनेक कष्टों तथा विभिन्न श्रुतुओं में उनकी त्रिभिध विरहावस्थाओं का वर्णन किया गया है। इसमें बाद समुद्र का पुल बाध कर लका पहुँचने, लका का विध्वंस करने और राजा के सहार के बाद सीताजी को वापिस ले आने का उल्लेख किया गया है। अन्त में सीताजी को किसी तरह अपना जीवन बनाए रखने का भी परामर्श दिया गया है। इस प्रकार मार्ग-प्रदर्शन और सन्देश कथन के बाद इस से एक दम लका जाने की प्रार्थना की गई है। सन्देश कार्य करने के बाद अपनी राजहसी के साथ स्वर विहार करने की शुभकामना भी इस के प्रति व्यक्त की गई है।

१ उत्तरीय अर्काट में विरपति [तृपति] के निवृत्तस्थ तिरुमलाई पर्यंत। वहा पर श्री रामानुज ने शिव के स्थान में वेंकटेश्वरामी नाम से विष्णुभगवान् की पूजा प्रचलित की।

२ टोण्डमण्डल।

इस प्रकार हंस द्वारा सन्देश भेजकर तथा सेतु द्वारा समुद्र पार कर रामचन्द्र जी लका पहुँचते हैं। वहाँ राजा को मार कर और सीताजी को लेकर प्रसन्नता के साथ अपनी राजधानी अयोध्या में वापिस आ जाते हैं और भरत द्वारा रक्षित राज्य को पुनः चलाने लगते हैं। उस, यहाँ पर काय समाप्त हो जाता है।

### काव्यसमीक्षा

प्रस्तुत काव्य एक सुन्दर सन्देशकाव्य है। इसमें दो आश्रयास हैं। किसी को सन्देश भेजने का प्रयोजन उभे आश्रयासन देना ही होता है। इसीलिए इस काव्य में कथावस्तु दो आश्रयासों में बँटी हुई है। प्रथम आश्रयास में मार्ग प्रदर्शन है तथा द्वितीय में लकार्णन और सन्देश कथन है। प्रथम आश्रयास में ६० तथा द्वितीय में ५१ श्लोक हैं। मन्दाक्रान्ता छन्द का ही काव्य में प्रयोग हुआ है। काव्य की शैली उड़ी मधुर है। प्रसाद और माधुर्य गुणों ने काव्य अत्यन्त प्रीत है। क्लिष्ट और लम्बे समास प्रायः इस काव्य में नहीं हैं। रामायण की कथा को संक्षेप में प्रस्तुत करने के कारण इस काव्य में संक्षेप गुण भी विद्यमान है। काव्य का मुख्य रस त्रिशूलभ शृंगार है। यद्यपि कथावस्तु रामायण से संबद्ध है, फिर भी कवि ने इस को दूत बनाकर अपनी स्वतन्त्र उद्भासनाशक्ति का परिचय दिया है।

काव्य में यद्यपि तत्र रमणीय स्थलों का बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है। कर्णाट और आन्ध्र देश के सीमा प्रदेश में खेतों की खेती करने वाली कृषक स्त्रियों की सुगन्धस्थान का बड़ा ही भावपूर्ण चित्र कवि ने अंकित किया है—

इच्छुच्छ्राये विसलपत्रय तल्पमातस्थुपीणा  
सरलापैर्नैर्मुदितमनसा शालिसरसिकाणाम् ।  
कर्णाटान्ध्रपतिकरवशात् कुरुरे गीतिभेदे  
सुरान्तीना मदनकलुप मीगम्यमात्सादयेथा ॥१॥२०॥

इसी प्रकार चोल देश के वर्णन प्रसंग में वहाँ की स्त्रियों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि इस ने कहता है—

सन्ध्याराग सुरभिरजनीसमवेरगरागै  
केरीज्यात्साकलदि तिमिर पालिकापीडगमं ।  
आत्रिआणाम्सरसिजहरो हस दोलाधिरोहात्  
आधाम्यन्त मदकलगरिस्तेषु नेत्रोत्सर्वं ते ॥१॥ ३७ ॥

इस पद्य में बिना किसी शृंगार विशेष के चोल स्त्रियों का स्थायीयक सौन्दर्य की व्यञ्जना की गई है। कुछ स्त्रियाँ झूला झूल रही हैं। साथ में गा भी

रही हैं। हरिद्रा का अग राग उनके अग पर लगा हुआ है। इससे सध्याकालीन जैसी लालिमा उनके अगों पर व्याप्त है। काले केशों में पूग कुसुम [सुपारी के फूल] लगे हुए हैं। इससे ज्योत्स्ना के साथ साथ एक तरफ अन्धकार भी है। इस प्रकार विभिन्न रूपकों द्वारा चोलरमणियों में कवि ने रजनी के रूपक की व्यञ्जना की है।

विद्रुमारण्य के सपर्क से शोभायमान समुद्र का वर्णन करते हुए कवि यही सुन्दर २ उपमाएँ देता है—

दागसक्त वनमित्र नभस्सन्ध्येषानुविद्ध  
सिन्दूराक द्विपमिव हरि स्वाम्यरेणेष शुष्टम् ।  
विद्रुयुद्धिभन्न घनमिव सखे विद्रुमारण्ययोगात्  
देहेनैक मिथुनमित्र च द्रक्ष्यसि त्व पयोधिम् ॥ १ ॥ ४५ ॥

इस से लगा नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने लका में राजहसी की बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—

तस्मिन् दृश्या तदनु मरुतश्चारसीधानदाता  
लका सिन्धोर्महति पुलिते राजहसीय लीना ।  
त्यामायान्त पत्रनतरलैर्या पताकापदेशै  
पक्षैरभ्युज्जिगमिपुरिष स्थावति ध्राव्यनादा ॥ १ ॥ ६० ॥

रायण के यहाँ बन्दी जीवन विताती हुई सीताजी की कदण अवस्था का भी बड़ा हृदय-द्रावक चित्र खींचा गया है—

शुद्धधामिन्दोश्चन्द्रव भवने कीमुर्दा त्रिफुरन्ती  
आनीता या विपतरुषने पारिजातस्य शाग्राम् ।  
सूक्ति रम्या खलपरिसरे सक्थे कीर्त्यमाना  
मन्ये दीना निशिचर गृहे मैथिलस्यात्मजाताम् ॥ २ ॥ ७३ ॥

वर्षाक्रीणामित्र कमलिनी व्याहृतार्थामिरोक्तिम्  
पकाजिल्लामित्र त्रिसलता पत्यपेतामित्रेभीम् ।  
मेघच्छन्नामिव शशिकला त्रिन्नरदामित्राशा  
व्याघ्रभ्रस्तामिव भृगवधू भूतले ज्यामित्रास्ताम् ॥ २ ॥ ७४ ॥

अंगोर्लायत्कि सलयसमैरज्जिभृता वरपुष्पै  
गाढाजिल्ल वपुषि विमल विमित्राभिलतामि ।  
सतापोष्णश्वसनपरपच्छायया किं च दीना  
बन्दीभूता निशिचरगृहे नन्दनन्यत्र लक्ष्मीम् ॥ - ॥ ७१ ॥



अन्त में सीताजी की दीनारस्था का भी बड़ा कष्ट विघ्न प्रस्तुत किया गया' है। रामचन्द्रजी सीता के सम्बन्ध में कहते हैं—

शून्या दृष्टिश्चसितमधिक मीलित वक्त्रपदुम  
धाराकार नयन सलिल सानुबन्धो विलाप' ।  
इत्थ दैन्य किमपि विधिना दुर्निगारेण नीता  
सा मे सीता तनुतरतनुस्तप्यते नूनमन्त ॥२॥२३॥

इस श्लोक में कवि ने सीता की विरहावस्था का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर दिया है। 'सानुबन्धो विलाप' से मन सग, संकरप और प्रलाप अवस्थाएँ व्यक्त की गई हैं। 'शून्या दृष्टि' से जागरावस्था और अरति, 'तनुतरतनु' से काश्यप, 'धाराकार नयनसलिलम्' तथा 'सानुबन्धो विलाप,' इन पदों से लज्जात्याग और 'तप्यते नूनमन्त' से सज्जर अवस्था व्यक्त की गई है। 'शून्या दृष्टि' से उन्माद अवस्था का भी बोध होता है। 'मीलित वक्त्रपदुमम्' से मूर्छा की व्यञ्जना हो जाती है। 'सा मे सीता' इन शब्दों के द्वारा कवि ने सीता के प्रति राम के प्रात्मीय भाव की बड़ी विशद अभिव्यक्ति की है।

रामचन्द्रजी के द्वारा सीता के प्रति भेजे जाने वाले सन्देश में कवि ने रामचन्द्रजी की विभिन्न ऋतुओं की तत्तत् विरहावस्थाओं का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है। वसन्त ऋतु में कोयल कूक रही है। मरिचिका पुष्प खिले हुए हैं। चारों तरफ भौंरे गूँज रहे हैं। मलयचल की सुरभित हवाएँ धीरे धीरे चल रही हैं। हृदय में विरह का भार लिए रामचन्द्रजी स्तब्ध राखे हुए हैं। ऐसी अवस्था में इस उर से कि इन्हें कुछ हो जाय, लक्ष्मणजी धातु के वेग से दूर रहने का रामचन्द्रजी से आग्रह करते हैं—

पाशें लोले परभृतकुलैर्मुक्तकोलाहलाना  
मर्लारेणुस्यगितवपुषा मन्दर निर्गतानाम् ।  
भीतनाह भ्रमरपटलीधृजलासकुलानाम्  
मागे तिष्ठन्मलयमरता धारितो लक्ष्मणेन ॥२॥२६॥

यथाशक्तु में मेघों के गरजने तथा विजली के चमकने पर अपनी प्रेयसी के साथ नृत्य करत हुए मोर को देखकर राम का ध्यान यलात् उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है—

चतो नैव त्यजति चपलाहमेककोणमिषानात्  
धीरोदात्तस्तनित जलदात्ताण्डवारम्भमिच्छन् ।  
पातो'मुक्त' कुटजकुसुमैर्यासिते शैलभृग  
रक्ष पीडारहितदयितारलपत्रन्यो मयूर ॥२॥२७॥

मयूर को राक्षसों की पीड़ा से मुक्त अपनी प्रेयसी के आलिङ्गन से धन्य वता कर रावण द्वारा अपहृत सीता के वियोग से दुःखित राम ने अपनी अग्रन्यता व्यक्त की है।

दुःसह निरहवेदना में अपने जीवन की गतिविधि का वर्णन करते हुये रामचन्द्रजी सीताजी से कहते हैं—

देहस्पर्शं मलयपत्रेण दृष्टिसमेदमिन्द्री  
धार्मिकत्वा जगति भुवि चाभिन्नपयकगोत्रम् ।  
ताराचित्रं प्रियति प्रितति श्रीप्रितानस्य पश्यन्  
दूरीभूता सुतनु रिधिना त्वामह निर्विशमि ॥२॥४०॥

अन्न में सीता के पतिपरायणता, सुरीलता तथा मुकुमारता इत्यादि गुणों की प्रशंसा करते हुए और अपनी निष्ठुरता तथा परिताप का वर्णन करते हुए रामचन्द्रजी कहते हैं—

तातादेशात्सपदि भरते न्यस्तराज्याभिपेक  
या मामेका वनमनुगता राजधानीं त्रिहाप ।  
तामेव त्वामुचितशयना याहमन्ये मदीये  
दूरे कर्तुं शृणुति मुहुर्दूयते जीवित मे ॥२॥४६॥

इस प्रकार इस काव्य में राम और सीता के निरह का उदा भावपूर्ण चित्रण पाया जाता है।

यह सन्देश काव्य मेघसन्देश का एक सफल अनुकरण है। भावा, भाव, छन्द और प्रक्रिया सभी दृष्टियों से कवि को अपने प्रयास में सफलता मिली है। छन्द तो मन्दाक्रान्ता है ही, साथ में भावा भी मेघसन्देश के समान माधुर्य और प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। प्रक्रिया की दृष्टि से भी यह काव्य मेघसन्देश जैसा ही है। स्थान स्थान पर भाव-साध्य भी काव्य में पाया जाता है। पाठको के तुलनात्मक अध्ययन के लिए दोनों काव्यों से समानान्तर अवतरण दिए जाते हैं—

राजहस के विषय में इस-सन्देश में कहा गया है—

कृत्वा तस्मिन् बहुमतिमसौ भूयसीमाञ्जनेयात्  
गाढोन्माद प्रणयपदवीं प्राप यार्ताऽनभिज्ञे ।  
विश्लेषेण क्षुभितमनसा मेघशैलद्रमादौ  
याचना दैन्य भवति किमुत यत्रापि सवेदनादे ॥१॥४॥

मेघसन्देश में मेघ के सन्बन्ध में कवि इस प्रकार कहता है—

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यवस्तु ( मेघ ) यथाचे  
कामार्ता हि प्रवृत्तिरूपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥२॥

पाण्ड्य देश की स्त्रियों के प्रेम में हस में कहा गया है—

स्रस्तापीड प्रचलदलरु व्यक्तताटकरत्नम्  
मुकाचूर्णस्फुरिततिलर वस्त्रमुत्तानयन्त्य ।  
देशे तस्मिन् कुण्डलयदृशो जातकौतूहलाम्बवा  
मालादीर्घमधुरगिरित मानयिष्यन्त्यपागै ॥१॥४॥

इस पद्य में मेघसन्देश के निम्नलिखित पद के भागों की झलक स्पष्ट विद्यमान है । मेघ सन्देश में महाराज के मंदिर के पास कुछ काल तक ठहरने का मेघकी परामर्श देते हुये कहा कहा गया है—

पादपासैः कण्ठितरसनास्तत्र लीलापद्यै  
वर्नच्छायापचितगलिभिश्चामरैः कलान्त हस्ता ॥१॥३६॥इत्यादि

मेघ सन्देश में अलंकारपुरी का वर्णन करते हुये कवि ने अलंकार के प्रासादों की की तत्तद् विशेषताओं को लेकर प्रासादों और मेघ में समानता वर्णित की है । यथा—

विघट्यन्त ललितगनिता सेन्द्रचाप सवित्रा  
सर्गीताय प्रहृतमुख्या स्निग्धगभीरघोषम्  
अन्तस्तोय मणिमयभुजस्तु गमभ्र लिहाग्रा  
प्रासादास्तत्र तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ॥२॥१॥

इसी तरह हससन्देश में भी लम्बा में लाई हुई सुरयुक्तियों द्वारा हस के अनुरक्त किये जाने का वर्णन करते हुये कवि ने सुरयुक्तियों और हस में समानता वर्णित की है—

लीलापेल ललितगमनाश्चारुनाद सशिखा  
भरलाक्ष तत्र मरशरदृशो गौरमापाण्डुराग्य ।  
मुग्धालाप मधुरवचसो मानसाहं मनोज्ञ  
यथानीतामसुरयुक्तयो रजयेयुस्समक्षम् ॥२॥१॥

इस पद्य में विषय भेद होते हुये भी मेघसन्देश की छाया स्पष्ट ही देख पड़ती है ।

मेघ सन्देश में मेघ से निम्ननिमित्त प्रकार से सन्देश प्रारम्भ करने के लिये कहा गया है—

भर्तुं मित्र प्रियमग्निध्वं विद्धि मामभ्युपाह  
तत्तन्मन्त्रोद्द दयनिहितैरागत त्वत्समीपम् ।

यो वृन्दानि त्वरयति पयि श्राम्यता प्रोपिताना  
मन्द्रस्निग्धैर्धनिभिरवलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥२॥३८॥

इसी प्रकार हस सन्देश में हस से सन्देश प्रारम्भ करने के लिये कहा गया है—

पत्युदेवि प्रणयसचित्र त्रिद्धि दीर्घायुषो मा  
जीनातु ते दधतमनघ तस्य सन्देशमन्त ।  
शराणा यश्शरदुपगमे धीरपत्नीरगणा  
समानाह समयमुचित सूचयेत्कृजितैस्त्वै ॥२॥३८॥

हस को केवल सन्देश ग्राहक न बनाकर युद्ध के समय की सूचना देने वाला भी उताया गया है । रामचन्द्रजी के प्रणयसचित्र को होना भी ऐसा ही चाहिए, जो उन्हें युद्ध के उचित समय की सूचना दे सके ताकि वे ठीक समय पर युद्ध कर शीघ्रातिशीघ्र सीताजी के पास पहुँच सकें ।

मेघ सन्देश में मेघ के परिचय के बाद अपनी पत्नी की उत्सुकता का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है—

इत्याख्याते पवनतनय मैथिलीरोग्मुखी सा  
न्यामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीन्य समान्य खैय ।  
धोप्यत्यस्मात् परमवहिता सीम्य सीमन्तिनीना  
कान्तोदन्त सुहृदुपगत, सगमात् किंचिदून ॥२॥३९॥

इसी प्रकार हस के परिचय के बाद रामचन्द्रजी सीताजी की उत्कण्ठा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

पश्यन्ती सा रघुपतिरधूस्वामशेषावदात  
प्रत्याश्यासादधिगतकचि प्राक्तीरन्दुलेखा ।  
भक्तदेशे तदनु सुमुखी सावधाना भवित्री  
किं न स्त्रीणा जनयति मुद कान्तवार्तागमोऽपि ॥२॥४०॥

मेघसदेश में मेघ से सर्वप्रथम कुशल पूछने के लिए कहा गया है—

अन्यापन्न कुशलमगले पृच्छति त्या वियुक्त ॥२॥४०॥

हससदेश में भी सर्वप्रथम सीताजी की कुशल ही पूछी गई है—

पश्चादेव कथय भवतीभाग्येन जीवन्  
कल्याणी त्या कुशलमनघ कोरुलैन्द्रोऽनुयु ते ॥२॥४१॥

‘अव्यापन्न,’ और ‘भगतीभागधेयेन जीयन्’ इन दोनों कथनों में भावसाम्य तो है ही, प्रत्युत ‘भगतीभागधेयेन जीयन्’ इस कथन द्वारा हससदेश में सीताजी के प्रति आदरभाज भी व्यक्त किया गया है।

मेघ सदश में यक्ष मेघ से निम्न प्रकार से सदश प्रारम्भ करने के लिए कहता है—

शब्दारथेय यदपि किल ते य सखीनां पुरम्नात्  
कणं लोल कथयितुमभूदाननस्पर्श लोभात् ॥२॥४२॥ इत्यादि

हस सन्देश में भी यही जोमल कल्पना की गई है। यस्तु भेद होते हुए भी मूल भाव भिन्न नहीं है। देखिए, हस को किस प्रकार सन्देश प्रारम्भ करने के लिए कहा गया है—

यस्या यस्मिन् व्यग्रधिरभगदभूषणालपनादि  
नीतामेना नियतिभिभादन्तरीष दरीय ।  
प्रत्यासीदध्वि नयनयोजर्मनि स्थापयित्वा  
स त्वामेव धदति कुशली दंवि सख्या मुनेन ॥२॥३२॥

मेघ सन्देश में यक्ष अपनी प्रेयसी को आश्वासन देता है—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शाङ्गपाणौ  
शेषान् मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥२॥४६॥ इत्यादि

इसी प्रकार रामचन्द्रजी भी सीताजी को ऐसा ही आश्वासन दत्त हैं—

रत्नोर्मलिस्तवकलवनाद्वैरग्रन्धे त्रिमुके  
गत्या चोर्जा गगनपद्मीस्वरिणा पुष्परेण ।  
सिद्धारम्भो सपदि भगतामाधिराज्याभिषेकात्  
संप्राप्त्यारश्चररिरहत्सचित्तान्देवि भोगान् ॥२॥४४॥

यक्ष ने अपने सदेश में कहा है—

मन्त्रात्मानं बहु प्रिणयन्नात्मनैरायलभ्ये  
तत्कट्याणि त्वमपि नितरा मा गम कातरत्यम् ॥२॥४८॥

रामचन्द्रजी भी सीताजी को ऐसा ही परामर्श दत्त हैं—

रजात्मा कथमपि शुभे जीयितालवनमे ॥२॥ ६॥

मेघ सदश में यक्ष के दूत के रूप में मेघ की सत्यता प्रमाणित करने के लिए एक अभिज्ञान घटना भी उसे बताई गई है—

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे ॥२॥१५०॥ इत्यादि

उसी तरह इस सन्देश में भी इस के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार के सन्देह के निवारण के लिए रामचन्द्रजी ने इस के द्वारा सीताजी को एक व्यक्तिगत घटना की याद दिलाई है—

चित्ते कुर्यात्तदपि भवती यज्जनस्थानयुद्धात्  
संप्राप्त मा दशमुखसमान्भारयित्वा खगदीन् ।  
शस्त्राघात स्तनफलशयोरूपमणा रोपयद्भिभ  
गाढाश्लेषैरपिहितवती गदगदा हर्ष-यार्प्य ॥२॥४५॥

मेघ सन्देश के समान इस काव्य में भी सन्देश पहुँचाने के बाद इस के प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त की गई हैं—

स्वैर लोभान् विचर निखिलान् सौम्य लक्ष्म्येन दिष्टु  
सर्वाकारैस्त्वदनुगुणया सेवितो राजहस्या ॥२॥४८॥

इस प्रकार दिष्ट पाठक समझ सकते हैं कि इस काव्य में मेघसन्देश का भाषा और भाव दोनों दृष्टि से पर्याप्त अनुकरण किया गया है ।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस काव्य में रामरूपी पर ग्रह से सीतारूपी जीन का विरह मनरूपी दशासन के द्वारा ससार रूपी समुद्र के पार ले जाने के कारण उत्पन्न कर गुरु रूपी इस की जीन ग्रह के मध्य में सन्देश-वाहक बनाकर शरद् श्रुतु का वर्णन करते हुए शान्त रस का परिपोष किया गया है । लेकिन काव्य में इस धारणा की पुष्टि करने वाले अन्तरण प्राय नहीं ही हैं । चू कि लेखक वैष्णव सम्प्रदाय का एक विशिष्ट आचार्य हैं तथा दार्शनिक भी हैं, अतः यत्र तत्र 'धर्म और दर्शन का प्रसंग आ जाना' स्वाभाविक ही है । उदाहरण के लिए निम्न लिखित श्लोक देखिए—

सचिन्व्याना तदणुतुलसीदामभिस्त्वामभिव्या  
तम्या वेद्यामविदधती श्यामल हव्यग्राहम् ।  
भोगैर्गौर्यप्रियसहचरै काऽपि लक्ष्मी कटाक्षै  
भूयश्श्यामा भुवनजननी देवता सन्निधत्ते ॥१॥१२॥

इस श्लोक में दृष्टिशैल पर स्थित लक्ष्मीजी के साथ नागयज्ञ के विग्रह का वर्णन किया गया है ।

इसी प्रकार एक अन्य स्थल में सीताजी की विरहावस्था का वर्णन करत हुए कवि ने योग का प्रसंग उपस्थित किया है । यथा—

चेतोवृत्तिं शमयति बहिस्सार्वभौमे निरोधे  
 मय्येकस्मिन् प्रलिहितधिय मान्मयेनागमेन ।  
 अभ्यस्यन्तिमनितरजुषो भावनाया प्रकर्षात्  
 म्यात्तेनान्तर्विलयमृदुना निरिंकल्प समाधिम् ॥२॥२२॥

इस श्लोक में रामचन्द्रजी के प्रति सीताजी के एकाग्रभाव का वर्णन करते हुए कवि ने निर्विकल्पक समाधि का रूपक प्रस्तुत किया है। लेकिन यह सब गौण है। शान्त रस के परिपोषण की ओर कवि की दृष्टि कभी नहीं रही है। काव्य के प्रारम्भ में ही कवि ने रामचन्द्रजी की अवस्था का वर्णन करते हुए कहा है—

यंशे जातम्सरितुरनघे मानयन्मानपर्यं  
 देशधीमान् जनकतनयान्येपण्ये जागरूकः ।  
 प्रत्यायाते पञ्चतनये निश्चितार्थस्स कामी  
 कर्पाकारा कथमपि निशामाभिभात विपद्हे ॥१॥१॥

इस पद्य में 'जनकतनयान्येपण्ये जागरूकः' तथा 'निश्चितार्थस्स कामी' इन पद्यों से राम के मन लग और स्वरूप तथा 'कर्पाकारा कथमपि निशाम्' इत्यादि कथन से जागरावस्था, ओत्सुक्य और चिन्ता की व्यञ्जना की गई है। इस तरह पद्य स्पष्ट है कि इस काव्य में वियुक्त सीता रूप आलम्बन, शरद् भूतु और एकान्त धाम इत्यादि उद्दीपन, शय्यापरिवर्तन इत्यादि अनुमानगम्य अनुभाव, चिन्ता और ओत्सुक्य इत्यादि संचारिभाव तथा रोमांच, स्वेद और वैषम्य इत्यादि सात्त्विक भावों व द्वारा श्री रामचन्द्रजी के रतिस्थायिभाव की ही पुष्टि की गई है। अतः विमलम्भ २ गार ही इस काव्य का मुख्य रस है और यह विमलम्भ भी यहाँ पर प्रयासजन्य है, क्योंकि रामचन्द्रजी और सीताजी का परस्पर मिलन पहिले तो हो ही चुका है। विमलम्भ २ गार के साथ साथ करण रस भी काव्य में विद्यमान है।

काव्य के परिशीलन से इतना तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य बहुत सरल और मधुर है। मेघसंदेश के अनुकरण पर लिखे होने पर भी काव्य में मौलिकता है। भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार है। राम जैसे धीरोदात्त और इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति को काव्य का नायक बनाकर कवि ने अपने सन्देश काव्य को मेघ संदेश की अपेक्षा कुछ विशिष्ट रूप दे दिया है तथा नायक नायिका के दृष्टि-कोण से सन्देशकाव्यों के क्षेत्र को और भी विस्तृत कर दिया है।

इस के दूत बनाए जाने का विचार कवि ने नलदमयन्ती वृत्तान्त से ही ग्रहण किया है। संदेश की समाप्ति पर इस की प्रशंसा करते हुए रामचन्द्रजी कहते हैं—

प्रागप्येव परिणतगुणा नेपथे वीक्ष्य वार्ताम्  
अर्तनाण व्रतमिति विदुहस शुद्धात्मना व ॥२॥२७॥

इस पद्य से यह नितान्त स्पष्ट है कि नलदमयन्ती वृत्तान्त से ही कवि ने इस के दूत बनाने का विचार ग्रहण किया है। भाषा, भाव, छन्द तथा प्रक्रिया इन सभी दृष्टियां से यह सन्देश काव्य एक सुन्दर रचना है तथा सन्देशकाव्यों की परम्परा में विभिन्न साहित्यिक विशिष्टताओं के कारण इसका अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

### किसी अनिर्ज्ञात लेखक का इस सन्देश ( वि० पञ्चदश शतक )

यह काव्य त्रिवेन्द्रम् ससृष्ट सीरीज, त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित हुआ है। श्री के० साम्प्रशिव शास्त्री ने इसका सम्पादन किया है। इस काव्य पर पद्यमय एक व्याख्या भी है। लेखन कवि तथा टीकाकार दोनों के ही विषय में कुछ ज्ञान नहीं है। हिज हार्नेस श्री विशागम् तिरुनल महाराज ने, जो कि ससृष्ट विद्या के प्रेमी थे और स्वयं भी बड़े विद्वान् थे, इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में रायल एशियाटिक सोसाइटी के पत्र स० १६ स० १८८८ ई० पृष्ठ ८५० पर लिखा है—

“The other Hamsa sandesha whose author's name could not be found out, is quite of a different nature. The subject is a philosophical one. It is probable that some rival poet of the Vaishnava Vedantacharya has written this, as he (the Vedantacharya) has composed a Nataka named “Sankalpa suryodaya” to match the Prabodhachandrodaya.”

हिज हार्नेस श्री विशागम् तिरुनल महाराज की यह भी राय है कि यह काव्य तथा और भी सन्देश काव्य केरल देश के ही कवियों की रचनाएँ हैं और जिस तरह छप्पमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय नामक नाटक के अनुकरण पर श्री वेदान्तदेशिक ने अपना सक्त्प सूर्योदय नामक नाटक लिखा, उसी तरह यह काव्य



भी वेदान्तत्रिपय को सुगम बनाने के लिए लिखा गया है। श्री वेदान्तदेशिक ने भी इस सन्देश लिखा है, लेकिन यह काव्य उनके काव्य से केवल नाम में ही समता रखता है। त्रिपय की दृष्टि से बिल्कुल भिन्न है।

काव्य में—यत्समश्लेषे सति तु गुरुणा शक्रेण्यप्यभिन्त्यम् ॥२॥३६॥ पद 'से' थी शकराचार्य के लेखक ने गुरु होने की भी सम्मानना की जा सकती है। समग्र है कि लेखक श्री शकराचार्य का साक्षात् शिष्य न हो और उनकी परम्परा में होने के ह। कारण उन्हें गुरु रूप से मानता हो।

इस तरह यह तो निश्चित ही है कि यह काव्य श्री शकराचार्य तथा श्री कृष्णमिश्र के परवर्ती किसी कवि की रचना है। समग्र श्री वेदान्तदेशिक के समकालीन किसी कवि ने इसे लिखा हो। अतः इस काव्य का रचनाकाल वि० चतुर्दश शतक के कुछ बाद ही होना चाहिये।

### कथासार

इस सन्देशनाम् में कथास्तु जैसी कोई चीज नहीं है। वेदान्त त्रिपय को रोचक ढंग से समझाने के लिये प्रतीक शैली (allegorical way) में यह सन्देश काव्य लिखा गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है—

कोई शिवभक्त शिवभक्ति रूपी अपनी अनन्य प्रेयसी के सुखद सम्पर्क से अद्वैतानन्द में मग्न था। अपने पूर्व कर्मों के प्रभाव से माया के बर्शाभूत हो जाने के कारण वह शिवभक्ति से वियुक्त हो जाता है। किसी तरह कुछ दिन जीतने के बाद वह अपने मनरूपी इस को दूत बनाकर शिवलोक में स्थित अपनी प्रेयसी शिव भक्ति के पास प्रेम सन्देश स्वर भेजता है।

इस प्रसंग में भूमि से शिशरोक्त पर्वन्त मार्ग, तदन्तर्गत देश तथा उम स्थान के श्रवताओं का वर्णन किया गया है। सर्व प्रथम इस से उत्तर दिशा की ओर चलने को कहा गया है। तदनन्तर गंगा (विंगला), यमुना (इडा) और सरस्वती (सुपुम्ना) इन के संगम पर दिव्य मूलस्थान तीर्थ होते हुए तथा वहा पर विराजमान ईश, गणपति, तारकारि और दुर्गा की पूजा करने के बाद आगे बढ़ने पर पास में ही पार्वती का तपोवन बतलाया गया है। वहा से उत्तर की ओर चलने पर कीचकचक्र, धर्मीकान्ध, महाभैरव, सिद्धों द्वारा चन्दनीय भण्डिय मण्डप तथा वहा पर किराती रूप में विराजमान अर्पणा देवी के दर्शन करने का कर्मशः इस की परामर्श दिया गया है। वहा से फिर ऊपर की ओर सिद्धों द्वारा चन्दनीय कोई पूर्णगिरि आश्रम तथा वहा पर विराजमान मंगलाय्या देवी का उल्लेख किया गया है। वहा से आगे चलने पर जालन्धर देश तथा वहा पर लम्बिका में विराजमान भगवान् शिव की स्तुति करने के बाद आगे बढ़ने पर कैलाश नामक स्थान में विहार करने का इस

को परामर्श दिया गया है। इसी कैलाश पर द्वादशान्त नामक शिखलोक बताया गया है। शिखलोक के वर्णन के बाद वहाँ पर स्थित चन्द्र मण्डल, दीर्घिका, ज्ञानकमल तथा उसके मध्य में प्रकाशमान स्वरूप कर्णिका का वर्णन किया गया है। इस ज्ञान कमल में ही शिवजी और पार्वतीजी को विहार करता हुआ बताया गया है। यहाँ पर शिवजी की श्रद्धा पूर्वक पूजा करने के बाद शिवभक्ति से हृस के मिलने का उल्लेख किया गया है। शिवभक्ति को शान्ति के साथ विहार करता हुआ देखकर फिर सन्देश सुनाने की हृस से प्रार्थना की गई है। सन्देश में भक्त ने अपनी दीना यस्या तथा शिवभक्ति की महिमा का वर्णन किया है।

अन्त में हृस की कार्यक्षमता तथा उसके प्रति शुभ कामनाओं से काव्य समाप्त हो जाता है।

### काव्यसमीक्षा

त्रिपय की दृष्टि से यह सन्देश काव्य विरहकृत नप टग का है। सन्देश-काव्य प्रायः विप्रलम्भ शृंगार को ही प्रधान मानकर लिखे जाते हैं। बाटमीकि रामायण में रामचन्द्रजी के दूत के रूप में हनुमान्जी का सीताजी के पास जाना विरहकालीन घटना है और कालिदास के मेघदूत में भी मेघ को प्रेयसी के विरह प्रसंग में ही प्रिय का दूत बनाकर भेजा गया है। अतः यह स्पष्ट है कि सन्देश काव्य प्रायः विरहप्रसंग को ही लेकर लिखे गए हैं। इस हृस सन्देश का लेखक भी इस बात को जानता है। उसने कतिपय स्थलों में रामचन्द्रजी, सीताजी और हनुमान्जी का उल्लेख भी किया है—

रामो यद्वज्जनकमुतया दण्डकारण्यभूमौ

क्षेत्रे प्राप्तं कञ्चन पुष्पं कटय्यामास वासम् ॥१॥१॥

काव्य के अन्त में भी शिवभक्ति से अपने मिलने का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

काम दत्ता वहुमुपमया प्रेयसीं तामनाप्स्ये

यद्वत् दूष्य द्युकुलपतिमथिलां मान्यशीलाम् ॥२॥१॥१॥

इसी प्रकार हृस को दूत बनाने के प्रसंग में हनुमान्जी का भी उल्लेख किया गया है—

क्षेत्रे तन्मिन् सद्यः विहरतामिन्द्रियाणां मृगाणाम्

वृत्त्यां सृष्टिं विषयकृतलैर्यापयित्वा दिनानि ।

संसागधे प्रतरणविधायाञ्जनेयं यथा यं

हृस कञ्चित् सदचरमसौ मानसस्य ददर्श । १॥२॥

इन सब अवतरणों से यह स्पष्ट है कि इस काव्य को लिखते समय कवि के ध्यान में धार्मीक रामायण का यह प्रसंग अग्रस्थ था । कालिदास का मेघदूत भी एक आदर्श सन्देशकाव्य के रूप में कवि के समय में प्रसिद्ध था और कवि की यह महत्प्रयासा रही होगी कि उसका काव्य भी देश भर में प्रसिद्ध हो । इसीलिए काव्य में कालिदास का अनावश्यक रूप से उल्लेख भी पाया जाता है । कालीदेवी को एक बार प्रणाम करने से कालिदास की तरह इस के भी ख्यातिप्राप्त होने का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

कालीं कालाम्युदनिभरञ्चि ता सहृत् तत्र नत्वा  
प्राप्तासि त्व प्रथितमहसं कालिदासस्य कीर्तिम् ।  
सूक्तिज्योत्स्नास्तु तिविततिभि स्वर्धुं भीस्पर्धिनीभि  
आन्यं काव्य भुवि रचयता मातृका यत्प्रवन्धा ॥१॥३८॥

टीकाकार ने भी लिखा है कि कवि ने कालिदास की महिमा गाने के लिए ही कालिदास का उल्लेख कर दिया है—

किञ्चिन्निमित्तमाधित्य कालिदास महाकविम् ।  
उपश्लोकयितुं प्राह कवि श्लोक सुशोधक

इन सब बातों से यह नितान्त स्पष्ट है कि कवि सन्देशकाव्यों की विषयपरम्परा से सर्वथा परिचित था । यह उसकी अपनी नहीं कल्पना ही है कि उसने वेदान्त और भक्ति के विषय को सन्देशकाव्य के रूप में पाठकों के सामने रखा है । कवि को इस का नल के सम्बन्ध में किया गया दूतकार्य ज्ञात ही है जैसा कि उसने स्थग उल्लेख किया है—

प्रेक्षेत त्या नल परिसराद्वागत राजहस  
वैदर्भीन प्रियरचनतो भूयसाऽह्लादयन्तम् ॥२॥३१॥

तथा कवि ने स्थग—

आप भर्तुं स्तत्र सहचरश्चित्तसङ्गोऽस्मि हस  
स्तत्सन्देशादुपगत इहेत्येवमाचक्षत तस्यै ॥२॥२६॥

इस पद्य में चित्त को हंस स्वरूप माना है, अतः इस को सन्देश पाहक बनाना उचित ही है । इसका अतिरिक्त थी वेदान्त-दशिक जो कि रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी थे और त्रिशिष्टाद्वैत के मानने वाल थे, इस-सन्देश नामक सन्देश काव्य रामचन्द्रजी की कथा के आधार पर लिख चुके थे, उनके समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी होने के कारण कवि का अपने काव्य का इस-सन्देश नाम रखना और भी उचित जान पड़ता है ।

विषय की दृष्टि से सर्वथा भिन्न होते हुए भी यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखा गया है। काव्य में दो भाग हैं। पूर्व भाग में ५० और उत्तरभाग में ५१ श्लोक हैं। छन्द मन्दाक्रान्ता ही है। भागानुकूल सरस और प्रसाद गुणयुक्त भाषा में ही यह काव्य लिखा गया है। शान्त रस की ही काव्य में प्रधानता है।

काव्य में दो मार्गों का प्रतिपादन किया गया है—एक आध्यात्मिक मार्ग जो कि परमार्थ स्वरूप है तथा उसका सहायक योगमार्ग। आध्यात्मिक मार्ग का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने प्रारब्ध कर्मों के प्रभाव से ससार में जन्म लेता रहता है। जय भ्रष्टा, ज्ञान, श्रमण, धृति, शान्ति और तपस्या के द्वारा उसके सासारिक बन्धन नष्ट हो जाते हैं और वह अपने स्वरूप में आ जाता है, तब परमात्म प्रेम रूपी भक्ति के द्वारा उसे शिखायुज्य प्राप्त हो जाता है। कवि ने काव्य के प्रथम श्लोक में ही कहा है—

एषिञ्चिन्माया मृग यश गत कर्मणा मुशमानो  
भक्त्या शम्भोश्चरणभजया विप्रयुक्तो विपण ॥१॥११॥

तथा एक अन्य स्थल पर भी आध्यात्म मार्ग का चित्र कवि ने इस तरह दिया है—

न त्यदयामि क्षणमपि चिरात् सञ्चिता ता तु साध्वीं  
तस्या-सक्त सुचिरमनघ स्वाधिराज्य प्रपत्स्ये ।  
भ्रष्टा मेधा श्रुतिमपि धृति शान्तिदान्ती च मुक्तिं  
कृष्णो गोपीजनमित्र भजन् निर्वृतस्त्य च भूया ॥

इस आध्यात्ममार्ग का महायज्ञ दूसरा मार्ग योगमार्ग है। इस मार्ग में सुपुत्रणा से लेकर द्वादशान्तेन्दु मण्डल तक विभिन्न अवस्थाओं में से होते हुए मन की यात्रा का वर्णन किया गया है। अन्त में मन भक्ति व साध अमृतयोग अवस्था में पहुँच कर पूर्ण विधान्त हो जाता है। योग मार्ग का वर्णन कवि ने इस तरह दिया है—

मूले लिंग महितभुजगीमौलिरक्षापमानम्  
ससर्पन्त्या शिशिरसुधया द्वादशान्तेन्दुशयात् ।  
भक्त्या युतस्तत्र सहजया, मूयसै वाभिषिञ्च-  
स्तत्तोयेन प्रियसग्न तनु प्लावयित्वा सुग्री स्या ॥२॥४७॥

इस दोनों धाराओं—आध्यात्म और योग—के अतिरिक्त काव्य में शैवसिद्धान्त की भी भूलभरक पाई जाती है। इस प्रसंग में निम्न अथतरणों पर विचार करना अनुचित न होगा—

दिव्या शक्ति परमपुरुषप्राप्तये श्रद्धधाना  
मूले तस्मिन् निवसति चिर सा सुपुष्पाद्रुमस्य ॥१॥२२॥

सैषा गीरी सरस विसिनीकाण्डनन्तपद्मागी  
भूतशेन प्रथितमहसा मट्पत प्रार्थयन्ती ।  
मूले तस्मिन् जलितमनल त्रि परिक्रम्य सम्यक्  
प्रापस्तन्नी चरति सुचिर तापहन्त्री तपासि ॥१॥२३॥

इसके अतिरिक्त शिवभक्ति के पास ही तो इस के द्वारा संदेश भेजा गया है ।  
इस प्रकार शैव सिद्धान्त की भी अन्तर्धारा काव्य में स्पष्ट ही प्रतीत होती है ।

उपर्युक्त शास्त्रीय विषयों के साथ-साथ काव्य में मधुरता लाने के लिए कवि ने  
भक्ति को उत्तमनायिका तथा भक्त को उत्तमनायक के रूप में वर्णित किया है और  
उनके विरह को इस तरह ही पाठकों के सामने रखा है मानो किसी प्रिय का अपनी  
प्रेयसी से विरह हो । इस को देखकर भक्त की क्या दशा होती है । कवि कहता है—

दृष्टे तस्मिन् चिरविरहिता प्रेयसी वद्वर्भक्ति  
स्मार स्मार सज्जनयनस्तत्र तूष्णीवभूय ।  
उच्चै स्त्वित्या हतविधिः शत प्राप्तातादग्विधाना  
मूकीभाष खलु समुचितो बान्धवाना पुरस्तात् ॥१॥२३॥

भक्ति का विरहिणी नायिका के रूप में निम्न श्लोक में कैसा व्यनीय चित्र  
प्रस्तुत किया गया है—

काश्य यायात् खलु विधिवशात् प्रायश साम्प्रत सा  
कालुष्य या मयि पुनरनाचारमाशङ्कमाना ।  
शोचेत् किं या प्रियसहचरी दुर्लभ मा विदित्वा  
किं किं गाला प्रियविरहिता नैन सच्चिदतयन्ति ॥२॥२६॥

भक्ति का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

या सा याचि प्रकृतिमधुरा या च चित्तं दयालु-  
या या मन्ना वपुषि विनयाद् या च नेत्रे प्रसन्ना ।  
साध्यास्तस्या किमिदं बहुभिर्वर्णनाना प्रकारं  
सैषा वाचित् सरसिजमुजो मानसी वृष्टिरन्या ॥२॥२७॥

इस पद्य में कवि ने भक्ति को एक उत्तम नायिका के रूप में कितने सुन्दर ढंग  
से वर्णित किया है । जिस तरह कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के गुणों की प्रशंसा करे,  
इस तरह ही भक्त भक्ति के गुणों की प्रशंसा कर रहा है ।

कवि ने शिवजी का वर्णन करते हुए लिखा है—

मौली कुन्दोल्लसितमलक सेन्दुलेश कपद  
काश्मीराङ्क तिलकमलिके लोचन सस्कुलिङ्गम् ।  
कण्ठे कालागुरुमपि च य कालकूट चधत्ते ।  
सौम वृत्ते जघनपुलिने नूपूर व्यालमङ्गघ्नी ॥२॥६॥

भक्तों के हृदय का प्रभावित करने वाला शिवजी का यह स्वरूप वर्णन कितना सुन्दर है ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट ही है कि अध्यात्म और योग के शुष्क विषय को कवि ने बड़े सरस ढंग से प्रतिपादित किया है । मेघदूत के अनुकरण पर तो यह काव्य लिखा ही गया है । भिन्न विषय को लते हुए भी कवि ने मेघदूत की शैली का सकल अनुकरण किया है । कवि ने अपने विषय को ठीक उसी ढंग से व्यवस्थित किया है जैसा कि मेघदूत में पाया जाता है । भक्त का भक्ति से विरहित पुरुष के रूप में वर्णन, इस दर्शन, इस स्वागत, मार्ग दर्शन, सन्देशकथन और आश्वासन तथा इस के प्रति शुभकामनाएँ यह सब मेघदूत की ही प्रेरणा है । कहीं कहीं भाग-साम्य और शब्द-साम्य विरकुल प्रत्यक्ष ही है । मेघदूत में मेघ के द्वारा सन्देश पहुँचाने की इच्छा से यह मेघ का स्वागत करता है और उसके लिये अर्घ्य भी देता है—

जीमूतेन स्तकुशलमर्षा हारयिष्यन् प्रयुतिम् ।  
स प्रत्यग्रै कुटजकुसुमै करिष्यतामर्घ्य तस्मै  
प्रीति प्रीतिप्रमुखयत्नेन स्वागत व्याजहार ॥२॥७॥

इसी तरह इस सन्देश काव्य में भी कहा गया है—

आत्मोदन्त प्रियजनमसौ प्रापयिष्यन् प्रहृष्ट  
क्लृप्तामर्घ्य प्रशमकुसुमै स्वस्ति तस्मै जगाद ॥२॥८॥

दोनों पद्यों में कितनी समानता है ।

मेघ को सन्देश ले जाने के लिए नियुक्त करते समय कामार्त होने का कारण यक्ष की विवेक शून्यता बतलाई गई है—

इत्योत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्त ययाचे  
कामार्ता हि प्रकृतिरुपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥२॥९॥

इसी तरह इस काव्य में शिवलोक में मर्नरूपी इस से जाने की प्रार्थना करते हुए भक्त के सम्बन्ध में कहा गया है—

मन्यानास पशुपतिपद गन्तुमेन यथावे ।  
नैराविन्दत् तदिह वचसा चेतसामप्यभूमिम्  
युक्तायुक्तेऽपि हि त्रिदुषामर्थिना नो विवेकः ॥१॥५॥

मेघदूत का मार्ग-कथन के प्रसंग में आया हुआ निम्न श्लोक—

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूप  
सन्दश मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।  
खिन्न पिन्न शिखरिषु पद न्यस्य गन्तासि यत्र  
क्षीण क्षीण परिलघु पथ स्रोतसा क्षोपयुज्य ॥१॥१३॥

तथा इस काव्य का मार्ग कथन के ही प्रसंग में आया हुआ यह श्लोक—

आदौ तावच्छृणु कथयतो मार्गमन्यास्त मे  
सन्देश मे श्रवणसुभग सौम्य । वक्ष्यामि पश्चान् ।  
पीत्वा पीत्वा शशि जिगलिता यत्र पीयूषधारा  
पदमे पदमे निहितमसति प्रत्यह वास्यसि त्वम् ॥१॥६॥

देखिए । दोनों श्लोकों में शैली, भाव तथा शब्दों की समानता कैसी दर्शनीय है ।

मेघदूत में यक्ष ने अपनी विरहिणी प्रेयसी की विरहावस्थाओं के समानता प्रसंग में कहा है—

आलोके ते निपतति पुरा सा  
पृच्छन्ती वा मधुरवचना सारिका पञ्जरस्था,  
कच्चिदुभयं स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२॥२४॥

इसी तरह इस काव्य में भी विरहिणी भक्ति की विरहावस्था का वर्णन करते हुये कहा गया है कि सभय है वह उपनिषत् रूपी शारिका से यह पूछ रही हो कि उसे ( शारिका को ) क्या भक्त की याद भी आती है या नहीं—

पृच्छेद्वासौ चिरमुपनिषच्छारिकामन्तिवस्था  
पु स किन्तु स्मरसि रसिके त्वं हि तत्र प्रेमपाथम् ॥२॥२५॥

उपनिषत् को शारिका मानकर कवि ने कहा पर कैसी सुन्दर उमेछा की है तथा मेघदूत से लिये हुये भाव को भक्ति के प्रसंग में कितनी-मौलिकता के साथ एकरस कर दिया है ।

मेघदूत क—रगमालिन्य प्रणयवृषिता धातुदामे शिलायाम्—

आत्मानं न चरणपतित यावदिच्छामि कर्तुम् ॥२॥४८॥ इत्यादि

पद की छाया लेकर भक्ति के सम्यन्ध में करि ने क्या ही सुन्दर करना की है-

सप्रिद्धातु द्रव्यमतिवरा स्वच्छमासाद्य मय  
प्रज्ञासङ्गमपि च फलका तूलिका ध्यानरूपाम् ।  
शान्ता मू त तत्र विलिपितु मायाम्येव यावत्  
तावद् वैरी नयनयुगल बाष्पपूरो निरुन्धे ॥

ज्ञान के रंग से प्रज्ञा रूपी फलक पर ध्यान रूपी तूलिका से भक्ति की शान्त मूर्ति का भक्त चित्र बनाना चाहता ही है कि उसकी आयों से लगातार आसु धरसने लगते हैं और चित्र बनाने का विचार अपूर्ण ही रह जाता है ।

भक्ति के पूर्णरूप की खोज में भक्त योगियों, प्रतिषों, यतियों तथा जटाधारियों क समीप जा चुका है, लेकिन कहीं भी उसे भक्ति का पूर्ण स्वरूप उपलब्ध नहीं हो सका है—

योगीन्द्रेषु ध्वजमननध्यानशीलेषु नित्य  
मीनस्थेषु प्रतिषु यतिषु ब्रह्मगिद्विस्तु सत्सु ।  
भस्मच्छन्नेष्वपि च जटिलेष्वाश्रितस्त्वा विपश्यन्  
पूर्णाकारा कचिदपि विधेयभगान्तो लभे त्वाम् ॥२६॥

इस श्लोक में मेघदूत के—श्यामाम्बुङ्ग चकितहरिणीप्रक्षले दृष्टिपात  
वक्त्रकटाया शशिनि शिखिता र्द्धभारेषु केशान् ॥२॥४३॥ इत्यादि

पद का भावानुकरण किया गया है ।

मेघदूत में यद्य अपनी प्रेयसी की विभिन्न निरुद्धावस्थाओं की सभायना के पश्चात् कहता है—

यावाल मा न यलु सुमगभग्न्यभाज करोति  
प्रत्यक्ष तं निखिलमचिरात् भ्रातरुक्त मया यत् ॥२॥३३॥

इसी तरह इस काव्य में भी भक्ति की विरुद्धावस्थाओं की सभायना के बाद भक्त कहता है—

आत्मश्लाघा वरमिति न मे सीम्य । आर्नाहि वाक्य  
साक्षात्कृतं प्रभवति भगान् क्षिप्रमेवामुमर्थम् ॥२॥५७॥

इस तरह मेघदूत और इस हस-सन्देश में समान भाव तथा पदावली वाले अनेक स्थल पाए जाते हैं ।



धार्मिक विषयों का प्रतिपादन करते हुए भी कवि ने अपनी साहित्यिक रुचि का, यथास्थान परिचय दिया है। योग के गहन मार्ग को सरल उपमाओं द्वारा सुगम बनाने की चेष्टा की है। सुषुम्णा मार्ग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

मोहे लाक्षागृह इव तदा दृष्टमाने सधन्तात्  
सौषुम्न तत् प्रविश सुषिर वृत्तिभेदैश्च शक्त्या ।  
मात्रा मुच्ये सह च सहजैर्ममसेन सुरुङ्गा  
यद्वत् प्राप्तो गिरुयुरुणा पूर्वमेवोपदिष्टाम् ॥१॥३१॥

महाभारत की प्रसिद्ध कथा से उपमाएँ सगृहीत कर कवि ने अपने विषय को कैसा सरल बनाया है।

इसी तरह वदन्त के विषय को सर्वसुगम उपमाओं द्वारा कितना सरल बनाकर निम्न श्लोक में समझाया गया है—

नष्टो मायामृग इव खरो वृषणश्चैव पाप्मा  
व्यामोहाय प्रसरति पर धासनाराक्षसी मे ।  
ससारारये क्नु विगलन्ति स्वप्नरूपेऽन्धकारे  
बोधादित्येऽप्युदित्यन्ति सत्यावयो न्याद्वि योग ॥२॥३८॥

ज्ञान के उद्भव होने पर ही भक्ति की प्राप्ति हो सकती है। इस सिद्धान्त को कवि ने कितनी अच्छी तरह सरल उपमाओं द्वारा समझाया है।

शिवलोक ■ इस के साथ भक्ति के आने का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

इत्येव त्वय्युदित्यति सा सानुकम्पा तदा त्वा—  
मन्यग्यायात् प्रणयभरिता गौरिवात्मीयवत्सलम् ॥२॥४४॥

भक्ति की भक्तवत्सलता व्यक्त करने के लिए 'गौरिवात्मीयवत्सलम्' उपमा कितनी भावपूर्ण हो गई है। इस तरह कवि ने वेदान्त, योग और भक्ति के विषय को काव्य मय ढंग से इस काव्य में प्रतिपादित किया है।

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को भली भाँति काव्य के विषय, भाग, शैली, छन्द और भाषा से परिचय हो गया होगा। मेरूदूत से प्रेरणा लेकर भी कवि ने अपनी कल्पना से काव्य में एक नूतनता उत्पन्न कर दी है। शृंगार रस का अनुकूल वातावरण में शान्त रस का संज्ञा कर दिया है। सन्देशकार्यों की परम्परा में यह काव्य विषय की दृष्टि से एक नई शिखा का निर्देश करता है। श्री वदन्तदशिक न र्धाट्पणमिध व प्रार्थयन्तोदय नाटक के अनुकरण पर विशिष्टाद्वैतपरक अपना

सट्कल्पस्योदय नामक नाटक लिखा । इस नाटक से कवि के हृदय में रूपकमय किसी काव्य के लिखने की प्रेरणा हुई होगी । लेकिन वेदान्तदेशिक के इस सन्देश देखकर उसने सन्देशकाव्य ही 'पलीगोरीकल' (Allegorical) ढंग से लिखना ठीक समझा तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी के सन्देश-काव्य को तुच्छ बनाने के लिए वेदान्त, योग और भक्ति से युक्त अपने काव्य का नाम इस सन्देश रख दिया । यदि इस काव्य को मानससन्देश या ऐसा ही कुछ और नाम दिया जाता तो भी अनुपयुक्त न होता । अस्तु, सन्देश काव्यों की परम्परा में भक्ति-काव्य या शान्तरस प्रधान काव्य के रूप में इस काव्य के महत्त्व को भुलाया नहीं जा सकता । वेद है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण काव्य के रचयिता का नाम इत्यादि अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है । काव्य में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लेखक का कुछ भी परिचय नहीं मिलता है । इस काव्य के टीकाकार का भी समय और स्थान कुछ भी ज्ञात नहीं है । टीका की विशेषता यह है कि यह पद्यात्मक रूप में लिखी हुई है । वेदान्त और भक्ति के अनुयायी जिज्ञानों का अपने विषय में ग्रन्थ में कहीं भी कुछ भी न लिखना स्वाभाविक ही है ।

### लक्ष्मीदास का शुकसन्देश ( वि० पचदश शतक )

मालाशर प्रान्त के सन्देशकाव्य-लेखकों में लक्ष्मीदास का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है । इस सहृदय कवि की कोई और रचना अब तक उपलब्ध नहीं हुई है, लेकिन इसका यह शुकसन्देश ही मालाशर में बहुत दिनों से प्रथम कोटि का एक काव्य माना जाता रहा है । मालाशर के प्रसिद्ध कवि तथा कौगनोर राजवंश से सम्बद्ध स्वर्गीय श्री कुन्दकुट्टन चम्पन के मलयालम अनुवाद सहित श्री टी० ए० कृष्णमेनन द्वारा मलयालम लिपि में यह काव्य प्रकाशित किया जा चुका है । ४० पी० एस्० अनन्तनायण शास्त्री द्वारा सक्षिप्त भूमिका और टिप्पणों के साथ दश-नागरी लिपि में मंगलोदय कम्पनी, त्रिवूर (कोचीन) से भी यह काव्य प्रकाशित हुआ है ।

पेरल देश में 'फरिट्टुम्पिल्लि' नाम से आजकल प्रसिद्ध स्थान ही लक्ष्मीदास का जन्म स्थान था । ऐसा ही सब का विचार है । है भी यह उचित ही, क्योंकि

इस स्थान पर आक्षेपों के ही धर अधिक पाए जाते हैं। लेकिन लक्ष्मीदास के समय के संस्कृत में विद्वानों में इस मतभेद है। केरलीय विद्वानों में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वे अपने रचनाकाल का अक्षरों की सख्या द्वारा उल्लेख करते हैं। इस प्रकार कुछ विद्वानों का विचार है कि लेखक ने काव्य के प्रारम्भ में ही 'लक्ष्म्या रगे शरदि शशिन' इन पदों द्वारा मुद्रालंकार में अपने काव्य का निर्माण समय बता दिया है। गणना करने पर कलियुग का 3013 वा वर्ष इस काव्य का निर्माणकाल ठहरता है। दूसरे शब्दों में स० ११० ई० इस ग्रन्थ का निर्माणकाल आता है। लक्ष्मीदास ने कालिदास का अनुकरण तो किया ही है और कालिदास का समय भी उस समय से कुछ पूर्व ही बहुत विद्वानों द्वारा माना जा चुका है। अतः स० ११० ई० में लक्ष्मीदास द्वारा शुकसदेश का लिखा जाना कुछ भी असंभव नहीं है।

इसके विपरीत कुछ विद्वानों का विचार है कि प्रथम पत्र के 'दूरनीत स तस्या' इन पदों से ही काव्यनिर्माण का समय ज्ञात होता है। यह पद कलि दिनों की सख्या बताते हैं। इस प्रकार ६६६ वा कोलम्ब वर्ष ही शुकसदेश का रचना काल है। ६६६ कोलम्ब वर्ष सन् १४६१ ई० ठहरता है। अतः यही समय ग्रन्थ का रचना काल है।

चूनि उद्यकत्रि के मयूरसदेश में शुकसदेश और कोकिलसदेश इन दोनों काव्यों का अनुकरण पाया जाता है और शुकसदेश को सभी लोग कोकिलसदेश से भी प्राचीन मानते हैं अतः कम से कम त्रि० पञ्चदशशतक के प्रारम्भ की इस काव्य का रचना काल माना उचित रहेगा। (विशेष अध्ययन के लिए काव्य की भूमिका पेटिए)।

## काव्य की रचना

गुणरूपुरी अथवा गुणपुरी में शरद ऋतु की रात्रि में अपने प्रासाद के ऊपर दो प्रेमी सुखमय विहार में मग्न थे। इतने में नायक को अकस्मात् ऐसा स्वप्न आता है कि वह अपनी प्रेयसी से त्रिबुड गया है और घूमते-घूमते रामेश्वर के समीप रामसेतु पर पहुँच गया है। तदनन्तर स्वप्न में ही वह अपनी प्रेयसी के पास गुणरूपुरी में एक शुक के द्वारा अपना सदेश पहुँचाता है। इस प्रसंग में रामेश्वरम् से गुणरूपुरी तक के मार्ग का वडा ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

1. गुणरूपुरी प्राचीन समय में एक प्रसिद्ध नगरी थी। स्वयंसेवक आश्रम के एन्कणामनिलक का ही यह नाम रहा हो। आजकल यह एक छोटा सा ग्राम रह गया है।

रामेश्वरम् में शिवजी की पूजा करने के बाद समुद्र तट होते हुए सेतुबन्ध, नाम्नापल्ली नदी, पार्श्वदेश तथा पार्श्वदेश की राजधानी मणालूर नगरी (मनालोर्) आगे सह्य पर्यंत को पार कर केरलदेश पहुँचने के लिए शुक से कहा गया है। तदनन्तर केरलदेश में कुछ दूर पर स्थित कन्याकुमारी क्षेत्र को दूर से ही प्रणाम कर पुनः सह्यपर्वत पर आ जाने के बाद शिवजी के एक मन्दिर तथा ब्राह्मणों के एक अग्रहार का उल्लेख किया गया है। इस अग्रहार के बाद थोड़ी दूर पर ही स्थानन्दूर [ त्रिनेन्द्रम् ] नगर बताया गया है। इस नगर में भगवान् अनन्तशयन के मन्दिर में सायकालीन पूजा में भाग लेने तथा उहाँ पर ही बाहर किसी आन्न वृक्ष पर विधाम करने के बाद रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही शुक से फिर आगे बढ़ने के लिए कहा गया है। इस तरह आगे चलने पर समुद्र तट पर स्थित कूप-कराजाओं की नगरी कुलपुरी, तदनन्तर कोलम्पदेश (मिलान), बरलभग्राम (तिरुवरल), त्रिम्पलीनगरी (वेम्पनाट) तथा त्रिम्पली के राजाओं के स्कन्धानार सिन्धुद्वीप (कतलतुरुत्तु) के मिलने का उल्लेख किया गया है। इस के बाद फुरला नामक (मुन्नात्तुपुक्क) नदी को पार कर ब्राह्मणों के कुछ ग्रामों, सुनहमगय मन्दिर, पशुपतिक्षेत्र तथा इसके पास बहती हुई चूर्णी (अल्लयं या पेरियार) नामक नदी को पार करने के बाद उत्तर की ओर चलने पर केरल देश के राजाओं की राजधानी महोदयपुरी (तिरुवन्चिक्कुलम्) पहुँचने का शुक को परामर्श दिया गया है। इस नगरी के बाद पास में ही स्थित चण्डिका के मन्दिर का वर्णन किया गया है। तदनन्तर मन्दिर के पास में ही स्थित गुणकापुरी में सूर्यास्त होत २ पहुँच जाने के लिए शुक से कहा गया है। गुणकापुरी (सृक्कणामतिलक) के वर्णन के बाद नायक अपनी प्रेयसी के निवास स्थान का वर्णन करते हुए निम्नदर्शी कूप, वापी और क्रीडोद्यान का भी वर्णन करता है। उद्यमस्थित निलरु, कुरवक तथा आन्नवृक्ष के वर्णन के बाद अपने प्रासाद में स्थित त्रिदिविणी नायिका का फिर वहाँ ही भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

नायिका के वर्णन के बाद नायक शुक से उचित अग्रसर पारर नायिका से अपना सन्देश सुनाने के लिए कहता है। इस प्रसंग में नायक ने अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुए अपनी प्रेयसी को सान्त्वना भी दी है। अन्त में अपने सम्बन्ध में सन्देश निवारण के लिए कई अभिज्ञान घटनाएँ बताई हैं। इस तरह मार्गवर्णन, नायिका की विरहावस्था तथा सन्देश कथन के बाद शुक ने प्रति मंगलकामना के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

### काव्यसमालोचना

मालागार ग्रन्थ में लिखे गए सन्देश काव्यों में यह सन्देश काव्य एक महत्त्वपूर्ण सन्देशकाव्य है। मेरुदूत के अनुकरण पर ही यह लिखा गया है और दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में मार्ग वर्णन और द्वितीय में नायिका की विरहावस्था

तथा सन्दर्श कथन है। समग्र काव्य में मन्दाकिन्ता छन्द ही प्रयुक्त किया गया है। शृंगार रस के अनुकूल प्रसादगुणयुक्त ललित भाषा में ही काव्य की रचना की गई है।

काव्य की कथावस्तु से पाठकों को विदित ही है कि नायक का अपनी प्रेयसी से वियोग केवल स्वर्गजन्य है। इसलिए कथानक में वह स्वाभाविकता नहीं है जो कि मेघदूत में पाई जाती है। चूंकि यह दोष प्रायः सभी सन्देश काव्यों में पाया जाता है, अतः इसे दोष न मानना ही उचित रहेगा। कवि का शुक को दूत बनाना उचित ही है क्योंकि शुक में मनुष्यों की वाणी यथानुपूर्व्य उच्चारण करने की बड़ी क्षमता पाई जाती है। श्रीहर्षे कवि ने भी अपने नेपथ्य काव्य में इस की पान्शक्ति का परिचय दत्त हुए 'स कीर्यन्मानुपपन्नायादीत्' इस कथन से शुक की मनुष्यों जैसी उच्चारण शक्ति का समर्थन किया ही है। इस तरह शुक के सन्देश लं जाने में स्वाभाविक सौकर्य को देखकर ही कवि ने इसे दूत बनाया है। शुक की विशेषताओं का वर्णन करते हुए वरि स्वयं कहता है—

सम्यक् श्रोतुं सहृदभिहितं सर्वदोषावघातुं  
धीनालम्बे पथि विचरितुं व्यक्तमाभाषितुं च ।  
आधि यूनोरधरयितुमप्यार्तयोर्विप्रयोगे  
ताम्रागोनामरणं निपुणस्ताम्रतुण्डस्तवमेव ॥१॥१५॥

इसी तरह शुक भी सन्देश प्रारम्भ करने से पूर्व अपना परिचय देते हुए कहता है—

मुक्तव्याजं परजनमुपाकर्णिता नाम वाणी  
वाच्येत्यर्थं भुवनविदितं यस्य वशमत्र मे ॥२॥१७॥

कविता की दृष्टि से भी इस काव्य का सन्देशकाव्यों में एक विशिष्ट स्थान है। कलकार-योजना, भावपूर्ण सरस यशुन तथा कोमल करपनाओं से यह काव्य भरा हुआ है। शुक से अपनी प्रेयसी के पास सन्देश लं जाने की प्रार्थना करते हुए नायक कहता है—

प्रसूतयां प्रसुरवरणाक्षेपणीभाजि कृन्वा (धृत्वा)  
तीर्त्वा वर्तन्युदधिमचिरात्तीप्रचिन्ताकुलाया ।  
अस्मद्वार्ताधनसमुदयान्मुञ्जाद्या हरिदे-  
वार्ताप्राणदुर्ग सुकृतमत्रातरस्त च हस्ते ॥३॥२०॥

प्रसुर वरणाक्षी नीका दण्ड से युक्त प्रसूताक्षी नीका में रखकर तथा मार्ग रूपी समुद्र को पार कर बहुत दिनों से तीव्र चिन्ता में व्याकुल और कमल जैसे रत्नों वाली मेरी प्रेयसी व पास यदि मेरा सन्देश रूपी धन तुम पट्टचाश्रोग, तो

हैं किसी दुःखी की रक्षा करने से बड़ा पुण्य मिलेगा । इससे बढ़कर और अतिर  
किया ) तुम क्या चाहते हो ?

कवि ने इस श्लोक में कैसे सुन्दर रूपक की सृष्टि की है ।

स्यानन्दूर नगर ( त्रिवेन्द्रम् ) में भगवान् अनन्त शयन के मन्दिर में साथ  
लीन पूजा के अवसर पर उपस्थित तरणियों का वर्णन करते हुए कवि ने  
आनुप्रास की कैसे अनुपम छटा दिखलाई है—

तत्सेयार्थं तरणसहितान्ताम्रपादारविन्दा  
हताभ्यन्मध्यस्तनभरनतास्तार-हारावलीका ।  
तारेशास्यास्तरलनयनान्तर्जिनाम्भोद्वेश्य-  
स्तप्रस्था स्यु स्तगन्धित करास्तालवृन्तैस्तरण्य ॥१॥४३॥

इस श्लोक में तरणियों के उत्कृष्ट वर्णन के साथ-साथ तकार का कैसा सुन्दर  
नुप्रास पूर्ण प्रयोग किया गया है ।

त्रिभिन्न नदी, नगरी तथा अन्य प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करने में कवि ने  
न्दर स्थलों को पहिचानने में जरा भी भूल नहीं की है । ताम्रपर्णी नदी का वर्णन  
रते हुए कवि कहता है—

चतुर्लीला चटुलशफरैरुर्मिभिभ्रूविलासान्  
फेनैर्हासधियमपि भुरो व्यजयन्ती स्रयन्ती ।  
आत्मासङ्गं जनयति रश्मिं भर्तु रन्यास्वदृश्यै  
स्वेदच्छेदैरदयिभिरसी रजच्छमुकाच्छलेन ॥१॥४६॥

नदी के इस सश्लिष्ट वर्णन में कवि ने किस तरह समासोक्ति अलंकार का  
द्वारा लेकर एक अनुरक्त और उत्कण्ठित नायिका का भी वर्णन कर दिया है ।

इसी प्रकार ताम्रपर्णी की एक, सहायक नदी चूर्णी नदी का भी कवि ने ऐसा  
सश्लिष्ट वर्णन किया है—

स्र सद्दीर्घासिचयपुलिनधेशिशिञ्जानहर्षा  
काञ्चि आभ्यच्छफरनयन कीर्णश्रीवालेशम् ।  
आसीदन्तीमतिरसभरादानतायतनाभिं  
दृष्ट्वा कलान्त कथमिथ भवास्तामसभाव्य याता ॥१॥४७॥

नदियों के इन सश्लिष्ट वर्णनों में कवि ने कैसे उत्कृष्ट ढंग से नदियों में नायिका  
व्यवहार का आरोप कर दिया है ।

आगे चलकर गुणकापुरी का भी कवि ने बड़ा सरस और भावपूर्ण वर्णन किया है। गुणकापुरी में ऊँचे २ प्रासाद तो हैं ही, उन प्रासादों में रहने वाली रमणिया भी कम सुन्दर नहीं हैं। चन्द्रमा भी उनके मुख को देखकर लज्जित हो जाता है और समय से पूर्व ही अस्त होने लगता है—

आलोभ्यारादधिरजनि यत्रात्मन सौधसदृम  
न्यासीनाना मुहुर्तिशयीन्यङ्गनाना मुखानि ।  
पूर्वमाशामुपरिगमनप्रेप्सया सगृहीता  
हित्वा सद्य पतनविधये पश्चिन्मायेति चन्द्र ॥२॥१॥

गुणकापुरी की नृत्तशालाओं का वर्णन करते हुए कवि ने बड़ी सुन्दर उल्लेख की है—

यस्या मूर्च्छन्मुरज्जनिनदा नृत्तशाला समीरे  
छोड़ूताग्रैर्व्यञ्जयतभुजैरुत्तमाना नटीनाम् ।  
नृत्यन्तीनामुपरि गुरुभिस्तै स्तनारोहभारै-  
र्नीता कम्प निपतनभियाऽन्योन्यमालम्बयन्ति ॥२॥६॥

नृत्तशालाओं पर भरिझा लगी हुई हैं। वायु के वेग से वे एक दूसरे से मिलती हैं। इसी दृश्य को लेकर कवि कहता है कि नृत्य करती हुई नर्तकियों के गुरु स्तन भार से काँपकर जैसे नृत्तशालाएँ एक दूसरे का सहारा ले रही हों।

गुणकापुरी की पुष्पवाटिकाओं में पुष्परेणुओं के बिखरे हुए परमाणुओं को देखकर ऐसा लगता है कि मानों शिवजी की नेत्राग्नि से कामदेव के पूर्व शरीर के भग्न हो जाने पर फिर से कामदेव के नवीन शरीर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो रहा हो—

यत्पर्यन्त परममणुजो रेणुः पुष्पवाह्या  
पोष्पा पक्षयसनचलिता पक्षिणा चापमो-या ।  
प्लुप्ते नेत्राग्निवि पुरजिता पोरिके पुष्पवतो-  
रन्य दद घटयितुमत श्लाघनीय घटन्ते ॥२॥७॥

इसके साथ साथ गुणकापुरी में सर्वदा सभी श्रुतुओं का होना भी कवि ने कहा की मित्रों के अंगों की तत्तद् विशेषताओं के आधार पर उपमाओं की योजना द्वारा यही अच्छी तरह प्रतिपादित किया है—

यशे नीपं दशि सरमिज कमर नाभिचक्रं  
शुन्दच्छाय मृदुनि हसिते सौकुमार्ये शिरीषम् ।  
गण्डे लोघघृतिमपि समं यत्र सदृशं यती  
कामोद्याने विलसति सदा कामिनीप्यर्तयथी ॥२॥१०॥

त्रिहरी नायक ने शुक से अपनी प्रेयसी का जो वर्णन किया है, उसमें कवि की कल्पना अपनी पूर्ण कोमलता के साथ सजग हो उठी है। नायक शुक से कहता है—

तस्या प्राय सकलजगता चक्षुषोर्भोगधेय  
तन्त्रागापात्रिपथफलद पञ्चगणस्य वश्यम् ।  
नारीशिरपाभ्यमनजनित नैपुण्यं पिश्वयोनि  
विश्लेषाशीरिपत्रिपरुजामोपध चलभा मे ॥२७॥

प्रेयसा तत्र स्फटिकरदना पद्मरागाधरोष्ठी  
कम्पश्यामोपलकचभगा स्निग्धमाणिन्य कान्ति ।  
मुक्तजालोत्तलसितहसिता वैधसो मुख्यवृत्त्या  
नोत्कृष्टस्यान्न परमपरैराह्वयना रत्नसृष्टि ॥२८॥

इसी तरह अपनी प्रेयसी की मधुर वाणी का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

अन्तर्जटा जनयतिरामन्यपुष्टागनानाम्  
लीलागम स्वस्मयुलिङ्गा माधुरीजन्मभूमि ।  
पीयूषस्थ प्रतिनिधिविधिष्टकृतिमोरमोर्णा  
वाणी वीणारवसहचरि वाणिनीना शिखाया ॥२९॥

एक आदर्श रमणी रत्न की वाणी का वीणा के रव की तरह मधुर होना स्वाभाविक ही है।

आगे चलकर अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि उसकी प्रेयसी एक साथ ही उसकी समग्र इन्द्रियों को लुप्त करने वाली है, क्योंकि उसकी कान्ति, वाणी का माधुर्य, अंगों की शीतलता, शरीर का सौरभ और अमृत से भरे हुए अधर कुछ ऐसे ही अद्वितीय हैं—

सा कान्ति सा गिरि मधुरता शीतलत्वं तद्भुगे  
सा सीगन्धोद्गतिरपि सुधासोदर सोऽधरोष्ठ ।  
एकासात्रे भ्रूशमतिशयादन्यलाभेन यम्भि—  
न्नेकीमात्रं व्रजति त्रिपथ सर्व एवेन्द्रियाणाम् ॥३०॥

अपनी प्रेयसी के स्वरूप वर्णन के बाद नायक उसकी त्रिहजन्य दुरवस्थाओं का चित्र शुक के सामने प्रस्तुत करता है। इस त्रिहजन्य में कवि ने अपनी सूक्ष्म भावव्यञ्जना द्वारा काव्य में चित्रोपमता और सजीवता का समावेश कर दिया है। ऐसे ही कतिपय मात्र चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किए जा रहे हैं। नायिका त्रिरूप में कान्तिहीन हो गई है। उसका शरीर पाण्डुरण्य का हो गया है और वही



गहरी २ सासों लेती है। नायिका की इस अवस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

सा निश्वासैरनिभृततरैर्मध्यभाजा बलीना—  
मालोलानामुपरि कृचयोर्द्ध्वमान्दोलयन्ती ।  
विभ्रत्यङ्गे विससितरश्चि धीचिमङ्गोदगतीम्ब  
पातैश्चकाह्वयशकुनयोर्माति भागीरथीर ॥२॥४२॥

लहरों के ऊपर चक्राकृति पक्षियों के युग्म को आन्दोलित करती हुई भागीरथी की तरह ही विरहिणी नायिका अपने स्तनयुग्म को ईपञ्चचल विरलिरेशाओं के ऊपर गहरी सासों के कारण आन्दोलित करती हुई शोभायमान लगती है। कवि ने यहाँ पर कौसी उपयुक्त उपमा दी है।

अपनी प्रेयसी की विरहजन्य मलिता तथा प्रियदर्शन की उत्सुकता का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

आसीनेन कञ्चन धिटपे सा त्वयालोकनीया  
नीलाम्भोदैरिव शशिकला निद्नुताङ्गी रजोभि ।  
च इचत्पद्मं व्यजनपधनैश्चामरप्राहिणीना  
चक्षुर्महीक्षुणसमुचिते धर्मनि प्रेरयन्ती ॥२॥४३॥

प्रिय विरह में नायिका इतनी व्याकुल हो उठती है कि यह क्रोध में आकर प्रिय को इस तरह का उपालम्भ देने लगती है कि इतने समय के लिए मुझे छोड़कर तुम कहाँ चले गए हो। लेकिन धाक्य पूरा करते २ भय और ताप के कारण उसकी धाकी दक जात है और वह रोने लगती है तथा उसे ऐसा लगता है कि उसका प्रियतम उसके चरणों के पास ही उपस्थित है—

पतायन्त समयमिह मामेवमित्यर्धपाक्ये  
रोपातङ्कव्यतिकरयती रोदितु या प्रवृत्ता ।  
उपह्वान्ना प्रचलद्धरा स्तोकनम्रोत्तरोष्ठी  
परयन्ती मा चरणपतित मायनाचक्षुषाऽग्रे ॥२॥४४॥

इस श्लोक में कवि ने नायिका के क्रोध, भय, ताप तथा स्मृति जैसे भावों को एक साथ सजिले ढंग से दिया है।

अतः में विरहिणी की परस्परविरोधी भावनाओं का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि आशा निराशा तथा जीवन मरण के बीच संघर्ष करती हुई उसकी प्रेयसी की विरहस्थानों का वर्णन ठीक २ नहीं किया जा सकता—

आशास्ते वा मदभिगमन किन्तु तस्मिन्नुदास्ते  
धत्ते तापप्रशमनविधीन् किन्तु तानेव रुन्धे ।  
एवंप्राया प्रणयिनि जने गाढमुत्कण्ठितानाम्  
कैर्ययन्ते क्षणवन्वा कामिनीनामरस्था ॥२॥४॥

विरहिणी नायिका के वर्णन के बाद नायक ने अपना सन्देश सुनाया है । सन्देश  
॥ प्रथम नायक की विरहावस्था का वर्णन किया गया है । नायक अपनी उद्विग्न  
अवस्था का वर्णन करते हुए कहता है कि शरद् ऋतु की जो सुन्दर वस्तुएँ सयोग  
समय में वही सुखद प्रतीत होती थीं, वे ही उसकी प्रेयसी के पास न होने पर मन  
को बड़ा दुःखी बनाती हैं—

मङ्गर्याङ्गि स्मरशरमयीमाशिवनीमश्नुजाना—  
मैतामाशाश्रयमकृशामीक्षमाणस्य लक्ष्मीम् ।  
तत्तद्विचिताकलितधियस्तन्वि मे क्षीणपुण्य—  
स्थान्तस्तापं जनयतिरामन्तिकानीक्ष्य ते ॥२॥६३॥

प्रेयसी के वियोग में अज जय नायक अमरों के कर्णप्रिय तथा हृदयाह्लादी  
गुञ्जन को सुनता है, तो उसका मन अधीर हो उठता है और उसे मूर्च्छा आ  
जाती है—

1.

मारोन्मादी मदकलगिरामत्र भृङ्गाङ्गनाना  
ध्रान् ध्राव ध्रवणहृदयमाहिगीतामृतानि ।  
धृत्ताभोगस्तवकवहनयान्ताना लताना  
मले मूले मुकुलितधृतिर्मुच्येनामभ्युपैमि ॥२॥६४॥

प्रेयसी के वियोग में सभी सुखदायक और शान्ति-दायक वस्तुएँ नायक के  
लिए दुःखदायी हो गई हैं । सुन्दर और मनोहर दृश्यों को देखकर उसे अपनी  
प्रेयसी की याद आ जाती है । स्मृति की इस भावना का कवि ने यहाँ ही सुन्दर  
वर्णन किया है । नदियों में मछलियाँ तैर रही हैं, कमल खिले हुए हैं और लहरे  
उठ रही हैं । इस दृश्य को देखकर नायक को खंचल नेत्रों, कम्पमान स्तनों तथा  
खंचल भ्रू वाली अपनी प्रेयसी की स्मृति आ जाती है और यह कह उठता है—

आश्लिष्यन्त्या स्मरदधिगुणे प्रेमकोपप्रयातो  
चञ्चन्नेत्रं चलदुरसिञ्ज चञ्चलभ्रलतं ते ।  
उद्यन्मीना कमलमुकुलैरल्लसन्त्य प्रसन्ना  
करलोलिन्य कलुपकलुप कुर्यते मानसं मे ॥२॥६५॥

प्रेयसी की सन्निधि में चन्द्रमा, वापी, अमरों का गुञ्जन तथा मन्द २ बहती

हुई ठण्डी हवाए जो चित्त को प्रसन्न किया करती थीं, वे अब उसके वियोग में प्रिय के मन को लेशमात्र भी आनन्द नहीं पहुँचाती हैं,—

अने चाह प्रकृतिरमलीयाडिग पूर्णन्दुबिम्ब  
भीडानापीमधुकरकलालापमन्दानिलाया ।  
तत्त्वाध्यास ध्रुवमुपगताः सन्निधौ ते समग्रा  
यस्या नेमे किमपि रमयन्त्यद्य रम्या पदार्था ॥२॥६६॥

प्रेयसी की चिन्ता में नायक को नौद तो आती ही नहीं है, इसलिए वह स्वप्न में तो अपनी प्रेयसी को देख ही नहीं सकता। चित्र बनाना चाहता है, लेकिन आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने के कारण चित्र भी नहीं बना सकता है। मानसिक सनाप से वह प्रेयसी का ठीक २ स्मरण भी नहीं कर सकता। अपनी इस अधीरता का नायक ने यहाँ ही हृदयद्राघक चित्र प्रस्तुत किया है—

हृयन्नेऽपि त्व मम न सुलभा घ्वस्तनिद्रागमत्वा—  
दक्षोत्पीडादधिमणिशिल लेखनीया न भूय ।  
स्मृतुं ताण्डपदु च मनस्तत्र तत्रोत्पतिण्यो—  
मंथेफाल फडिति फलयत्येव धाम दि देवम् ॥२॥७१॥

प्रतिकूल दैव की कठोरता तथा नायक की विवशता का कवि ने यहाँ पर कैसा माधुर्यपूर्ण चित्रण किया है।

अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद नायक प्रेयसी को शीघ्र मिलन का आश्वासन देते हुए विविध मनोरजनों द्वारा चित्त को प्रसन्न बनाए रखने का परामर्श देता है। नायक का विचार है कि प्रेमियों का परस्पर प्रेम चिरविरह में भी टूटता नहीं है। यह कहता है कि विरहरूपी सर्प के गहरी २ साँसे लते होने पर विरह के दिन जो जहर उगलते दिखाई पड़ते हैं, वे ही समागमरूपी चन्द्रमा के उदय हो जाने पर अमृत की दुगुनी वर्षा करेंगे—

किं चोदय भवसिति सहसा विप्रयोगोरगेन्द्रे  
धान्यघान्तर्विपमिव धमन्त्याऽयोर्धासराणि ।  
तान्येवाम्रे त्वग्निमुदयं याति न सङ्गमेन्दो  
सपत्स्यन्ते द्विगुणममृतस्यन्दसन्दोदनानि ॥२॥७८॥

सयोग और वियोग के लिये यहाँ पर कवि ने कैसे उपयुक्त रूपक प्रयुक्त किये हैं। अन्त में अपनी कुशल का पूर्णरूप से निश्वास कराने के लिये नायक ने अभिधान रूप से कई व्यक्तिगत घटनाओं का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ तो सार्वसाधारण हैं। केवल दो घटनाओं में कवि ने कुछ विशिष्ट करपना दिखाया है। नायक की प्रसङ्गान्तर में कहीं हुई उक्ति से नायिका को यह भ्रम हो जाता है कि

उसका प्रिय किसी और भी नायिका से अनुराग रखता है और वह क्रुद्ध होने लगती है लेकिन ज्योंही 'कीरस्य = शुक्रस्य' कथन द्वारा वह अपने वाक्य को पूरा करता है तो नायिका लज्जा और क्रोध के साथ अपनी सखियों की ओर देखने लगती है—

पश्यासौ मे त्वमिदं रुचये पश्यविम्याधरेति  
प्रक्रान्तोक्तौ मयि कलुषित भीरु नेत्रोत्पल ते ।  
कीरस्येति स्थितिमति पुन भ्रमेरमात्रि स्मितेपु  
ग्रीडासूयाव्यतिकरगुरु ह्रितमालीमुनेपु ॥२॥८०॥

'न मानिनी ससहतेऽन्यसङ्गमम्' इस कथन के अनुसार नायिका भी वही मानिनी प्रतीत होती है, तभी तो पर नारी से अपने प्रियतम के प्रेम की जरा सी शका होते ही उसकी आँखों में क्रोध आ जाता है ।

इसी तरह का एक दूसरा अभिज्ञान घटनाते हुए नायक कहता है कि एक बार उसने जर यह पूछा था कि अशोक वृक्ष के किशलयपुट से मधुपूर्णा तथा ईषद्रक्त फूल जिस समय भ्रमर को प्राप्त होते हैं ऐसी वस्तु अतु कय आती है, तब दूसरे लोग तो वसन्त ऋतु का हिसाब लगाने लगे थे, लेकिन मेरे वास्तविक तात्पर्य को कि मैंने यह शब्द तेरे अधरामृत पान करने की इच्छा से कहे हैं, जानकर तू धोताओं की मूर्खता तथा मेरी विदग्धता पर हस दी थी और लज्जा के साथ तूने ताम्बूल से मुझे अपने मुख को नीचा कर लिया था । निम्न श्लोक में वही अभिज्ञान दिया गया है—

निलन्न माध्या किसलयपुटालम्ब्यतेऽशोकपट्टे  
यंत्राताम्र कुसुममलिना स्यात् कदाऽसौ वसन्त ।  
इत्युत्कण्ठागिरि मयि जने तद्गणेषु त्व सलज्ज  
स्मित्वा मुग्ध मुखमनमयस्तन्नि ताम्बूलगर्भम् ॥२॥८१॥

घटना यद्यपि छोटी सी ही है, पर इस दृग से घटित हुई घटाई गई है कि भुलाई नहीं जा सकती, अतः अभिज्ञान वस्तु के रूप से इसका वर्णित करना उचित ही है ।

इस तरह अभिज्ञान घटनाओं के वर्णन के बाद यह सन्देशकाव्य समाप्त हो जाता है । मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गये सन्देश काव्यों में यह काव्य अद्वितीय है । विषय, भाव, रस और प्रक्रिया इन सभी दृष्टियों से यह काव्य मेघदूत का अनुसरण करता है । जिस तरह यक्ष के घर के पास वापी, क्रीडाशैल और रत्नाशोक इत्यादि की स्थिति घटनाई गई है, उसी तरह इस काव्य में भी नायक अपनी प्रेयसी के मन्दिर के निकट कूप, वापी, क्रीडाशैल तथा वहा पर स्थित तिलक, कुरयक और

आम्रवृक्ष का वर्णन करता है। विरहवर्णन में वहाँ २ शुक सन्देश में मेघदूत की अपेक्षा कुछ अधिक भावप्रवणता पाई जाती है। कवि ने कुछ स्थलों को मेघदूत की अपेक्षा अधिक परलवित करने की चेष्टा की है। वहाँ २ इस काव्य में मेघदूत के समानान्तर भाव भी पाये जाते हैं। मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी को धैर्य बधाते हुये कहता है—

कस्यात्यन्तं सुखमुपमत दुःखमेकान्ततो वा  
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चकनेमिकमेषु ॥२॥४८॥

शुक सन्देश में शुक भी नायिका को उसके प्रिय का सन्देश सुनाते हुये कहता है—

दुजतिऽह परमज इव प्रेषित प्रेयसा ते  
सेतो, सीताहृदयदपितेनेव पूजं महारद्रे।  
सेव त्व च त्यज शुचमिव सेवितासे प्रियाणि  
प्राय सर्वं स्मृशति त्रिपद सपदश्च क्रमेण ॥२॥५१॥

मेघदूत में भी हनुमान्जी के सीताजी के पास पहुँचने का उल्लेख किया गया है जैसा कि इस काव्य में यहाँ पर पाया जाता है।

मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी को अभिमान घटना के सुनाने के बाद कहता है—

स्नेहानाहु किमपि विरहे असिनस्ते त्वमोगात्  
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभरन्ति ॥२॥५२॥

कालिदास के अनुसार स्नेह त्रियोग में घटता नहीं है, बरिफ उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। इसी तरह शुक सन्देश में भी त्रियोग में स्नेह के टूट जाने का विचार केवल मूर्खों का प्रयाद माना गया है। नायक अपनी प्रेयसी को सम्बोधित करते हुये कहता है—

अन्योन्यस्य छटति विरहे प्रायश कामुकानां  
मन्दं मन्दं चिरतरमनालोकनात् प्रमरन्ध ।  
एवं मूढ प्रवदति जनस्तत्र सिन्ने मयि त्व  
मा गा शका सुतनु सुदृढालवित्त्वानुमाना ॥२॥७७॥

मेघदूत में यक्ष अपने सन्देश के अन्त में मेघ से पूछता है कि तुमने मेरे कार्य को पूरा करने का विचार तो कर ही लिया होगा, लेकिन मेघ से कोई उत्तर नहीं प्राप्त होने पर भी वह चिन्तित नहीं होता है और कहता है—

नि शब्दोऽपि मदिशसि जल वाचितश्चावकेभ्य  
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामोऽपि सतामर्थमिवैव ॥२॥७८॥

इसी प्रकार शुक-सन्देश में भी शुक से दूतकार्य करने की प्रार्थना करते हुये नायक ने कहा है—

जातोदन्यां न हि जलमुचश्चातका प्रार्थयन्ते  
तूर्णामिषामभिमतममी तूर्णमापूरयन्ति ॥१॥११॥

दोनों उद्धरणों में भावों की कितनी समानता है। मेघदूत में मेघ से प्रार्थना तब भी की जाती है, लेकिन शुकसन्देश में तो प्रार्थना न करने पर भी मेघों के द्वारा जल घरसाने का उद्देश्य किया गया है।

मेघदूत में यत्न अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुये कहता है कि इस सुदीर्घ विरह काल में प्रयत्न वेदना के कारण उसकी प्रेयसी सुपाख्यात से आहत पद्मिनी की तरह अन्यरूप हो गई होगी—

गाढोत्प्लवा गुरुषु दिवसेष्वेषु गर्च्छत्सु याला  
जाता मन्ये शिशिरमधिता पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२॥२२॥

इसी तरह शुक-सन्देश में भी नायक अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुये कहता है—

एष मन्ये विरहदिवसैरभिरक्षणा सा  
क्षामक्षामा विरमनशमप्यानशोकानुबन्धैः ।  
न्यूनन्यूनं मम सुचरितं नूनमन्यादृशी म्या-  
द्वन्यस्तम्यैरमत्रिलुलिता सल्लकीमञ्जरीय ॥२॥३६॥

नायक के पास न होने से उसकी प्रेयसी का अनशन, ध्यान तथा शोक के कारण नितान्त दुर्लभ हो जाना और पहिचानने में न आना स्वाभाविक ही है। क्षीण तथा क्षीन प्रेयसी की वन्ये दार्ढ्य के द्वारा विलुलित सल्लकी (शल्लकी) मञ्जरी से उपमा देकर 'कवि' ने नायिका का वास्तविक चित्र उपस्थित कर दिया है। दोनों कान्तों में उपमान की भिन्नता होती हुये भी भाव-सौम्य स्पष्ट प्रतीत होता है।

इस तरह अन्य भी कई स्थलों में मेघदूत जैसे समानान्तर भाव इस काव्य में पाये जाते हैं।

इस प्रकार काव्य के अनुशीलन से स्पष्ट है कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधि-कार है। सन्देश काव्य के उपयुक्त प्रथादमयी ललित भाषा में कवि ने यह बड़ी सुन्दर रचना की है। भाषा की विशदता का अनुमान निम्न अथतरणों से बड़ी अच्छी तरह लगाया जा सकता है। नायक शुक को अपना वृत्तान्त सुनाते हुये कहता है—

अन्यत्राह प्रियसहचरी तानदन्यत्र जातो  
 जाता चाग्रे मनसिजशरा शारदीयं विभूति ।  
 मन्दो वायुर्मधुरमुदकं मञ्जुरावा मराला  
 सज्जामोदा सरसिजननी सान्द्रमाश्चन्द्रमाश्च ॥१॥७॥

शरद्व ऋतु की विभूति का कवि ने बड़ा सुन्दर चित्र यहाँ अंकित कर दिया है।

आगे चल कर शुक को मार्ग बताते हुये उसकी यात्रा का कैसा सरस चित्र कवि प्रस्तुत करता है—

स्थाप्य स्थाप्य तदपु धरणीध्यायिनो वञ्चयित्वा  
 ग्राह ग्राह नयन हृदय-ग्राहिणी सस्यपट्की ।  
 पाय पाय परिलघु पय पद्मिनीनामजस्र  
 गाय गाय पुनरपि भवान् गाहिता द्योम येपु ॥१॥१६॥

अन्तरण की तृतीय पंक्ति में अनुप्रास की कैसी अनुपम छटा कवि ने दिखलाई है।

काव्यगत निशिष्टताओं के अतिरिक्त केरलप्रान्त के सामाजिक तथा ऐतिहासिक अभ्ययन के विचार से भी यह काव्य बड़ा महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल में केरल देश में कौन २ से नगर थे, वहाँ जिन २ राजाओं का शासन रहा था तथा जनता का उस समय जीवन किस तरह का था—इन सब बातों पर यह काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। कन्याकुमारी से लेकर गुणकापुर तक का केरल देश का भाग इस सन्देशकाव्य में वर्णित किया गया है। यह गुणकापुर नगर आज कल का लृक्कणा-मतिक्कलम् है। प्राचीन काल में मालाबार की यह राजधानी था। अब तो यह एक छोटा सा ग्राम ही रह गया है। कोई कोई गुणकापुर को किसी अन्य स्थान का ही नाम बताते हैं। काव्य में विभिन्न नदियों, नगरों, ग्रामों और मन्दिरों का वर्णन किया गया है। इससे भी केरलदेश की तत्कालीन भौगोलिक परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आगे चल कर यह सन्देश काव्य दक्षिण भारत के अन्य कवियों के लिये एक आदर्श बन गया और दक्षिण भारत में इसका पर्याप्त प्रचार भी हुआ। उदय कवि के मयूरसदेश में मेघदूत के अतिरिक्त इस काव्य का भी प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उद्दण्ड कवि के कोकिलसन्देश में भी इस काव्य की छाप स्पष्ट दिखलाई पड़ती है।

अन्तु, यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कवि ने मेघदूत से प्रेरणा प्राप्त करने पर भी अपनी रचना का स्तर बड़ा ऊँचा रखा है। ज्ञाना, भाव, प्रक्रिया, प्रवृत्ति वर्णन और विरहवर्णन सभी में कवि ने अपनी परिष्कृत दक्षि का परिचय दिया है।

सन्देशकाव्य के उपयुक्त ललित और प्रवाहपूर्ण भाषा में ही यह काव्य लिखा गया है। शुक की वाणी की तरह ही काव्य की भाषा बड़ी मधुर है और भावमाधुर्य का का तो कहना ही पया। मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गये सन्देश काव्यों में निश्चय ही यह एक उत्कृष्ट और सरस सन्देश काव्य है।

### वासुदेवकवि का भृगुसन्देश ( वि० पचदश-षोडश शतक )

यह भृगुसन्देश दक्षिणभारत के किसी वासुदेव नामक कवि की रचना है। काव्य के अन्त में लेखक ने एक पद्य दिया है—

सन्देशेऽस्मिन् कथमपि गुरधीपदाम्भोजयुग्म-  
ध्यानोदधूतप्रयलतमसा वासुदेवेन बद्धे ।  
पूर्णे दोषैरपि यदि गुणाना कणा संप्रधेर-  
भैतान् प्रीया मनसि परिगृह्णन्तु सन्तो महान्त ॥

इस पद्य से केवल इतना निश्चित होता है कि इस काव्य का लेखक वासुदेव नामक कोई कवि है। इसके रचनाकाल के सवन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। श्री एम० कृष्णमाचारियर ने अपने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में पृ० २५० पर भृगुसन्देश के लेखक वासुदेव के सवन्ध में इस प्रकार लिखा है—“वासुदेव महर्षि और गोपाली का पुत्र था। महर्षि कवि मालाधार में पथ्यूर भट्टमान के जो कि ई० पन्द्रहवीं के अन्त के लगभग विद्या का एक प्रसिद्ध वेन्द्र था, रहने वाले थे। महर्षि के संस्कृत विद्या के सर्व शास्त्रों में पारंगत नौ पुत्र तथा एक कन्या थी। वासुदेव कवि तथा नाटककार उद्दण्ड का मित्र था, अतः यह कहा जा सकता है कि वासुदेव कवि भी स० १४२३ ई० के लगभग विद्यमान था। कालीकट का प्रसिद्ध राजा मानविक्रम जमूरिन इसका आश्रयदाता था। इससे भृगुसन्देश के मिलने पर ही उद्दण्ड कवि ने अपने कोकिलसन्देश की रचना की। बाद में यह राजा रविवर्मा और गोडवर्मा के राजदरबार में चला गया था। पाणिनि के सूत्रों पर व्याख्यास्वरूप वासुदेव विजय नामक काव्य भी इसने लिखना प्रारम्भ किया था। यह अपूर्ण ही रह गया था। बाद में संभवतः इससे भानजे नारायण कवि ने धातु-काव्य नाम से इसको पूर्ण किया।



इसके अतिरिक्त लेखक ने ६ आश्यासों में यमक शैली के साथ देवी चरित नामक एक काव्य लिखा है। इसमें गोपाली देवी की जिसकी कि वेदारण्यम् अथवा कुन्ननगोलम् ॥ देवकी की आठवीं सन्तान और श्रीकृष्ण की बहिन के रूप में पूजा की जाती है, कथा वर्णित की गई है। अपने 'सत्यतप कथा' नामक काव्य में कवि ने तीन आश्यासों में सत्यतप की कथा वर्णित की है। यह सत्यतप महर्षि के नाम से विख्यात लेखक के एक पूर्वज ही हैं, जिन्होंने कि वेदारण्यम् और निला नदी ( भरतप्योल ) के तट पर तपस्या की थी। शिवोदय नामक काव्य में ग्रन्थकार ने अपना और अपने आठ भाईयों का इतिहास दिया है। अच्युतलीला नामक यमक-काव्य में वेदारण्यम् में विराजमान भगवान् अच्युत का वर्णन किया गया है। गजेन्द्र-मोक्ष भी उसी की रचना प्रतीत होती है।" इस तरह श्रीकृष्णमाधारियर के अनुसार ई० पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ कवि का रचना काल ठहरता है।

यह काव्य शिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से प्रकाशित हुआ है। श्री के० साम्प्रशिव शास्त्री ने जो कि इसके सम्पादक हैं, लेखक के रचनाकाल पर भी पुस्तक की भूमिका में कुछ प्रकाश डाला है। उनका कथन है—

"वासुदेव नाम के कई कवि हुये हैं। युधिष्ठिरविजय तथा अन्य ग्रन्थों का लेखक एक, सुभद्राहरण जैसे ग्रन्थों का लेखक दूसरा और भृगुसन्देश का रचयिता तीसरा। इनमें से मेरा विचार है कि भृगुसन्देश का लेखक सब से अधिक अर्वाचीन है और यमककाव्य ( युधिष्ठिर विजय ) का लेखक सब से प्राचीन। इस सन्देश काव्य में श्रीनारायण भट्टपाद का जो कि युधिष्ठिरविजय तथा सुभद्राहरण इन दोनों के लेखकों से उत्तरकालीन है तथा उसके ( श्री नारायण भट्टपाद के ) समकालीन श्रीमातृदत्तपण्डित का नाम आया है—

हेरम्येण प्रथितविभगा मातृदत्तद्विजेन्द्र-  
श्रीमच्छिष्योत्करमुपरितैरास्तृता शास्त्रघोषैः ।  
आरान्नारायणकविश्च स्वन्दमाधुर्यनन्द-  
द्वार्णभन्दस्मितसुरभिलाषादि पाटीर पाटीम् ॥१॥६१॥

शक्ति नारायणकविमुखाम्मोजनिष्यन्दमाना  
पीत्वा पापीकमलमधुषु प्राप्तनिर्वेदमार ।  
यिमे भानोरपरगिरिःशृणु सञ्जुम्यमाने  
सम्येयास्य भ्रमर घरणो बल्लभसोयिन्धो ॥२॥६२॥

इस काव्य में उल्लिखित नारायण कवि से नारायणीय तथा अन्य ग्रन्थों के रचयिता, मेलपट्टनूर निवासी महाकवि और शास्त्रकार श्री नारायणभट्टपाद का ही प्रमाण करना चाहिये, जैसा कि निम्न श्लोक से प्रतीत होता है—

तस्मात् प्रत्यक् प्रदितनयनं कुण्डगेहाधिवासम्  
सर्वदा तं प्रणम्य गिरिशं भक्तिमानन्युत च ।  
एषस्तापद् बहति शिगसि ज्योतिषामेकमिन्दु  
ज्योतिश्चक्रं निखिलमपरो धारयत्यन्तरङ्गे ॥१॥८६॥

लेखक ने अपने गुरु और ज्योतिः शास्त्र के प्रकाशट्ट विद्वान् श्री अच्युत पिशरोती का भी उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित ही है कि वासुदेव कवि ई० सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वभाग में था। ई० सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वभाग ही अच्युत के शिष्य श्री नारायण मुनि का सत्तासमय है।

कवि ने अपने काव्य में त्रिवेन्द्रम् के तत्कालीन राजा श्री वीरविजयम् कुलशेखर की भी प्रशंसा की है—

राज्यं दृष्ट्याकलय रविवर्माजनीन्द्रस्य सम्पत्—  
प्राज्यं वाज्यन्तरितप्रिशिगोदप्रमये समग्रम् ।  
चित्रोत्कीर्णत्रिदशनिर्द्वै ह्यूलनीलोपलोचै—  
धाम्ना तुल्य विभुजनपतेर्धाम येन प्रसन्ने ॥१॥८७॥

अतः हमें यह विश्वास रचना चाहिये कि इस कवि का समय भी श्री नारायण भट्टपाद का समय ही है। निम्नलिखित श्लोक से यह प्रतीत होता है कि श्री नारायण भट्टपाद ने नारायणीय नामक अपने सौत्रकाव्य को गुह्यायुपुर में स्थित श्री कृष्ण के मन्दिर में भगवान् के चरणों में अर्पित करने के बाद स्वास्थ्य लाभ कर लिया था और श्रीकृष्ण की एक महान् चिकित्सक के रूप में व्यापति हो चुकी थी, उसके बाद यह काव्य लिखा गया है—

इत्थं नुत्ता भुवनपितरी ती ममामन्य तस्मा—  
दस्मत्प्राणप्रियं सद्यः समीरलय शीलयेथा ।  
यस्मिन् देव स्वयमपि महापावनं पावनता—  
मातङ्गानामुपशमयिता भामते वासुदेव ॥१॥८८॥

अतः वासुदेव कवि को ई० सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वभाग में ही मानना चाहिये।

श्री वै० आर० पिशरोती, बनारस के अनुसार जनवरी १७७१ ईस काव्य का रचना काल होना चाहिये। उनका कथन है—

- १ विशेष विवरण के लिये सिद्धभास्ती, भाग २, ( प्रियेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर ) में पिशरोती जी का वासुदेव का भृगसन्देश - ए डिस्टारिक्ल स्टडी - नामक लेख देखिए।

“इस काव्य में मालागर के संस्कृत कवियों में अग्रगण्य नारायण भट्टातिरि का केवल एक सरस कवि के रूप में उल्लेख है न कि शास्त्रकार या भक्त दार्शनिक के रूप में। इसके अतिरिक्त अच्युत पिशरोती अथवा गुरुवयूर मन्दिर से भी उनके संबद्ध होने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है<sup>१</sup>। अतः आवश्यक रूप से यह कहा जा सकता है कि नारायण कवि के अपना नारायणीय स्तोत्र ( जिसमें कि गुम्बवयूर मन्दिर तथा अच्युत पिशरोती से उसका सम्बन्ध बतलाया गया है ) लिखने से पहिले यह सम्श्रकाव्य लिखा गया था और ई० १५८१ के लगभग ही यह लिखा गया होगा। इससे लेखक की उत्तर-सीमा तो निश्चित हो ही जाती है। हमें यह तो मालूम ही है कि मामकम् महोत्सव (माघोत्सव) ई० १५६६ में हुआ था और चूंकि यह उत्सव बारह वर्ष में एक बार हुआ करता था, अतः पीछे चलते हुए हम कह सकते हैं कि ई० १५८७ और फिर ई० १५७५ में यह उत्सव हुआ होगा। चूंकि लेखक की उत्तर सीमा निश्चित हो चुकी है, इसलिये काव्य में उल्लिखित ‘मामकम् महोत्सव’ परवरी मार्च १५७५ ई० का माना जाना चाहिये। इस तरह इस सन्देश काव्य का रचनाकाल जनवरी १५७५ हो सकता है।

वातक्कूर के राजा के उल्लेख<sup>२</sup> से भी यह समय सामंजस्य पाता है। हफ (Hough) ने अपने ‘क्रिश्चियनिटी’ (Christianity) नामक ग्रन्थ में लिखा है कि ई० स० १५७८ में वातक्कूर में एक रानी राज्य करती थी। उसने २४ वर्ष तक राज्य किया। स० १५६६ ई० में भी यह राज्य कर रही थी तथा आर्कबिशप मेन्नीज उसके राज्य में आया, तो भी वह शासन कर रही थी। अतः यदि गौडगर्मा को राज्य करना हुआ माना जाये, तो या तो यह १५७८ ई० से पूर्व होना चाहिये या कम से कम १६०२ ई० से बाद में। चूंकि लेखक की उत्तर सीमा निश्चित हो चुकी है, अतः प्रथम कल्प ही केवल उचित है। अर्थात् गौडगर्मा के जो कि ‘समन्त’ १५७५ के बाद लेकिन १५७८ से पहिले, गुजर चुका हो, अन्तिम दिनों में यह काव्य लिखा गया है।

दे० काव्य का पूर्व भाग श्लोक ६१ ६२ पूर्व उद्धृत।

२. ऐसा कहा जाता है कि नारायण ने अपने मुँह से यह बात रोग अपने ऊपर ले लिया था। फिर गुरुवयूर में जाकर यह भजन करने लगा और इसी समय उसने अपना प्रसिद्ध स्तोत्रग्रन्थ नारायणीय लिखा।
३. दलाघो माघोत्सवमपि तिष्ठते दुष्टहन्ता ॥१॥६०॥
४. इत्थं नत्वा गिरिपरमुता गौडगर्मावर्तिन्दो—  
रम्ये समावप्य पुरवरं प्रहुरक्षे मसालम् ॥१॥६३॥

लेखक का यह रचनाकाल लेखक के इस विचार से और भी पुष्ट होता है कि १४६३ ई० से १६०२ ई० तक कोचीन में जो राजा राज्य करता था, वह रघुवर्म था। सन्देश काव्य में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि करप्पुम् राजा रघुवर्मा के प्रताप से उज्ज्वल था<sup>१</sup>।

अतः हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह सन्देश काव्य म० १५७४ ई० में लिखा होना चाहिये न कि अगली शताब्दी के पूर्वभाग में। इस समय में कोचीन के राजा तथा कालीकट के जमूरिन में युद्ध चलता रहा था और इन युद्धों का काव्य में कह नहीं उल्लेख आता है।

## कथासार

इस काव्य में एक प्रियही प्रेमी ने स्यानन्दूर ( त्रिनेत्रम् ) से श्वेतदुर्ग ( कोट्ट फल ) में स्थित अपनी प्रेमिका के पास भृगु के द्वारा अपना सन्देश भेजा है। कथा इस प्रकार है कि किसी समय रात्रि न नायक अपनी प्रेमिका व साथ अपने प्रासाद पर निद्राविहार कर रहा था। इसी अवसर पर कोई यक्षी उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन्में मलयपर्वत पर उड़ा कर ले जाने लगी। मार्ग में अपने पक्ष को आता देखकर वह उसे ( नायक को ) स्यानन्दूर में छोड़ जाती है। स्यानन्दूर में पद्मनाभस्वामी के मन्दिर के निकट पुष्पाश्रम में जो वर नायक जागता है, तब अपने को अनेला पाकर उसे घड़ा हुआ होता है। इस अवसर पर एक भृगु उड़ता हुआ उसके पास आता है। वस, वह उसको ही अपना दूत बनाकर श्वेतदुर्ग में स्थित अपनी प्रेयसी के पास भेजता है। इसी प्रसंग में स्यानन्दूर से श्वेतदुर्ग तक का मार्ग वर्णित किया गया है।

पद्मनाभ स्वामी के दर्शन करने के बाद उत्तर की ओर चलने पर सर्वप्रथम राजा रघुवर्मा के राज्य, तदनन्तर कृष्ण राजाओं की राजधानी कुलपुरी ( किलान ), सुललिता नदी, घल्लभग्राम तथा तिरुवरलस्थित विष्णुमन्दिर होत हुए उदयमार्तण्ड राजा की दक्षिण दिग्गती नगरी पहुँचने का भृगु को परामर्श दिया गया है।

कोणी नदी के दक्षिण तट पर स्थित त्रिम्बली राजाओं की इस राजधानी के बाद क्रमशः कुमारग्राम, मोदयर्म राजा की नगरी ( यानक्कूर ), अम्बरपुल में राजा देवारायण की राजधानी, तदनन्तर राजा रघुवर्मा के राज्य में से होत हुए व्याघ्रलेय ( करप्पुरम्, वैक्कम् ), पूर्णप्रयी ( त्रिपुलीतीर्थ ), राजा राजराज की नगरी ( कोचीन ), पचरङ्गाधिनाथ ( त्रिम्बन्निम्बुलम् ), पुष्पाधिनाथ ( पुष्प्योक्कनु ) गुणकापुरी

१ दृष्ट्या तन्दिप्पसि फलभरेरानता नालिपेर-  
धेणी देशाधनिपु रघिवर्मप्रतापोज्ज्वलासु ॥१॥८४॥

( वृन्मणाम तिलकम् ) सन्मग्राम ( इरिञ्जलकुन्द ), वलयगेहाधिनाथ ( उरकम् और त्रिभूर ), समीरालय ( गुम्फशूर ), अत्रि नेत्रनारायण का गृह ( परमयन्तली ) तथा उसके पास के देश, मुक्तिस्थान ( मुक्कोल ), निला नामकी नदी, नापाक्षेत्र और फिर कुण्टगेह तथा वल्लभक्षेत्रिण्धु का राज्य ( वल्लभकोनतिरि ) इन स्थानों को पार करने के बाद अन्त में उसकी प्रेयसी के निवासस्थान श्वेतदुर्ग का उल्लेख किया गया है। इस नगरी में स्फटिस्मरणियों से निर्मित सरोवर के उत्तर में बाल वत्स नामक गृह में बालनीली नामक नायक की प्रेयसी रहती हुई धतलाई गई है।

तदनन्तर नायिका के घर में स्थित उद्यान, धापी, कुरवकतर, मालती और आम्रवृक्ष इत्यादि के वर्णन के बाद नायिका तथा उसकी विरहावस्थाओं का वर्णन किया गया है। तदनन्तर भृगु से नायक ने प्रेयसी को अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। सन्देश में नायक ने अपनी विरहावस्था, नायिका के लिये आशवासन और अभिधान घटनाये वर्णित कौं हैं। अन्त में नायक ने पुनर्दर्शन की अभिलाषा प्रकट करत हुए भृगु को आशीर्वाद देकर सन्देश समाप्त कर दिया है।

### काव्य समीक्षा

यह सन्देशनाय भी उत्तरीभारत में लिखे गये सन्देशकाव्यों में एक प्रमुख सन्देश काव्य है। ऐसा कहा जाता है कि इस भृगु सन्देश की प्राप्ति पर ही उद्बुद्ध करि ने उत्तर स्वरूप अपना कोमलसन्देश लिखा। मेघदूत के अनुकरण पर ही यह सन्देश काव्य लिखा गया है। पूर्वभाग और उत्तर भाग इन दो भागों में काव्य पटा हुआ है। पूर्व भाग में स्थानन्दूर ( त्रिवेन्द्रम् ) से श्वेतदुर्ग ( कोट्टम्बल ) तक के मार्ग का वर्णन है। उत्तर भाग में प्रेयसी के गृह का वर्णन, उसकी विरहावस्थाएँ और सन्देश दिया गया है। काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही व्यवहार किया गया है। पूर्वभाग में ६५ और उत्तरभाग में ८० श्लोक हैं।

काव्यस्तु काव्यनिष्ठ ही है। दक्षिण भारत के अन्य सन्देश काव्यों—मयूरसन्देश, शुकसन्देश और कोकिल सन्देश—की तरह इस काव्य में भी नायक सोते समय ही रात्रि में किसी यक्षी के द्वारा अपहरण किये जाने के कारण अपनी प्रेयसी से बिछुड़ जाता है। उपर्युक्त सन्देश काव्यों में भी विरह का कोई ऐसा ही कारण उपस्थित किया गया है।

मार्गवर्णन में अत्रि ने आकर्षक स्थलों पर कुछ ठहरने की चेष्टा की है तथा पाठकों के सामने अपने सरस वर्णनों से तत्कालीन के सुन्दर शब्दचित्र उपस्थित किये हैं। अतः मार्गवर्णन नीरस नहीं होन पाया है। इस प्रसंग में काव्य में आये हुये दो एक उदाहरणों का अनुचित नहीं होगा। कृपक राजाओं की राजधानी विलास का वर्णन करते हुए अत्रि कहता है कि इसका यात्राओं में मणियाँ धरी प्रचुर मात्रा में विगरी पड़ी रहती है मानों समुद्र ने स्वयं अपने हाथों से उन्हें फैला दिया हो—

पारेपाथोनिधि कुलपुरी कृपकृन्मापतीनाम्  
लक्ष्या लन्मीप्रिहरणकलासम्पदो हेमलक्ष्या ।  
फेनक्षोमाभ्यरनिचुलितान् यन्निपद्यासु (गङ्गा) हृद्यान्  
वीचीदस्ताग्निरिति मणीन् नित्यमम्भोधिरेव ॥१॥२४॥

आगे चलकर निला नामक नदी का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

अग्रे भागिन्यऽथ तत्र निला लम्बिता सिन्धुवीची-  
नीतक्षोमाभ्यरपरिसरे द्वारवल्लीय भूमे ॥१॥२५॥

निला नदी को समुद्र की लहरों के नीचे रेशमी वस्त्रों के साथ धारण की हुई  
पृथ्वी की द्वारवल्ली यथाकर कवि ने यही सुन्दर उपमा दी है ।

निला नदी में स्नान कर चुकी हुई स्त्रियों के वक्ष स्थल पर प्रतिबिम्बित भृग  
को सुवर्ण कलश पर स्थित नील रत्न की कितनी उपयुक्त उपमा कवि ने निम्न पद्य  
में प्रदान की है—

तत्र स्त्रीणा दिवसगिरतिस्नानधौताधराणा-  
मुत्तीर्णाना अग्रनपुलिनामकसून्माभ्यराणाम्  
भानुच्छायाप्रणयिनि कुचे प्रिम्बितात्मा मुहूत  
धर्ताऽसि तत्र कनकफलशीनीन्वरक्षोपमानम् ॥१॥२६॥

अग्रिम श्लोक में कवि कहता है—

फान्ते सारुं पिकमृदुगिरस्तत्र सग्रीडमाना  
पश्यन्त्यस्तत्र पयनचलिते प्रिम्बित धीचिजाले ।  
छिन्नस्रस्त मरकतमणीदाम पक्षोदहादि-  
त्युद्भ्राम्यन्त्य सलिलकुहरे हस्तमारतयेयुः ॥१॥२७॥

नदी में अपने अपने पतियों के साथ विहार करती हुई स्त्रियों का जल में भृग  
की प्रतिच्छाया देगवर तथा बसे टूट कर गिर पड़ी हुई मरकत मणिमाला समझकर  
जल में हाथ डालना स्वाभाविक ही है ।

मार्ग में पढ़ने वाले मन्दिरों में तत्तद् देवताओं की पूजा और स्तुति करने का भी  
भृग को परामर्श दिया गया है । इस प्रसंग में आए हुए स्तुत्यामक पद्यों में कवि ने  
यह सुन्दर और सरस भाव व्यक्त किए हैं । शिखरी की स्तुति में कहा गया निम्न  
पद्य देखिए—

आशा यस्मै तथ बहुतरा पूर्णकाम किल त्यम्  
पीत कण्ठे लगति गरल नीलकण्ठोऽसि लोक ।

श्रीकण्ठ त्वा कथयति जन कण्ठलज्जा न गौरी  
तस्माद् विस्मापकमयि कथ प्रस्तुमस्त्वा नमस्ते ॥१॥२८॥

शिवजी के व्यक्तित्व को कवि ने किस प्रकार आश्चर्यजनक बना दिया है।

एक श्लोक में कवि ने शिवजी और पार्वतीजी दोनों की एक साथ स्तुति की है—

गौरीकान्त जिनयनमनोरममे देव देवि ।  
मेमोद्रेको जयति जगतामीशयोरीदृशोऽयम् ।  
एव यो वा रालु कयलयन्नर्धगात्र नितेने  
विश्लेषार्तिप्रदरमचिदन्तौ मिलन्तौ भजन्तौ ॥१॥७५॥

शिवजी और पार्वतीजी के अनन्य प्रेम का कवि ने कैसा सुन्दर चित्र यहाँ अंकित किया है।

दक्षिण दिग्माली में स्थित मन्दिर में कृष्ण की स्तुति करने के लिए भृगु को परामर्श दते हुए कवि कहता है—

यन्देधास्त्वभ्रमर पुरत कञ्चिदाश्चर्ययाल  
घोषाद् घोषामन इव मुहुर्गोरस धोरयन्तम् ।  
अस्य व्रम पयमिन् पयोलुब्धता यो विशुद्धा  
मुक्तिं दत्ता विपकट्ट पय पीतयान् पूतनाया ॥१॥३१॥

इस पद्य में कवि ने कृष्ण के मन्दस्वन चुराने तथा दूध पीने के लातच का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

जिस तरह मेघदूत में यक्ष ने आलका नगरी का सगर और शृगार रस पूर्ण वर्णन किया है, उसी तरह इस धान्य में भी श्वेतदुर्ग का वर्णन यथा सगर और सुन्दर है। श्वेतदुर्ग राजधानी का वर्णन प्रारम्भ करते ही नायक कहता है कि यह नगरी अपने तत्तद् विशेषमार्था से भृगु को मत्त बनाने में पूर्ण समर्थ है। कवि ने भृगु से मिलते जुलते विशेषणों का ही नगरी के साथ प्रयोग किया है—

मञ्जुध्यान सललितपुरन्धीजितान्धगीता  
माध्वीलोल नयमधुक्करीलोल लोलम्बजाला ।  
वान्तासक्त सुदृढदयितारागमूर्च्छालपोरा  
वैस्नेमायेमद्विभुमलं त्वामसी राजधानी ॥२॥१॥

उपर्युक्त श्लोक से नगरी के सगीन तथा विलास से पूर्ण जीवन का अनुमान किया जा सकता है।

श्वेतदुर्ग नगरी के मढ़लों की छतों पर चलते हुए मूर्च्छनाशाली सगीत को सुनकर गन्धर्व तक मूर्छित हो जाते हैं और अपनी प्रेयसियों द्वारा कमल से मारे जाने पर ही उन्हें होश आता है—

यत्सौधाम्रे कुन्तलयदशा मूर्च्छनाशाली गीतम्  
श्रुत्वा मूर्च्छामित्र गतयत्रा कौतुकस्तम्भितानाम् ।  
गन्धर्वाणामनुगतनिजप्रेयसीरोपदत्त  
क्रीडापदमग्रहरणमहो जायते बोधनाय ॥२॥४॥

एक और श्लोक में कहा गया है कि श्वेतदुर्ग नगरी की सबकें स्फटिक मणि के साथ साथ वैडूर्य (नीलम) की बनी हुई हैं और उन पर कमल के समान मुख वाली स्त्रियां अत्र चलती होती हैं, तो हसों को सचमुच कमलजन का भ्रम हो जाता है और वे उन पर मड़राने लगते हैं—

यस्यामच्छस्फटिक मणिसम्भिन्नवैडूर्यरोचि  
धीवीभगप्रसरतरले राजमार्गान्तराले ।  
गच्छन्तीना कुन्तलयदशा धीदय वक्त्राणि दूरे  
हसा हेमाभुजजनधिया सञ्चणन्तो बलन्ते ॥२॥६॥

नगरी के वैभवं तथा वहा की रमणियों के सौन्दर्य का एक साथ कवि ने कैसे सुन्दर वर्णन किया है ।

नगरी के वर्णन के बाद नायिका का वर्णन किया गया है । नायिका वर्णन कवि ने सरस भाषा द्वारा नायिका का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है ।

नायक अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए कहता है—

यत्सौन्दर्यं सज्जलजगता नेत्रपीयूषजुष्टम्  
यत्तादृश्यं कुसुमधनुषो जैत्रमक्षय्यमस्त्रम् ।  
यत्सौजन्यं बुधजनमनोहारि यद्भूरिसारा  
विद्वन्निष्णा जयति विमला सृष्टिरम्भोजयोने ॥१॥१४॥

नायिका के सौन्दर्य, तात्पर्य और सौजन्य की कैसे सुन्दर ढंग से प्रशंसा की गई है । प्रह्ला की विमलसृष्टि यथाश्रु नायिका के उत्तमशील और पातिव्रत्य की भी व्यञ्जना की गई है ।

आगे चलकर नायक कहता है कि उसकी प्रेयसी का मुख निरूपमेय है । चन्द्रमा और कमल इत्यादि से उसके मुख की उपमा देना सौन्दर्य को कम करना ही होगा । प्रह्ला का सारा शिल्प इसकी रचना में लग गया है ~



यन्त्र तत्तादृशमतिमनोहारि नैरोपमामि-  
न्यूनीकुवे शशिकनरूपकेरहाद्याभिरद्य ।  
चलुष्मन्तो न यलु विप्रदन्ते जना किं गृह्णन्तै-  
स्तस्या सृष्टौ परिणतमभूत् स्वर्गशिल्प मिधातु ॥२॥२६॥

नायिका के स्वरूप का वर्णन करते हुए फिरही नायक एक स्थान पर भृगु से कहता है--

प्राणान् वीणामधुरनिनदान् भ्रातृगलोरुपेया  
व्यामप्राह्णाङ्गधनपुलिने मध्यदेशे मनोज्ञे  
मुष्टिप्राह्णानुरसिजभरे हेमशैलोपमयान् ॥२॥२७॥

सा कटयाणी मम सहचरी सौम्य विज्ञापयिष्य-  
त्यात्मानं ते मुहुरभिनवैरेव शोभाप्रिशेषे ॥२॥२८॥

नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए 'प्राणान्' 'कटयाणी' और 'सहचरी' इन शब्दों से नायक ने अपने प्रेम को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है। पूर्व वर्णित नायिका के संबंध में आगे चलकर नायक कहता है कि फिरह में उसके शरीरों की शोभा नष्ट होगई होगी--

एना म्लानामधिरमधुना कटपये विप्रयोग  
ध्यालक्ष्वेलो (विप) दृगतिभिरयथापूर्वशोभाङ्गलेपांम्  
राट्क्षोभादिव शरदिजा कीमुदीं दारयहि  
ज्वालादाहादिव च मधुमासोज्ज्वला बालवल्लीम् ॥२॥२९॥

शरत्कालीन चन्द्रिका तथा वसन्त ऋतु में उत्पन्न हुई बाललता धताकर नायिका की सुन्दरता तथा शुद्धमरता को बड़ी अच्छी तरह पाठकों के सामने रक्खा गया है।

अपने प्रिय के फिरह में नायिका की बड़ी करुण अवस्था का चित्र अंकित किया गया है। प्रिय फिरह में नायिका भस्मप्राय स्त्री वर्णित की गई है। उसकी बेचल बड़ी प्रार्थना है कि उसकी भस्मराशि मन्द वायु के द्वारा उसके प्रिय के मार्ग में डाल दी जाए--

स्वामिन् । मन्दानिल । किमिदमारभ्यत इन्त दग्धु  
तीत्रोत्कण्ठाविपशितिशिष्यादग्धशेष मदल्गम् ।  
एषा पाञ्चरा मम हि चरमा मन्दमादाय भस्म-  
सोदनेतान् दयितमिलित दिट्मुने पातयेथा ॥२॥३०॥

प्रिय विरह में नारियन निरन्तर रोती ही रहती है। उसकी सखिया किसी तरह उसको आश्वसन देती हैं और सोने की प्रार्थना करती हैं -

अङ्क पट्टेस्सहजदलैगस्तुत तेलिसरया  
गाढोत्सृष्टमृदितमृदितैरङ्गकैरापलन्ती ।  
वाले । मा मा रुदिहि दयितस्ते समायास्यति द्रग्  
निद्रा तावद् भज निभृतमित्येवमाश्रयासिता वा ॥२॥८०॥

विरहावस्था में नारियन के बेहोश तब हो जाने की सभायना की गई है। सखियों द्वारा शीतल जल के छिड़कने तथा आँखें खोलने पर उसके होश में आने का वर्णन किया गया है—

हा हा कष्ट सहं रि । जगन्नेत्रपीयूषं श्री  
भाले । बाले । कवमिद दशार्मीष्टगीमागतासि ।  
नेत्राम्भोज स्तिमितमिद्रमुन्मूलपत्पालिगं  
सिञ्चत्यङ्ग तुहिनपयसा योधमासेदुषी वा ॥२॥८१॥

इस तरह नारियन की विभिन्न विरहावस्थाओं की सभायना करने के बाद अन्त में भृगु से नायक ने अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। सन्देश में नायक ने सर्व प्रथम अपनी प्रेयसी को अपने शीघ्र आने का समाचार दिया है—

इत्थ तस्ये कथय मुदति । त्वा प्रियो मन्मुलेन  
व्यक्तः प्रते नमनुभवन्नीदृश रिप्रयोगम् ।  
पादाम्भोज तव सुवदने । शृङ्गितु प्रस्थितोऽहं  
तावन्मा मा तनु तनुलता दीपित तापयद्मी ॥२॥८२॥

तदनन्तर कुछ समय तक प्रतीक्षा करने का परामर्श दिया गया है—

(सन्देशवाणीम्) ता लब्ध्वा च प्रणयिनि पुन सम्प्रतीक्षस्य कालम्  
तत्तत्कीडातग्लमनसा सार्धमालीजनन ॥२॥८३॥

तदनन्तर अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि जब से तुम्हारा वियोग हुआ है, कामदेव अपने धनुष का तुम्हारी भ्रूषर्ला के द्वारा उपदास होने की वजह से घेर मानकर मेरे चित्त में लागों बाण मार रहा है—

तद्वद्भ्रूयल्ल्या धनुषि हसिते मय्युपागच्छयैरो  
मारश्चित्त मम प्रितुष्टे वागलक्ष्म्य लक्षम् ॥२॥८४॥

पाणियों में कलरव करती हुई हसिया, पलियों से लगी हुई लताएँ तथा

द्विरनियों के भुरह देखकर नायक को अपनी प्रेयसी की स्मृति आजाती है और वह पागल सा धूमता है—

कूले कूले मुखरकलहसीकुले वापिकानाम्  
मूले मूले पृथुलकलिकासन्नताना लतानाम् ।  
यूधे यूधे वलिततरलालोकिनीना मृगीशाम्  
स्मार स्मार तव सुमधुरान् विश्रमानुद्विभ्रमामि ॥२॥६२॥

नायक अपनी त्रिरहदशा का वर्णन करते हुए एक स्थान पर कहता है कि प्रातः काल में जब चक्रवाकमिश्र को प्रेम का पाठ पढ़ाती हुई शीतल हवा चलती है और जब मैं तुम्हें नहीं देख पाता हूँ तो मेरे मन में विरह की यही तीव्र ज्वालाएँ उठती हैं—

घातैर्मन्त्रुनृणदलिकुलारब्धिश्लेषमूर्च्छन्तं  
कोकद्वन्द्वप्रथमसुरताचार्यकं सेव्यमाना ।  
उपदुध्म मदनशिलिनं स्वमुज्जालोन्मथ्या  
प्रत्यूषा मे मनसि नवपदमाक्षि । सन्पुलक्यते ॥२॥६०॥

अन्त में नायक कहता है कि तीव्र उत्कण्ठा रूपी अग्नि, क्रुद्ध कामदेव रूपी सपे तथा मोह रूपी ग्राह से युक्त और हृदय सन्ताप रूपी विष का भरे हुए विरह-सागर में वह अपने दुर्भाग्यवश पड़ा हुआ है। पुनर्मिलन की आशा रूपी जहाज का सहारे ही वह जी रहा है—

तीज्रोत्कण्ठादहनभरिते दृष्टमारद्विजुष्टे  
मोहग्राहे हतहृदयसन्तापकाकोलपूर्णे ।  
विश्लेषाब्धी सुमुखि । विधिना पातित, सङ्गमाशा—  
पोतालर्या तत्र सदचर प्राणिति प्राणनाथे ॥२॥६४॥

इस तरह अपनी त्रिरहावस्था का वर्णन करने के बाद नायक ने अपनी प्रेयसी को कुछ पूर्वघटनाओं की भी याद दिलाई है ताकि उसे अपने प्रिय की कुशल का निश्चय हो जाए। इन अभिज्ञान घटनाओं में से कुछ एक तो यही सरस हैं तथा नायक और नायिका की प्रलयमायनाओं का यही सुन्दर विश्व यादकों के सन्मुख रखती हैं। कन्दुफत्रीटा के समय की एक घटना का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

स्मर्तव्यं तन्मधुरमुखि । यत् कन्दुकक्रीडितपु  
व्यासकाया त्वयि तमहरं पाणिपटुमादह ते ।  
याना रोपादिय सययसा मध्यतो मन्दिरान्त-  
माम्नालिङ्ग्य स्फुरितमदिधास्तत्र ताम्राधर मे ॥२॥६६॥

इस घटना में नायिका के रोव और प्रसन्नता का कैसा अपूर्व समिश्रण छिपा हुआ है ।

इसी तरह एक और अभिज्ञान में भी नायिका के घनिष्ठ प्रेम का परिचय दिया गया है । नायक के केवल अपने जाने की सूचना से ही नायिका चुन्च हो जाती है । उसके अंग शिथिल हो जाते हैं और रोने लगती है—

तद् वृत्तं ते धृतिमण्डरस्यस्मदीया प्रह्लासे  
गच्छामीति स्थिरमतिरुपासन्ध्रयं त्वामहेतो ।  
सद्यश्शय्याभुवि निपतिता सन्नगात्री मया त्वम्  
भूयोभूयस्तदनु रदती गाढमालिङ्गिताऽम् ॥२॥७३॥

सन्देश के अन्त में नायक ने अपनी प्रेयसी को शीघ्र ही मिलने की आशा भी दी है—

निर्मङ्गल्याय सुचिरमचिरात् सङ्गमानन्दपीयू-  
षाध्वो यावद्विरहशिविनस्तापं पति प्रशान्तिम् ।  
सौघेऽद्यप्रभृति मुदितौ पुण्यशय्याञ्चितेषु  
क्रोडिध्यागो वहलविगलव्यञ्चिकासु क्षपासु ॥२॥७४॥

इस तरह भृग को सन्देश पताने के बाद भृग के पुनर्दर्शन और मय्यन में भी उन दोनों का त्रियोग न हो, इस शुभ कामना के साथ काव्य समाप्त हो गया है—

भूयान्त्र प्रियसख पुनर्दर्शनं मा त्रियोग  
स्वप्नेऽपि स्याद् भरतु शुभयो सर्वमङ्गल्यलक्ष्मी ॥२॥७५॥

काव्य के उत्पुङ्क निवेदन से यह तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य एक सरस रचना है । विप्रलम्भ शृंगार की ही काव्य में प्रधानता है । यों तो मेघदूत के अनुकरण पर ही यह काव्य लिखा गया है । मार्ग वर्णन, नायिका की नगरी का वर्णन, उसके गृह तथा विरहान्ध्याओं और नायक के सन्देश इत्यादि में सर्वत्र ही मेघदूत से प्रेरणा ली गई है । कहीं-कहीं भाव साम्य भी स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है ।

मेघदूत में यद्यपि मेघ को मार्ग बताते हुए कहता है—

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपम्  
सन्देश मे तदनु जलद ! धोष्यसि श्रोत्रपेयम् ॥इत्यादि ॥१॥१३॥

इसी से मिलता जुलता भृगसन्देश का निर्मात्ररचित श्लोक देखिय—

यातामातां प्रति कथयितुं प्रेयसीं मे प्रवृत्तो  
मार्गतावच्छृणु शुभमिदं स्तुतिर्निवेद्यतामसाम् ।

नीत्या नीत्या श्रममनुजन येन गन्तासि भूय  
पीत्या पीत्या मधु सममलिन्या नलिन्या नलिन्या ॥१॥२१॥

दोनों पक्षों में मार्गस्थान तो है ही । शब्दसाम्य भी स्पष्ट है । इसके अतिरिक्त विषय भेद होते हुए भी शैली भी एकरूपता विद्य पाठक स्वयं देख सकते हैं । इसी तरह भृगु की अपनी प्रियसी के पास सन्देश लेकर भेजते हुए नायक कहता है—

प्रियलेपायां त्रिधुरमलसा वरलभानामुदन्त  
प्राणान् धीणापरिमृदुगिरा कण्ठनालेऽपि रुन्धे ॥१॥२५॥(दे० मेघदूत २, ३०॥)

मेघदूत में अलका नगरी के प्रासादों का वर्णन करते हुए प्रासादों और मेघ में परस्पर सादृश्य उत्पन्न करने वाले विशेषणों द्वारा एक दूसरे की समानता प्रतिपादित की गई है । इसी तरह भृगु सन्देश में भी श्वेतदुर्गराजधानी और भृगु में परस्पर सादृश्य उत्पन्न करने वाले विशेषणों द्वारा राजधानी का वर्णन किया गया है (दे० श्लो० सं० ॥२॥१॥ ३१० पृष्ठ पर उल्लिखित )

मेघदूत में अलका नगरी की स्त्रियों की सुगन्धता व्यक्त करते हुए कवि ने जो लिखा है, उसी के समानान्तर भाग को लेकर भृगु सन्देश में कहा गया है—

यस्यामन्तर्मलिनिलयने घल्लभैर्नीचिरुने  
ससृष्टाना नरपण्डित्ययीटिताना उध्वनात् ।  
लीलाम्भोज प्रहृतिभिरनिनापिते रत्नक्षीपे  
ध्वान्तोद्गारी सपदि त्रिगलत्कुन्तलो बन्धुगसीत् ॥२॥७॥

मेघदूत में कवि ने अपनी प्रियसी को शीघ्र मिलने का आश्वासन दिया है । इसी तरह भृगु सन्देश में भी शीघ्र मिलने का आश्वासन दिया गया है और तदनन्तर यह इच्छा प्रकट की गई है—

सीधेऽप्यप्रभृति मुदिता पुष्पशय्याजितेषु  
कीडिप्याग्रे बहलत्रिगलच्चन्द्रिकाम्बु क्षपासु ॥२॥७७॥

दोनों स्थलों में भाग्यसाम्य के साथ-साथ शब्दसाम्य भी पर्याप्त रूप में दिखलाई देता है ।

भौगोलिक दृष्टि से भी यह पाठ्य महत्त्वपूर्ण है । दक्षिण भाग के नगरों, मन्दिरों तथा प्रमुख विहारों व यथान्त काव्य की उपादयता और भी यदा दी है । इसमें तत्कालीन राजनैतिक और धार्मिक परिवर्तितियों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता

है। अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि सुन्दर भावों के साथ ललित भाषा में लिखा गया यह काव्य सहृदय पाठकों को मुग्ध करने वाला है और एक सफल सन्देशमाय है।

### उद्दण्ड कवि का फोकलसन्देश ( वि० पञ्चदश-षोडश शतक )

विषम १६ वें शतक के प्रारम्भ में कालीकट (कुम्भुटकोड) में जन्मरत मान-  
प्रियम नामक राजा राज्य करता था। यह बड़ा विद्वान् और साहित्यप्रमी था।  
इसके दरबार में अठारह कवि और एक अर्धकवि सम्मिलित थे। अठारह कवियों  
में पर्यूर पट्टेरी वश क आठ भाई और एक पुत्र, निरवपर और तिरयेगपर क पांच  
ब्राह्मण तथा मल्लपिल्लि पट्टेरी, चेन्नासु नारायण नम्बूद्रि, कान्मसरी नम्बूद्रि और  
उद्दण्डकवि यह लोग शामिल थे। पुन्नाद्रु नम्बूद्रि को अर्धकवि कहा जाता था  
क्योंकि उनकी कविता मलयालम और संस्कृत मिश्रित होती थी। फोकलसन्देश  
का रचयिता उद्दण्ड कवि इस कविमण्डल का प्रमुख व्यक्ति था। कहा जाता है  
उद्दण्ड शास्त्री भी कहा गया है। इसके माता पिता का नाम क्रमशः रत्नाय्य और  
रत्ननाथ था तथा यह कथुलमोत्र का था। कास्त्री क निरुट लाटपुर नामक ग्राम में पण-  
रहा करता था। 'ल्लारुवि ने तुमडा परिणव' नामक ग्रन्थ नाट्य में लिखा है कि  
उद्दण्ड कवि कोल टश के तजोर जिल के कन्दरमानिकर नामक ग्राम का रहने वाला  
था। उद्दण्ड कवि का पिता रत्ननाथ भी उसी ग्राम का निवासी था तथा बड़ा विद्वान्  
था। क्तुनेगुण्यप्रायथित्तम्' नामक एक मूलग्रन्थ और पदमञ्जरी तथा कीमुनी पर  
उसकी टीकाएँ पाई गई हैं। अतः यह भी समझ है कि कन्दरमानिकर नामक ग्राम में  
उद्दण्ड कवि का जन्म हुआ और बाद में वह कास्त्री के निकट लाटपुर नामक ग्राम में

१ द० ड्रीनिथल फैंट० आरु सन्म० एम० एम० एम० इन ओरियण्टल लाइ०  
मद्रास, १ १०४०।

२ द० डिम्पिपट्टिष फैंट० आरु सन्म० एम० एम० एम० इन ओरियण्टल लाइ०  
मद्रास २ न० १९६६ और ड्रीनिथल फैंटालाग, १, ३६२।

रस गया हो। यह नल्लकवि भी कदर मानिक का निरासी है तथा वि० पौडश शतक इसका रचना काल है। ऐसा ही इसने अपने सुमद्रापरिख्य नामक नाटक में उल्लेख किया है। उद्दण्ड कवि दक्षिण भारत के विभिन्न विद्याकेन्द्रों में अपना साहित्यिक जीवन बिताकर अन्त में यश की खोज में मालागिर पहुँचा और वहाँ राजदरबारों में इसने अपने विरोधियों को परास्त किया। जमूरिन मानविक्रम राजा ने इसको सरक्षण दिया। राजदरबार में इस सफलता को देखकर लोगों में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगी और ऐसी जनश्रुति है कि किसी पंडित की स्त्री ने इसको परास्त करने वाले पुत्र को उत्पन्न करने का प्रण किया तथा समकालीन पंडितों की प्रार्थनाओं और मन्त्रशक्ति की सहायता से उसके ऐसा ही प्रतिभाशाली पुत्र उत्पन्न भी हुआ। इस पुत्र का नाम कम्कासरी भट्टातिरि था। इसने बारह वर्ष की अवस्था में ही उद्दण्ड कवि को खुली चुनौती देकर परास्त कर दिया तथा संस्कृत में इन्दुमतीरायण और मलयालम में वसुमतीविक्रम<sup>२</sup> नामक नाटकों की रचना की।

उद्दण्ड कवि ने मल्लिकामारत नाम का इस अर्थों का एक प्रकरण<sup>३</sup> भी लिखा है। भगभूति व मालतीमाधन का इसमें अनुकरण किया गया है। इस प्रकरण में मल्लिका और मारत तथा रमयन्तिका और कलकण्ठ की प्रेमभावनाएँ वर्णित की गई हैं। मन्दाकिनी मालती माधन की कामन्दकी से और कालिन्दी अल्लोकिता से मिलती जुलती है।

कवि ने कोरिल सन्देश में एक प्रेमी का कालीकट में स्थित अपनी प्रेयसी के पास कोरिल द्वारा सन्देश पहुँचाया है। कालिदास के मेघ सन्देश की यह एक सुन्दर अनुकृति है। ऐसा कहा जाता है कि रघिवर्मा और गौडवर्मा के दरबार में स्थित वासुदेव नामक कवि ने अपना भृङ्गसन्देश नामक काव्य उद्दण्ड कवि के पास भेजा। उसके उत्तर में ही उद्दण्डकवि ने यह सन्देश काव्य लिखा है।

शकर मगर उद्दण्ड कवि का मित्र था। गुस्नयूर के मन्दिर में इन दोनों की भेंट हुई थी तथा शकरकवि ने उद्दण्ड द्वारा प्रारम्भ एक कविता की पूर्ति भी की थी। शकर कवि का श्रीहृण्णत्रिजय<sup>३</sup> नामक एक अन्य काव्य भी पाया जाता है।

१. वे० प्रायन्जोर स्टेट मैनुअल, ४३३।

२. वे० ट्रीनिअल वेट० आफ सन्स० एम० एस० इन ओ० ला० मद्रास, ४, ४७७८। वेबल दो अक्ष उपलब्ध हैं।

यलक्का और मैसूर से प्रकाशित।

३. प्रिन्स से प्रकाशित।

सुकुमार अथवा प्रभाकर नामक एक और युग्म कवि भी उद्दण्ड कवि का समकालीन था। कृष्णप्रियास<sup>१</sup> नामक उसका काव्य उसके नाम के समान ही सुन्दर और सरस है।

जिस तरह भजभूति का जन्म का नाम श्रीकण्ठ था परन्तु—

साम्ना पुनातु भजभूतिपवित्रमूर्ति । अथवा

तपस्वी का गतोऽवस्थामिति स्मैराननाधिव ।

गिरिजाया स्नानो यन्दे भजभूतिसिताननो ॥

पद्यों के जिनमें “भजभूति” शब्द आया है, लिखने के कारण इसका नाम भजभूति पड़ गया, उसी तरह उद्दण्ड कवि का यह नाम भी साहित्यिक नाम प्रतीत होता है। सामूतिरि महाराज की सभा में प्रथम प्रवेश के अनुरूप पर कवि ने महाराज के श्री चरणों में निम्न पद्य भेंट किया था—

उद्दण्ड परदण्डमैरय भजधात्रासु जैत्रधियो

हेतु केतुरतीत्य सूर्यसरणिं गच्छन् निरार्यस्त्वया ।

नो चेत्तप्तुटसप्तुटोदरलसच्छाईलमुद्राद्रयत्

सारङ्ग शशियिम्बमेष्यति तुला त्वत्प्रेयसीना मुले ॥

इस पद्य के उद्दण्ड शब्द के आधान पर ही कवि का नाम उद्दण्ड पड़ गया।

कवि ने कोकिल सन्देश में केरल देश की घटली और कौली नदियों के मध्य में स्थित ब्राह्मणों के अग्रहारों का वर्णन किया है। इसी प्रसंग में रणपल (पोकिल) में स्थित पय्यूर वरु के अग्रज विद्वत्प्रवर महर्षि के घर का वर्णन बड़ी भद्दा के साथ किया गया है—

किञ्चित्पूरारणपलभुवि भीमदध्यक्षयेथा ।

तन्मीमासाद्वयकुलगुरो सद्म पुण्य महर्षे ।

विद्वद्भृन्दे विद्यदितुमनस्यागते यत्र शश्व

दृष्याप्याशलायलभिनिलयस्तिष्ठते कीरसज ॥१॥७८॥

यह महर्षि कवि राजा मान विव्रम जमूरिन् का राजकवि था। अतः इन श्लोकों का समकालीन होना स्पष्ट ही है।

इसके अतिरिक्त कवि ने अपने काव्य में शङ्कर कवि का उल्लेख किया है। कोकिल की कोलदेश (उत्तरी मालाबार में चिरक्कल वरु) जान का परामर्श नेन हुए कहा गया है—



कोलानेलाउनसुरभिलान् याहि यम प्रयन्ते  
 देवार्ततप्रयितयचस शकराया कजीन्द्रा ॥१॥६०॥

इस पद्य से उद्घट्ट कवि शकर कवि का भी समकालीन सिद्ध होता है। इस शकर कवि ने अपने श्रीकृष्णविजय नामक काव्य में लिखा है कि यह काव्य कोलेश के राजा उदय यमा के सरक्षण में लिया गया है। राजा उदय यमा का शासनकाल प्रायः ई० १४ वीं शताब्दी का पूर्व भाग माना जाता है। मलयालम नाट्य चन्द्रोत्तर में भी शकर कवि का उल्लेख आया है। यह शकर कवि तथा उद्घट्ट द्वारा उल्लिखित शकर कवि दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इस बात में तो कोई सन्देह ही नहीं है। मालागार में एक और लोचप्रिय जनश्रुति यह भी है कि पुनम् नामक मलयाली कवि भी उद्घट्ट का समकालीन था। चन्द्रोत्तर काव्य में पुनम् कवि भी एक प्रसिद्ध कवि के रूप में उल्लिखित किया गया है। एक दूसरी ठोठकथा यह भी है कि बेन्नासु नारायण मन्वृत्ति भी जिसने तन्त्र समुच्चय ( त्रिवन्ट्रम् स० सी० स० ६७ ) लिखा है, उद्घट्ट कवि का समकालीन है। तन्त्रसमुच्चय नार ने अपना रचना काल ग्रन्थ के अन्त में कलियुग ४५२६ दिया है—

करयन्देवतियत्सु नन्दनयनेऽम्भोधिसरवेपु य  
 समूतो भृगुषोतद्वयमुनियुद्धमूले सवेदोऽन्वये ।  
 प्राहुर्यम्य जयन्तमद्गलपद्म धाम नारायण  
 सोऽय तन्त्रमिदं व्यधाद्वह्निधादुद्धृत्य तन्त्रार्थनात् ॥  
 ( नन्द ६, नयन ७, इषु ५, अम्भोधि ४ )

कालियुग ४५२० वि० स० १४८५ से मिलता है। इसके अतिरिक्त कोलदेश के राजा उदययमा से सबद्ध शकर कवि का समय भी वि० स० की १५ वीं शताब्दी का उत्तरभाग है। अतः इन दो कवियों की समकालीनता के आधार पर उद्घट्ट कवि को वि० स० के १५ वं शतक के अन्त में निश्चितरूप से रक्षित जा सकता है।

कवि ने अञ्जनपलपुरी ( तिरुवञ्चिकुल ) का वर्णन करते हुए अतद्गुरु श्री शकराचार्य का उल्लेख किया है—

रम्या हर्म्यञ्चजपटमरुद्धीजितप्रभयुग्मा  
 ममे पश्या अनपलपुरीभाधिता शरूक्खेण ॥१॥८७॥

इसमें भी कम से कम यह तो निश्चित ही होता है कि उद्घट्ट कवि श्रीशकाराचार्य से याद में ही हुआ है।

## काव्य की कथा

कोई प्रेमी अपने प्रासाद पर प्रेयसी के साथ प्रेमालाप करते-२ सो जाता है। प्रातःकाल होने पर यह देखता है कि कम्पा नदी के तट पर स्थित काची नगरी में भगवती के मन्दिर के पास बह पड़ा हुआ है। इसी अवसर पर उसे एक आकाशवाणी सुनाई पड़ती है कि वरुणपुर से विमान द्वारा आती हुई अप्सराएँ उसको यहाँ ले आई हैं और यदि वह पाँच महीने तक काची में निवास करेगा, तो फिर कभी उसका अपनी प्रेयसी से प्रियोग नहीं होगा। इस आकाशवाणी को सुनकर वह प्रेमी काची में निवास करने लगता है। अपनी इस विरहावस्था के दो तीन महीने तो वह किसी तरह काट लेता है लेकिन चैत्र लगते ही वसन्त ऋतु के आने पर वह बड़ा विह्वल हो जाता है और पास में कोकिल को कूकता हुआ देखकर तो उसने हृदय में प्रेयसी की स्मृति और भी जागृत हो जाती है तथा वह उससे प्रेयसी के पास अपना सन्देश ले जाने की प्रार्थना करता है। इस प्रसंग में काची नगरी से चूर्णी नदी के दक्षिण तट पर स्थित जयन्तमगल नामक (आधुनिक खेन्तमगल) देश तक के मार्ग का पवित्रपूर्ण धर्शन किया गया है।

काची नगरी के निकट कम्पा नदी के तट पर स्थित किसी उद्यान से कोकिल की यात्रा प्रारम्भ होती है। मार्ग में श्री कामाक्षी, श्री पिप्पु, कामपीठ तथा श्री महादेवजी के दर्शन करने के बाद काची देश से पश्चिम की ओर क्षीरसिन्धु नामक नदी (पालार) के मिलने का उल्लेख किया गया है। इस नदी से दक्षिण की ओर चलने पर ब्राह्मणों के अग्रद्वारों, चोलदेशस्थित विररुत्तेय, तदनन्तर घने जंगलों को पार कर कायेरी नदी तथा इसके तट पर स्थित होसल देश पहुँचने का कोकिल को परामर्श दिया गया है। होसल देश से सह्यपर्यन्त होते हुए केरलदेश में वाड् मयी नदी के तट पर महादेवजी और भद्रकाली के दर्शन करने के बाद पुरली (कोट्टयम्) के राजाओं की राजधानी का धर्शन किया गया है। यहाँ से दक्षिण की ओर जाने के आवश्यक होने पर भी पश्चिम की ओर बढ़ने का ही कोकिल को आदेश दिया गया है। मार्ग में महादेवजी का मन्दिर, सम्पद्ग्राम तथा यहाँ के ब्रह्मन्द् इत्यादि विद्वानों के दर्शन कर यहाँ पर ही रात बिता कर प्रातःकाल होने पर शम्भर देश में बालवृष्ण भगवान् के दर्शन करत हुए दक्षिण दिशा की ओर बढ़ने पर कोल देश का आने का उल्लेख किया गया है।

कोलदेश से समुद्रतट होते हुए कुक्कुटकोड (कालीकट) नगर, तदनन्तर प्रकाशेश (वेत्तनाट्) में श्वेतारण्य (सुप्रतगोट्) के निषटघर्ती मृत्युञ्जय नगर के दर्शन करने के बाद निला नाम की नदी को पार करते हुए नेप्रनारायण (तम्पुगाक्कल्) वरु के ब्राह्मणों के देश पहुँचने का कोकिल को परामर्श दिया गया है। यहाँ से कुछ दूर की ओर रणगल देश (पोर्लम) में मरुपि पय्यूर के आश्रम को देखने के बाद वृषपुरी (श्री शिवपुर-चुन्नर) में महादेवजी तथा उसका समीप

ही कनक भवन में पार्वतीजी की पूजा करते हुए सगमग्राम ( हरिङ्गालस्कट ) पहुंचने का उल्लेख किया गया है ।

सङ्गमग्राम में कृष्णजी के दर्शन करने के बाद आगे बढ़ने पर श्रीकुक्ष्म नामक वन में कालीजी के मन्दिर का दर्शन किया गया है । तदनन्तर अजानसलपुरी ( तिरुचिकुल ) नामक नगरी को देखते हुए चूर्णी नदी के पार करने पर दक्षिण की ओर जयन्त मगल नगरी के मिलने का उल्लेख किया गया है ।

इस तरह मार्गदर्शन के बाद अन्त में जयन्तमगल नगरी का दर्शन किया गया है । इस नगरी में त्रिषु क्षेत्र से दक्षिण की ओर ही प्रेयसी का घर घटाया गया है । प्रेयसी के घर में स्थित लीलापापी, उद्यान, आम्रवृक्ष, चम्पक, चन्दन वाटिका, लतामण्डप, कुरयक तरु इत्यादि स्थानों में प्रेयसी के न मिलने पर माहेन्द्रनील नामक प्रासाद में तो उसके मिलने की अग्र्य ही आशा की गई है । इस प्रसंग में प्रेमी ने अपनी प्रेयसी की विरहावस्था का विविध भावभंगिमाओं के साथ दर्शन किया है । अन्त में सूर्य के ताप के कुछ शान्त होने पर मध्याह्न के बाद कोकिल से प्रेयसी को प्रियतम का सन्देश सुनाने की प्रार्थना की गई है । सन्देश इस प्रकार है । प्रेमी कहता है—हे करयाणाङ्गि ! तुम्हारे त्रियोग में मेरी इन्द्रिया विरकुल शिथिल हो गई हैं और मन तो दिन रात तुम्हारी ओर ही लगा रहता है । रात्रि में जब सारा ससार सोता होता है तब मैं रोता ही रहता हूँ । मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव को आजकल और कोई काम नहीं है । नितान्त रूप से मेरे चारों ओर ही घूमता रहता है । मलय पवन के स्पर्श से हिलती हुई लताएं देख कर मुझे तुम्हारी याद आ जाती है । इस दुःसह त्रियोग में केवल भारना का सहारा लेकर मैं जी रहा हूँ । तुम भी अपनी सखियों के आग्रह से स्नान इत्यादि निरन्तर करती रहना । पार्वती की ठाण से बिरहकाल समाप्त सा ही हो गया है । दो भास का बिरह और सह लो । उसके बाद तो हम लोगों का मिलन अवश्य ही होगा । अन्त में दो तीन अभिज्ञान घटनाएं घटला कर और कोकिल को आशीर्वाद देकर सन्देश समाप्त कर दिया गया है ।

यस, यही काव्य की कथा है ।

## काव्य समीक्षा

केरल देश में लिखे गए सङ्कृत के सन्देश काव्यों में कोकिल सन्देश एक महत्त्वपूर्ण सन्देशकाव्य है । मेघदूत का यह एक सफल अनुकरण है । काव्य दो भागों में विभक्त है । पूर्व भाग में मार्गदर्शन तथा द्वितीय में नायिका की विरहावस्था और सन्देश दिया गया है । छन्द भी समग्र काव्य में मन्दाक्रान्ता ही है । शृंगार रस के अग्रुल प्रसादगुणयुक्त ललित भाषा में यह काव्य लिखा गया है । यसन्त श्रुत के प्रारम्भ में कोकिल की सन्ध्यावादन बनाकर कवि ने अपनी करपाशक्ति का

अच्छा परिचय दिया है। कोकिल के पंचम स्वर ही को सुनकर तो प्रियही प्रेमी को अपनी प्रेयसी की मधुर घापी की स्मृति आती है तथा कोकिल ही अपने मधुर कूजन के द्वारा मानिनी नायिकाओं को अपने प्रेमियों से मिलने के लिए प्रेरित करता है। अतः कोकिल के द्वारा सन्देश भेजना उचित ही है। दूसरे कोकिल स्वयं इतना भावुक है कि पक्षों के बीच में यदि कहीं उसकी प्रेयसी छिप जाती है, तो क्षण भर में ही यह वहाँ व्याकुल हो जाता है। अतः यह प्रियद्वियों के ताप को बहुत शीघ्र समझ सकता है। प्रेमी स्वयं कहता है—

अन्तस्तोष मम प्रितनुपे हन्त जाने भवन्तम्  
स्कन्धागारप्रथममुभट पचवालम्प राघ ।  
कूजायाजादितमुपदिशन् कोकिलायाजगन्धो  
कान्तै साक ननु घटयसे मानिनीर्मानभाज ॥१॥७॥

किञ्चिल्लीना किसलयपुटे कोकिलामाकुलात्मा  
त्य चापश्यन् अत विरदिता येन जानासि तापम् ॥१॥८॥

सन्देश सुनाने के अवसर पर कोकिल भी अपने सयन्ध में कहता है —

जात विद्धि श्रुतिसुखगिरा कोकिलाना कुले मा  
ये पन्वेपो किमपि पयिकाकर्षण पष्ठमस्थम् ॥२॥७॥

मार्ग-दर्शन के प्रसंग में कवि ने सुरम्य स्थलों तथा दृश्यों को बड़े भावपूर्ण ढंग से पाठकों के समुमुख रक्खा है। क्षीरसिन्धु ( पालार ) नदी के तट पर स्थित उद्यानों तथा नदी में स्नान कर चुकी हुई द्रविड सुन्दरियों को लेकर कवि कहता है—

आम्ने आम्ने कुसुमकलिका त्या च दृष्ट्वा समेतम्  
यालाशोकाहननमरुणैरधिभिस्तन्यतीनाम् ।  
तन्यङ्गीना धवणसुभगेन पुराणा विराजै  
र्वाचाला स्युर्नियतमभित कूलमारावसीमा ॥१॥९॥

स्नातोत्तीर्णा सज्जलकणिफासुन्दरोरोजकुम्भा  
(हरिद्रा) श्यामापङ्क्तौ शुभपरिमलै स्पृष्टमाङ्गल्यमूपा ।  
तीरि तस्या द्रमिडसुदृशो दर्शनीया विलोक्य  
प्राप्यो भार्या क्षणमिव सखे गच्छतस्ते विलम्ब ॥१॥१०॥

इसी तरह विलयक्षेत्र में कोकिल के पहुँचने पर वहाँ के उद्यानों द्वारा कोकिल के सत्कार की बड़ी कोमल कल्पना की गई है—

पक्षिस्त्रानै पटुमदकलै स्वागतानि द्रुमाणा  
 व्याकीर्णाध्यां कुसुममधुभिर्नीज्यन्त प्रवालै ।  
 तत्रारामा सुरभिसचिव त्वा सखे मानयेयु-  
 स्तुत्यप्रीतिर्मवति हि जनो राजवद्राजमिव ॥१॥२६॥

कुन्नुट कोड (कालीम्पट) नगर का दर्शन करते हुए कवि कहता है कि यहाँ तो लक्ष्मी साक्षात् निवास करती है और देश देशान्तरों से रत्नों से भरी हुई नौकाएँ जो यहाँ आती हैं वह तो मानों समुद्र की अपनी पुत्री (लक्ष्मी) के लिए भेंट हो—

यत्र शात्या कृतनिलयनामिन्दिरामात्मकन्या  
 मन्य स्नेहाकुलितहृदयो याहिनीना विबोढा (समुद्र) ।  
 तत्तद्द्वीपान्तरशतसमानीतरत्नौघ पूर्णं  
 नौकाजाल मुहुरपहरन् पीविभि' श्लिष्यतीव ॥१॥६६॥

आगे चलकर प्रकाश नामक देश (वेङ्कटनाड्) में ग्रेतारण (तृमङ्गोद्) नामक स्थान के निकट शिवजी के मन्दिर के पास बहती हुई निला नामक नदी के समग्रन्थ में कवि ने यही सुन्दर उपमा दी है—

पाश्र्वे यस्य प्रवर्ति निला नाम कटलोलिनी'सा  
 सन्ध्यावृत्तभ्रमिषु पतिता मस्तकाज्जाह्वीव ॥१॥७१॥

ग्रीष्म काल में क्षीणकाय, शैवाल से आवृन्त कमलवाली तथा सैकत देश में फिरते हुए हस्तों से युक्त नदी की कटपना से कवि ने विरही नायक के हृदय में उसकी प्रेयसी का ध्यान जागृत करा दिया है। नायक कहता है—

शैवालीघच्छुरितकमला सैतस्य सिद्धसा  
 नीना काश्य तपनकिरलोर्वासरेष्वेषु सिन्धु ।  
 व्यापीर्णास्यामलकनिकरै धोणिभिश्च शिकार्चा  
 मन्ये दीना विरहदशया प्रेयसीं मेऽनुयायात् ॥१॥७३॥

नदी और नायिका के लिए विषयप्रतिविम्ब भाव वाले विशेषणों का प्रयोग कर कवि ने दोनों का सादृश्य प्रस्तुत कर दिया है। मार्ग-दर्शन के अन्त में चूर्णा नदी का दर्शन करत हुए भी कवि ने नदी में नायिका का आरोप किया है—

चारुस्थच्छा शफनयना चक्रयाकस्तनभी  
 फल्लोलध्रु कमलरदना कम्पशैवालवेषा ।  
 संसे'या स्यात् सरसमधुगा साऽनुकूलायतीर्ण  
 दुर्गादान्यैरिति हि सरणि' काऽपि गाम्भीर्यमाजाम् ॥१॥८६॥

यहां पर रूपक अलंकार के द्वारा नदी को नायिका का रूप दिया गया है ।

अलंकारपुरी के उर्ण के समान ही इस काव्य में जयन्त मंगल नगरी का भी शृंगारमय उर्ण किया गया है । इस नगरी में अभिसरिकाएं दिन में भी अपने प्रेमियों के पास निशङ्क जाती हुई बतलाई गई हैं—

वीथ्या वीथ्या चलरिपुशिला (इन्द्र नीलमणि) भङ्गउदस्थलाया  
समूर्ध्वि विरणपटलेस्त्रयदुग्धज्जालनीलै ।  
पद्मारब्धे दिनकरकरैरप्यह्वयऽन्धकारे  
तोलाक्षीणा भञ्जनि दिवसे निर्गिशङ्कोऽभिसारः ॥२॥३॥

नगरी में स्थित चन्द्रशालागृहों की ऊंचाई का अनुमान निम्न श्लोक से भली प्रकार लगाया जा सकता है—

वीचीक्षिता इव सुरधुनीगलशैवालमाला  
यत्रोदीर्णा मरुतगच्छचन्द्रशालागृहेभ्य ।  
घासभ्रान्त्या गगनपद्वीदीर्घपाथ्यायमाना-  
श्चञ्चलप्रोथ (प्रोथ=नासिका) नरणिनुरगाश्चिन्तु प्रारभन्ते ॥२॥४॥

मरुत मणियों की किरणों को हरी घास समझ कर सूर्य के घोड़ों का उतरी और झुकना व्यापक ही है ।

विरही नायक ने अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए कोकिल के सामने नायिका का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, जरा उसे भी देखिए—

सा नेत्राणाममृतशुलिका सृष्टिसारो रिधातु  
सौन्दर्येन्द्रो प्रथमफलिका दीपिका भूतधान्या ।  
कन्दर्पस्य त्रिभुवनविभो काञ्चना वेतुपटि  
शृङ्गारान्धे शशधरकला जीवित मे द्वितीयम् ॥२॥५॥

ऐसी स्त्री का पट्टिचानना कोई कठिन काम नहीं है । इसी आशय को लेकर विरही प्रेमी कहती है—

पश्यन्नेना बहलसुपमामण्डलान्तर्निमग्नम्  
मयेऽन्यासामपि चलदृशा ह्रास्यसे नो कथं त्वम् ।  
ज्योत्स्नाजालम्नपितभुयना तारकाणां समीप  
चान्द्री मूर्ति कथय जगनो ज्ञाप्यते केन रात्रौ ॥२॥६॥

निम्न श्लोक में विभिन्न उपमानों के द्वारा उपमेय भूत नायिका के अंगों का सौष्टव भाव ने वैसे अच्छी तरह प्रतिपादित किया है । वंशभार, मुखयन्त्र, वज्र

कलश, रोमराजि, पटियाग, जघन, ऊरु और चरणों की क्रमिक उपमाएँ देखते ही धनती हैं—

सान्द्रामोदस्तिमिरनिकरञ्चन्द्रमा निष्कलङ्क  
शैलौ हैमो भ्रमरपटलीकीलितो व्योमभाग ।  
कञ्च चक्रमृदुकरिकरद्वन्द्वमञ्जे सलीले  
सर्वं चैतन्मदनघटितं सौम्यं समूय साऽभूत् ॥२॥२१॥

ऐसे रमणी विशेष की विभिन्न छेष्टाय भी कुछ विशिष्ट ही होनी चाहिए ।  
आगे चलकर विरही नायक फिर अपनी प्रेयसी का वर्णन करता है—

भीचीकुर्यन्त्यलसवलितानेत्रपाता कुरङ्गान्  
वीचीगव हरति निखिल विभ्रमान्दोलिता भ्रू ।  
पाणी करपद्मकिसलयप्राभय न क्षमेते  
वाणी तस्या वहति भरता पञ्चमैर्बालमैत्रीम् ॥२॥२२॥

विरही नायक का मन अपनी प्रेयसी की ओर इतना अनुरक्त है कि वह उसे भुला ही नहीं सकता । उसके मुख से अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में बरबस यह शब्द निकल ही पड़ते हैं—

सा वान्तिश्चेद्द्रुपति कनकतन्मुखं चेत् कश्नु  
सा चेद्विभ्याधरमधुरता तिलतामेति माधुरी ।  
सा वा तस्या यदि तनुलता मालती लोहतुल्या  
तौ ध्वंशू कनककदलीस्तम्भयो कदापि उभम् ॥२॥२३॥

अपनी प्रेयसी के स्वरूप का वर्णन करते करते विरही प्रेमी को अकस्मात् ।  
प्रेयसी की विरहावस्था का ध्यान आ जाता है । वह कहता है कि आजकल अयश्व  
ही उसकी सुकुमार प्रेयसी कटपसमान इन विरह दिनों में बची हुई होगी होगी—

सजायेत प्रयलविरहोद्वेजिता पेशलाह्वी  
मूर्ध्दधर्मज्वरपरपश्या नीलकण्ठीव\* खिन्ना ॥ ( १ = मयूरी )

विरही प्रेमी कहता है कि उसके रियोग में उसकी प्रेयसी हमेशा चिन्तित  
रहती होगी तथा गालों पर हाथ रखते घेटी होगी—

यत्रापाङ्गघनिकयचित्ते किञ्चिदुत्सार्य पेशान्  
दत्तं प्रेम्णा दिनमनु मया दीर्घिकारक्तपद्म  
तस्मिन्नस्या भवति नियतं हन्त चिन्ताकुलाया  
मण्डन्यस्त करकिसलयं वर्णमादेऽधतस ॥२॥२६॥

कर्ममूल में कमल के स्थान पर हाथ ही उसकी शोभा बढ़ाते होंगे ।

विरहिणी नायिका के निरन्तर रोते रहने का उत्प्रेक्षा के आवरण में कितना मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किया गया है । नायक कहता है—

क्रीडाशैली मदननृपते कान्तिपूरस्य कोको  
स्याता तस्या ध्वजमुरसिजो किञ्चिदापाण्डुमूली  
मद्विश्लेष शरदुदुनिभा त्याज्यन् द्वारमाला  
मन्ये भीनो वितरति तयोरधुभाराभिरन्याम् ॥२॥२६॥

अन्त में नायक कहता है कि मेरी प्रेयसी अवश्य ही आजकल पृथ्वी पर पड़ी रहती होगी, उसके नेत्रों से लगातार अभुधारा बहती होगी, हाथ पर गाल रक्खे रहती होगी, विरहताप को दूर करने के विचार से उसने विसलताओं के द्वार पहिन रक्खे होंगे और मलिन वस्त्र पहिने होगी—

पृथ्वीरेणूनलफनिकरे नेत्रयोर्वाष्पपूर  
हस्ते गण्ड सितविसलताद्वारजाल स्तनाग्रे ।  
ओण्या क्षीर्म मलिनमण्डण सा बहत्पेय हन्ते—  
त्यास्तामेनद्रुहिलपिती मांऽस्तुकालातिपात ॥२॥३४॥

इस पद्य में कवि ने विरहिणी नायिका का पूर्णचित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित कर दिया है ।

आगे चल कर विरहिणी नायिका की विभिन्न विरह-वेष्टायें भी बड़े भावपूर्ण ढंग से वर्णित की गई हैं । अपने प्रेमी के विरह में नायिका बिल्कुल उन्मत्त सी हो गई है । उसे चित्र तथा यथार्थ का भेद ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता है । चित्रशाला में एक चित्र में जब वह अपने प्रिय को अपने पेरों पर पड़ा हुआ देखती है तब एकदम वह अपने प्रिय को मनाने लगती है—

प्राप्तालम्बा परिजनकरै प्राप्य वा चित्रशाला  
मुग्धा स्वम्याश्चरणपतित वेति त मा निरीक्ष्य ।  
एद्युत्तिष्ठ प्रिय न कुपिताऽस्मीति वाष्पाकुलाक्षी  
गाढाद्वलेपप्रचलितकरा रुष्यमाना सर्गभि ॥२॥३८॥

ऐसे ही एक और स्थल में घुसकर चलकों से आच्छन्न अपने मुँह को शुद्ध स्फटिक मणियों द्वारा निर्मित भित्तिभाग में प्रतिबिम्बित देखकर वह उसे मेखणाओं से आच्छन्न चन्द्रमा समझ बैठती है और सखियों से दूर के साथ पूछती है कि यह चन्द्रमा यहाँ कौन ले आया है—



गण्डालम्बैर्लुलितमलकैर्धूसरै र्वन्प्रविभ्रम्  
 दृष्ट्वा शुद्धस्फटिकघटित विभ्रित भित्तिभागे ।  
 अन्तर्गह जलद शकलैरावृतो रोहिताङ्क ( चन्द्रमा )  
 केनानीत पुर इति भिया व्याहरन्ती सखीर्वा ॥२॥४०॥

विभ्रम के साथ साथ भय की भी इस पद्य में समावना की गई है ।

अन्त में विभिन्न शुभ निमित्तों से प्रिय के आने की आशा लगाती हुई तथा अपने प्रिय का ध्यान करती हुई विरहिणी प्रेयसी की समावना की गई है—

यत्किं भगङ्क्ष सुहृदुपगम दक्षिणे क्षीरवृक्षे  
 याम नेत्र स्फुरति सुचिरादुच्छ्रुतसित्यथ वत ।  
 किञ्च स्वान ध्वनमधुरो जायते कोकिलानाम्  
 प्राणेशाशामिति कथमपि आतरारम्भती वा ॥२॥४१॥

सुस्तथा जीगम्यसुसममिति प्रीलिता विस्मिता वा  
 तत्सङ्गाशा पुनरिह पर हेतुरित्यासिता वा ।  
 शोचन्ती मा दयितमयश मिप्रयोगसदिप्सु ॥२॥४२॥

नायिका की विरह चेष्टाओं के वर्णन के बाद प्रिय का सन्देश प्रारम्भ होता है । इस सन्देश में नायक ने अपनी विरहावस्था का बड़ा कारण चित्र उपस्थित किया है । प्रेयसी के विरह में नायक हमेशा चिन्ता में डूबा रहता है, उसके सासें चलती रहती हैं और अर्धरात्रि में जब ससार सोता होता है, तो वह रोता ही रहता है, इस घटना को केवल चक्रवाक ही जानते हैं—

माघदृष्टगै कुमुदपत्रैस्तर्ज्यमानस्य प्रोरे—  
 रातट्काव्ये सरसि लुठतो हा निशीधे निशीधे ।  
 निद्रामूक जगति रुदत श्यासचिन्ताशुषो मे  
 सत्रन्दन्तश्चट्टलनयने चक्रवाका सहाया ॥२॥४०॥

पसन्त ऋतु में मलयपत्र के स्पर्श से हिलती हुई तथा भोरों के शुभ्रन से युक्त सुन्दर लता पल्लवियों को दृष्टकर प्रिय के हृदय में भरपूर प्रेयसी की स्मृति जाग उठती है—

काले धाम्निम् कन्दलिभृत कम्पिताप्रप्रवाला  
 कम्पा परत्य विभ्रमि मरता शुम्बिता दक्षिणे ।  
 किञ्चिद्दृष्टाधरविसलया प्रादुमया भोगकाल ।  
 सीत्सुर्थाणा धुतफरतला त्वा प्रिये स्मारयन्ति ॥२॥४३॥

तीव्रताप से युक्त तथा विरह के कारण अत्यन्त लम्बी रात्रि को बिताकर सूर्योदय होने पर जब चक्रवाकी अपने चक्राक्ष से मिलनी है, तब इस दृश्य को देखकर विरही नायक के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगती है—

तीर्था रात्रि विरहमहती तीव्रतापा कथञ्चित्  
दृष्ट्वा मानो किरणमरण जम्भशत्रोर्दिगन्ते ।  
प्रत्युद्यन्ती त्वरितमधला श्लिष्यत भाग्यसीम्ने  
सारङ्गाक्षि स्पृहयति मनो हन्त चक्राप्ययूने ॥२॥४५॥

अन्त में विरही नायक कहता है कि इस कठोर वियोग में केवल भायनारूपी कटपनल्ली के सहारे ही मैं जीवित हूँ और किसी न किसी तरह धैर्य धारण कर रहा हूँ—

हा हन्तास्मिन्नसुलभमिषोद्दर्शने विप्रयोगे  
सैवालन्यो मम भगयती भायनारुहपनल्ली ॥२॥४६॥

सत्य तैस्ते वृत्तधृतिरह प्राणिमि प्राणनाथे ॥२॥४७॥

अपनी प्रेयसी को भी यह धैर्य रखने का परामर्श देता है, क्योंकि विरहरूपी सागर अब समाप्तप्राय हो चला है। दो मास का ही और कष्ट है। फिर तो वे मिलेंगे ही—

त्यच्च स्नानादिषु सध्वसा प्रार्थना मा निषेधी ॥२॥४८॥  
तीर्णप्रायो विरहजलधि शैलकन्याप्रसादात्  
शेष मासद्वितयमथले सह्यता मा विपीद ।  
धूपोद्गारै सुरभिषु ततो भीरु । सौधान्तरेषु  
क्रीडिष्याथो नयजलधरध्यानमन्त्राण्यदानि ॥२॥४९॥

विरह में खुद के लुप्त हो जाने से विरही नायक दिन में भी क्रीड़ा की आशा करता है ।

सदेश के बाद कई अभिमान घटनायें भी वर्णित की गई हैं ताकि प्रेयसी को अपने प्रिय की कुशल का पक्का ज्ञान हो जाये। दो एक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

आश्लिष्यन्तं विटपमुजया तत्र यल्लीरनेका  
क्रीडारामे कमपि तरुणं वीक्ष्य माकन्वृक्षम् । ( आत्र )  
साचीरृत्य स्फुरदधरया चगिड । यक्षत्रं भयत्या  
सध्रमंग सञ्जलकरिक् प्रेषितो मय्यपाङ्ग ॥२॥५३॥

### कच्चिच्चित्ते स्फुरति चपलापाङ्क्ति

पुरुष प्राय कई स्त्रियों से प्रेम करते होते हैं। इस विचार से कोप के साथ मुख तिरछा कर नायिका का नायक की ओर देखना उचित ही है।

एक दूसरे अभिज्ञान में एक बहुत छोटी सी घटना की याद दिलाई गई है। इस दृष्टि अपनी सहचरी का खुम्हा ल रहा था। नायक और नायिका दोनों इस दृश्य को देख रहे थे। तब इस अन्तर पर नायिका ने बड़ी लज्जा के साथ नायक की ओर देखा था। इसी घटना को नायक निम्न पद्य में अपनी प्रेयसी के लिये बतलाता है—

भूयस्त्वैक शृणु सहचरिं घृतनेकानुनीतिम्  
केली हृत्ते स्मरन्नुपि दृढाच्युत्तरीपत्स्नन्तीम्  
तत्र तस्मैत्या निमपि बहलव्रीलमालोकया माम् ॥२॥६॥

अभिज्ञान वर्णन के बाद सन्देश समाप्त करते हुए कोकिल को आशीर्वाद देने में भी कवि ने बड़ी चतुरता दिखाई है। प्राय 'परं भृत' इस अभिप्राय से कोकिल को 'परभृत' कहा जाता है। लेकिन नायक कहता है कि अथ 'परान् निभर्ति परभृत, व परभृतम्' इस अभिप्राय से कोकिल को 'परभृतम्' कहा जायगा। आशीर्वाद में कोकिल का उसकी प्रेयसी से कभी एक धार भी वियोग न हो, यह शुभकामना प्रकट की गई है—

मान्यधी स्यान्मदलनृपते कोकिला सेऽनुकूला  
भूयान्मेव सकृदपि तथा निप्रयोगप्रयोग ॥२॥६॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को यह स्पष्ट प्रतीत हो गया होगा कि यह सन्देश काव्य निप्रलम्भ शृंगार से पूर्ण है तथा एक प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के पास इसमें सन्देश भेजा है। भावों के अनुकूल सरस और प्रवाह पूर्ण भाषा का ही कवि ने सर्पत्र व्यवहार किया है। कहीं कहीं अनुप्रास की छुट्टा भी देगने योग्य है। थिर दिनी नायिका के वर्णन में अनुप्रास के साथ साथ उपमा का भी कवि ने सन्निधेय कर दिया है—

तत्र द्रव्यस्यखिलमहिभामोत्तिमालायमानाम्  
बालामेव नियतमधुना मद्वियोगेन दीनाम् ।  
कटशाली सा वनवन्दलोकन्दर्लीकोमलाङ्गी  
वन्दपाणि वधमिव कुङ्कुलाग्निवत्प सहेत ॥१॥२॥

मधुमति के मालतीमाधव के अनुकरण में कवि ने जिस तरह मल्लिकामाकन नाम का प्रकरण लिखा है, उसी तरह ये श्रुत के अनुकरण पर यह सन्देशकाव्य

लिखा गया है। मेघदूत की शैली छन्द, विषयव्यवस्था तथा भावयोजना से यह काव्य पूर्णतया प्रभावित है। कोकिल का स्वागत, मार्गदर्शन, अयनतमंगलपुरी के पेश्वर्य तथा प्रेयसी के गृह का वर्णन, लीलागपी, आन्नवृद्ध, इसके पास ही स्थित सुवर्णमय आलमाल से युक्त चम्पक वृक्ष तथा नाचते हुए मयूरों से पूर्ण चन्दन, यादिका यह सब मेघदूत की ही छाया है। कहीं कहीं भाग साम्य के साथ साथ शब्द साम्य भी पाया जाता है। कोकिल से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करते हुए विरही नायक कहता है—

कान्तोदन्न सुहृदुपगतो निप्रयोगाद्रितानाम्  
प्राय स्त्रीणां भवति किमपि प्राणसधारणाय ॥१॥१०॥

इसी तरह प्रभात में सूर्योदय होने पर कोकिल को आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है—

प्रस्थातु त्वं पुनरपि सप्रे प्रक्रमेथा प्रभाते  
स्थात्मन्मलेश सुहृदुपहृती त्वादृशानां सुखाय ॥१॥१५॥

मेघदूत में उज्जयिनी व वर्णन प्रसंग में शिप्रानदी की वायु को लेकर व्यक्त किये गये भावों की तरह यहाँ पर भी अन्नमलपुरी ( तिरुन्निचनकुल ) का वर्णन करते हुए चूर्णी नदी की वायु के सम्बन्ध में समानान्तर भाव व्यक्त किये गये हैं—

यन्नाश्लिष्टो धरयुगतिभिश्चुम्बति स्विन्नगण्डम्  
चूर्णीनां प्रिय इव रतिधान्तमास्यारविन्दम् ॥१॥२७॥

मार्ग में पकने वाली आन्नवदलियों के रसास्वादन की समानता करते हुए कोकिल से कहा गया है—

भोक्तासि त्वं कमपि समय तत्र माकन्दयल्ली  
कान्तारगे सति विकसिते क पुमास्त्वकुमीष्टे ॥१॥३०॥

इस अवतरण की अन्तिम पंक्ति को देखकर मेघदूत का यह पद—

शतास्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थ ॥१॥४२॥ याद आ जाता है।

मेघदूत में यज्ञ ने अपनी प्रयत्नी को—

ता जानीथा परिमितकथा आवित मे द्वितीयम्—कहा है।

इस सन्देशकाव्य में भी नायक अपनी नायिका के लिए—

'शृङ्गाराम्भे शशधरकला जीवित मे द्वितीयम्' ॥२॥१६॥ कहता है।

इस तरह परस्पर भाव तथा शब्द साम्य बाने अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं। मेघदूत में स्नेह के सम्बन्ध में यक्ष ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—

स्नेहानाहुः किमपि विरहे घ्वसिनस्ते त्वभोगात्  
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ॥२॥१॥

इसी तरह यहाँ भी प्रेमी अपने सन्देश की समाप्ति पर कहता है—

रागो नाम वृटति विरहेणेति लोकप्रवाद-  
स्थित्सखी मम शतशुण सगमादिवप्रयोगे ॥२॥६७॥

दोनों अवतरणों में कितना भाव साम्य है। विश्व पाठक स्वयं जान सकते हैं।

स्थान स्थान पर शिग्रजी, रगनाथजी, भद्रकाली, चण्डिका, श्रीकृष्ण, पार्वतीजी इत्यादि देवी-देवताओं के वर्णन से कवि की आस्तिन्यभाषना का परिचय मिलता है। कवि ने मार्ग में पड़ने वाले देवी-देवताओं की समान धद्धा के साथ स्तुति की है। इससे कवि की धार्मिक उदारता भी प्रतीत होती है।

कोकिल के सम्बन्ध में कवि ने एक स्थल पर कहा है—

श्लाघ्यञ्छुन्दरिधितिमयि मया शोभनेऽर्थे नियुक्तम्  
भाव्य शब्दैः सरससुमनोभाजमध्वान्तवृत्तिम्।  
दूरमाप्स्या प्रशिथिलमिव त्या सखे ! काव्यकल्प  
धीमान् पश्येत् स यदि ननु ते शुद्ध एव प्रचारः ॥१॥८०॥

कोकिल को काव्य-कल्प बताते हुए श्लिष्ट विशेषणों द्वारा कवि ने अपने काव्य का ही कुछ परिचय दिया है। इस काव्य में छन्द भी श्लाघ्य है, अर्थ भी निर्दुष्ट है, विद्वानों के मन को वर्णमधुर शब्दों द्वारा यह काव्य धरा में करता है तथा इसकी शैली और प्रवाह निर्दुष्ट हैं। कवि का यह कथन सर्वथा सगत है। मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी काव्य की उपादेयता कुछ कम नहीं है। कोकिल को सन्देश पाहक बनाकर कवि ने अपने सन्देश काव्य को और भी सुन्दर बना दिया है।

## उदय कवि का मयूरसन्देश ( वि० स० पचदशशतक )

आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक पर अभिनवगुप्त ने लोचन नाम की टीका लिखी । इस लोचन पर भी कई टीकाएँ लिखी गईं । उनमें एक कौमुदी नाम की भी टीका है । यह टीका चार उद्योतों में से केवल प्रथम उद्योत पर ही पाई जाती है । इस टीका में लेखक ने एक श्लोक स्वरचित रचना के रूप में उद्धृत किया है -

आदिदीपक यथाममैव मयूरदूते काटये-  
सा जागति स्वपिति च मुधा भूकतामैत्यवदुध  
मते रोदित्यधिकमनुल धैर्यमालभ्यते च ।  
मूर्च्छा प्राप्नोत्यपि च भजते चेतनामित्यशक्तौ  
यस्तु वेधा अपि विरहज्यापृतीरगनानाम्

यह श्लोक इस सन्देश काव्य के उत्तर भाग में [ श्लोक स० ६५ ] पाया जाता है । अतः यह तो निश्चित ही है कि कौमुदी तथा इस सन्देशकाव्य का रचयिता एक ही व्यक्ति है ।

कौमुदी टीका के लेखक का नाम स्पष्ट रूप से टीका में कहाँ नहीं दिया गया है । फिर भी लेखक के नाम को निश्चित करना कठिन नहीं है । टीका की भूमिका के अन्त में यह श्लोक पाया जाता है—

आशसिता रसिकलोकचकौरवृन्दै  
राविर्भयन्त्युदयतोऽमृतगोचरा ।  
आचन्द्रतारकमिदं नयकौमुदीय  
प्रीतिं दधानु जगता विवृतिर्मदीया ॥

इस पद्य में 'उदयत' शब्द का कोई विशेष अर्थ नहीं निकलता, जब तक कि इससे कवि या टीकाकार के नाम का ज्ञान न करें । सम्पूर्ण श्लोक से यह ध्वनि निकलती है कि कौमुदी टीका का रचयिता उदय नामक कोई व्यक्ति है । इस विषय पर अधिक विवाद अथवा स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती । इसके अतिरिक्त कौमुदी टीका में प्रथम उद्योत की समाप्ति पर निम्न श्लोक पाया जाता है—

इत्य मोहतमोनिर्मलितदृशा ध्वन्यर्थमात्रे यता  
व्याख्यामासमहोपलज्यरजुषा प्रेक्षायता प्रीनय ।  
उत्तु गाबुदयक्षमाभूत उर्युष्याममुष्यामय  
कौमुद्यामिह लोचनस्य विवृताद्युद्योने आचो गत ॥

इस श्लोक में भी टीका के लेखक का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। लेखक का नाम उदय है। इसके अतिरिक्त उपरिलिखित श्लोक यह भी बतलाता है कि लेखक राजपूत का है। 'समाभृत्' शब्द 'पर्यंत' और राजा इन दोनों अर्थों में यहां पर प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि 'उत्तम' शब्द के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है कि यह 'पर्यंत' तथा लेखक दोनों से सम्बद्ध है, लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि 'उत्तम' शब्द केवल पर्यंत के विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त हुआ हो। हा, इतना निश्चित है कि कौमुदी टीका का लेखक उदय नामक कोई राजा है।

बाह्य साध्य से केवल इतना निश्चित होता है कि कौमुदीटीका का लेखक ही मयूरसन्देश का लेखक है। जब हमें यह देयता है कि मयूर-सन्देश से लेखक के सम्बन्ध में हमें क्या ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सर्वप्रथम हमें यह निर्णय करना है कि काव्य का नायक और लेखक दोनों एक ही व्यक्ति है। वृत्ति विरोध में कोई प्रमाण नहीं है, अतः हम स्वाभाविक रूप से ऐसा मानते ही हैं कि काव्य का नायक ही काव्य का लेखक है। काव्य से यह भी ज्ञात होता है कि नायिका का पितृवृत्त नाम 'उमा' है और कवियों के द्वारा उसे 'मारचेमन्तिका' [ भाग २, श्लोक ३६ ] कहा जाता है तथा वह 'तच्चप्पिरिल' वंश की है [ भाग २, श्लोक १६ ]। पूर्वभाग श्लोक सख्या २३ में नायिका के ग्राम का नाम श्वेतच्छद्वट और श्लोक सख्या १०६ में सितगरसीर बताया गया है। केरलभाषा में आजकल अन्नकर नाम से पुनारे जाने वाले इस ग्राम में तच्चप्पिरिल नाम का एक परिवार आजकल भी पाया जाता है। लेकिन मालावार में पत्नी का वंश पति के वंश के समान नहीं होता है। अतः नायिका के वंश से नायक तथा काव्य के लेखक के वंश का कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सकता।

काव्य के द्वितीय श्लोक में काव्य की नायिका मारचेमन्तिना को 'धी कण्ठो वीपतिग्रहमत' बताया गया है। चतुर्थ श्लोक में यह भी कहा गया है कि कुछ वंशताओं ने राजा को अपनी रानी उमा के साथ अपने दासों के ऊपर विहार करता हुआ देखकर भूल से साक्षात् धी कण्ठ (शिर) समझ लिया। यह भूल तभी हो सकती है जब कि यह राजा किसी दूसरे रूप में भी धी कण्ठ हो। अतः इन पद्यों से यही अर्थ निश्चित है कि काव्य का नायक स्वयं राजा धी कण्ठ है और कौमुदी टीका का रचयिता उदयसमाभृत् मयूरसन्देश के नायक तथा लेखक धी कण्ठोर्वीपति से भिन्न नहीं है। उदय इसका वास्तविक नाम है और धी कण्ठ इसकी कुलप्रमाणित उपाधि है तथा मालावार में ही कहीं का यह राजा है।

मलयालम भाषा में लिखे गए उन्नुनीली सन्देश नामक सन्देशकाव्य से यह मयूरसन्देश बहुत कुछ मिलता जुलता है। उन्नुनीली-सन्देश में नायिका को विम्विल प्रदेश के राजा मणिकण्ठ द्वारा धारण किए जाने वाला मुक्ताहार पहनाया गया है। राजा मणिकण्ठ नायिका का पति नहीं है। नायिका विम्विल राजपूत के एक अन्य व्यक्ति,

की पत्नी है। इस प्रकार मयूर सन्देश में भी 'श्रीकण्ठोर्ध्वपति वटुमत' इस पद का यह भी अर्थ हो सकता है कि नायिका मारचमन्तिका श्रीकण्ठोर्ध्वपति द्वारा शासित प्रदेश की केवल एक प्रतिष्ठित महिला है।

इसके अतिरिक्त चन्द्रोत्तर नामक मलयालम भाषा के एक अन्य काव्य में भी मारचमन्तिका नाम आता है। काव्यगतवर्णनों से केवल इतना पता चलता है कि यह मारचमन्तिका राजवंश से सम्बन्धित है। चन्द्रोत्तर काव्य में पाई जाने वाली नायिकाओं में मारचमन्तिका का तृतीय स्थान है। चन्द्रोत्तर का राजा कटनकोट (संस्कृत श्रीकण्ठ) सरस्वतक है। जिस स्थान पर चन्द्रोत्तर मनाया गया था, वह मयूरसन्देश की नायिका मारचमन्तिका के निवासस्थान से दूर नहीं है। इन बातों से यह निष्कर्ष निरलना है कि मलयालम काव्य चन्द्रोत्तर की मारचमन्तिका तथा मयूरसन्देश की नायिका मारचमन्तिका दोनों एक ही हैं। यदि मारचमन्तिका राजा कटनकोट (श्रीकण्ठोर्ध्वपति) की पत्नी रही होती, तो चन्द्रोत्तर काव्य में उसे प्रथम स्थान दिया गया होता। चूंकि उसे तृतीय स्थान दिया गया है, अतः यह मानना पड़ेगा कि यह राजवंश के किसी अल्पवयस्क व्यक्ति की पत्नी है। मलयालम काव्य चन्द्रोत्तर में और मयूरसन्देश में एक और बात में भी साधर्म्य पाया जाता है। मयूरसन्देश का लेखक धन्यालोक की लोचन नामक टीका पर कौमुदी नाम की रचय अपनी टीका लिखता है। इससे यह स्पष्ट है कि काव्यममीक्षा के विषय में यह लेखक धनिसम्रदाय का अनुयायी है। चन्द्रोत्तर काव्य में भी इस बात का कुछ सूत्र मिलता है। काव्य की भूमिका में एक श्लोक द्वारा धनिसम्रदाय के अनुयायियों से चन्द्रोत्तर काव्य पर भी कृपादृष्टि करने की प्रार्थना की गई है। मयूरसन्देश तथा कौमुदी टीका के रचयिता किसी राजा को ही लक्ष्य कर यह लिखा गया है।

चन्द्रोत्तर काव्य की नायिका मारचमन्तिका का पति राजा श्रीकण्ठ के परिवार का केवल एक अल्पवयस्क व्यक्ति है तथा मयूरसन्देश भी लेखक की प्रथम रचना है जिसका कि नायक स्वयं लेखक ही है, अतः यह मानना अधिक सगत होगा कि श्रीकण्ठोर्ध्वपति इस सदशकाव्य का नायक तथा मारचमन्तिका का पति दोनों ही नहीं है बल्कि इस काव्य के द्वितीय श्लोक में उल्लिखित राजा श्रीकण्ठोर्ध्वपति के परिवार का कोई राजकुमार ही इस सदशकाव्य का नायक है।

लेखक के विषय में इतना जान लेने के बाद अब हमें इस काव्य के रचनाकाल पर भी विचार करना है। मलयालम भाषा के उन्ननीलीसन्देश नामक सन्देश काव्य में राज्य के उत्तराधिकारी किलान (कोलम्ब) के राजकुमार आदित्यवर्मा को संदेश-वादक नियुक्त किया गया है। यह आदित्यवर्मा इररि वरमा के बाद जिसको कि काव्य में किलान का तत्कालीन शासक बताया गया है, राजगद्दी पर बैठा। इन दोनों का शासन काल निश्चित है। उन्ननीलीसन्देश में आदित्यवर्मा द्वारा नृसिंह



सेना क हटाए जाने का भी वर्णन है। अतः उन्नुनीलीसन्देश को हम ई० चतुर्दश शतक की रचना मान सकते हैं। मयूरसन्देश में प्रारम्भ में उन्नुनीलीसन्देश की शैली का अनुकरण किया गया है। अतः हम कह सकते हैं कि मयूरसन्देश ई० चतुर्दशशतक के अन्त का लिखा हुआ है।

इसके अतिरिक्त मयूरसन्देश के पूर्व भाग श्लोक सरया ८३ में उद्दण्ड नामक कवि का उल्लेख मिलता है ( उद्दण्डाख्यं सुरमिकवितासागरेन्दु कवीन्द्र ॥८३॥)। - स श्लोक से केवल इतना निश्चित होता है कि मयूरसन्देश उद्दण्ड कवि की समकालीन रचना है। लेकिन उद्दण्ड कवि का समय स्वयं निश्चित नहीं है। उद्दण्ड कवि ने अपने कोकिल सन्देश में कोलदेश में [उत्तरीय मालागार में चिरक्कल देश] रहने वाले एक शकर कवि का उल्लेख किया है। इस शकर कवि ने श्रीकृष्ण विजय नामक अपने काव्य में कोल देश के राजा उदयवर्मा को अपना सरत्तक बताया है। ई० पंचदश शतक का पूर्वार्ध राजा उदयवर्मा का शासन काल माना जाता है। मलयालम काव्य चन्द्रोत्सव में भी एक शकर कवि का उल्लेख आता है। यह शकर कवि और उद्दण्ड कवि द्वारा उल्लिखित शकर कवि दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रोत्सव काव्य में पूनम नामक एक अन्य विशिष्ट कवि का भी नाम पाया जाता है। मालागार की दन्त कथाओं में पूनम और उद्दण्ड समकालीन कहे जाते हैं। एक और दन्तकथा के आधार पर तन्त्रसमुच्चय (त्रिवेन्द्रम् संहृत सीरीज, स० ६७ और ७१) के लेखक और उद्दण्ड कवि को भी परस्पर समकालीन माना जाता है। तन्त्रसमुच्चय के अंत में ग्रन्थ का रचनाकाल कलियुग ४५२६ दिया हुआ है। कलियुग ४५२६ ई० १४२८ से मिलता है और ई० पञ्चदशशतक के पूर्वार्ध में शासन करने वाले कोलदेश के राजा उदयवर्मा से सयद्ध शकर-कवि के आधार पर निश्चित किए गए उद्दण्ड के रचना काल से भी इस कलियुग का सामंजस्य ठीक बैठ जाता है। अतः ई० पंचदश शतक का पूर्वार्ध अथवा स० १४०० ई० के कुछ बाद का समय ही मयूर सन्देश का रचना काल है। विक्रम संवत् के अनुसार ग्रन्थ का रचना काल वि० स० के पंचदशशतक का उत्तरार्ध अथवा पूर्वार्ध का अन्त ही समझिए। त्रिवेद शान के लिए ओ० धी० ए० पूना से प्रकाशित इस काव्य की मृत्तिका देखना चाहिए।

### काव्य की कथा

मालागार के राजा श्रीकण्ठ के परिवार का कोई राजकुमार अपनी रानी मारचेमन्तिका के साथ ग्रासाद की छत पर विहार कर रहा था। विद्याधर मूल से उसकी पार्वती के साथ स्वच्छन्द विहार में सलग्न साक्षात् शिव समझ बैठे। उनकी इस मूल पर पद राजकुमार उनका उपहास करने लगा। विद्याधरों ने इस पर राजा को एक मास के लिए अपनी प्रियसी से वियुक्त रहने का शाप दे दिया। राजा के प्रार्थना करने पर किसी तरह विद्याधरों ने उसे स्थानन्दूर (नायनकोर की राजधानी

आधुनिक त्रिवेन्द्रम्) में रहने की अनुमति दे दी। अपनी प्रेयसी के विरह में निमग्न यह राजा वर्षा ऋतु में एक मोर को देखता है और उसके द्वारा अपनी प्रेयसी के पास अन्नकर नगरी में सन्देश भेजता है। इस नाम का एक ग्राम कोचीन राज्य में आधुनिक त्रिवूर के पश्चिम में लगभग आठ मील पर अब भी स्थित है। त्रिवेन्द्रम् से अन्नकर तट के मार्ग का काय में बड़ा ही सुन्दर वर्णन पाया जाता है। मार्ग में पहले वाले नगरों, मन्दिरों तथा मालाधार के विभिन्न राज्यों के वर्णन के साथ-साथ नदियों और समुद्रतट का भी तत्तत् स्थान पर वर्णन किया गया है। मार्ग वर्णन के बाद अन्नकर नगरी, तच्चप्पिल्लि नामक नायिका के गृह, समीप में ही स्थित आम्रवृक्ष, पुष्पोद्भयान, वकुलवृक्ष, अशोकवृक्ष, वापी, कूप, गृहपाटिका, बाटिका के मध्य में स्थित मण्डप, उसके पास मालतीलता और अन्त में आम्रवृक्षों से घिरे हुए प्रेयसी के प्रीतिस्थान लता मन्दिर का उल्लेख किया गया है। इस लतामन्दिर में ही परिजनों द्वारा निर्मित शीतोपचार युक्त विरहशय्या पर पड़ी हुई नायिका के मिलने की सभाजना की गई है। समीपवर्ती किसी तमालवृक्ष पर बैठकर अपनी प्रेयसी के देखने के लिए राजकुमार मयूर से कहता है। इस अन्तर पर प्रथम तो राजकुमार ने अपनी प्रेयसी के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया है। फिर उसकी विभिन्न सभाज्यमान विरहावस्थाओं का बड़ा ही भावपूर्ण करुण चित्र अंकित किया है। अन्त में अपनी प्रेयसी के लिए कहा जाने वाला अपना सन्देश मयूर को बताया है। मयूर को सन्देश सुनाकर तथा उसके द्वारा प्रेयसी के पास सन्देश पहुँचाने की सभाजना कर अन्त में राजकुमार उसके प्रति शुभ कामना व्यक्त करता है। वस, यहीं पर काव्य की कथा समाप्त हो जाती है।

## साहित्यिक समीक्षा

मेघसन्देश के अनुकरण पर तो यह सन्देश काव्य लिखा ही गया है। साथ में मालाधार प्रान्त के तीन अन्य सन्देशकाव्यों का भी इस पर प्रभाव पड़ा है। इन तीनों सन्देशकाव्यों में एक सन्देश काव्य तो मलयालम भाषा का उन्मुनीली-सन्देश है। अरविष्ट दो सन्देश हैं—प्रथम तो लक्ष्मीदास का शुक्लसन्देश, द्वितीय उद्दण्ड कवि का कौञ्जलसन्देश। मयूर सन्देश तथा उपर्युक्त अन्य तीन सन्देशकाव्यों में गन्तव्य स्थान तथा मार्ग वर्णन में यत्र तत्र पर्याप्त सादृश्य पाया जाता है।

मेघ-सन्देश की तरह इस काव्य में भी पूर्वभाग और उत्तरभाग इन दो भागों में कथा-वस्तु बँटी हुई है। पूर्व भाग में १०० और उत्तरभाग में १० श्लोक हैं। समग्र काव्य मन्दप्रान्ता छन्द में ही लिखा हुआ है। बसल प्रथम श्लोक मालिनी छन्द में है और इसमें गणेशजी की पदना की गई है। इसके अतिरिक्त भारम्भ के कुछ अन्य पद्यों में काव्य की भूमिका भी पाई जाती है। सन्देशकाव्य की यह शैली मलयालम भाषा के उन्मुनीली सन्देश से इस काव्य में गृहीत की गई है।

मेघ सन्देश में यक्ष और उसकी प्रेयसी के विरह का कारण तथा वे परिस्थितियाँ जिनमें कि सन्देश भेजा गया है, नितान्त स्वाभाविक हैं। लेकिन इस काव्य में विरह की अवधि केवल एक मास है, अतः विरहव्यथा के किसी प्रचल कारण के होने से परिस्थितियाँ कुछ कृत्रिम सी हैं।

जिस प्रकार मेघसन्देश में अलकापुरी का बड़ा उदात्त और शृंगाररस पूर्ण वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इस काव्य में भी नायिका की नगरी सितगल्लीर (अन्नकर) का बड़ा भव्य चित्र प्रस्तुत किया गया है—

यस्या ह्यायातरनिरवकाशेन्दुमानुप्रचारे  
ध्वारामेषु प्रचुरगतिगच्छन्द्रसूर्याश्मपु जा ।  
यालार्कभैरधरमणिभिर्गालयामेक्षणाना  
मावेद्यन्ते निगलितकलनेन्दुमिश्रैश्च यक्षैः ।

यस्या मान्य गतिहसितयोरेव मालिन्यमुद्रा  
केशेष्वेव स्फुरति कुटिलस्य च कार्श्यप्रसंग ।  
मध्येष्वेव स्तनकलशयोरेव सघर्षयोमो  
नेत्रेष्वेव श्रुतिपथसमुत्लघिता मज्जुवाचाम् ॥२॥१॥

अन्नकर नगरी में स्फटिक खण्डों से सर्वत्र ही प्रकाश फैला रहता है। सूर्य और चन्द्रमा तो केवल कमल और कमलिनी के विकासमा के लिए उदित होते हैं—

शुद्धच्छायास्फटिकशकलध्रेणिशोशुष्यमानै—  
रस्त नीते तिमिरनिकरे भासुरैर्भूयिभागे ।  
यस्या प्राय सरसिजउनीकैरयोदोद्धोधमावे  
जागर्ति स्म चुमणिशशशृङ्गदीधितिना प्रयास ॥२॥६॥

आगे चलकर नायक विरहिणी नायिका का उदाही भावपूर्ण वर्णन करता है। यह मयूर से कहता है—

स्वैर निर्णय सुवदना मेघप्रणडाक्षराण्डे  
विद्युद्वरलीमिव निपतिता मूलत वपमानाम् ॥२॥३॥

अपनी प्रेयसी का वर्णन प्रारम्भ करते हुए नायक कहता है—

सौन्दर्येन्दोद्दयशिखरी सौकुमार्यप्रपञ्च—  
स्पेका मूलप्रवृत्तिरदधि कान्तिकरलोलिनीनाम् ।  
सिद्धधान्तार्थस्थितिरयिचला चित्तजन्मागमाना  
। वशाब्दस्य तरलनयन जीवितं मामकीनम् ॥२॥३॥

मेघ सन्देश में यद्य भी अपनी प्रेयसी को 'जीरित मे द्वितीयम्' बताता है ।  
आगे चल कर फिर राजकुमार अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में कहता है—

धेर्णीभागे विदसतितरा वैमर्षं वारिवाह—  
धेर्णीभासा वदनसुपमा सोदरी शारदेन्दो ।  
धारणी वीणामधुरिमधुरामातुरीकर्तुमीष्टे  
नारणीयासो नयनयुगलीविभ्रमा पन्मलाद्या ॥२॥३॥

शरयायेते करसरसिजे पल्लयाडम्बराश्राम्  
करवाणाद्रेरसरसिजभर कल्पभात्र क्षिणोति  
कोदण्डज्या कुसुमधनुष कोमला रोमरेगा  
रोदं धत्ते कुलपदस्य कुचिता मध्यगङ्गी ॥२॥३॥

अपनी इस अद्वितीय सुन्दरी और सुकुमार प्रेयसी के जय विरहदुःख का  
राजकुमार को ध्यान आता है, तब यह कहता है—

सा मृद्वङ्गी जलदसमये सम्प्रति प्राग्भरीयै—  
दुग्धोदकं दुर्गितनिजैर्दुर्गितप्राणनाथा ।  
जाता नून मनसिजशिखिज्जालजालानलीढा  
मध्येऽरण्य दधुतभुजा दह्यमाना मृगीय ॥२॥४॥

विरहाग्नि में तबपती हुई नायिका के लिए चारों तरफ से घन की अग्नि में  
जलती हुई हिरनी की बड़ी ही उपयुक्त उपमा प्रदान की गई है । विरहिणी प्रेयसी  
की कुछ अवस्थाओं का उल्लेख करते हुए राजा धीरज कहता है कि समय है—

अभ्यर्णस्थानपि भसितयत्युदभटो देहशब्द-  
स्तन्तन्यरन् सलिलनिधय सन्ततैरधुपूरै ।  
श्यासा वासावसधवलभीदीपनिर्वाणदत्तम्  
द्राघिष्ठय दधति दलितेन्दीवरान्तर्दलाद्या ॥२॥५॥

विरहिणी नायिका के वर्णन में कवि ने २५ श्लोक लिखे हैं । भाषों की कोमलता  
तथा विरह की तीव्रता की दृष्टि से यह पद्य बड़े ही अनूठे हैं । वहाँ २ तो विरह  
का घटा करण चित्र अंकित किया है । विरहावस्थाओं का वर्णन करते हुए अन्त में  
नायक कहता है—

आस्ते शेख भ्रमति भजते मूकता बहवद्  
त रोदित्युदितकण्ठं धैर्यमालम्बते च ।  
मूर्च्छा प्राप्नोत्यपि च लभते चेतनामित्यशतो  
पपतुः संधा अपि विरहान्यगनाचेष्टितानि ॥२॥६॥

अपनी प्रेयसी की विभिन्न विहायस्थायों की सभायना करने के बाद राजकुमार मयूर को प्रेयसी के लिए सुनाया जाने वाला अपना सन्देश बताता है। सन्देश में सर्व प्रथम उसने अपनी विरहावस्थाओं का वर्णन किया है, बाद में प्रेयसी को शीघ्र मिलन का आग्रहार्थन दिया है और अन्त में कुछ अभिज्ञान घटनाएँ मयूर की सत्यता प्रमाणित करने के लिए उल्लिखित की हैं। राजकुमार ने अपने विरह का भी बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया है। अपनी दशा का वर्णन करते हुए वह कहता है—

नि श्वासैर्मे दहनलहरीमुदिगरदिभ समन्ता  
नि सर्पटिभ परिसरज्जुपो र्दार्धिका दीर्घनेत्रे ।  
शोशुष्यन्ते नयनगलिते सन्ततैरम्बुपूरै  
चित्र चित्र पुनरपि दशा प्राक्तनीं प्राप्नुवन्ति ॥२॥७७॥

कवि ने प्रेयसी के विरह में विह्वल नायक की सन्ताप और अश्रुपात अवस्थाओं का कैसा आश्चर्य पूर्ण चित्र यहाँ प्रस्तुत किया है।

विरही नायक प्रेयसी के विरह में उसके अंगों की तत्तत् प्राकृतिक रम्य वस्तुओं में शोभा देखकर किन्हीं तरह अपना जीवन बिताता है—

अम्भोदाम्भोरुहशशिसुधा शैल शैवालरङ्गा  
द्योमध्रीमत्पुलिनरुद्रीकाण्डगलप्रशलै ।  
स्पृग्गात्रध्रीप्रदणमुभगमागुर्कैश्चित्तरम्यै-  
स्तैस्तेर्मायै कथमपि कुरगाक्षि कालं क्षिपामि ॥

काले काले मेघों में प्रेयसी के केशों की शोभा, कमलों में नेत्रों की शोभा, चन्द्रमा में मुख की शोभा, सुधा में अधरमाधुर्य, शैलों में कुचसौन्दर्य, शैवालरङ्गों में रोमाञ्जली की शोभा, आकाश में मध्यदेशकी तनिमा, पुलिनप्रदेशों में तितम्ब भाग की गरिमा, कदली-खण्डों में प्रेयसी की जघाओं का सौन्दर्य तथा बालप्रवालों में प्रेयसी के चरणों की लालिमा देख-देख कर विरही राजकुमार का अपना समय काटना स्थानाधिक ही है। कवि ने इस पद्य में बड़ी सुन्दर वस्तुओं का समघाट प्रस्तुत किया है। कालिदास का यक्ष भी प्रकृति के विभिन्न सुन्दर रूपों में अपनी प्रेयसी के सादृश्य के पाने की चेष्टा करता है। (४० मेघसन्देश का—श्यामास्वर्गं चकितहरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातम्—इत्यादि पद्य ॥२॥४२॥)

अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद राजकुमार अपनी प्रेयसी को शोक न करने तथा धैर्य रखने का परामर्श देता है—

त्यट्टिचक्षुषादिति समुदितामस्मदीयामवस्था  
विष्ठापाशु प्रशमय शुच शान्दाम्भोजनेत्रे ।

मुग्धे सस्थापय च सुनरामात्मनात्मानमाश्रय  
स्वैर याजन्मदभिगमन जातमिश्रासयोगा ॥२॥८६॥

मेघ सन्देश की तरह इस काव्य में भी सन्देश ग्राहक तथा सन्देश की सत्यता प्रमाणित करने के लिए कुछ अभिज्ञान घटनाएँ वर्णित की गई हैं। सर्व प्रथम राजकुमार कहता है—

काते तस्मिन् स्मरसि ननु यत् सार्धमालीजनैः  
स्वैर सायं कुसुमविचये प्रस्तुते पुष्पपाट्याम् ।  
आश्लेषोत्के मयि सविधने मीतमीतेर हा हा  
शाब्धे भृ गैरहमिति सरोमाचमालिगथा माम् ॥२॥८७॥

इसके बाद एक दूसरी घटना भी फिर वर्णित की गई है—

त्यद्वयश्चालोकनरसभृश स्थिन्नगात्र मुद्रुर्मा  
पश्यन्ती तत्र गुरुसविधगा शकमानाऽन्यसगम्  
आसी कोपात् कलुषनयना तावदेवात्मयाख्यो  
हन्त्यात्मान परमिति सखीबोधिताया प्रसादम् ॥२॥८८॥

लेकिन यह दोनों अभिज्ञान घटनाएँ कुछ उच्चकोटि की नहीं हैं तथा नीरस और परम्पराभुक्त सी हैं। कालिदास ने भी कोई बड़ी भावपूर्ण घटना अभिज्ञान स्वरूप वर्णित नहीं की है। लेकिन इस काव्य में एक तृतीय अभिज्ञान घटना भी वर्णित की गई है—

मुक्त्वा साय प्रहसितमुखी पद्मिनी पद्मपदोऽसौ  
भोक्तु भूय कुयलयवनी पश्य याति प्रदोषे ।  
इत्थ सायसमयमिदं वर्णयन्त प्रिये मा  
निर्यदुषाणैर्निभृतमभिन कोपकृक्षैः कटाक्षैः ॥२॥८९॥

भावोत्कर्ष की दृष्टि से यह अभिज्ञान घटना बड़ी ही उच्च कोटि की है। प्रिय के मन में दो प्रेमिकाओं के उपभोग की उत्सुकता देख कर ही प्रेयसी के वृत्ति होने का इस पद्य में उल्लेख किया गया है। इस काव्य की नायिका मेघ-सन्देश की नायिका से भी कहीं अधिक मानिनी है, क्योंकि यह प्रिय के मन में किसी अपर नायिका के प्रति उत्सुकता की भावना से ही क्षुब्ध हो जाती है। धाम्तर में उद्भूत कवि ने यहाँ पर कालिदास का भी अतिक्रमण कर दिया है। इस प्रकार ये उच्च अभिज्ञान वाक्य अन्य सन्देशकाव्यों में प्रायः कम ही मिलते हैं।

सन्देश के अन्त में मेघ की तरह मयूर को भी आशीर्वाद दिया गया है—

मा भूत्वान्नात्रिरह्यटना किं च जमान्तरूपि ॥२॥६२॥

इस प्रकार मार्गदर्शन, अन्नकर नगरी तथा नायिका के गृह इत्यादि का वर्णन विरहिणी नायिका तथा त्रिहर्ष नायक के त्रिरह्यर्णन और सदेश कथन में मेघसन्देश का ही इस काव्य में अनुसरण किया गया है। विचार-वारतम्य, वस्तुवर्णन, छन्द तथा शिल्पप्रधान की दृष्टि से यह काव्य मेघ सदेश का एक सफल अनुकरण है। माधुर्य और प्रसाद गुण होने पर भी काव्य में लम्बे और फिलफट समास स्थान पर पाए ही जाते हैं—

- १ अत्रिरतमदधाराधोरणीपारणोदुयम्  
मदमधुकरमालाकूजितोदुघोविताशम् ॥१॥१॥
- २ स्नर्गारामद् मनजलतासूनसौरभ्यलोम  
आप्यन्पुष्पन्धय कलकलचानवाचालिताशे ( सौधे ) ॥१॥३॥
- ३ स्थूल स्थूल प्रचुर फल समार मग्नोत्तमाग—  
स्वगतैरक्षितिजनिकराबद्धसाम्प्रान्धकारा ।  
पृथ्वीकान्तातिलकरचनास्फीतिमान वधाना  
प्रीति ददयुस्तन नयनयोरिगुदोभूविभागा ॥१॥४७॥

इस प्रकार के समस्त पद एक विरहकाव्य में कुछ कम ही सुन्दर लगते हैं।

समस्त पद बहुत होने पर भी इस सन्देश काव्य को कवि ने 'हृष्यन्मरलीमधुर मधुनिष्पन्दि सन्देशकाव्यम् ( १. २ )' कहा है। कवि का यह कथन बेबल आत्म प्रशयामात्र नहीं है। कर्णमधुर अनुभास और यमक रचन तर्ज काव्य में बिखरे पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित अनंतरण देखने योग्य हैं—

- १ सन्देश तं नयविरहिणं साम्प्रत मे प्रतीत  
सदेश त नय नयनिधे यत्र सा पद्मलादी ॥१॥२१॥
- २ आनीहि त्व अनितजनतानन्द आवावियुक्तम् ॥१॥६॥
- ३ कोऽलं वक्षतु कविरनुपमामृद्धिमित्यर्थशुस  
कोलयेति ध्रुवमविकलो यत्र जायति शब्द. ॥१॥४२॥
- ४ हु जे हु जे हु सुमितलंते यत्र पूजाच्यलेन ॥२॥=॥

उपर्युक्त समीक्षा से यह तो स्पष्ट ही है कि फालिदास का अनुकरण करने पर भी कवि ने अपनी उत्प्रेष्ट मौलिक प्रतिभा का ध्यान-स्थान परकाव्य में परिचय दिया

है। कवि की गैरी प्रभावपूर्ण है और भाषा भी कवित्वमय तथा विचारों से समृद्ध है। भारतवर्ष में वास्को डि गामा के आने से एक शतक पूर्व अर्थात् ई० चतुर्दश शतक के अन्त में केरल प्रदेश के राजनैतिक भूगोल पर भी यह काय बड़ा प्रकाश डालता है। अतः इतिहासकारों के लिए यह सन्देशकाव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है। दक्षिण भारत के संस्कृत सन्देशकाव्यों में इस काव्य का साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टि से प्रमुख स्थान है।

### वामनभट्ट पाण का हंसदूत ( वि० पचदश शतक )

वामन-भट्ट राजा वेमभूपाल का राजकवि<sup>१</sup> था। वेमभूपाल के अमरशतक पर भट्ट गारदीपिका टीका<sup>२</sup>, सप्तशतीसार<sup>३</sup> और साहित्यशास्त्र पर साहित्यचिन्ता मणि<sup>४</sup> यह ग्रन्थ लिखे हुए पाए जाते हैं। यह राजा स० १४०३ ई० के लगभग

१ दे० वेमभूपालचरितम् (श्रीगगम्) पृ० २, श्लोक ७८

कविरभिनवराण काव्यमत्यद्भुतार्थ भुवनमहितभूमा नायको वेमभूप ।

त्रिभुवनमहनीयव्यातिमानेय योग प्रकटयति न केषा पडिनाना प्रहपम् ॥७॥

चूडामणिर्नृपाणा दुर्मतिपरिपन्थिशिखरिदम्भोलि ।

सर्वस्य-चक्रवर्ती पेट्टदकोमट्टिवेमभूपतिर्जयति ॥८॥

वेमभूपाल के परिवार के विशेष विवरण के लिए वेमभूपाल चरित ( वीरना रायण-चरित ) पढ़िए ।

२ दे० शेषगिरि शास्त्री की रिपोर्ट, भाग २, पृ० १६३ १६४, मद्रास ओरियंटल प्रेस० प्रस० एस० लाइब्रेरी ।

३ संस्कृत दस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, मद्रास, २२, ८७०८

४ प्रायः कोरका संस्कृत की दस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, स० ८०



कुमारगिरि के बाद क्रोएडविदु के राज सिंहासन पर बैठा था। इसने विभिन्न अस-  
सों पर ब्राह्मणों के लिए अनेक ग्राम उपहार में दिए।<sup>१</sup>

रामन भट्ट ने शब्दचन्द्रिका नामक अपने कोषग्रन्थ में स्वामी विद्यारण्य और  
सारंगम जैसे सत्कृतियों के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है।<sup>२</sup> विद्यानगर  
अथवा विजयनगर राज्य के संस्थापक स्वामी विद्यारण्य अथवा माधवाचार्य ई०  
चतुर्दश शतक के अन्त और पचदशशतक के प्रारम्भ में हुए।<sup>३</sup> अतः यह स्पष्ट ही  
है कि राजा वेमभूपाल का राजकवि और स्वामी विद्यारण्य का शिष्य यह रामनभट्ट  
बाण ई० पचदशशतक के पूर्वार्ध में रहा होगा तथा स्वामी विद्यारण्य का यह एक  
अत्यन्त शिष्य होगा। अपने शब्दरत्नाकर के प्रारम्भ में—

वरदाग्नित्वित पौत्र पुत्र कोमटियज्जन ।

जागति वामनो बाणो यत्सज्जशिक्षामणि ॥

और अन्त में 'इति यत्सकुलरामन भट्ट विरचिते शब्दरत्नाकरे' ऐसा रामनभट्ट  
ने लिखा है।<sup>४</sup> इससे पता चलता है कि यह यत्स शत्रु के वरदाग्नित्वित का पौत्र  
तथा कोमटियज्जन् का पुत्र था। अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में राजा हगिहर  
के समृद्ध शासन काल ( स० १३८४-१४२६ ई० ) में यह विजयनगर राज्य में रहा।  
यहां इसने शृंगारभूषण<sup>५</sup> नामक एक भाण लिखा जो कि विरूपाक्ष के उत्सव पर

- १ स० १४१९ ई० में बृहसिंह नामक किसी ब्राह्मण के लिए मल्लवर नामक कोई  
ग्राम इस राजा ने दिया। एपेग्रैफिया इटिका, भाग ४, सं० ४६, श्लोक २६  
देखिए ( प्लेट २, दूसरी तरफ )।

भी शाके गुण रामविश्वगणिते कार्तिकपदेऽध्वे वरे  
प्रादात् काटयवेमय हनयनितामल्लारिकानामत ।  
ग्राम मल्लवर बृहसिंह विदुषे काण्डद्विजायदरा-  
दाचन्द्रार्कमुदर्कलालसमति सम्बर्धमोगाएकम् ॥

- २ विद्यारण्यगुरुन् सारंगमोमाचलित सत्कधीन् ।  
गमस्त्वस्याथ बाणेन म्रियते शब्दचन्द्रिका ॥  
श्वर्गे सारस्वतपुरी भोगमूमिस्तु सैरिक् ।  
गीर्णानगरी धीर-साधारण पुरीति च ॥

- ३ डा० जे० पी० चौधरी द्वारा प्रकाशित काल-माधव-लक्ष्मी, पृ० ३५-३८ देखिए ।  
"सोरसेज आफ विजयनगर हिस्ट्री" पृ० ४७-५१ भी देखना चाहिए ।  
४ दे० तजोर बेटालाग आफ एम० एस० भाग ६, सं० ५०५६ ।  
५ काल्यमाना नि यम्यई से तथा मद्रास से प्रकाशित ।

खेल' गया था। इस भाण में विलासशेखर की विलासमय चेष्टाओं के वर्णन प्रसंग में कवि ने मधुर छन्दों में सुन्दर कल्पना के साथ तत्कालीन सामाजिक जीवन का चित्र अंकित किया है। इससे पता चलता है कि कवि को तत्कालीन सामाजिक जीवन का निरुद्ध परिचय प्राप्त था। लगभग तीस वर्ष की आयु होने पर कोई हिन्दु के शासक राजा पेद मोमटि घेमभूपाल (स० १४०३-१४२० ई०) की राजसभा में यह चला आया। वामन भट्ट बड़ा ही अद्वितीय विद्वान् था और इसकी कविता भी वही उच्च कोटि की मानी जाती थी। सदुभाषावत्लभ और कविसार्वभौम इसकी उपाधियाँ थीं। गद्यकाव्य के क्षेत्र में कादम्बरी के रचयिता वाण भट्ट का यह अनुकरण करना चाहता था। वाणभट्ट भी उत्सगोत्र का था। इसलिए वामनभट्ट गद्य काव्य के क्षेत्र में स्याति प्राप्त करना अपना पैतृक अधिकार समझता था। वह अपने को वाण का अवतार मानता था और अपने लिए अभिनयभट्ट गण कहा करता था। वाण ने अपने सरस्वत् हर्ष वर्धन के जीवन पर हर्षचरित लिखा। इसी रचना के अनुकरण पर वामनभट्ट ने अपने सरस्वत् राजा घेमभूपाल अथवा धीरनारायण के जीवन पर घेमभूपालचरित या धीरनारायणचरित लिखा। वाण के बाद कोई भी कवि सुन्दर गद्यकाव्य न लिख सका, इस अपयश को दूर करने के लिए ही वामनभट्ट ने घेमभूपालचरित लिखा<sup>१</sup>। वाण का अनुकरण करने में वामनभट्ट को सफलता भी पर्याप्त प्राप्त हुई है।

## वामनभट्ट की रचनाएँ

### (१) काव्य-ग्रन्थ

- (अ) नलाभ्युदय — इस काव्य की कथास्तु स्थल स्पष्ट है। दुर्भाग्यवश कोई भी पूर्ण हस्तलिखित प्रति इसकी उपलब्ध नहीं है। श्री टी० गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् सस्कृत सीरीज में प्रकाशित पुस्तक (स० ३) भी अपूर्ण है और नयम सर्ग के श्लोक स० ३ के बाद काव्य समाप्त हो जाता है।
- (ब) रघुनाथ-चरित — यह काव्य ३० सर्गों में पूर्ण होना है और अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति तजोर हस्तलिखित पुस्तक संग्रह (जिउद ६, स० ३७२१) में है और दूसरी अद्वयार पुस्तकालय (२, २७) में है।

१ वाणीविलास प्रेस, धर्मगम् से प्रकाशित घेमभूपालचरित की भूमिका, पृष्ठ सं० ६ देखिये—

वाणादन्ये कथय वाणा खलु सगसगद्यसरणीषु ।  
इति जगति कूटमयशी वादनवाणोऽपमार्ष्टि पत्सपुल ॥

हसद्वत —कालिदास के मेघसदेश के अनुकरण पर लिखा गया यह एक सदेशकाव्य है तथा मेघसदेश की ही कथावस्तु इसकी कथावस्तु है।

- (द) धाणसुर विजय —ओरियन्टल लाइब्रेरी मद्रास की श्रियर्थीय हस्तलिखित-पुस्तकसूची, ६, स० ७१८१। यह पुस्तक पूर्ण है और ग्रन्थाक्षरों में लिखी हुई है।

## (२) नाटक-ग्रन्थ

- (अ) पारंगतीपरिणय-कुमारसम्भन की ही कथा के आधार पर यह नाटक लिखा गया है। इसमें पाच अंक हैं। लेखक ने इस नाटक में अपने सधन्ध में लिखा है—

अस्ति कविसार्वभौमो धन्सान्ययज्ञलधिकौस्तुभो बाण।

मृत्यति यद्रसनाया वेधोमुखरग लासिका बाणी ॥

- (घ) कनकसेवा — इस नाटक में चार अकों में व्यासधर्मन् के साथ कनकसेवा के विवाह का वर्णन किया गया है। कनक-सेवा और व्यासधर्मन् दोनों विद्या धर थे लेकिन किसी ऋषि के शाप से मनुष्य रूप में पृथ्वी पर उत्पन्न हुए थे। यह नाटक अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। हस्तलिखित पुस्तक के लिये निरर्थीय सूची मद्रास भाग ६, स० ७१०० ( कनकरेखाकरकण ) तथा कुप्पुत्थामी की रिपोर्ट ( १६१६ ), पृ० ४१-४२ देखिये।

- (स) शृ गारभूषण भाण — यह एक भाण ग्रन्थ है और साहित्य शास्त्रियों द्वारा निर्दिष्ट भाण ग्रन्थ के सारे लक्षण इसमें पाये जाते हैं। बिलासशेखर नामक एक धूर्त व्यक्ति इस भाण का नायक है। यह रचना एक अंक में ही समाप्त हो जाती है। नायक एक ऐसे व्यक्ति से वार्तालाप करता है जिसकी कि केवल यह ही देवता और सुनता है। इस नाटक में कोई अन्य पात्र नहीं है। शृ गार और वीर रस का उचित प्रयोग किया गया है तथा वस्तु भी कारपनिक ही है।

## (३) गद्यग्रन्थ—जीवन चरित

- (अ) वेमभूपाल चरित — पुस्तक के अन्त में 'सर्वाङ्कपेण यत्तमान साक्षरालक्ष्मी समुच्चारितजयशब्द निम्न विध्वम्भरा-पाल मौलिमालामकरन्दसुरभितचरणार सिन्दो-जपति विश्रयाधिकरिमथो वेमभूपाल' इस कथन से यह बात नि सदिग्ध हो जाती है कि यह रचना वेमभूपाल के जीवन-काल में ही पूर्ण हो गई थी जीवन-चरित की विशिष्टताओं के साथ २ इस रचना में बहुत से ऐतिहासिक तथ्य भी पाये जाते हैं। साहित्यिक महत्त्व के साथ साथ इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है। थीरगम् से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।

## [४] कोपग्रन्थ

- (व) शब्द-चन्द्रिका — यह रचना अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। हस्तलिखित प्रति के लिए त्रिअर्धश सूची मद्रास, भाग ३, सख्या ३३२०, मैसूर केटालाग, ६०६ और तजोर केटालाग भाग ६ स० १०१० देखिए।
- (घ) शब्दरत्नाकर — यह ग्रन्थ भी अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। हस्तलिखित पुस्तक के लिए अद्वयार लाइब्रेरी केटालाग भाग २, १६ तथा तजोर केटालाग भाग ६, स० १०१८-६१ देखिए।

## हंसदूत की कथा

हंसदूत की कथा भेजसदेश जैसी ही है। अलकापुरी से निर्गमित एक यक्ष अपनी प्रियतमा के पास अपना विरह सदेश भेजना है। केवल इतना भेद है कि हंसदूत में यक्ष रामगिरि पर्वत पर न रह कर सुदूर दक्षिण भारत में कैलाश पर्वत पर रहता है और मेघ के स्थान पर हंस को अपना दूत बनाता है।

पूर्वभाग में मार्ग वर्णन है। उत्तरभाग में अलका नगरी, यक्षगृह तथा नायिका के वर्णन के बाद सदेश बतलाया गया है। मार्गवर्णन में मलयपर्वत से हिमालय स्थित अलकापुरी तक के मार्ग में आने वाले स्थानों का वर्णन किया गया है। मलयपर्वत से चलकर ताम्रपर्णी नदी के किनारे किनारे उबते हुए मद्रुरा नगरी और वहा से फिर कावेरी नदी की शोभा देखते हुए रगदेश, चोलदेश और पुण्डरीक नगर आने के लिए हंस से कहा गया है। उसके बाद क्रमशः काजीवरम्, पुण्य-कोटि, करिवरगिरि और कणा नदी आने का हंस को परामर्श दिया गया है। तदनन्तर अजनाद्रि, पाल दक्षिणपर्वत और जनकमुगरी नदी के बाद आन्ध्र देश और वहा से फिर वृष्णवेणी, तुगमद्रा तथा गोदावरी नदी होत हुए विन्ध्य पर्वत पहुँचने का हंस को आदेश दिया गया है। इसके बाद नर्मदा, यमुना और गंगा नदियों को पार कर काशी नगरी तथा इक्ष्वाकु राजाओं की राजधानी अयोध्या नगरी, तदनन्तर सरयू और गण्डक नदी होत हुए कुरुक्षेत्र पहुँचने का हंस को परामर्श दिया गया है। वहा से फिर हिमालय, मौचरध और कैलाश पर्वत को पार कर हंस ने अलकापुरी पहुँच आने का उल्लेख किया गया है।

अलका के वर्णन के बाद यक्ष के गृह का वर्णन किया गया है। तदनन्तर विरहिणी नायिका की विभिन्न विरहावस्थाओं की समाधना के बाद यक्ष ने हंस को अपनी प्रेयसी के प्रति दिया जाने वाला सदेश बताया है। अन्त में हंस का प्रति शुभ कामना के साथ वाक्य समाप्त हो जाता है।

## साहित्यिक समीक्ष

यह सदेश काव्य मध्यकालीन भारत का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है। विभिन्न नगरों, नदियों, पर्वतों और जानियों का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है। दक्षिणभारत और उत्तर भारत में यातायात के मार्ग पर भी यह काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। कालिदास के मेघ सदेश के अनुकरण पर तो यह काव्य लिखा ही गया है। काव्य में दो भाग हैं। प्रथम भाग में मार्गवर्णन तथा द्वितीय में अलकावर्णन, यक्षगुहवर्णन, नायिका का विरहवर्णन और सन्देश कथन हैं।

पूरे भाग में ६१ तथा उत्तर भाग में ६० श्लोक हैं। मन्दोदरी का हृन्द का ही सम्पूर्ण काव्य में प्रयोग हुआ है। माधुर्य और प्रसाद गुण युक्त भाषा में ही काव्य की रचना की गई है। कवि की सरसता का तो इसी से पता चल जाता है कि वह हंस से साथ में अपनी पत्नी के भी ले जाने का अनुरोध करता है। यकी हुई हसिनी को विधाम पहुँचाने का हंस के लिए कवि ने बड़ा ही सरस परामर्श दिया है—

फलास्पेक्षन्धी गगनपदरीलधनम्लेगनस्ते  
फलान्तामेना मृदुलमुमन केसरोदारपक्षाम् ।  
छायालाना धनत्रिटपिना सीमि विधम्य पश्चा -  
दस्यै दद्या सरसिजप्रधु स्वेन चञ्चूपुटेन ॥१॥६॥

ताम्रपर्णी नदी के द्वारा हंस के आतिथ्य की कवि ने बड़ी सुन्दर कल्पना की है—

अम्बुदुर्गीर्णवमणिगणै कल्पिताघोषहारा  
सा तिष्ठेत स्तिमितगमना तुभ्यमभ्यागताय ।  
आतिथ्याय भ्रमरत्रिकुतै किं च याचिष्यते त्या  
त्वं चास्वादात्कमलमधुनस्तत्र ता प्रीणयेथा ॥१॥१४॥

गंगा वर्णन में भी कवि ने बड़ी सुन्दर उपमाएँ और रूपक प्रयुक्त किये हैं—

सा लोकाना दुरिततमस शारदी चन्द्रलेखा  
भूषा मुक्तामणिरिचिता या च मुक्त्यगताया ।  
पु श्रीभूता मुनिपरिपदा या पुन पुण्यधारा  
दूरादेना त्रिदशतटिनी मकिनध्रो भजेथा ॥१॥२६॥

आघत्ते या हिमयति गिरानुत्तगसगलक्ष्मीं  
मौले शम्भोरिलसति च या मालतीमालिषेथ ॥१॥४४॥

कालिदास के भावों की छाया लेकर स्वतंत्र रूप से कवि ने यही सरस रूप  
नाए प्रस्तुत की हैं। यद्यपि अपनी पत्नी कन्दर्प लेखा का वर्णन करते हुए कहता है—

विद्युद्गोरी तिमिलदशना वृत्तगम्भीरनाभि  
ताम्यन्मध्या तरलशफरीताडिताम्भोरुहादी ।  
तु गापीनमनभरनता दुर्गदश्रोणिभारा  
सौन्दर्याशा सरणिरिव या तत्र दृश्येत तन्वी ॥२॥६४॥

हातव्या सा मम सहचरी जीवितस्य द्विरुक्ति ॥२॥६५॥

इन पक्तियों को पढ़ते ही मेघसंदेश की—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वगिम्भाधरोष्ठी  
मध्वे क्षामा चकितदृशिणीप्रोक्षणा निम्ननाभि ।  
श्रोणीभारादलसगमना स्तोक्नम्रा स्नानाभ्याम् ॥२॥२१॥

ता जानीथा परिमितकथा जीवित मे द्वितीयम् ॥२॥२२॥

यह पक्तियाँ परवम ध्यान में आ जाती हैं।

अपने गृह की पहिचान के लिए विभिन्न लक्षणों को बताकर अन्त में अपनी  
अनुपस्थिति के कारण गृह की कान्तिहीनता का विचार कर यह कहता है—

प्राय कान्तिर्न भवति पर प्राक्तनी मद्वियोगात्  
किं शोभाये भवति गगन विप्रकृष्टेन्दुविगमम् ॥२॥२३॥

मेघसंदेश में कालिदास ने भी ऐसे ही विचारों को व्यक्त किया है।

इस के यह गृह में जाने के लिए प्रस्तुत होत समय चलने वाली वायु को लेकर  
कवि ने यही सुन्दर और सरस उल्लेख की है—

अन्तर्यातु चलितमनसो मत्प्रिया सद्विद्वत्तो-  
राह्यादत्ते यपुषि त्रिलयन्ध्वगेदापनोदी ।  
यास्पत्यग्रे परिमलयतीर्मन्दमाधूय यज्ञी-  
वर्ति पृच्छन्निव मधुवृता गीतिभिर्मतिरिवा ॥२॥२४॥

पामनमृद का विरहवर्णन परम्पराभूत नहीं है। इसमें तीव्रता और गम्भीरता  
दोनों पाई जाती हैं। प्रियविरह में कन्दर्पलेखा की दीन अवस्था का जो चित्र  
उपस्थित किया गया है, यह करुण और शोक दोनों से ही पूर्ण है। निम्न पद्यों में  
कवि ने विरहिणी कन्दर्पलेखा का क्या ही करुण चित्र अंकित किया है—

चैलक्षय उपुपि दधती स्वेदिनी घेषमाना  
विस्त्रस्तागी विक्लकरणा विभ्रती रोमहर्षम् ।  
जातस्तम्भा मुकुलनयना मोहमासादयन्ती  
सा दष्टेव स्मरविषमुच्चा याति ता तामवस्थाम् ॥२॥६६॥

विन्यन्दन्ती करकिसलये ज्वेदिनीं गण्डपालीं  
मलाम्भोमि स्तनकलशयोगादधानाऽभिषेकम् ।  
अन्तश्चिन्तास्तिमितनयना सा मुहुर्जं म्रितेन  
शशसोष्णेन स्मरहुतभुजो वेदना धेदयेद्वा ॥२॥१००॥

लेखामिन्दोरिव दिनमुखे क्षीनतामश्नुयाना  
भयोपपन्नामिष नगलता ह्यायया मुह्यमानाम् ।  
मेषाणये सरितमिष ता विभ्रतीमेरुवर्णा  
दृष्ट्वा यावद् भगसि करुणाशोकपोरेकपात्रम् ॥२॥१०१॥

नायिका की विरहावस्थामें को देखकर इस ही क्या, कोई भी सहृदय गिन  
हुंसी हुए नहीं रह सकता ।

जिस प्रकार कालिदास ने मेघदूत में यक्षसन्देश की भूमिका प्रस्तुत की है,  
इसी प्रकार यामनभट्ट बाण भी अपने इसदूत में यक्ष सन्देश की प्रस्तावना करता  
है । इसदूत में भी यक्ष सर्गप्रथम यही कहता है—

गाढाश्लेषे तत्र किल पुरा य स्तनोत्तुग्भूषा  
मन्योन्यागव्यतिकरत्रिधेगन्तराव त्रिवेद ।  
सोऽयं दिष्ट्या सुतनु सुतरा दूरवर्ती पतिस्तै  
जातोत्कण्ठो धदति भगतीमित्थमस्मभ्युत्प्रेन ॥२॥१०४॥

यस्तु भेद होते हुए भी यह श्लोक मेघदूत के 'श्रद्धाश्लेषे यदपि किल ते त्वत्स  
स्त्रीना पुरस्तात्' ॥२॥१००॥ इत्यादि पद्य से प्रभावित हो कर ही लिखा गया है ।

कालिदास का यक्ष वक्ता से कम अपनी प्रेयसी का चित्र तो बना लेता है  
लेकिन इस काव्य में यक्ष चित्र में तो क्या, अपने चित्त में भी प्रेयसी की रूप रेखा  
स्थिर नहीं पर पाता है—

चित्रे कर्तुं व्यग्रसितमतिस्तुलिकाया घृताया  
भग्नारम्भो नयनसलिलैश्चेतसि त्या लिपामि ।  
तत्रापि द्वातरतिरधिकोरुनायिनी मे विदन्त्री  
यत् सत्य नो वरतनु विधि संगमे साभ्यसृण ॥२॥११२॥

यह अपनी प्रेयसी से कहता है—

रूपे लब्धा कथमपि समाश्लिष्य सानन्दराग्य  
त्यामुत्कण्ठाग्लपितवपुष यादामन्त्रयामि ।  
मिथ्या नेद पुनरिति मया तत्क्षणं चिन्त्यमाने  
तावद्द्वय विघटयति नो तूर्णमुत्पाद्य बोधम् ॥२॥१७॥

यह के इस कथन में उसके धिरह की तीव्रता तथा असहाय्यता का कवि ने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है ।

सदेश के अन्त में इस काव्य में भी यह अपनी प्रेयसी को शीघ्र मिलन का आश्वासन देता है—

सेयं दीर्घा विरहरजनी हन्त किञ्चिद्विभाता  
शापस्यान्तं सपदि भरिता वासरे कैश्चिदेव ।  
मासावेतौ गमय तदनु माय भोदयामहे तान्  
भोगानिष्टान् रजनिषु पर प्रौढचन्द्रातपासु ॥३॥१८॥

सदेश पङ्क्ताने की प्रार्थना के बाद यह ने इस को आशीर्वाद भी दिया है—

दृष्ट्या काय मम पुनरिदं कीर्तिमेता च लब्ध्वा  
प्रत्यावृत्त पुनरपि तथा (दृष्ट्या) सगत संगत सन् ।  
घेतोरम्ये विहर सलिले स्वेच्छया निम्नगाना-  
मदयापन्ना विदग्ग युज्योरस्तु सयोगलक्ष्मी ॥३॥१९॥

यद्यपि यह सदेश काव्य मेघसदेश की कथा को ही लेकर लिखा गया है तथा भाष, छन्द और शैली में भी कवि ने मेघसदेश का ही अनुकरण किया है, फिर भी इस काव्य को मेघसदेश का अन्धानुकरण नहीं कहा जा सकता । स्थान स्थान पर भावपूर्ण सुक्तियाँ और उदात्त वर्णन इस काव्य में दृष्टि गोचर होते हैं —

- १ को या लोके विरहजिता वेदना सोढुमीष्टे ॥१॥३॥
- २ पात्रे न्यस्तं मयति हि परं यस्तु लोकाभिनन्दम् ॥१॥४॥
- ३ मित्रस्वार्थे विहितमनसा कालदानि कथं स्यात् ॥१॥३॥
- ४ किम्पाकानां फलमुपनतं येन वा ग्रादनीयम् ॥१॥५॥

कवि ने अलका नगरी का भी बड़ा उदात्त चित्रण किया है । साथ में गृहारस की छटा भी दर्शनीय है । अलका की मित्रियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है —



यत्र स्त्रीणा वपुषि तनुता वरुता भ्रूलताया  
 लोल्य दृष्ट्यो कुचकलशयोरेर काठिन्यवार्ता ।  
 मान्य लीलागतिषु सदसत्सशयो मध्यमागे  
 भग केशेध्वररुचके रागयोगप्रसग ॥२॥६७॥

मेघसंदेश की तरह इस काव्य में भी अभिसारिकाओं का उर्णन पाया जाता है—

निर्धौताया मिमिश्र कुटीचन्द्रम कौमुदीमि -  
 यस्या राजो रमणसर्ति यातुकामा रमगा ।  
 सान्द्रस्निग्धै सपदि कबरीकलिपतैरन्धकारै-  
 रन्या श्यामामभिसरणतो नूनमापादयन्ति ॥२॥६४॥

रमणियों के केशसौन्दर्य का तो कवि ने यहाँ पर बड़ा ही अपूर्ण चमत्कार दिखाया है ।

यक्ष के उद्यान का भी उहा उत्कृष्ट वर्णन किया गया है—

सीमा तत्तद्विदपिजनुवा सपदामार्तधीना  
 योग्या भूमिर्मलयमहतामालय शीतलिम्बाम् ।  
 गुञ्जाशाला मधुपसुदृशा केलिसौध पिकानाम्  
 उद्यान मे तत्र नयनोदसयं तत्र कुर्वात् ॥२॥८३॥

काव्य में यत्र तत्र अनुभास की छटा भी दिखलाई पड़ती है—

- (१) पुण्यै प्राप्य पुरमुपसरे पुण्डरीकामिधानम् ॥१॥८४॥  
 (२) माघन्माघन्मधुपमिधुना दीर्घिना दर्शनीया ॥२॥८६॥ इत्यादि

काव्य के परिशीलन से यह तो स्पष्ट ही है कि यह सन्देश काव्य प्रथम कोटि की एक साहित्यिक रचना है । कवि ने अनुकरण करते हुए भी अपनी उदात्त वर्णनशक्ति, भावप्रणना और सुकुमार कल्पना का परिचय दिया है । भाषा पर तो कवि का पूर्ण अधिकार है ही । इन सब तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए घामन भट्ट याण को एक सफल सन्देशकाव्यकार मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये ।

## विष्णुदास का मनोदूत ( विक्रम षोडश शतक का पुर्यार्ध )

सन्देशकाव्यों की परम्परा में इस मनोदूत काव्य का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि परम्पराप्राप्त शृंगार रस को छोड़कर शान्त रस ही इस काव्य में अपनाया गया है। इस काव्य का लेखक वगाल के श्री चैतन्य महाप्रभु का मानुल था जैसा कि काव्य के प्रारम्भ में 'श्री चैतन्यदेव मानुल विष्णुदास विरचितम् मनोदूतम्' इस कथन से प्रतीत होता है। भारवि के किरातार्जुनीय के अनुकरण पर कृष्णार्जुनीय नामक महाकाव्य का लिखने वाला गोपीनाथ कविकण्ठाभरण इस मनोदूत के लेखक का जामाता था। पूर्व वगाल के धानुका प्रदेश में रहने वाले वैदिक कृष्णाग्रंथ गोत्र के कविकण्ठाभरण के वंशजों तथा रचितर गोत्र के विष्णुदास के वंशजों में भी ऐसी प्रसिद्धि है कि विष्णुदास ने अपना यह काव्य अपने जामाता के लिए भेंट किया था। श्री चैतन्य महाप्रभु (जन्म शक सवत् १४०७ = ई० सन् १४८६, मृत्यु शक सवत् १४४८ = ई० स० १५२७) से सम्बन्ध होने तथा उसके पुत्र और पुत्री दोनों की तरफ से उपलब्ध वंशपरम्परा सबन्धी शिखर के आधार पर इस कवि को ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी में कहीं पर रचा जा सकता है। काव्य के अनुशीलन से यद्यपि कवि के पूर्ण वैष्णव होने का तो शिष्यास नहीं होता है, फिर भी वैष्णव सम्प्रदाय की ओर कवि की दृढ़ प्रवृत्ति का परिचय अवश्य मिलता है। कवि के वंश में वैष्णव सम्प्रदाय से कुछ अनुराग रखने की परम्परा, ऐसा प्रतीत होता है, आगे भी कई पीढ़ियों तक चलती रही और उसी के वंशज किसी रामाराम कवि ने मय्य भी मनोदूत नामक काव्य लिखा। इस काव्य का भी विषय विष्णुदास के मनोदूत जैसा ही है तथा विष्णुदास का उल्लेख भी इस काव्य में पाया जाता है। वगीय सम्युक्त साहित्य परिषत् कलकत्ता में इस मनोदूत की केवल एक छंदित प्रति सुरक्षित है। संभव है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र तथा धार्मिक प्रवृत्तियों को परिचित कराने में उनकी माता, मामा और नाना इत्यादि का अवश्य कुछ प्रभाव रहा हो। विष्णुदास के इस मनोदूत की केवल तीन हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हुई हैं —

- (१) सम्युक्त साहित्य परिषत् कलकत्ता की छंदित प्रति जिसमें केवल २६ श्लोक हैं।
- (२) इतिहास आफिस लाइब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित एक अन्य प्रति जिसका बिलापग्रेरी के विस्तृत मूल्यांकन ( सं० ७, पृ १४७० ) में वर्णन किया गया है।
- (३) टाका विश्वविद्यालय में उपलब्ध एक अन्य प्रति।

इन तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर सम्युक्त साहित्य परिषत् कलकत्ता ने यह काव्य श्री चिन्ता हरण चरणगी, एम० ए० द्वारा संपादित करा कर मूलमात्र प्रकाशित किया है।

ढाका विश्वविद्यालय से उपलब्ध हस्तलिखित पुस्तक में अन्त में निम्नलिखित दो श्लोक और भी पाए जाते हैं —

मृत्पट्टकानेन्दुमिमे शकादे प्रणम्य भक्त्या हरिपादपदुम् ।  
मासे तपस्वे तपनात्मजाहेऽलंकीद कान्यमरागहेतु ॥

श्रीकृष्णचरणे भक्तिर्मतिस्तत्प्रतिपादके ।  
प्रणये यस्य दिवारात्र स मनुष्य इति श्रम ॥

प्रथम श्लोक में कवि कहता है कि फाल्गुन मास शक स० १३८६ में उसने यह काव्य लिखा । तदनुसार ( शक स १३८६ = वि० स० १४२१ ) वि० स० १४२१ इस काव्य का रचना काल निश्चित होता है ।

## काव्य की कथा

जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है इस काव्य में मन को दूत बनाया गया है । कवि विष्णुदास स्वयं एक भक्त के रूप में पाठकों के समक्ष इस काव्य में आते हैं । सत्साग में लोगों के पापों और दुखों की चिन्ता करते करते विफल होकर वे भगवान् कृष्ण की शरण में जाने का विचार करते हैं । मनुष्य स्वयं कर्मबन्धनों से बंधे होने के कारण भगवान् की भक्ति नहीं कर पाता है, अतः वे अपने मन को दूत बनाकर भगवान् के चरण कमलों में अपना नम्र निवेदन सन्देश के रूप में भेजने की चेष्टा करते हैं । इस प्रसंग में मन के लिये कुछ मार्ग भी बताया गया है तथा साध में शम, दम, क्षमा और दया इत्यादि गुणों को ले जाने और मात्सर्य, दुर्भ, मद, मान, रिमोह, लोभ, क्रोध और स्मय इत्यादि को छोड़ कर जाने का परामर्श दिया गया है ।

यद्यपि भगवान् सर्वव्यापक है और सत्साग से विरक्त भक्त पुर्यों के सामने तो सर्वदा ही उपस्थित रहता है, फिर भी उसकी सासारिक लीलाओं से सम्यक् स्थानों गोकुल, यमुना और वृन्दावन में मन को आने का परामर्श दिया गया है, क्योंकि इन स्थानों में भगवान् के साक्षात् दर्शन किए जा सकते हैं । सर्वप्रथम गोकुल और यदा की कृष्ण-लीलाओं का वर्णन किया गया है । तदनन्तर यमुना और वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा वर्णित की गई है । इस प्रसंग में इन स्थानों से सम्बद्ध कृष्ण के जीवन चरित्र का भी वर्णन किया गया है ।

वृन्दावन में ही कहीं पर कृष्ण को गकर उचित अवसर देवकर अपना सदृश निवेदन करने की कवि ने मन से प्रार्थना की है ।

कवि ने असंख्य चिन्ताओं, दुखों और सासारिक प्रलोभनों में फंसे हुए जीवों की दीन हीन अवस्था तथा भगवान् की महिमा का अपने सन्देश में संकेत किया

है। अपनी न्यूनताओं के होते हुए भी भगवान् की भक्ति में अवशिष्ट जीवन बिताने तथा भगवान् का ही गुणगान करते रहने की सन्देश में कवि के द्वारा वही उत्कट इच्छा व्यक्त की गई है।

अन्त में भगवान् के चरणों में निरन्तर वास करते रहने की मन के प्रति शुभ कामना प्रकट करते हुए कवि ने सन्देश समाप्त कर दिया है।

### काव्य समीक्षा

काव्य की कथा से पाठ्यगण यह तो अनुमान कर ही सकते हैं कि यह दूत-काव्य शान्तरसप्रधान है। मेघदूत से प्रेरणा लेकर भी कवि ने मेघदूत का ग्रिप, भाव और छन्द इत्यादि की दृष्टि से शिष्टकुल अनुसृग्ग नहीं किया है। काव्य में पसन्ततिलसा छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कुल १०१ श्लोक ही काव्य में पाए जाते हैं। पूर्व भाग और उत्तर भाग जैसा काव्य में कोई क्यावन्तु का विभाजन भी नहीं पाया जाता है। इस सन्देश काव्य की प्रमुख विशेषता यह ही है कि सन्देशकाव्यों के शृंगारसप्रधान वातावरण में शान्तरस का सञ्चार किया गया है। मन के लिए कोई मार्ग बनाना अनावश्यक ही है और भगवान् तो फिर सर्व व्यापक हैं, अतः इस काव्य में मार्ग वर्णन का न होना कोई दोष की बात नहीं है। फिर भी कवि ने भगवान् दृष्टि के ऐहिक जीवन से सम्यक् स्थानों का बड़ा सरस और भक्तिपूर्ण वर्णन किया है। गोकुल का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

गोगोपगोपतनुगोपसुतासुतेन  
रम्येण सम्यगनुरञ्जितसविभागम् ।  
हमाप्रहृष्टलीमुकुटमण्डलरत्नमास्ते  
जानीहि गोकुलमनाकुलसर्वलोकम् ॥२७॥  
यत्र स्थयं वसति चन्द्रकिरीटमौलि-  
रत्नाशुरञ्जितपदाम्बरद्वो मुरारि ॥२८॥

पृथ्वी के मुकुट में रत्न के समान ओ स्थान हो तथा भगवान् स्थयं अर्थात् निवास करते हों, वहा की जनता के सुखी और शान्त होने की बात ही क्या ?

गोकुल की प्रातः कालीन बदल पड़ल का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन कवि ने निम्न पद्य में प्रस्तुत किया है—

प्रातर्मुकुन्दफलवणुनिनादभिन्ने—  
(?) गांकाशवारितदण्डपर्यञ्जनानाम् ।  
धेनुं वनं नयत रे प्रजतेति घाल—  
कोलाहलैश्च यधिरा भुतिरेव यत्र ॥३०॥

इसी तरह गोकुल के सायकालीन दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

दोहारय क्वचन कुत्र च वत्सरोध,  
 कीडानिमग्नसुतलालसमानसाया ।  
 माण्डस्य दाहयिष्ये गृहिणा गृहियय  
 कुत्रापि वृद्धकुलमृदुसम नियुक्तम् ॥३२॥

गोकुल में गोचारण करते हुए कृष्ण का कैसा सुन्दर चित्र कवि ने निम्न पद्यों में अंकित किया है—

कोऽप्येष नृयति दृशो नटयन् जनाना  
 मुदगायतीन्द्रियगण जडयन् कुतोऽपि ।  
 आलोकनैरुपरमान् विहगान् मृगाश्च  
 कुर्वन् गवा क्वचन चारयते कुलानि ॥४१॥

जिस तरह दृष्ट को गायों से बड़ा प्रेम था, उसी तरह नाप भी कृष्ण को बड़े प्रेम से देखती थीं। इसी बात को कवि कितनी सुन्दर रीति से कहता है—

गावश्च वत्सनिवहैस्तमुदीक्ष्य दूरत-  
 दुम्पूरकर्णपुटक तरसाभिपत्य ।  
 आलोकयन्त्यनवलोकितवत् सदापि  
 जिघ्रन्त्यपुर्नधृदस्तीदृवदलिहन्ति ॥४२॥

गायों की इन चेष्टाओं में कितनी हयामायिकता भरी हुई है।

आगे चलकर कवि कहता है कि बड़े २ मुनि अपने मन तथा वाणी से जिसका ध्यान नहीं कर पाते हैं, वह भगवान् गोकुल में गोपालों के घर आगम में धूल में लोटता फिरता है। श्रुति रूपा स्त्रिया जिसका ध्यान ही करती रहती हैं, गोपाग नाप उसको अपने नेत्रों से चारों तरफ घूमता हुआ देखती हैं—

दूरेऽपि याद्वमनसयोर्मुनिपुङ्गवानाम्  
 भूरेणुचुम्बिततनु पशुपाद्वनेऽपि ।  
 यो मृग्यते श्रुतिवधृभिरर्पाक्षणेन  
 गोपाङ्गनाभिरभित परिपीयते स ॥४४॥

गोकुल तथा यदा कभी कृष्ण लीलाओं का वर्णन करने के बाद कवि ने यमुना का भी वर्णन किया है। अन्य नदियों से यमुना की विशिष्टता बतलाते हुए कवि कहता है—

यासा तरन्ति पुरुषा पयसापि सद्य  
ध्रुवमण्डलैकमहितं कति तां न नद्य ।  
अन्या पुनर्मिहिरजा यदिहोरुकीर्ते  
स्नानायगाहनविनोदनपानचर्या ॥४७॥

यमुना के बाद कवि ने वृन्दावन का वर्णन किया है । वृन्दावन का वर्णन प्रारम्भ करते हुए ही कवि कहता है—

यागाङ्गनम्यलमिज्ज्वलकृष्णवर्त्म  
शास्त्राश्रितैर्द्विजगणैर्महित सुघोषै ।  
तस्यैव नानिशयदूरतरं प्रजस्य  
वृन्दावन रसमय वनमस्ति चेत् ॥४८॥

यज्ञभूमि में जिस तरह अग्नि प्रदीप्त रहती है और अपनी अपनी शाखाओं का उच्च स्वर से ब्राह्मण पाठ करते हैं उसी तरह वृन्दावन में भी उज्ज्वल और कृष्ण वर्ण के मार्ग ( धर्म ) हैं तथा वृक्षों की शाखाओं पर विभिन्न द्विज ( पक्षी ) कलरव करते रहते हैं । कवि ने श्लेष अलंकार की सहायता से यज्ञभूमि और वृन्दावन में किनना सुन्दर सादृश्य उपस्थित कर दिया है ।

वृन्दावन में यही वज्राते हुए कृष्ण का वन सजीव और सुन्दर चित्र कवि ने निम्न पद्यों में प्रस्तुत किया है—

तस्मिन् क्षण शिथिलिष्वण्डहृतायतंसम्  
वंशं मनागभरसीमनि सन्धानम् ।  
गोरोचना पटुपटीरहताङ्गरागम्  
तं सानुरागमनिश हृदयावधेहि ॥४९॥

कृष्ण जब मुरली बजाते हैं तब पहाड़ों से सरिताएँ मानों फूट पड़ती हैं और हिरनों व सुन से तो आधी चवाई हुई घास ही निकल पड़ती है—

तन्मिग्नयं मुरलिका मुखरीकरोति  
तत्राश्रमनस्तत इत् सरिदायिरासीत् ।  
अर्धावलीढगलितै प्रथमेमृगाणा  
क्षीणीतलच्च वयतैरपिधीयन्ते स्म ॥५०॥

हिरन गाने का तो प्रेमी होता ही है । फिर कृष्णजी जैसे मधुर यही बजाने वाले की वंशी ध्वनि सुनकर हिरनों का मुग्ध हो जाना और मुख से घास को गिरा देना कोई बड़ी बात नहीं है ।

कृष्ण और राधा की परस्पर प्रेमलीलाओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

लीलाधमाम्नुत्तयचुम्बित कृष्ण गौर-  
 तन्वोस्तयोरभिमुख हरिगोपवध्वो ।  
 अन्योऽन्यदेहरचिरप्रतिस्मियोगात्  
 गोरो हरि किमपि गोपवध्वश्च कृष्णा ॥६६॥

अनन्य प्रेम का इससे बढ़कर उत्कृष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है ।

वृन्दावन का वर्णन करते हुए अन्त में कवि कहता है—

चेत कलिन्द दुहितु पुलिन नदीनम्  
 वृन्दावन रसमय समथो वसन्त ।  
 गोपाङ्गनाम्तरुणिमामृतपूरपूर्णा  
 कृष्ण कलाकुलगृहं किमहं व्रजीमि ॥६७॥

इतने सुन्दर दृश्य का कोई कवि पूरा पूरा वर्णन कर ही कैसे सकता है ?

वृन्दावन की गोपियों के विभिन्न चरितों को कवि वही भक्ति के साथ देखता है । यह कहता है—

तासां च मानस मुकुन्दपदारविन्द-  
 द्रव्हादितैद्वितमनस्तनुजीयितानाम् ।  
 प्रेमोत्तराणि चरितानि हरिप्रियाणां  
 गेयानि वरलवकुरगविलोचनानाम् ॥७०॥

जिन्होंने भगवान् के चरण कमलों में अपनी कामनाएँ, मन, तन, तथा जीवन नगा दिया हो, उन गोपियों के प्रेम पूर्ण चरित्र का कोन भक्त गायन नहीं करेगा ।

गोकुल, यमुना और वृन्दावन के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा यहाँ की कृष्ण लीलाओं का वर्णन करने के बाद कवि ने भगवान् कृष्ण के चरण कमलों में निवेदनार्थ रूपना सन्देश मन को सुनाया है । सन्देश में भक्त की दीनता, हीनता और असहायता का साफ हो उठी है । सन्देश के प्रारम्भ में ही कवि कहता है—

आपादमस्तकमय दुरितार्णवान्त-  
 मङ्गशिखर निगदितो हृत्प्रासनाभि ।  
 दत्तामय चरणतामरस तवेद-  
 मुदिश्य कोऽपि मधुसूदन राट्टीति ॥७४॥

दीनं यथोचितनिजाचरणे विहीनम्  
 हीनं पर परमपापमहाधुरीणम्

एकं त्वदीयचरणं शरणं स्मरन्तम्  
सीदन्तमन्तकमपादनुकम्पयेश ॥७६॥

आगे चलकर कवि कहता है—

ध्यात न तंऽटिघ्नकमल कमलाङ्गुलम्  
गीतं न वा निखिलमङ्गलधाम नाम ।  
माङ्गलित जगदनर्घ्यतम चरित्रम्  
किन्तत् प्रभो विहितमाचंदिताय यत् स्यात् ॥७७॥

धात दिन किमिति याम्रपतीयमग्रे  
साध्याजगाम विरतिं दिनमेति भूष ।  
एव स्वयङ्चनपटुमधुकैटभारे  
न तथा स्मरामि न भजामि न चाश्रयामि ॥७८॥

इन पद्यों में कवि का भक्त हृदय यद्ये वेग से उमड़ रहा है। एक सच्चे भक्त की तरह कवि कहता है कि उसे महेन्द्रपदवी नहीं चाहिए। यह तो भगवान् के चरणों की सेवा का ही इच्छुक है। उसकी तो यही इच्छा है कि यह भगवान् के कोटि कोटि नामों को अपता रहे—

ईदामहे न हि महेन्द्रपदं मुकुन्द  
स्वीकुर्महे चरणदैन्यमुपागतं वा ।  
आशा पुनस्तव पदाम्बा कृताधियामाम्  
आशास्महे चिरमिव न कृशा यथा स्यात् ॥७९॥

कोटि शिरासि मम सन्तु शिरोऽनुकोटि-  
र्बकप्राणि यक्षममितो जसनाग्र्य कोटि ।  
पाणीपतेऽनुरसनं परितस्तयैव  
नामानि कोटिगुणकोटियुग स्फुरन्तु ॥८०॥

अन्त में कवि अपनी प्रार्थना बताते हुए कहता है—

सूक्तिर्न कर्णपथमेति विमेष सिद्धि-  
वाङ्मण्यपुण्यनिलयार्थनमेतन्मैव ।  
तथा ध्यायत कथयन् कानासन्निवेशे  
शेषं प्रयान्तु मम जन्मशताहतानि ॥८१॥

अभायमानमपि जन्म तथावसान  
यत्र कथनिन्मम सुखोत्तम आपट्टीनु ।



किन्तु श्रुति स्पृष्टतु काऽपि सुधाप्रवाह  
सन्दोह निर्भर-पटुर्मधदीयवार्ता ॥२२॥

इस प्रार्थना में सासारिक सुखों से नि स्पृष्टता तथा भगवत्प्रेम में ही कवि की अनुरक्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है।

अपनी असहाय्यवस्था का निवेदन करते हुए कवि कहता है—

दष्टोऽस्मि कालभुजगेन किमप्यपार-  
ससारपाप्मरक्ष्यानलदह्यमान ।  
निर्गमि तामरसनाम कदा तवाद्भिम्  
लीला कथामृत महातदिनी प्रयाद्दे ॥२३॥

इस प्रकार कवि के सन्दर्श में भक्त की दीनता, हीनता, असहाय्यवस्था और भगवान् से मिलने की आतुरता छिपी हुई है।

मन को अपना सन्दर्श सुनाने के बाद अन्त में उसकी शक्ति तथा गुणों की प्रशंसा की गई है और उसके प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त करने के साथ साथ काव्य भी समाप्त हो जाता है—

बन्धुस्त्वमेव हृदयार्थपथ प्रपन्न  
सत्य रिपुर्निपथगामितया त्वमेव ।  
तत् कातरे मयि विघेहि कृपा यदेत  
दुक्त कुदृष्य मुखेरिपदे रमस्य ॥२०१॥

काव्य के आद्योपान्त अनुशीलन से यह स्पष्ट ही हो जाता है कि यह सर्वत्र काव्य शान्तरसप्रधान एक भक्ति काव्य है। गोकुल, यमुना और वृन्दावन का वर्णन बड़ा सरस तथा भक्तिपूर्ण है। भावों की सरलता तथा सरसता के साथ साथ भाषा भी बड़ी मधुर और ललित है। शान्त रस के अनुकूल काव्य में माधुर्य गुण और वैदर्भी रीति का ही अनुसरण किया गया है। कवि का शब्द विन्यास नैपुण्य भी दर्शनीय है। वृन्दावन-वर्णन में अनुप्रासपूर्ण मधुर कोमलपदों का फैला सुन्दर विन्यास कवि ने किया है—

हिन्ताल-ताल-यट-शाल-रसाल आल-  
ताली-तमाल-कृतमाल-पियाल-कोल ।  
जम्बीर-धीरतरु-विहङ्ग-कदम्ब-अम्बू-  
सर्जूर-निम्ब-हरिचन्दन-सिन्धुपार ॥२६॥

इस तरह दल, कुसुम और फल प्रधान वृत्तों का उल्लेख कर कवि कहता है कि वृन्दावन इन वृत्तों से हमेशा भग रहा है—

एतैर्दलानि कुसुमानि फलानि सम्यक्  
 श्री जानि पाणि कमल ग्रह-मानितानि ।  
 रज्ज्पाणि सर्वसमयेऽपि सम दधानै  
 नीरन्ध्रमावृतमनावृतपुण्यपुञ्जै ॥१८॥

इस तरह आदि से अन्त तक सभी श्लोक बड़े सरस और मधुर हैं और कवि के हृदय का बड़ा शुद्ध और उदात्त चित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित कर हैं। वसन्ततिलका छन्द ने भी काव्य को बड़ा प्रवाहपूर्ण बना दिया है। इस छन्द से काव्य में भक्ति की मन्दाकिनी सी बहती जान पड़ती है। काव्य की कथा-वस्तु यों तो नितान्त काव्यनिरूपक ही है, लेकिन कवि ने इस काव्य में मनुष्यमात्र के लिए एक बड़ा महत्वपूर्ण सन्देश दिया है। और यह सन्देश यह है कि यदि कोई मनुष्य पापों, दुःखों तथा जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा, पाना, चाहता है, तो उसे अपना मन भगवान् की ओर लगाना चाहिए। मन में शम, दम, दया और क्षमा इत्यादि गुणों का विकास करना चाहिए तथा मात्सर्य, द्वेष, मद, मान, विमोह, लोभ, क्रोध और स्मय इत्यादि अशुभ गुणों को बिलकुल ही छोड़ देना चाहिए। इस तरह शुद्ध मन से जब मनुष्य भगवान् की भक्ति करेगा, तभी यह ससार रूपी दागानल से छुटकारा पा सकेगा। केवल भगवान् ही दीनों का सहायक है तथा पतितों का उद्धारक है। सन्देश काव्य के आरम्भ में कवि ने सतप्त मानवता के लिए यह शान्तिपूर्ण सन्देश इस काव्य में दिया है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि भाव, विषय, भाषा और छन्द की दृष्टि से काव्य सर्वथा सुन्दर है। कविता और भक्ति इन दोनों का इस काव्य में अपूर्व संगम हो रहा है। मध्यकाल के वैष्णव साहित्य में इस सन्देश काव्य को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। मन को दूत बनाकर कवि ने दूतों की सूच्य में एक और श्रीव्रगाभी तथा विश्व दूत की वृद्धि कर दी है। साहित्यिक तथा धार्मिक दोनों ही दृष्टि के पाठकों के लिए यह काव्य अत्यन्त उपादेय है।

## विष्णुघात का कोक-सन्देश ( त्रि० षोडश शतक )

यह काव्य त्रिवेन्द्रम् सस्कृत सौरीज से प्रकाशित हुआ है। काव्य के सम्पादक श्री रे० साम्बशिव शास्त्री हैं जिन्होंने कि सन्देश में कुछ भूमिका भी लिख दी है। काव्य का लेखक विष्णुघात नामक कोई कवि है—

आसीद् त्रिषो हरितिरित कोऽपि गम्भाजिहारे  
विष्णुघातो द्विजपरिवृद्धग्रहदत्तैर्मित्र ।  
तनैतस्मिन् सपदि रचित कोकसन्देशकार्ये  
पूरुस्तात् समग्रनि रसैश्चाप्यसौ पूर्वभागं ॥१॥१०॥

जैसा कि उपरिलिखित श्लोक से स्पष्ट है, विष्णुघात का ग्रहदत्त नामक कोई ग्रहण बड़ा घनिष्ठ मित्र था। यह ग्रहदत्त नामक ग्रहण श्री नारायण भट्टपाद का समकालीन था, यह तो सर्वसिद्धि ही है। अतः इस कवि का रचना काल भी ई० १६ वीं शताब्दी के आसपास ही होना चाहिये (देखिए काव्य की भूमिका)। इससे अतिरिक्त इस लेखक के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

### कथा सार

इस काव्य में एक राजकुमार ने श्रीविहारपुर से कामागम नामक नगर में अपनी प्रेयसी के पास कोक के द्वारा अपना प्रेमसन्देश भेजा है। कथा इस प्रकार है—

एक राजकुमार अपने नगर में अर्धा पत्नी के साथ सुखपूर्वक रहा करता था। एक दिन एक मान्त्रिक उसको उपहार स्वरूप एक पैसा पत्र ( तारीज ) दे गया जिससे कि सिंग से लगाने पर ही लगाने वाला अपन श्श से दूर पहुँच जाता था। कुतूहलश राजकुमार ने एक दिन उस पत्र को अपने सिर से लगा लिया। घस पया था, इतने ही में वह अपने प्रासाद से दूर किसी स्थान पर पहुँच गया। प्रेयसी के प्रियोग में वह व्याकुल हो था ही कि एक चक्रवाक पक्षी उसे दिवलिई पहा। चक्रवाक को गत ही वह उसे अपना और अपनी प्रेयसी का विरह वृत्तान्त सुनाने लगता है तथा अन्त में चक्रवाक ने प्रेयसी के पास अपना सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना करता है। इस प्रसंग में नायक के निवासस्थान श्री विहारपुर से प्रेयसी के निवासस्थान कामागम नगर तक के मार्ग का वर्णन किया गया है।

प्रातः काल होने पर निकटवर्ती मन्दिर में शिषु भगवान् के दर्शन करने के बाद श्री विहारपुर से चक्रवाक की यात्रा प्रारम्भ होती है। कुछ दूर पर स्थित वारणाण्डम्यली में गणेश मन्दिर में गणेशजी की पूजा करने के बाद आगे बढ़ने पर किन्नी पर्वत और उद्यान का उल्लेख किया गया है। इस उद्यान में स्थित मन्दिर में पार्थवी की स्तुति करने के बाद करीब आधा कोस आगे चलने पर एक विशाल आग्रवृक्ष तथा सुन्दर नामक सरोवर बतलाया गया है। मर्यादित हो जाने से कुछ

देर विधाम करने तथा निफटवर्ती शिवमंदिर में शिवजी की पूजा करने के बाद आगे चलने पर मन्चन्द्रा नामक राजधानी में चक्रवाक के पहुँचने का उल्लेख है। इस नगरी की सुरम्भ वापियों और उद्यानों की शाखा दबकर आगे बढ़ने पर क्रमशः शान्ताकार नामका तगर, वहा का कृष्णमन्दिर, तदनन्तर कुछ दूर पर ग्म्या नदी के मिलने का वर्णन दिया गया है। ग्म्या नदी से दक्षिण की ओर घन दलों को पार करत हुए तथा जाली तांगों से अपनी रक्षा करत हुए आगे बढ़ने पर लोकभद्र नामक शिवक्षेत्र में चक्रवाक के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। मन्ध्या होने से पहिल ही शिवजी के दर्शन कर लेते के बाद मन्दिर के किमी गोपुर में ही किसी तरह विरहपूर्ण गाथ ( क्योंकि गाथ में चक्रवाक का अपनी सहचरी से वियोग हो जाता है ) गिताकर प्रातःकाल हात ही चक्रवाक को आगे बढ़ने का परामर्श दिया गया है। मार्ग में मुनियों के आश्रमों को देखत हुए अयोध्या नगरी (?) तथा अन्य देशों को पार कर मार्ग में आए हुए किसी अदृश्यतृप्त की परिक्रमा करके आगे बढ़ने पर किसी जम्बूवृक्ष पर मध्याह्न में विधाम करने के बाद आगे बढ़ने का चक्रवाक को परामर्श दिया गया है। तदनन्तर पूर्णानन्द नामक भूतनाथ के क्षेत्र में भूतनाथ ( शिव ) की पूजास्तुति करने के बाद उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर चलने पर प्रेयसी के निवासस्थान कामाराम नामक नगर में चक्रवाक के पहुँचने का उल्लेख किया गया है।

इस तरह मार्ग वर्णन के बाद कामाराम नगरी का वर्णन किया गया है। वहा पर विष्णु भगवान् के मन्दिर में भगवान् की स्तुति करने के बाद पूर्व दिशा की ओर चलने पर एक बहुत बड़े बाजार में सँ होत हुए किसी घट वृक्ष पर पहुँचने तथा उसी पर रात्रि पिताने का चक्रवाक को परामर्श दिया गया है। सूर्योदय से पूर्व ही उत्तर दिशा की ओर चलने पर नायक ने आगे घर के मिलन का वर्णन किया है। दारो, उद्यान, तमैदवृक्ष, वेतकी-वाटिका, प्रियार तृक्ष, बीजादर (अनार) चम्पकवृक्ष, जाली (मैती), बीडाशेल, मोर के पटन की चित्रम की दासपाटि, छिरनी के बाधने का स्थान तथा कुटज वृक्ष जैसे सुन्दर दृश्यों के दर्शन करने के बाद पूर्व दिशा में नायक का घर बतलाया गया है। घर के पास ही स्थित एक आध्रपद्म पर बैठ कर दातावन मार्ग से फिर घर का सारा वृत्तान्त श्रवने के लिए चक्रवाक से कहा गया है।

घर के वृत्तान्त का वर्णन करत हुए नायक ने अपनी प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाएँ सन्नाहित की हैं। इस प्रसंग में नायिका के प्रत्येक अंग का पूर्ण सौन्दर्य तथा विरहजन्य परिवर्तन वर्णित किया गया है। बाद में नायिका की विभिन्न करुण चेष्टाएँ वर्णित की गई हैं। अन्त में किसी तरह नायिका द्वारा शुभसूचक चक्रवाक के दक्षिण जाने की संभावना करके चक्रवाक ने फिर अपना सन्तानुत्ताने की बातें कही हैं।

नायक का सन्देश सुनाने से पहिले चक्रवाक नायिका को उसके प्रिय का सारा वृत्तान्त सुनाता है। फिर नायक का सन्देश देता है। इस सन्देश में नायक की विरहावस्थाएँ, शीघ्र आने का आश्वासन तथा कुछ अभिमान भटनाएँ बतलाई गई हैं। अन्त में नायिका से अनुमति लेकर अपनी प्रेयसी के साथ इच्छानुसार देश देशान्तरों का भ्रमण करने की चक्रवाक के प्रति शुभकामना प्रकट की गई है।

वस, यही काव्य की कथा है।

## साहित्यिक समीक्षा

उपर्युक्त कथानक से यह तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य विप्रलम्भ शृंगार से पूर्ण एक सन्देश काव्य है। नायक का अपनी प्रेयसी से वियुक्त हो जाना इस काव्य में एक यन्त्र (कण्ठ, तारीज) की शक्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अन्य प्रमुख सन्देश काव्यों की अपेक्षा इस काव्य में यह एक नवीनता है। मेघदूत के अनुकरण पर ही यह काव्य लिखा गया है। काव्य दो भागों में बंटा हुआ है। पूर्वभाग में नायक का विरही के रूप में वर्णन, चक्रवाक से सन्देश प्रस्ताव और फिर मार्गदर्शन है। द्वितीय भाग में नायिका की नगरी, उसके गृह के आस पास के सुरम्य दृश्य, नायिका की विरहजन्य अवस्थाएँ और नायक का सन्देश है। पूर्वभाग में १०० और उत्तर भाग में १८६ श्लोक हैं। श्लोक सरपा की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत से लगभग तिगुना है। कवि ने मन्दाक्रान्ता छन्द का ही व्यवहार किया है। वर्णनों की अधिकता से काव्य का आकार बहुत बड़ा गया है। कवि ने प्रेयसी के निवास-स्थान कामाराम नामक नगरी के वर्णन में ही ५० श्लोक लिखे हैं। इसी तरह प्रेयसी के गृह तथा आसपास की वस्तुओं के वर्णन में छोटी-छोटी बातों पर भी कवि का ध्यान गया है। इसके अनिर्विक काव्य में विरहिणी नायिका के केशभार से लेकर पादयुग्म तक का वर्णन किया गया है। लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। चक्रवाक से साथ में अपनी सहचरी को ले जाने का परामर्श देने से कवि की भावुकता और भी स्पष्ट हो जाता है। मार्ग में पड़ने वाले स्थानों और मन्दिरों में प्रतिष्ठित दशताम्रों के चित्रण में कवि ने बड़ी सहृदयता से काम लिया है। मार्गवर्णन कोण भौगोलिक ही नहीं है। तत्तद् स्थान की रूपरेखा साहित्यिक और सरस ढंग से वर्णित की गई है। सचन्द्रा नामक राजधानी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

नेत्रोद्यान सुरत रचितं यत्र मृन्द च यूनाम्  
नेत्रमात्या हानलसदृशो रत्नभाभिर्गुह्यरश्च ।  
नो योद्धार परमसिचयोदुमासिता किंच योषा  
स्तत्प्रीयो नो मृदुलसितगु किन्तु केलीशुकोऽपि ॥१॥५८॥

१. सुरत + चितम्, सुरत + रचितम्। अनलस + दृशो। अनल + सदृशो।  
परम् + असिचयोदुमासिता। परम + सिचय + उदुमासिता।  
मृदुल + सित + गो-मृदुलसितगु। गो = वाणी, भूमि।

इस श्लोक में खण्डश्लेष की सहायता से कवि ने नगरी का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है।

आगे चलकर वहा की युयतियों का वर्णन भी सरल भाषा में कवि ने यही सुन्दर रीति से किया है—

मन्द यात्य' सततमधिकं श्रोणिदेशे महत्य  
काञ्चीमन्य वृथुवटितटे कुङ्कुम लिप्तयत्य ।  
शोभायत्य' प्रतिगलतल हारजालै सुदत्य'  
सन्मालत्यश्चिकुरनिचये भान्ति यस्या युयत्य ॥१॥५६॥

रम्या नामक नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उसके तट पर ब्राह्मणों का निवास है और ये ब्राह्मण बड़े आस्तिक तथा कर्मनिष्ठ हैं, अतः रम्या नदी गाँव का समान ही जानो—

चातुर्यैष पठिति सफलेऽप्यागमे यायजूक  
धर्मप्राप्तं बहुविधमल नित्यमर्चन्मुमुन्दम्  
दाते सरक्षिति सिमज्जने धारय सदृष्टियज्जम  
प्राप्त्यर्थं तत्तत्परितमपाक्रीरमास्ते हि यस्या ॥

भूदेयानां समयविहितस्नानपुण्याम्बुपूरा  
तत्सन्तानैरधिकरुचिरे र्व्याप्तप्रप्रवेशा ।  
पर्यन्तोघत्सफटिकसुपमासद्गता शुभ्ररूपा  
गङ्गादेश्या जपति धरणीमण्डले या नितातम् ॥१॥७३॥७४॥

शान्ताकारा नामक नगरी में कृष्णजी की स्तुति करने के बाद चामराय के आगे बढ़ने का प्रसंग में कवि कहता है कि यह नगरी अथर्व्य ही तुम्हें रोकना चाहती—

उद्यद्गमां मणिगुहसरत्त्वान्तिथादालताभि-  
र्दीव्यन्तीभि चणमिय पुरी रोदुधुवामेय सा स्यात् ॥१॥७१॥

वहा पर नगरी में यही सुन्दर रीति से कवि ने अतुरन्त नायिका का माथ आरोपित कर दिया है।

मेघदूत में अलकापुरी का जैसा वर्णन किया गया है, वैसे ही कामागम नगरी का भी इस काव्य में वहा उदात्त और शृंगारमय वर्णन किया गया है।  
• श्लोकों में कवि ने नगरी का ही वर्णन किया है। नगरी के राजमार्ग, राजा और प्रजा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

रथ्या यस्या गगनसदृशर्था सदालोककान्ता  
 पृथ्वीपाल सुरपतिसमश्चामरजिलष्टपाश्वर्य ।  
 सर्वे लोकास्त्रिदिषसमिताश्चारसन्तानरम्या  
 स्त्रीणा वक्त्र रघुपतिनिम ध्वस्ततारशगर्वम् ॥ २६ ॥

इस श्लोक में जिलष्ट विशेषणों से कवि ने नगरी का बड़ा ही समृद्धिशाली वर्णन किया है ।

नगरी में किसी भी ऋतु में लोग कष्ट नहीं उठाते हैं । सुख और शान्ति दशा पर व्याप्त है—

सर्वांशोदयसुमधुरा भूमिपालप्रताप-  
 व्याप्ता प्रोद्भासितचहुलजातिर्लसत्पद्मिनीका ।  
 निश्चक्षोर्णीतलगमहिमा चन्द्रकान्तालयोद्य-  
 क्क्षय्या यासौ लसति किल सर्वतुर्धर्माभिरामा ॥ २७ ॥

इस तरह विभिन्न भाव भगिमाओं के साथ नगरी की समृद्धि का वर्णन किया गया है । नगरी में स्थान स्थान पर स्फटिकमणि का पर्श लगा हुआ है और नृत्य करती हुई रमणियों के मध्य में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जब उस पर्श पर पड़ता है तो पेसा लगता है मानों चन्द्रमा वहाँ की रमणियों के चरणों में प्रणाम कर रहा हो—

यत्रत्याया स्फटिकधरणौ विमिश्रित शीतभानु  
 क्रीडन्तीनामिह मृगदशा निजितो वक्त्रधिर्यै ।  
 भूयोऽप्येतत्परिभजसमाश्रया नूनमासा  
 पादाभोजे प्रणमनविधिं गीतगर्वं करोति ॥ २८ ॥

नगरी के वर्णन के बाद प्रेयसी ने गृह तथा निकटस्थ सुरभ्य दशों का भी बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया गया है । बापी में निरन्तर उठती हुई लहरों का कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

नायाता सा कमलनयना स्नातुमद्यात्र किं वा  
 ज्ञान तस्या इति हि कलयन्ती तदालोकनाय ।

- १ सदा + आलोककान्ता, सत् + आलोककान्ता । अमरै आजिलष्ट पाश्वर्य यस्य स, अमराजिलष्टपाश्वर्य, आमरेण + आजिलष्ट पाश्वर्य यस्य म । ध्वस्त तारशम्य चन्द्रम्य बालिनो व । गर्व येन तत् ।

भूयोभूयस्तमुपगतैः स्थूलकरलोत्थलैः—  
 र्वा यान्तीन् स्फुरति दधितायाससौधप्रदेशम् ॥२॥७५॥

पालतु हिरनी का भी निम्न पद्य में यडा ही स्वामात्रिक वर्णन किया गया है—

म्याद्वी मृद्वीमधिकहरिता यत्र वेदीधरण्या  
 तृण्या तृणयत्यपि निदधती चापि गोमन्यचेष्टाम् ।  
 सेय क्रीडाहरिणतटणी यिन्मुतारण्यदेश—  
 स्थैरायासा निधमति सुख प्रेमपाशे प्रियाया ॥२॥७६॥

आगे चलकर नायक ने फिर अपनी प्रेयसी की शिष्टावस्था पर ध्यायुक्त दृग्न में वर्णन का है। यह कहता है कि शिष्टताप को शान्त करने के लिए कोमल पत्रों में उसकी शय्या ढकी होगी तथा पास में शीतल जल, चन्दन, कमलपत्र और ताल वृन्त इत्यादि रक्खे होंगे। फिर भी उसे शान्ति न मिलती होगी—

तत्पे तस्मिन्नधिकमलसाङ्गी शयाना लुडन्ती  
 पाण्डुच्छाया दृशतनुताता नेत्रदीयूरधारा ।  
 द्रष्टव्या सा मम सदचरी नीतबन्धो । तत्र स्यात्  
 तोयोमुता मृदुमिलतगगनपस्मिष्टरूपा ॥२॥७७॥

'तोयोमुता विसलता' स प्रिय शिरदित प्रेयसी की बितनी सुन्दर उपमा यहाँ दी गई है।

फिर मैं क्षीण तथा दृशकाय प्रेयसी का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि उसके हाथों में गुरगुराहट भी मानों इसीलिए गिर पड़े हैं कि वहाँ उनके पदिानों में उसे कष्ट न हो—

मामा पीडा भवतु नितरा क्षीणमर्षाङ्गनष्टे  
 अस्या हस्तमृद्वनवशतो नूनमिवाकलय्य ।  
 घटानालाद् विलुलितमृगालीलतान्त्रोभनीया  
 मन्द मन्द काकवलये प्रस्थितं मञ्जुशिखौ ॥ ११७८॥

कहि ने इस पद्य में यही सुन्दर हेतुप्रस्ता की है।

अपनी प्रेयसी की कुछ शिष्ट-चेष्टाएँ भी चक्रवाक के सामने समाधान रूप में रखत हुए नायक कहता है कि आपसल उसकी प्रेयसी यातायनमार्ग में कारो पाने पादलों को बरसने के लिए आकाश में उमरना हुआ गगनर अच्युत रूप कुल हो जानी होगी या पुनः व्याप पड़ी रहती होगी—



इत्थ ताभ्यत्सकलकरणस्वागका सास्मृतं सा  
नीलाम्बोदाम् नमसि निविडाम् वर्षणायावरूढाम् ।  
यातावाप्यै त्रिघटितकवाटेन यातायनेन  
॥ ६६ ॥ अक्ष क्षणमतिरया व्याकुला वा शयाना ॥२॥१५०॥

विरह दुःख से उसके नेत्र बन्द रहते होंगे, मुख झलान होगा, सारा शरीर उसका निश्चेष्ट हो गया होगा और अपनी परिचारिकाओं के द्वारा आगज दिए जाने पर भी वह होश में न आती होगी तथा वे सब यही शका के साथ उसकी ओर देखती होंगी—

विश्लेषार्तिप्रसरणयशाद् दुरमाभीलिताक्षी  
म्लायद्दक्षत्रा विरहितपरिस्पन्दनाशेषगात्रा ।  
आहूताऽपि प्रियपरिजनैरात्मघोघ न यान्ती  
जातातक यत कृतमिथोऽरीक्ष्यैरीक्षिता वा ॥२॥१५४॥

प्रेमसी की विरहछेष्टाओं के वर्णन करने के बाद उचित समय देखकर चक्रपाक से सन्देश सुनाने के लिए कहा गया है । सर्वप्रथम नायक की विरहदशा वर्णित की गई है । मयूरों की मृत्युलीला तथा खमेली के फूलों पर मड़राते हुए भौरों को देखकर नायक को प्रेमसी के खुले केशपाश तथा सुन्दर कटाक्षों की स्मृति आ जाती है और वह मूर्च्छित हो जाता है—

सोऽयं पश्यन् दिशि दिशि सर्तां बहिष्णा मृत्तलीला  
जातीजाते तरलमधुपश्रेणिका चाभिरामाम् ।  
धम्मिल ते वतिविगलित मञ्जुल या कटाक्षम्  
स्मार स्मार इदह यदुशोऽमूर्छनामभ्युपैति ॥२॥१६६॥

फिर कहा गया है कि नायक विद्युत्लेपा को भूल से अपनी प्रेमसी समझ लेता है और वार्तालाप करने लगता है, लेकिन फिर पता उसे (प्रेमसी को) न पाकर उसे रोना आ जाता है—

विद्युत्लेपा मुदुरपि समुद्गीह्य त्रिद्योतमानाम्  
सद्य खिद्यन्नपि सदचरीत्यालपन्नृत्यितोऽहम्  
त्यदुद्ध्या ता किमपि गदितुं सम्प्रवृत्तस्तदानौ  
तथादृष्ट्वा कमलनयने मूरिवाप्य धमपि ॥२॥१७३॥

वर्षाश्रु में संयोगावस्था में जो दृश्य नायक को प्रसन्न किया करते थे वही वियोगावस्था में उस को कष्ट पहुँचाते हैं—

तऽमी वेषात्पञ्जलधरापविद्युत्लताद्या  
विश्लेषे ते सदचरि । पर तदप्यत्यथ कष्टम् ॥२॥१७४॥

अन्त में नायक कहता है कि शिश्लेय रूपी अग्नि में मेरा शरीर जल रहा है और मैं केवल तेरे ध्यानरूपी अमृत की वषा से इस अग्नि को कुछ कम कर रहा हूँ—

लोलापाहि स्मरशरमिषादिन्धन योजयित्वा  
भूयो भूयो जलदपयनेनाशु सन्धुक्षितस्य ।  
शिश्लेयान्नेर्मम तनुमिमा दग्धुमत्युन्मुक्त्वा  
स्वक्त्वायानामृतविकिरणैः स्तोकतामातनोमि ॥२॥७६॥

अपनी विरहावस्था के बनाने के बाद नायक कहता है कि यह यद्यपि बड़ा दुःखी और विन्त है फिर भी धीरे धीरे पैदल आ रहा है और प्रेयसी को भी धीरे रखना चाहिए तथा अपनी सन्धियों के साथ विभिन्न लीलाओं में समय काटत रहना चाहिए । अन्त में उनका मिलन तो होगा ही—

एव तान्ता ययमिह तथाप्यद्य धैर्याश्लम्बा-  
दायास्याम सत्रिधमयि स मन्दपाद्प्रचारे ।  
तत् तायन्तं क्षपय समय त्यद्विनोदैकहेनो-  
रालीनृन्दैरविरतकृनैश्चापलीलाविशेषं ॥२॥७७॥

पुनर्मिलन होने पर नायक कहता है कि हम दोनों दुगने प्रेम के साथ अपने साथ में विरह क्लेश को भुलाकर विहार करेंगे—

प्राप्ते भूय प्रणयिनि मयि प्रेयसि स्वस्वमापं  
प्रीतायाया द्विगुणितरप्रमभाजो तदानीम् ।  
प्रीद्विध्याय सद्वरि । यथाकाममुत्तुह्यते  
सौधोत्सङ्गो विगतविरहकलशभाजो चिरण ॥२॥७८॥

संदेश के अन्त में प्रेयसी को अपने सहृदय होने का विश्वास दिलाने के लिए नायक १ कुछ अभिमान घटनाएँ भी वर्णन की हैं । एक घटना की याद दिलाते हुए नायक कहता है—

यास पूर्व अनु मणिमये नो निशान्त निशायाम्  
प्राप्ता स्वीया तनुमपि ममोषान्तमित्तो स्फुरन्तीम् ।  
दृष्ट्वा रोषाद् यलितवदनामूष्मदाम्येत्य तूर्प  
गाढाद्विलष्टा कथमपि मया बोधितार्थं यथार्थम् ॥२॥७९॥

इस श्लोक में नायिका के मुग्धा और मानिनी होने की कई गूढ़ व्यञ्जना की गई हैं । इस तरह कई अभिमान घटनाएँ बताकर अन्त में नायक कहता है—

आशायास्मानपि कुशलिनो यावदायाम तावत्  
प्राणान् प्राणेश्वरि जिगमिषून् कण्डनाले निरुन्धि ॥२॥१८३॥

फिर नायक चक्रपाक को अपनी शुभकामनाएँ भी देता है—

इष्टान्देशान् भुवनमहितान् प्राप्य तत्रैक्षकाणां  
मोद तन्वन् पिबेर विहगधेष्ठ निश्वाधिकथी ॥२॥१८४॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकगण अनुमान कर सकते हैं कि यह सन्देश काव्य विप्रलम्भशृंगारपूर्ण एक सरस सन्देशकाव्य है। काव्य की कथा काहपनिक ही है। मार्ग वर्णन में भी कवि ने कल्पना का सहारा लिया है। तत्तद् स्थानों का वर्णन शृंगार रस पूर्ण है। विभिन्न मंदिरों के देवी देवताओं की स्तुति भी साहित्यिक ढंग से की गई है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। झिलप और समस्त पद प्रायः नहीं ही है। काव्य में सर्वत्र प्रवाह पाया जाता है। चक्रपाक को दूत बनाने में भी कवि ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। चूंकि चक्रपाक हर रात्रि में अपनी प्रेयसी के पिरह दुःख का अनुभव करता है, इसलिए वह पिरहियों के कष्ट को अच्छी तरह समझ सकता है और एक दूसरे का सन्देश भी ठीक तरह पहुँचा सकता है। चक्रपाक भी पिरहियों नायिका को अपनी ओर से संघोधन करते हुए यही बात कहता है—

मां जानीथा कुशलिनि तव प्राणनाथेन तावत्  
सायं सायं विदितदयितानिप्रयोगमय्योऽयम्।  
ईदृन्दोत्ये समुचिततरो नूनमित्वाकलयय  
प्रोच्य स्थार्यान् प्रणयसरस प्रेपित चक्रपाकम् ॥२॥१८५॥

मेघदूत के अनुकरण पर तो यह काव्य लिखा ही गया है। विषय व्यवस्था, शैली, छन्द और भाषा विन्यास सभी में मेघदूत का अनुकरण किया गया है। कहीं कहीं भावसाम्य साक्षात् स्पष्ट प्रतीत होता है। मेघदूत में हनूमान्जी और सीताजी का उल्लेख है ही। इस काव्य में भी कवि ने राम और हनूमान् का प्रसंग चक्रपाक को दूत बनाने के अवसर पर उपस्थित किया है—

सीताजानि स्वयमिय हनूमन्तमत्यन्तमाप्य  
कोक दृष्ट्वा कमपि ललित सन्दिदेशेनमेवम् ॥२॥१८६॥

मेघदूत की—यान्तोदन्त सुहृदुपगत सहमात् किञ्चिदून ॥२॥१८७॥

यह पति किस सहृदय पाठक के हृदय में एक दम प्रस्फुरित नहीं होगी, जब वह इस काव्य की निम्न पत्निया पढ़ेगा—

स्त्रीणा मोद नहि प्रितनुते किं प्रियोगातुराणाम्  
दूतनोकं प्रियतमप्रचोगुम्फमाधुर्यभूमा ॥१॥१६॥

प्रेयसी की नगरी कामारामपुरी का ध्यान करते हुए कवि ने लिखा है—

कन्दर्पेण प्रगुणधनुषा प्रेरिताना निशायाम्  
सङ्केत प्रत्यधिकनिभृत कामिनीना गतानाम् ।  
प्रातः काले कचभरमिलत्पुष्पसौरभ्यलोभ  
भ्रान्ता सभ्यगृध्रमरपटली यत्र माग द्यनक्ति ॥२॥१६॥

इस श्लोक में मेघदूत क—

गत्युत्कम्पादलकपतिनैर्यत्र मन्दारपुष्पै  
नैशे मार्गं सप्रितुन्दये सूच्यत कामिनीनाम् ॥२॥१७॥

पद्य की छाया स्पष्ट दीप्त पड़ती है ।

इसी तरह जोक सश का यह श्लोक—

उद्यद्दीपे नममणिरुचा रोचिते जल्लिगेहे  
नीप्रीरन्ध्रमुटनरसिके प्राणनाथे निशायाम् ।  
लज्जामाराद् विधुरमनसा यत्र मुग्धाङ्गनानाम्  
काञ्चीनीलोपलधचिह्नो किञ्चिदाशयासहेतु ॥२॥१८॥

भी मेघदूत क इसी ही प्रसंग में लिगे गए श्लोक की प्रतिध्वनि है ।

मेघदूत में प्रेयसी के यहाँ सुवर्णमय वासयष्टि पर मयूर के बैठन तथा प्रेयसी द्वारा उसके नचाए जाने का उल्लेख है । इस काव्य में भी नायिका को दरबार मयूर के नृत्य करने का वर्णन किया गया है तथा मयूर के बैठने की वासयष्टि भी विद्वज्जनिमित्त घटलाई गई है—

पुष्पोद्यानाद् यद्विरपयष्टं कान्चनोदुमासितामा  
मूले वीलोपलपटलिकायद्वदिप्रदेशा  
दद्याज्जाग लसति शिगिनी येंद्रमी वासयष्टि ॥२॥१०१॥

दृश्याप्रस्था मम सहचरौ विघ्नदुल्लासिका या  
नीलाम्मोद प्रतिमन्त्रिभुरा र्थादय पर्यावपेक्षम् ।  
क्रीडाशैकी प्रमदपरिपूर्णान्तरङ्ग कलापं  
धम्रीबुधैर्न नयनसुभग यत्र वृत्त तनोति ॥२॥१०२॥

विजली क समान गौरवर्णशाली तथा नीले बादलों क समान काल कट्ट यानी

नायिका को देख कर वर्षा ऋतु के बिना भी मयूर का नृत्य करना कितना आकर्षक हो सफ़ता है। मेघदूत में नायिका के द्वारा नचाए जाने पर मोर नाचता है लेकिन इस काव्य में वर्षा ऋतु के बिना भी केवल नायिका को देखकर ही मोर के नाच उठने का वर्णन किया गया है।

मेघदूत में नायिका कभी कभी पञ्जरस्थ शारिका से भी अपने प्रिय के सबन्ध में वार्तालाप करती हुई वर्णित की गई है। इस काव्य में भी नायिका को शुकी अथवा शारिका से अपने प्रिय के सबन्ध में वार्तालाप करते हुए वर्णित किया गया है—

अलीङ्गोश्चरमिव पुरा पाठित नाम मत्क  
भूयो भूय स्फुटतरमभिन्याहरन्तीं शुकीं ताम् ।  
शारि ! इयं चाप्यहमिह सदा त्वं पतिं स्नेहत किं  
व्याप्यस्यहेत्यधिककटण प्रोक्ष्य खेदाकुला वा ॥२॥१५३॥

कहीं कहीं कवि ने जीवनोपयोगी सबे सुन्दर २ विचार भी व्यक्त किए हैं। पाठकों के अनुशीलन के लिए कुछ सूक्तिया काव्य से उद्धृत की जाती हैं—

(१) मित्रालोको विनुदति यथा खेदमन्यत् तथा नो  
नृणा सम्पद्यति रिपिदि वा वस्तु किं वेत्ति नैतत् ॥१॥८॥

एको लाभो यदि खलु भवेत् क्वापि कार्येषु यन्त  
कार्यं सर्वैरपि बहुफले तत्र किं वर्णनीयम् ॥१॥२३॥

(३) पुण्यस्थलों के सबन्ध में कवि कहता है—

वत्से मेना दितमिह सखे साधु पुण्यस्थलीनाम् ॥१॥३३॥

(४) परोपकारी लोगों के स्वार्थत्याग का वर्णन करते हुए कवि बटता है—

लोकानां यद् विधुरितधिया सौम्य । सम्मार्गयायी  
मोक्ष कर्तुं वहति हि रजिं नेन्द्रियाणां निजानाम् ॥१॥६०॥

(५) दूरदर्शी लोग आगामी रिपसि का पड़ले से ही प्रतीकार सोचते हैं—

लोको धीमानिह तु रिपट भाविनीं प्रेक्षमाणं  
सम्यक् पूर्वं गहि वितनुते किं प्रतीकारमस्या ॥१॥८३॥

काव्य की इस समीक्षा से पाठकों को काव्य के साहित्यिक महत्त्व का पूर्ण ज्ञान हो गया होगा। लेखक ने काव्य के प्रारम्भ में प्रसंगान्तर में—

सद्धिर्भूरीरुतमपि सदैवानिल दोषमुद्धया ।

गंगासङ्गात् वृत्तकसरिता धारि पुण्य न किं स्यात् ॥१॥२॥

यह पत्निया लिखी हैं। प्रकारान्तर से लोगक ने अपने काव्य की ओर ही द गित किया है। विद्वानों ने लिए भले ही इस काव्य में यत्र-तत्र दोष दीर्घ पड़े, लेकिन जिस तरह गंगा में निकली हुई नहर का जल भी पवित्र माना जाता है, उसी तरह मेघदूत ने अनुकरण पर लिखा गया यह काव्य भी उ न्ना ही मरस और हृदयप्राप्ती है। कहीं-० मेघदूत में सद्दोष से व्यक्त कोई भाव इस काव्य में बड़े निश्वरूप से वर्णित किया गया है। अतः काव्य का आकार कुछ अधिक बढ गया है। अस्तु, सन्देशकाव्यों की परम्परा में दक्षिण भारत का यह सन्देशकाव्य कविता की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है और मेघदूत का एक सफल अनुकरण है।

### रूप गोस्वामी का उद्भव-संदेश ( वि० चोदश शतक का उत्तरार्ध )

भीरूपगोस्वामी श्रीचैतन्यमहाप्रभु के प्रधान अनुयायियों में से थे। इन्होंने जन्म सन् १४६६ ई० में माना जाता है। इनके पिता का नाम कुमारन्य था और माता का नाम देवती था। यह भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे। सनातनगोस्वामी इनके गुरु भाई थे और परलभ गोस्वामी इनके छोटे भाई थे। इनके छोटे पुत्रज कोई अनिरुद्ध शक स० १३३० व आम-पास कर्णाट के राजा थे। इनका घर बार्क, समुद्र था। रूप और सनातन गौड देश के राजा होशनसहारा के प्रधान मन्त्री भी रहे। यह दोनों भाई धार्मिक प्रवृत्ति के थे तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की शिराओं पर इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। अन्त में इन्होंने घर छोड़कर संन्यास ल लिया। बंगाल के वैष्णव साहित्य में धर्म परायेण विद्वान् और उपदेशक के रूप में इनको बड़ा महत्त्व दिया गया है। इनका धार्मिक मित्रान्त अचिन्त्यभेदाभेद है। सनातन गोस्वामी की मृत्यु स० १४४० ई० में और रूपगोस्वामी की मृत्यु स० १५६३ ई० में मानी जाती है।

कविता तथा साहित्य शास्त्र इन दोनों क्षेत्रों में ही रूपगोस्वामी का स्थान बड़ा ऊँचा है। कृष्ण के प्रेम अथवा भक्ति से समन्वित होकर इनकी कवि प्रतिभा ने विभिन्न प्रकार की साहित्यिक रचनाएँ हमारे लिए की हैं। इन सब में कथा वस्तु कृष्ण के जीवन से ही ली गई है। विदग्धमाधव और ललितमाधव यह दो नाटक सात सात अंकों के हैं। इन में भागवत का आधार लेकर कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन किया गया है। दानकलिनोमुदी नामक एक भाण भी इनका लिखा हुआ है। इसके नायक भी कृष्ण ही हैं। पद्यावली नामक कविताओं का एक संग्रह भी इन का किया हुआ है। जिस किसी लेखक की रचना इस संग्रह में उद्धृत की गई है, उसका नामोल्लेख भी किया गया है।

उनके अन्य ग्रन्थों में उज्ज्वलचन्द्रिका ( चैतन्य चन्द्र की वहिन राधा और उसकी सहेली में कृष्ण के सम्बन्ध में सगद ), यमुनास्तोत्र, गन्धर्व प्रार्थनास्तोत्र, गौरागस्त्यकरपतर, कुसुमस्तयक, मुकुन्दमुकावली, चतु पुष्पाञ्जलिस्तय, उ कलि वाघरत्नरी, लघुभागवतामृत आनन्दमहोदधि और मथुराप्रहिमा इत्यादि हैं। उनका संग में अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उज्ज्वलनीलमणि है। साहित्य शास्त्र का यह एक सुन्दर ग्रन्थ है और इसमें नायक तथा नायिकाओं के भेद, उनकी दशाएँ तथा प्रेम की रीतियों का वर्णन किया गया है। उदाहरण स्वरूप जो भी पद्य दिए गए हैं, वे संग कृष्ण भक्ति से सम्बद्ध हैं। रूप-गोस्वामी ने भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र के आधार पर नाटकचन्द्रिका नाम का एक ग्रन्थ नाट्य शास्त्र पर भी लिखा है। इस ग्रन्थ में उन्होंने विद्यनाथ और भरतमुनि के परस्पर मतभेद का भी उल्लेख किया है।

इसके अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थ जैसे श्री युगलविशोराष्टकम्, उपदेशामृतम्, निकुञ्जरहस्यस्तोत्रम् और हरिभक्तिरसामृतसिन्धु इत्यादि भी इनके लिखे गये पाए जाते हैं।

श्री एस० एन० दास गुप्त द्वारा संपादित 'द हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, फ्लासीकल पीरियड, प्रथम भाग' में लगभग ३२ ग्रन्थ इनके लिखे हुए गिनाए गए हैं। इनमें बहुत से स्तोत्र भी शामिल हैं ( दे० पृ० ६६४ )।

रूपगोस्वामी के दो भाई थे। सनातन गोस्वामी इनके बड़े भाई, ये और वरलभ गोस्वामी छोटे भाई। सनातनगोस्वामी ने उज्ज्वलनीलमणि पर टीका भी लिखी। उनके अन्य ग्रन्थों में हरिभक्तिविलास और भागवतामृत मुख्य हैं।

इन्दी रूपगोस्वामी ने उद्भवसन्देश और इसदूत नामक दो सन्देश काव्य लिखे हैं। कवि ने स्पष्ट रूप से उद्भवसन्देश के आदि या अन्त में अपना नाम

१ विशेष विवरण के लिए श्री डी० सी० सेन का 'हिस्ट्री आफ पगाली लिटरेचर' पृ० ५०३ देखिए। उज्ज्वलनीलमणि ( काव्यमाला ) की सूचिका भी देखिए।

लेखक के रूप में नहीं लिखा है। फिर भी कविता के स्तर से ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस काव्य का लेखक कोई उत्कृष्ट कवि रहा होगा। कुछ लोग रूप-गोस्वामी को ही इसका लेखक मानते हैं। वैष्णवतोषिणी नामक ग्रन्थ में भी श्री रूप गोस्वामी को ही इस सन्देश काव्य का लेखक बताया गया है। इंगिडया आफिम लायट्रेरी सर्विषय, तृतीय भाग, पृ० २०१= में रूप गोस्वामी को ही इस सन्देश काव्य का लेखक माना गया है। इसका कारण यह है कि काव्य के उपात्तिम श्लोक में कवि ने प्रसंगान्तर में 'रूप' और 'स्वामी' इन दोनों पदों का प्रयोग किया है।

कवि कहता है—गोष्ठक्रीडोरलसितमनसो निर्यलीकानुरागात्  
 कुर्याणम्य प्रथितमथुरामगडले ताण्डयानि ।  
 भूषोरूपाधयपदमरोज्ज्वल म्यामितोऽय  
 तन्मोहाम घटु हृदयानन्दपूर प्रबन्ध ॥३०॥

इस श्लोक का अर्थ यह है कि निरलस प्रेम से गौरुल में प्रीड़ा करने वाला, मथुरा में मरल युद्ध इत्यादि का ताण्डय रचने वाला तथा प्रचुर वैष्णवशाली चरण-कमलों वाला भगवान् श्रीरूप के लिए मेरा यह काव्य अत्यन्त आनन्द पहुँचाए। प्रकारान्तर से इसका यह तात्पर्य भी निरलता है कि रूप गोस्वामी के आश्रयी-भूत चरणकमल वाले श्रीरूप को यह काव्य अत्यन्त आनन्द पहुँचाए। "नामैव-देशे नामप्रदणम्" इस न्याय से रूप शब्द रूपगोस्वामी का वाचक हो ही सकता है।

कवि ने अपनी एक रचना का नाम तो दसदूत रखा, फिर अपने दूसरे काव्य का नाम उदयदूत ही क्यों न रक्खा। यह प्रश्न भी कुछ विचारणीय है। इस नामकरण के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि उदय वृष्णजी के मित्र थे। इसलिये मित्रभाव से अथवा गोपियों के उत्कट प्रेम को साक्षात् करने के विचार से ही उन्होंने यह दूतकार्य स्वीकार किया था। मित्र को दूत बनाना कुछ अनुचित सा हो सकता है। कवि ने इसी भाव से प्रेरित होकर अपनी इस रचना का नाम उदय सन्देश रक्खा है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि सम्भवतः माधव कर्णान्द के उदयदूत के बाद यह काव्य लिखा गया है और कवि ने जानबूझ कर अपने इस काव्य का नाम कुछ परिवर्तित कर दिया है।<sup>१</sup>

### उदयसन्देश की कथा

इस काव्य की कथा धीमदभागवत पर ही आधारित है। कवि ने अपनी कल्पना से मार्गवर्णन, मार्ग में द्रष्टव्य स्थानों का महत्त्व, गोपियों के चरितः

१ डा० जे० बी० गोधरी का 'हिस्ट्री आफ दि दूत वाय्वाज आफ बंगाल (मैमूरन कलकत्ता-पृ० २२-२४) देखिए।



कीर्तन तथा अन्व रमणीय प्रसंग उपस्थित कर काण्व को बड़ा मधुर बना दिया है। काण्व की कथा इस प्रकार है। मधुरा में रहते २ श्रीकृष्ण को अकस्मात् गोकुल की याद आ जाती है। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है तथा गोपियों की प्रणय लीलाओं का स्मरण करते-२ वे बितकुल निस्तब्ध हो जाते हैं। अपने विरह दुःख को दूर करने के विचार से अपनी सारी कथा वे उद्धवजी को सुनाते हैं। इसी प्रसंग में गोपियों की विरहवेदना का वर्णन करने के बाद राधा की मनोव्यथा का वे विशेष रूप से उल्लेख करने लगते हैं तथा उसको सान्त्वना देने के लिए उद्धव से गोकुल जाने की प्रार्थना करते हैं। इस प्रसंग में उद्धवजी को मधुरा से गोकुल तक का मार्ग भी बतलाया गया है।

सर्वप्रथम उन्हें मधुरा नगरी में ही स्थित गोकुल नामक शिरजी के मन्दिर में जाने का परामर्श दिया गया है। तदनन्तर क्रमशः यमुनासरस्वती सगम, अम्बिका-कान्त, अकूर्त्तीर्ष, फोटिभार्य प्रस्थ, सष्टीकरण, कालियहृद, मुगाहरप्रदेश, बड़ हन्माम, शालमलकला, साद्वारमाम, रूहेला, प्रीतशालाक्ष्य देश, गोकुल का विष्णुकारी नामक दक्षिण भाग, सोयाधिक तटी, श्वतमगदशैल और पारन नामक सरोवर का उल्लेख किया गया है। गोकुल भूमि के वर्णन प्रसंग में बड़ा की गोपियों के प्रेम पूर्ण लीलालाप, कर्मठ नर्मगोष्ठी तथा कृष्णजी की यात्रा के अथस्तार पर उनके विलाप का भी वर्णन किया गया है।

इस प्रकार गोकुल में उद्धव के पहुँचने की समायना करने के बाद सर्वप्रथम उन्हें कृष्ण की ओर से वृन्दावन के वृत्तों की आशीर्वाद देने, गावों से उनकी कुशल पूछने, वृद्ध गोपियों के चरणों में प्रणाम कहने, श्रीदामा इत्यादि मिय साधियों का आलिंगन करने और मन्द तथा यशोदा के चरणों में प्रणाम करने का आदेश दिया गया है।

इसके बाद गोपियों के पास पहुँच कर उन्हें अपना सम्देश सुनाने की वृष्ण ने उद्धव से प्रार्थना की है। सामूहिक रूप से गोपियों के लिए अपना कुछ सदेश देकर नन्दाग्रजी, शिशुधा और ललिता के लिए कृष्ण ने अपना कुछ विशेषसंश दिया है। तदनन्तर उद्धवजी से राधा के पास जाने की प्रार्थना की गई है। संभव है कि शिवोग में राधा मृतप्राय हो, इसलिए कृष्णजी अपनी पंचवर्ण वासन्तीमाला भी उद्धव को दत्त हैं ताकि उसके सौम्य मन पर जोषित बनी रहे। इस प्रकार माला ले कर शनैः शनैः राधा के पास पहुँच जान के बाद उद्धव स उसे अपना संदेश सुनाने के लिए बड़ा गया है।

सन्देश में राधा की विरह विषयना और अपनी आनुरता के वर्णन के बाद राधा की पुनर्मिलन का आदेशान दिया गया है।

अन्त में उद्धव से गोकुल में कुछ समय तक ठहरने की प्रार्थना की गई है तथा उन्हें व्रजभूमि की यात्रा के लिए प्रोत्साहित भी किया गया है। अन्त कृष्णजी की प्रार्थना से कवि ने काव्य का उपसंहार कर दिया है।

## काव्य समीक्षा

श्रीमदुवागयत से कथावस्तु लेकर मेघदूत के अनुकरण पर यह सन्देश काव्य लिखा गया है। कवि ने अपनी कल्पना से कृष्ण की विरहस्थिति, उद्धव की दूत कार्य करने के लिये स्तुति, मार्गदर्शन, गोपियों और राधा के चरित्र का चित्रण तथा सन्देश-कथन द्वारा मूल कथावस्तु को एक सर्वांगपूर्ण सन्देश काव्य का रूप दे दिया है। मेघदूत के अनुकरण पर समग्र काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। काव्य में कुल १३१ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा काव्य में कथावस्तु का कोई विभाजन नहीं किया गया है। जिस तरह मेघदूत में नायक की ओर से नायिका के लिए सन्देश भेजा गया है, इसी तरह इस काव्य में भी नायक की ओर से अपनी प्रेमिकाओं के लिये सन्देश भेजा गया है। काव्य का मुख्य रस विमलम्भ शृंगार ही है। कृष्ण और गोपियों की प्रणय क्रीडाओं के वर्णन से काव्य ओतप्रोत है। मार्ग वर्णन के प्रसंग में भी जिन जिन स्थानों का वर्णन किया गया है, वे भी कृष्ण की विभिन्न लीलाओं से सम्बन्ध होने के कारण से ही महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार मार्ग में आने वाले रहेला नामक एक स्थान का वर्णन करते हुए कृष्णजी कहते हैं—

गोपेन्द्रस्य व्रतपरिसरे लब्धतुष्टिर्भजेथा  
ता विख्याता कलितमदिलाचारहेला रहेलाम् ।  
यामासाध प्रद्वितमुरलीकाकलीदूतिकोऽहम्  
सायं गोपीबुलमकरयं सामि नेपथ्यनन्दम् ॥२६॥

साधार नामक स्थान का भी वर्णन करते हुए कहा गया है—

जङ्घालेन क्षितिपतिपुरीं स्पन्दनेनानुविन्दन्  
यथाहार प्रियमकरयं द्वारि द्वैयङ्गयनीनम् ॥२७॥

प्रीतशार नामक स्थान का भी वर्णन करते हुए कृष्णजी कहते हैं—

यत्र प्रीतानन्दमकरयं मित्रभावेन शायान्  
द्वारं द्वारं विदितसमयो पल्लवाणां दधीनि ॥३०॥

कवि ने गोकुल का तो बड़ा ही स्वामाधिक और सत्य चित्रण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है—

सोऽयं दध्ना मथननिनदाक्रान्तद्विचक्रवालो  
घोषस्तोष तव जनयिता योजनद्वन्द्वचुम्बी ।  
दिन्येनाल निखिलजगतीं सपिपा तर्पयन्ती  
भ्रातर्भूम्ना त्रिलसति त्रिधेर्गोमयी यत्र सृष्टि ॥२६॥

स्थानान्तर पर गोकुल में दौड़ते हुए गोशिशुओं का भी कवि ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है—

धाराद्वयालायलिङ्गरतलप्रोञ्चलद्वयालधीनाम्  
यत्रोत्तुङ्गस्फटिस्फटलस्पर्धिदेहद्युतीनाम् ।  
घ्राय घ्राय नरत्नशिखामुचतीना वलन्ते  
वरसालीना चटुलचटुल शश्वदाटीकनानि ॥३०॥

इतना सब कुछ होते हुए भी वन, शैल और कुञ्ज इत्यादि दृश्य जगत् के वर्णन में कवि ने उतनी निपुणता नहीं दिखलाई है जितनी कि गिरिहिणी और वृष्णापरायण गोपियों के मानसिक भावों के चित्रण में । काव्य का अधिकांश तो गोपियों की विभिन्न भावनाओं के चित्रण से ही भरा हुआ है । सन्ध्यासमय गोकुल में वृष्ण से मिलने के लिए उत्सुक गोपियों की मानसिक भावनाएँ यही सरस रीति से वर्णित की गई हैं । ऐसे ही एक स्थल पर कवि ने लिखा है—

रेणुर्नाय प्रसरति गया धूमधारा रुशानो  
वर्णुर्नासो गहनकुहरे कीचको रोरधीति ।  
पश्योन्मत्ते गविरमिथयो नाधुनापि प्रतीचीं  
मा चान्चल्य कलय कुचयो पञ्चदलीं तनोमि ॥३६॥

सन्ध्या समय अग्नि की घुमराशि तथा कीचक वासों के रस को सुनकर किसी गोपी को गोधूलि तथा वृष्ण के घशी बसाने का भ्रम हो जाता है और वह अपने शृंगार को पूर्ण किए बिना ही बाहर निकल जाना चाहती है । ऐसे अवसर पर उसकी प्रसाधिका द्वारा उसकी अधीरता रोकने के लिए यह वचन कहे गए हैं । गोपी की उत्सुकता का कवि ने कितनी सुन्दर रीति से वर्णन किया है ।

वृष्ण के सम्बन्ध में गोपियों में परस्पर जो प्रेमपूर्ण वार्तालाप करि ने अपनी कल्पना से प्रस्तुत किया है, उसमें कदा २ बड़े सुन्दर भाव चित्र दीप्त पड़ते हैं । इसी प्रसंग में एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है—

शोरिर्गोष्ठाङ्गमनुसरन् शिञ्जितैरेव मुख  
विद्विष्यास्तं परिहर दशोन्माण्ड्यं मण्डिताङ्गि ॥  
आरादुर्गते कलपरिमिलन्याधुरीकं कुरङ्गे  
सन्धे सध' सधि त्रियशता पाशुरा वस्तनोति ॥४१॥

किंकिणी के मगुर रव से मुग्ध हुए कृष्ण पर पुन कटाक्ष द्वारा आघात करना व्यर्थ ही है। फिर न दृष्टान्त भी उदा सुन्दर ही दिया है। हिरन का संगीतप्रेम तो प्रसिद्ध ही है।

स्थानान्तर पर एक गोपी राधा से कहती है—

तिष्ठन् गोप्याङ्गणभुवि मुहूर्तोन्नयान्त मिधत्ते  
जातोत्कण्ठस्तय मयि हृदिहर्लपिदिकायाम् ।  
मिथ्यामानोन्नतिकउलिते किं गगनार्पिताक्षी  
स्थान्त हन्त ग्लपयसि यदि प्राण्य प्राणनाथम् ॥४४॥

‘गयाक्षापिताक्षी’ विशेषण से राधा की कृष्ण से मिलने की उत्कण्ठा प्रतीत होती है। अतः उसका मान को मिथ्या ही समझा जाना चाहिये। कृष्ण को प्रसन्न करने का उसकी संगी का आदेश उचित ही है।

गोशुल में गोपियों की प्रेमोत्लास से पूर्ण नर्म-गोष्ठी का कृष्ण के मुख से कवि ने यदा भावपूर्ण वर्णन कराया है। एक गोपी अपनी संगी से कहती है—

निर्माय त्व धितर कलकं हारि कसारिमूर्त्या  
वार वार दिशसि यदि मा माननिर्वाहणाय ।  
यत् पश्यन्ती भजनबुद्धर रुद्धकणाभतराऽहम्  
साहृद्द्वारा प्रियसमि सुखं यापयिष्यामि यामम् ॥४०॥

कृष्ण से मान तभी निम्न सकता है जब पास में उनका चित्र हो और घर के किसी भीतरी भाग में कानों को बन्द करके बैठा जाए, ताकि वहाँ का शब्द बिल्कुल ही न सुन पड़े। फिर भी यह मान केवल एक प्रह्वर ही टिक सकता है। गोपी के इस वचन से उसके कृष्ण प्रेम का सहृदय पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं।

एक स्थान पर दो गोपियों में परस्पर निम्न वार्तालाप चलता हुआ बतलाया गया है—

वारं वारं मज्जसि सलिलच्छद्मना पद्ममयधो  
पुत्रीं क्षान्तय समि । रम पुण्डरीकेक्षणोऽसौ ।  
चेत वाग्या भयति विशदा सारसाली न या मे  
ते न म्भेत् मुहुरभिलषाम्यच्युतं रत्नपद्मम् ॥४२॥

१ इयेन कमल दर्शन, कमलभजन कृष्ण।

२ साल कमल, लक्ष्मी में अमुरत्न कृष्ण।

गोपियों की श्लेष से अनुप्राणित इन उक्ति प्रत्युक्तियों में कितना वाक्चतुर्थे छिपा हुआ है।

कहीं-कहीं करि ने अपहृति अलंकार की सहायता से भी कृष्ण का चरित्र काव्य में प्रस्तुत किया है। एक गोपी अपनी सखी से कहती है—

हस्तेनाद्य प्रियसखि लसत्पुष्कराभेन दूरात्  
कृष्णेनाह मदकलदृशा कम्पिताङ्गी विकृष्टा ।

इस पर उसकी सखी उसे सावधान करती है—

नीचैर्जरप भ्रमति पुरतो भ्रान्तचित्ते गुरुस्ते  
तदनन्तर यह गोपी फौरन ही बात पलट देती है

हृङ्कालिन्दीपुलिनचिपिने दीप्रदन्तीश्वरेण ॥६१॥

यहां पर दीप्रदन्तीश्वर ( गज ) के लिये ऐसे ही विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं जो कृष्ण के लिये भी उपयुक्त हो सकें। वास्तव अर्थ तो सूक्ष्म दृष्टि वाले पाठक समझ ही सकते हैं।

कृष्ण की मथुरा-यात्रा के अवसर पर भावी विरह की आशंका से व्याकुल गोपियों के धिलापवचन बड़े ही भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी हैं। कृष्णजी प्रभात होते ही मोकुल से मथुरा जाने वाले हैं। इस सन्नाह की सुनकर एक गोपी प्रार्थना करती है कि रात्रि लम्बी हो जाय। लेकिन उसकी प्रार्थना कौन सुनता है—

प्रातर्यात्रा नगपतिपुरे तथ्यमात्रार्थं शौरे  
आयामाय प्रियसखि मया यामिनी प्रार्थिताऽभूत् ।  
पश्य क्षिप्रं प्रथितलघिमा पापिनीय प्रभाता  
जायन्ते हि प्रचुरतमसो नानुकूला परेषु ॥६२॥

कृष्ण के विरह में प्राणां को छोड़ने के लिये तत्पर एक गोपी अपने हाथ में तलवार लिये हुए है। इसलिये उसकी सखी अकूर से शीघ्र ही कृष्ण की रथ से उतार देने की प्रार्थना करती है —

आरादमे कलय नृपतेर्दूत निधूंतलज्जा  
सज्जा तन्वी किमपि रिपमं साहस कर्तुमिच्छु ।  
यानाद्यावद्विस्त्रजति पुरश्चन्द्रदासं न कृष्णम्  
इस्तात्तावद्विस्त्रजति सखी चन्द्रदासं न कृष्णम् ॥६३॥

१ चन्द्रदासम् = चन्द्रमा के समान दासपाल, चन्द्रदास = तलवार । कृष्ण = पाला ।

भारी विरह की आशका से ही प्राणों को त्यागने के लिये गोपी का तत्पर हो जाना उसके अगाध प्रेम का परिचायक है। यमक अलंकार के आचरण में कवि ने एक गम्भीर भाव को कितनी सरलता से व्यक्त किया है।

आगे चल कर कवि ने कृष्ण के मधुरा चले आने पर विरह कातर गोपियों के भावों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। एक गोपी अपनी सर्या से कहती है।

खेलद्ध शीतलयिनमनालोभ्य तद् वस्त्रमिमम्  
अवस्तामया यदहमहह प्राणकीटं विभर्मि ॥२७॥

प्रिय के दर्शन न होने पर अपने को अनाथ समझना तथा प्राणों को कीट के समान शतितुच्छ समझना प्रेम की अनन्यता व्यक्त करता है। इसी प्रसंग में एक और गोपी अपने मन का हाल बताते हुये कहती है—

आशापाशं सखि नवनवै कुर्वतो प्राणग्रन्ध  
आत्मा भीरु कनि पुनरह वासराणि क्षयिष्ये।  
एते वृन्दावनविटपिन स्मारयन्तो त्रिलासान्  
उत्कुरलास्तामम किल बलाग्नमर्म निर्मूलयन्ति ॥२८॥

गोपियों का विरह त्रिलाप इतना तीव्र और कष्टोत्पादक है कि गोकुल के पाम से जाने वाले यात्रियों को भी रुला देता है। इसीलिये तो यात्रियों ने वानों को बन्द कर भी गोकुल की सीमा के पास से निकलना बन्द कर दिया है—

इत्युन्नद्धं पशुपरमणीमगडलीना विलापे  
भूयोभूय कक्षकक्षैरथ कीर्णान्तरस्य।  
उपह्राप्ता त्यजति परितो रुद्धकर्णा कराम्या  
दूरतपान्धावलिरपि सरो यस्य सीमोपकण्ठम् ॥२९॥

गोपियों की विरहानुस्था के दर्शन के बाद कृष्ण ने उदय को अपना जो सन्देश सुनाया है, उससे गोपियों के प्रति कृष्ण के प्रेम की अगाधता तथा तीव्रता का बड़ा स्पष्ट परिचय मिलता है। कृष्णजी कहते हैं—

ध्याय ध्यायं नवनयमह मोहदं व मुक्कगद्व ।  
गाढोत्कण्ठाक्लमपरपश वासराणि क्षयामि ॥३०॥

विशाखा नाम की गोपी का मधुर और कोमल वार्तालाप तो कृष्ण को हमेशा ही याद आता रहता है —

गम्भीराणि प्रमदगुग्मिर्गुदनमप्रयथं  
माध्याह्ना मधुरिममहाकीर्तिविषयसनानि ।  
मोक्कगदं मे स्मरति हृदयं प्रयासे । कोमलानि

प्रेमोत्तङ्गस्मितपरिचितान्यद्य ते जरिपतामि ॥११८॥

ललिता नाम की गोपी की भी कृष्ण को कुछ कम चिन्ता नहीं है । ललिता से ये पूछते हैं—

न्यस्ताङ्गी मे सुगमिणि भुजन्तम्भयोरन्तगले  
भूयोभिस्त्व रहसि ललिते केलिभिर्लालितासि ।  
अन्तश्चिन्ताविधुरमधुना पाशुपु जे लुठन्ती  
हन्त म्लाना रचयसि कथ प्राणसन्धारणानि ॥११९॥

प्रिय के रियोग में प्रेयसी का चिन्तित रहना, धूल में लोटना और मलिन रहना स्वाभाविक ही है । कभी कभी प्राणों पर भी सकट आ सकता है । इसलिये कृष्ण का उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न पूछना नितान्त प्रासंगिक ही है ।

गोपियों के लिये अपना सन्देश सुना कर कृष्ण ने राधा के प्रति अपना विशेष सन्देश भी दिया है । सर्व प्रथम राधा का वर्णन किया गया है । इस प्रसंग में कृष्ण जी उद्भव से कहते हैं—

त्व मच्छेतोभजनवडभीप्रीदपारायतीं ताम्  
रधामन्त क्लमकरलिता सम्भ्रमेणजिहीया ॥१२०॥

राधा के लिए पारायती ( कपोतिका ) की यही ही सुन्दर उपमा कवि ने दी है ।

राधा की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कृष्णजी कहते हैं—

सा पत्यके विशलयदलं करिपत तत्र मुप्ता  
गुप्ता नीरस्तम्रितदशा चक्रवाले सपीनाम् ।  
द्रष्टव्या ते कश्चिप्रकलिता कण्ठनालोपकण्ठ  
स्पन्देनान्तरं पुरनुमिनप्राणसङ्का यराङ्गी ॥१२१॥

मुक्च्छाया मुदुरमुमना क्षोणिपृष्ठे लुठन्ती  
वदपेक्षम् विलसति गते माधवे माधवीयम् ॥१२२॥

विरहिणी राधा के ताप, वृत्ता, अग मालिन्य, उन्माद और जड़ता का कवि ने एक साथ वैसा माधपूर्ण चित्रण यदा प्रस्तुत किया है ।

राधा की विरहावस्था का वर्णन क बाद कृष्ण ने उद्भव को राधा के लिए दिया जाने वाला अपना सन्देश बताया है । सर्व-प्रथम ये कहते हैं कि राधा के कष्ट का उन्हें ( कृष्ण को ) पान तो है, लेकिन कोई प्रतिकार करने में ये अपने को असमर्थ पाते हैं—

नीति शोष विरहरिणा सर्वतो हृत्तडागे  
 जाने कण्ठस्थलत्रिलुडितप्राणमीनामि तन्वि ।  
 दूरे सम्प्राप्यविरलसुहृन्मार्गैर्गिरितोऽहम्  
 वृष्णाम्मोघो विलसदमृतालट्टित किं करिष्ये ॥१२३॥

उपर्युक्त पत्र में रूपक के द्वारा राधा की दयनीय अवस्था का कवि ने वहा स्पष्ट निरूपण किया है । अन्त में कृष्ण राधा को सान्त्वना देत हैं—

विन्दन् यशोभुरितपदनो नेत्रयीधीमकम्मात्  
 अन्तर्याधायलितधियो धातुभिर्धूमलोऽहम् ।  
 प्रीटातु जे लुडितरपुष धान्तमानन्दधारा-  
 करलोलेस्ते रहसि सहसोत्फुरलमुरलासयिष्ये ॥१२४॥

विरहरि से शुष्क हृदय प्राणी को आनन्द की धाराएँ ही तुल्य कर सकती हैं ।

इससे बाद कृष्ण राधा को अन्तिम आशवासन देते हुए कहत हैं—

प्रोमोन्नादादहमधियहन् याप्यधारामकाण्डे  
 गण्डोत्सङ्गे स्मरपरिभर्त पाण्डुरे दत्तचुम्ब ।  
 पुर्यन् कण्ठप्रटत्रिलसित नन्दयिष्यामि सत्यम्  
 सान्द्रेण त्वा सहचरि परिष्यट्गगरङ्गोत्सवे ॥१२५॥

विरहिणी नायिका के लिए इस सन्देश से बढ़ कर सुखदायक और क्या पात हो सकती है ।

सन्देश के बाद उदय की गोबुल में कुछ काल ठहरन का परामर्श देने के साथ साथ काव्य भी समाप्त हो जाता है ।

काव्य के आघोषात् अनुशीलन से यह कहा जा सकता है कि कवि की वर्णन शैली यही स्मरणीय है । विषय विस्तार होते हुए भी काव्य से श्रोताओं को अधया पाठकों को विरक्ति नहीं होती है । राधा और कृष्ण तथा गोपियों के विरह वर्णन में कवि ने यही पुरालता दिखलाई है । स्थान स्थान पर कृष्ण की रास-लीला का वहा सरस वर्णन पाया जाता है ।\* यद्यपि इन सब बातों में भी मद्भाग-



वत् का प्रभाव स्पष्ट है, फिर भी कोमल और नवीनतम पद विन्यास द्वारा कवि ने यह सब विषय नारीन से बना दिए हैं ।<sup>१</sup>

जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है कि कवि ने मेघदूत के अनुकरण पर काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया है, इसलिए कहीं २ पर भाषा तथा दोनों ही में मेघदूत की छाया स्पष्ट दीख पड़ती है । यथा अक्रूरतीर्थ के वर्णन प्रसंग में इस काव्य में कहा गया है—

यज्वानस्ते यदपि भजतो विप्रिया हेलनाम्ने  
नम्रस्तेषां तदपि भजनद्वाररथ्या मिहीया ।  
गापन्तीना मदनुचरितं तत्र त्रिप्राङ्गनानाम्  
आलोकाय स्पृहयसि न खेदीक्षणीर्बञ्चितोऽसि ॥१७॥

इस पद्य में मेघदूत का अनुकरण स्पष्ट ही है ।

ललिता नामक गोपी को अपने सन्देश में सान्त्वना देते हुए कृष्णजी कहते हैं—

सोढव्य ते कथमपि बलाच्चक्षुषी मुद्रयित्वा  
सीमोत्ताप हतमनसिजोद्गमविक्रान्तधक्कम् ॥११४॥

यहां पर—शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥मे० २ ॥४६॥

पंक्ति का प्रभाव जिस पाठक स्वयं जान सकते हैं ।

एक अन्य स्थल पर एक गोपी के अपनी सखी के प्रति इस कथन में—

आशापाशो सन्निभजनरैः कुर्वती प्रणवन्धम्  
जात्या भीरुः कति पुनरह वासराणि सविष्ये ॥८३॥

मेघदूत के—आशाबन्धं कुसुमसदृशं प्रायशो हृषङ्गनानाम्  
सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगं दण्डि ॥१॥१०॥ की ही प्रतिध्वनि है ।

कहीं कहीं कवि ने अपने अनुभव के आधार पर बहुत सी व्यावहारिक उपयोगी बातें भी काव्य में समाविष्ट कर दी हैं । यथा—

१

तत्तत्तन्वि स्मरसि विपिने फुरलशाखे विरागे  
कर्पन्तीर्थी तव मुदुरह वीक्ष्य वृद्धा मिलन्तीम् ।

बल्पाणी मे वितर कितवे हन्त खेलान्तराल  
गुप्ता गुञ्जावलिमिति यदन् यद्विलसस्तदासम् ॥१०६॥

(१) न्यस्त साधीयसि सफलतामर्थभारो हि घत्ते ॥३॥

(२) सन्तस्तुष्टे सुहृदि हि निजा तुष्टिमेयामनन्ति ॥११॥

(३) मन्दाक्रान्ता न खलु पदवीं साधन शीलयन्ति ॥१४॥

(४) भर्तुर्दायादपि हि कुशला हन्त दुष्यन्ति भृत्या ॥१००॥

कृष्णजी की अपने साधियों के साथ बाललीलायें, गोपियों के साथ प्रणय-क्रीडाएँ तथा दुष्ट दैत्यों के दमन की पराक्रम कथाएँ स्थान स्थान पर इस काव्य में वर्णित की गई हैं। अतः कृष्ण भक्तों के लिये भी यह काव्य बड़ा ही आदरणीय है।

## रूपगोस्वामी का हंसदूत

### काव्य की कथा

इस काव्य की कथा यों तो कार्पणिक ही है, लेकिन श्रीमद्भागवत से प्रेरणा लेकर ही यह काव्य लिखा गया है। श्रीमद्भागवत में वर्णित मूल घटना में अपनी प्रतिभा से कवि ने एक और चमत्कारपूर्ण घटना का समावेश कर दिया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। भगवान् श्रीकृष्ण जब अजूर के साथ मथुरा चले जाते हैं, तब राधा उनके विरह में बड़ी चिन्तित रहने लगती है। किसी दिन अपने खिन्न मन को पहलाने के लिये वह अपनी सखियों के साथ यमुना तट पर जाती है, लेकिन वहाँ पूर्ण परिचित स्थानों को देखकर कृष्ण की स्मृति के आ जाने से वह तत्काल मूर्छित हो जाती है। उसकी सखियाँ कमल के पत्रों से उसका उपचार करती हैं। इस तरह जब वह होश में आ जाती है, तब ललिता नाम की उसकी एक सखी यमुना के घाट पर कमलपत्रों के ऊपर उसको लिटा देती है। इसी अवसर पर ललिता को एक हंस दिखाई पड़ जाता है। वह उसे ही अपना दूत बनाकर कृष्ण की सभा में मथुरा भेजती है।

जिस मार्ग से अजूर कृष्ण को मथुरा ले गया था, इस के लिये भी मथुरा जाने ही मार्ग बतलाया गया है। यमुना तट से आगे बढ़ने पर सर्व प्रथम मार्ग में कदम्ब वृक्ष बतलाया गया है। यह वही कदम्ब वृक्ष है, जिस पर कि यमुना में स्नान करती हुई गोपियों के वस्त्र अपहरण कर भगवान् कृष्ण आ बैठे थे। इस वृक्ष

के बाद गोपियों के साथ विहार करने की कृष्ण की रासस्थली, फिर वासन्ती लता से गिरा हुआ कृष्ण का चतुःशाल सदन और तदनन्तर गोवर्धन पर्वत बतलाया गया है। इसके बाद कदम्बरन-वाटी में से होते हुए तथा अरिष्ट नामक असुर के पर्वत के समान बड़े और चिरशुष्क सिर की मार्ग में देखते हुए आगे बढ़ने पर भाण्डीरवन ( अजोर व पेड़ों का वन ) और ब्रह्मा के मोहनस्थान पर इस के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर कालियहृद के मधुर जल को पीकर तथा उसके निकट ही विराजमान वृन्दा देवी की वन्दना करके आगे बढ़ते हुए एकादश तथा द्वादश वन को पार करने के बाद इस के मधुरा पहुँच जाने का वर्णन किया गया है। मधुरा नगरी तथा कृष्ण के अन्त पुर और क्रीडागृह का भी इस प्रसंग में कुछ वर्णन किया गया है। तदनन्तर कृष्ण के मधुरा स्वरूप का कुछ दिग्दर्शन कराने के बाद उचित अन्तर देखकर, कृष्ण की अपना सदेश सुनाने की ललिता ने इस से प्रार्थना की है। सदेश में सर्व प्रथम ललिता ने कपिला गाय, वासन्ती लता, गोकुल और गोपियों की दीन दशा का वर्णन किया है। तदनन्तर राधा की कृष्णविरहजन्य विभिन्न भावनायें, चेष्टायें और अस्थायी वर्णित की गई हैं।

अन्त में इस से भगवान् कृष्ण की वनमाला, मकर कुण्डल, कौस्तुभमणि और पाञ्चजन्य शूल की प्रशंसा करने के लिये कहा गया है ताकि वे भी इस के अनुकूल हो जाय। इसके बाद ललिता ने इस से कृष्ण को दश अवतारों की कथा सुनाने का परामर्श दिया है। इस प्रसंग में कृष्णजी को भीम, कूर्म, वराह, बृहसिंह, वामन, परशु राम, राम, बलदेव, बुद्ध और कल्कि इन अवतारों की कथा के द्वारा विविध आक्षेप दिये गये हैं तथा वहाँ उनका प्रार्थना भी की गई है।

इस तरह सन्देश सुनाने के बाद अन्त में इस की मधुरा जाने के लिये प्रोत्साहित किया गया है। यहाँ पर ही काव्य की कथा भी समाप्त हो जाती है।

## काव्य समीक्षा

श्रीमद्भागवत के आधार पर लिखे गये दूतकाव्यों में यह काव्य अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। काव्य की कथा यों तो कार्पणिक ही है, फिर भी कवि ने प्रेरणा श्रीमद्भागवत से ही प्राप्त की है। इस को दूत बनाने का विचार भी श्रीमद्भागवत से ही लिया गया है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में ६० वें अध्याय में श्रीकृष्ण के अंगित का वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में भागवत कवि ने कृष्ण के सम्यन्ध में लिखा है कि उनकी रानिया उनके प्रेम में मग्न रहती थी और उनका ही चिन्तन करती रहती थी। किसी समय कमलनयन श्रीकृष्ण का चिन्तन करते-करते उन्मत्त की तरह वे कुछ प्रलाप करने लगीं। उस प्रलाप में उन्होंने कुररी ( टिटिहरी ), चकवाही, चन्द्रमा, मलयानिल, मेघ, कोकिल, गोवर्धनपर्वत और नदियों को सम्बोधन किया तथा उनसे भी कृष्ण के सम्यन्ध में वार्तालाप किया। अन्त में उन्होंने इस को सम्बोधन किया—

हस स्यागतमास्थना पित्र पयो ब्रूह्यङ्ग शीरे कथाम् ।  
 दूतं त्वा नु प्रिदाम कच्चिदजित स्तस्यास्त उक्त पुरा ।  
 किं वा नश्चलसौहृद स्मरति त कस्मादुभजामो वयम् ।  
 लोढालापय कामद श्रियमृते सेवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

इस पद्य में स्पष्टतः ही हंस के दूत होने का उल्लेख पाया जाता है। अतः यह कहना असंगत न होगा कि लेखक ने इस अवतरण के आधार पर ही इस को दूत बनाने की कल्पना की है तथा अपने काव्य का नाम भी इसदूत रख दिया है।

सन्देश काव्यों में प्रायः मंगलाचरण नहीं होता है, लेकिन इस कवि ने काव्य के आदि में कृष्ण की स्तुति में मंगलाचरण भी किया है—

दुष्कूल विभ्राणो दलितहरितालघुतिडर  
 जवापुष्पभ्रंणीरचिरचिरपादाम्युजतल ।  
 तमालश्यामाङ्गो दरदसितलीलाञ्चनमुप  
 परानन्दाभोग स्फुरत्तु हृदि मे कोऽपि पुरप (कृष्ण) ॥१॥

कृष्ण काव्य में कृष्ण की प्रार्थना उचित ही है। मेघदूत से भी कवि ने इस काव्य के लिखने की प्रेरणा कुछ अंशों में अवश्य ली होगी। फिर भी काव्य के यादूप विधान में मेघदूत का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता है। काव्य में कुल १४५ श्लोक हैं। कलकत्ता के धनुमती सस्करण में केवल १०१ ही श्लोक पाए जाते हैं। समग्र काव्य में शिपरिणी छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कथा को पूर्व भाग और उत्तर भाग के रूप में न बांट कर एक साथ ही रखा गया है। सन्देश भी नायक की ओर से नायिका को नहीं भेजा गया है, बरिक्त नायिका की सखी ने नायिका की ओर से उसके प्रेमी के पास भेजा है।

यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से इस काव्य का मार्गदर्शन कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है, फिर भी जिन स्थानों का कवि ने काव्य में वर्णन किया है, वे पाठकों के हृदय को आकर्षित किये बिना नहीं रह सकते। कुछ तो उनका प्राकृतिक सौन्दर्य ही चित्ताकर्षक है। कुछ कृष्ण की लीलास्थली होने के कारण वे भक्तों के लिये स्वयं ही अतीव आनन्ददायक हैं। ऐसे ही स्थलों में सब प्रथम गोवर्धन गिरि आता है। गोवर्धन गिरि का वर्णन करते हुए ललिता कहती है—

सकृद्वशीनादध्वजमिलितामीरवनिता—  
 रह क्रीडासाक्षी प्रतिपदलतासदमसुभग ।  
 स धेनूना धन्धुर्मधुमयनखट्वावितशिल  
 करिष्यत्यानन्द सपदि तत्र गोवर्धनगिरि ॥२॥

प्राकृतिक सुषमा के साथ साथ कृष्ण की प्रणयलीलाओं के केन्द्र होने के कारण अरुण ही गोवर्धन पर्वत दर्शकों को आनन्द दे सकता है ।

कालियहृद के वर्णन में भी कवि ने गोपियों की आतुरता, उत्कराग और चिन्ता का बड़ा ही सुन्दर चित्र अंकित किया है । ललिता कहती है—

उदञ्चन्नेत्राभ्रं प्रसरत्नहरी पिच्छिलपथ—  
स्तरत्पादन्यासप्रणिहितमिलम्बाकुलधिय ।  
हरी यस्मिन्मग्ने त्वरितयमुनाकूलगमन—  
स्पृहाक्षिता गोप्यो ययुरनुपद कामपि दशाम् ॥२६॥

एक तरफ गोपियों को शीघ्रता भी है । दूसरी ओर नेत्र जल से मार्ग के पिच्छिल हो जाने से पैर फिसलने का डर भी है । अतः विषय हो उन्हें धिलम्य करना पड़ रहा है । ऐसे अरुण पर उनकी मानसिक अवस्था का अनुमान सहृदय पाठक ही कर सकते हैं ।

मथुरा नगरी भी कम सुन्दर नहीं घटकाई गई है । ऊँचे २ मकान, फूलों से भरे हुए उद्यान तथा यमुना का तट और यादव लोग तो उसकी शोभा बढ़ाते ही हैं—

पुरी यस्मिन्नास्ते यदुकुलमुना निर्मलवशो—  
भराणा धारामिधंवलितधरित्रीपरिसरा ॥३२॥  
निकेतैराफीर्णा गिरिशगिरिहिम्भप्रतिभट्टे—  
रघष्टम्भस्तम्भात्रलिप्रिलसितै पुष्पिनधरा ।  
निविष्टा कालिन्दीतट भुवि तथाधाव्यति सखे  
समन्तादानन्द मधुरजनवृन्दा मधुपुरी ॥३३॥

लेकिन मथुरा का सौन्दर्य किसी और बात में ही है । कृष्णजी जब मथुरा गये थे, तब वहाँ की स्त्रियों की कृष्णदर्शन लालसा का जो सुन्दर चित्र कवि ने अंकित किया है, वह बड़ा ही भावपूर्ण है । मथुरा की एक स्त्री का वर्णन करते हुए ललिता कहती है—

असव्य विभ्राणा यदमघृतलाक्षारसप्रसौ  
प्रयाताऽह मुग्धे निरम मम वेशे विप्रधुना ।  
अमन्दादशये सभि पुरपुग्न्ध्रीवलकलाद्  
अलिन्दाग्ने धृन्दावनकुसुमधन्वा विजयते ॥३६॥

कृष्ण के दर्शन के लिये यह स्त्री कितनी उत्सुक है । उसे अपने भू गार की पिरगुल चिन्ता नहीं है । वह डरती है कि कृष्ण कहीं आगे न निकल जाय और उसे फिर उनके दर्शन का अवसर ही न मिले ।

इसी प्रकार एक स्त्री ने कृष्ण के दर्शन कर लिये हैं। उसकी भी विचित्र अवस्था हो गई है। उसकी सखी अनुमान लगाती है कि हो न हो, कृष्ण के दर्शनों से ही उसकी यह अवस्था हुई है—

मुहु शून्या दृष्टिं वहसि रहसि घ्यापसि सदा  
शृणोपि प्रत्यक्ष न परिजनविज्ञापनशतम् ।  
अतः शके पङ्क्तेरुहमुखि ययो श्यामलरुचि  
स यूनामुत्तसस्तव नयनवीथीपथिकताम् ॥३८॥

उपर्युक्त पद्य में कृष्ण के प्रति मथुरा की किसी भारी के पूर्वराग वा कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। इसी प्रसंग में आगे चलकर कहा गया है कि कोई स्त्री कृष्ण के वियोग में रोने लगती है। उसकी सखी उसे सान्त्वना देती है कि उसे कृष्ण अवश्य ही फिर मिलेगा—

विलज्ज मा रोदीरिह सखि पुनर्यास्यति हरि—  
स्तथापाङ्गकीडानिविडपरिचर्याग्रहितताम् ॥३९॥

हरि ने लालिता के द्वारा कृष्ण के स्वरूप की जो भाकी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की है, वह भक्तों तथा भावुक पाठकों दोनों ही के लिए आनन्ददायक है। लालिता इस से कहती है—

उदञ्चत्फालिन्दीसलिलसुभगम्भावुकदचि'  
फपोलान्ते प्रेङ्गमणिमकरमुद्गमधुरिमा ।  
यसान् कौपेय जितकनकलक्ष्मीपरिमल  
मुकुन्दस्ते साक्षात् प्रमदसुधया सेदयति दृशो ॥४०॥

आगे चलकर कृष्ण के अंग प्रत्यंग के सौन्दर्य का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया गया है। कृष्ण के विशाल वक्ष स्थल का वर्णन करते हुए कहा गया है—

उरो यस्य स्फार स्फुरति धनमालाऽलपितम्  
धितन्यानं तन्वीजनमनसि सद्यो मनसिजम् ।  
मरीचीभिर्यस्मिन् रविनिवदुत्तुल्योऽपि यद्वते  
सदा खद्योताभा भुवनमधुर कोस्तुभमणि ॥४१॥

कृष्ण के विशाल तथा धनमाला से शोभायमान वक्ष स्थल को देखकर कौन मुग्ध नहीं होगा ?

उनकी भुजाओं का भी सौन्दर्य कम नहीं है। लालिता कहती है—

समन्तादुन्मीलद्वयलभिदुपलस्तम्भयुगल-  
प्रभाजैत्र नेशिद्विजलुलितवेयूरललितम् ।  
स्मरकलाम्यदुगोपीपटलदठकएतग्रहपर  
भुजद्वन्द्व यस्य स्फुटसुरभिगन्ध विजयते ॥६०॥

कृष्ण के मुखारविन्द का वर्णन करते हुए कहा गया है—

जिह्वीते साम्राज्यं जगति नम्रलागण्यलहरी-  
परीपाकस्यान्तर्मुदितमदनावेशमधुरम् ।  
नटदुभ्रूधरलीकस्मितनयसुधाकेलिसदनम्  
स्फुरन्मुक्तापङ्क्तिप्रतिमरत्न यस्य यदनम् ॥६१॥

कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर कथि ने उनके हृदय में आनन्द की लहर उमड़ा दी है। इस को कृष्ण के स्वरूप का कुछ परिचय देकर ललिता कहती है कि गोपियों का सन्देश कृष्ण को तब न सुनाया जाय, जब वे मधुरता की परिष्कृत कवि शाली रमणियों के पास बैठे हों, हो सकता है तब वे गोकुल की ग्रामीण स्त्रियों की बात बिरकुल ही न सुनें—

शिलोकेषां कृष्णमदकलमरालीरतिकला-  
विदग्धव्यामुग्धयदि पुरषधूविभ्रमभरे ।  
तदा नास्मान् प्राप्या धराणपदनीं तस्य गमये  
सुधापूणं चेत् कथमपि न तत्र मृगयते ॥६२॥

उचिन् अरसर देख कर ही इस को अपना सन्देश कृष्ण के लिए सुनाना चाहिए। जब कोयल चूक रही हो और सुरभि न हराव चल रही हो, तब कृष्ण को अवश्य ही वृन्दावन का स्मरण होगा। वन, ऐसे ही अरसर पर ललिता इस से सन्देश सुनाने की प्रार्थना करती है—

यदा वृन्दागण्यस्मरललहरीहेतुरमल-  
पिकाना वेवेष्टि प्रतिहरितमुक्ते कुहुकतम् ।  
यदन्ते वा याता स्फुरितगिरिमल्लीप्रिमल्ला-  
स्तदैवास्माकीना गिरमुपदरेया सुरभिदि ॥६३॥

इसके बाद सन्देश प्रारम्भ होता है। कृष्ण के प्रियोग में माधवीजना तक को रोता हुआ घतलाया गया है—

समीपे नीपाना त्रिचतुरदला हन्त गमिता  
स्वया माकन्दस्य प्रियसद्वचरीभावनियतिम् ।

इय सा वासन्ती गलदमलमाध्वीकपटली-  
मिषादग्ने गोपीरमण रदती रोदयति न ॥६७॥

कृष्ण-त्रियोग में गोपियों के स्त्रय रने का कवि ने कैसे चमत्कार पूर्ण ढंग से यद्वा वर्णन किया है। आगे चलकर ललिता कृष्ण से वृन्दावन में आने के लिये मना ही कर देती है। वह कहती है कि वृन्दावन की लतायें आजकल त्रिपमय हो गई हैं, तभी तो गोपियाँ उनके पुष्पों को सूँघ कर एरुदम मूर्छित हो जाती हैं—

त्यया नागन्तव्य कथमिह हरे गोष्ठमधुना  
लताश्रेणी वृन्दावनमुनि यतोऽभूष्टिपमयी ।  
प्रसूनाना गन्ध कथमितरथा वातनिहितम्  
भजन् सद्यो मूर्छां वहति निजहो गोपसुदृशाम् ॥७०॥

कवि ने इस पद्य में गोपियों की कृष्ण विरहजन्य मूर्छा तो बतलाई ही है, साथ में वृन्दावन की लतायें भी उनके विरह में बदलती हुई दिखलाई गई हैं।

ललिता कृष्ण को उपालम्ब देने में भी नहीं हिचकती है—

कथ सङ्गोऽस्माभि सह समुचित सम्प्रति हरे  
वय प्राप्या नार्यस्तवमसि नृपकन्याचितपद् ।  
गत कालो यस्मिन् पशुपरमणीसङ्गमकृते  
भगान् व्यग्रस्तस्थी तमसि गृहवापीविटपिन ॥७१॥

फिर वह कहती है कि कृष्ण जो हम को छोड़ कर चले गए हैं, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। श्याम वर्ण वालों ( मलिन आत्माओं ) का तो ऐसा स्वभाव ही होता है—

वय स्यक्ता स्नामिन् यदिह तव किं दूषणमिदं  
निसर्गं श्यामानामयमतितरा दुष्परिहर ।  
कुहूकण्ठैरण्डावधिसहनिवासात् परिचिता  
त्रिस्तुज्यन्ते सद्य कलितनजपक्षैर्वलिभुज ॥७२॥

कोयल और कौश्यों के दृष्टान्त को देकर कवि ने कृष्ण द्वारा गोपियों के मूँह आने का यद्वा यथार्थ चित्रण किया है।

आगे चलकर ललिता कृष्ण से कहती है कि तुमने गोपियों को मुला दया इसकी कोई चिन्ता नहीं, पर यह तो बताओ कि राधा को क्यों मुला दिया है—

मया अष्टव्योऽसि प्रथममिति वृन्दावनपते ।  
किमादो राधेति स्मरसि कृष्ण कर्ण युगलम् ॥७३॥



राधा की विरह-स्थिति का वर्णन करते हुए वह कहती है—

तरङ्गैः कुर्वाणा शमनमग्निनीलाधवमसौ  
नदीं काञ्चिदुगोष्ठे नयनजलपूरैरजनयत् ।  
इतीरास्या ह्येवाधमिमतदशप्रार्थनमयी  
मुपारे । विषयि निशमयति मानी न शमन ॥७६॥

राधा के लगातार रोते रहने से जो नदी बनी है, उसके सामने यमुना भी तुच्छ जान पड़ती है। अपनी बहिन के इस तिरस्कार से यमराज भी राधा से द्वेष करने लगा है और उसकी मृत्यु प्रार्थना को विल्कुल सुनता ही नहीं है। कवि ने कृष्ण वियोग में राधा के लगातार रोते रहने और मृत्यु के चाहने का कौसी भाव भगिमा के साथ वर्णन किया है।

ललिता फिर कहती है कि राधा के प्राणरूपी हरिश्च आञ्जलि में उसके शरीर रूपी वन से निकलने वाले ही हैं, क्योंकि उसके शरीररूपी वन में कृष्ण के विरह की आग लगी हुई है तथा कामदेव रूपी शिकारी अपने बाणों से उसे निरन्तर पीड़ा पहुँचा रहा है—

समन्तादुत्ततस्तत्र विरहडात्राग्निशिलया  
कृतोद्देग पञ्चाशुगमृगयुवेधन्यतिकरे ।  
तनूभूत सधस्तनुगमिदं हास्यति हरे  
हठादध श्वो धा मम सहचरीप्राणहरिण ॥७७॥

रूपक के आचरण में कवि ने राधा की विरहवेदना का बड़ा मार्मिक चित्र पहा पर अंकित किया है।

राधा की दशा यताने के बाद ललिता कहती है—

त्रिशीर्षाङ्गीमन्त्रं णविलुठनादुत्कलिष्या  
परीता भूयम्या सततमपरागव्यतिकराम् ।  
परिष्पन्नामोदा विरमितसमस्तालिकुतुकाम्  
विधो ! पादस्पर्शादपि सुखय राधाकुमुदिनीम् ॥७८॥

पादस्पर्श की प्रार्थना से कम और क्या प्रार्थना हो सकती है ? राधा को कुमुदिनी तथा कृष्ण को चन्द्रमा का रूपक देकर कवि ने राधा और कृष्ण के अनन्य प्रेम की भी व्यञ्जना की है। अन्त में ललिता कृष्ण से कहती है कि तुम्हारे वियोग में राधा जो-जो यिलाप करती है, वह सब ठीक-ठीक कौन बतला सकता है। उसकी मनोन्मथा का अनुमान मेरे प्रति कहे हुए निम्न वचनों से आप मध्य लगा सकते हैं। कर्मा २ वह मुझसे कहती है—

मनो मे हा कष्ट ज्वलति किमह हन्त करधै  
न पार नावार किमपि कलयाभ्यस्य जलधे ।  
इय उन्दे मूर्ध्ना सपदि तमुपाय कथय मे  
पराभृशे यस्माद्धृतिकणिकयापि क्षणिकया ॥१०४॥

असीम विरह वेदना में अब केवल मृत्यु ही उसका एक सहारा रह गया है—

प्रयातो मा हित्वा यदि विबुधचूडामणिरसौ  
प्रयातु मञ्जुछन्द मम समयधर्म (मृत्यु) किल गति ॥१०५॥

कत किसी और के लिये नहीं, तो राधा के लिए तो कम से कम कृष्ण को वृन्दावन वापिस आना चाहिए ही। मुत्पतया सन्देश में यही बातें कही गई हैं।

यद्यपि गह्वर रूप से काव्य में मेघदूत का प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता है, फिर भी कहीं कहीं मेघदूत की झलक काव्य में बिना पाठक या ही सकते हैं। ललिता हंस को दूत उनाती है। इस अउसर पर हंस के दूत बनाए जाने का समर्थन करते हुए कवि कहता है—

न तस्या दोषोऽय यदिह विहग प्रार्थितवती  
न कम्मिन् विश्रम्भ दिशति हरिभक्तिप्रणयिता ॥८॥

कालिदास ने भी मेघ के दूत बनाए जाने पर अपनी ओर से उचित समर्थन प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त हंस से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करने के बाद उसकी स्तुति करते हुए ललिता कहती है—

पवित्रेषु प्रायो विरचयसि तोयेषु वसति  
प्रमोद नालीके ( न'अलीके ) बहसि विशदात्मा स्वयमसि ।  
अतोऽह दु खार्ता शरणमगता त्वा गतगती  
न भिक्षा सत्पक्षे व्रजति हि कदाचिद्विफलताम् ॥६॥

इस स्थल में भी मेघदूत का ही अनुकरण किया गया है।

कृष्ण के केलिनिलय का वर्णन करते हुए ललिता कहती है—

भगान् द्रष्टुं हेमोल्लिखितदशमस्कन्धचरितै-  
लंसद्भिस्तिप्रान्तं भुरविजयिनं केलिनिलयम् ॥८६॥

समय है कि कवि ने कृष्ण के क्रीडागृह की भित्तियों के भाग्यत के दशम स्कन्ध की घटनाओं से चित्रित होने का विचार मेघदूत में यक्षगृह के वर्णनप्रसंग में आई हुई—द्रारोपान्ते लिपितवपुषी शङ्खपक्षी च दृष्ट्वा—पंक्ति से लिया हो।

कृष्ण के क्रीडागृह के अलिन्द में मरकतरचित र्याष्ट्र पर रात्रि में मयूर को निधाम करता हुआ बताया गया है—

अलिन्दे यस्यास्ते मरकतमयी यष्टिरमला  
श्यालुर्या रात्रौ मदकलकलापी कलयति ॥४७॥

कवि ने यह भाग अगण्य ही मेघदूत से ग्रहण किया है। वहाँ भी इस प्रसंग में ऐसा ही वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार राधा के विरह वर्णन प्रसंग में एक स्थल पर इस काव्य में कहा गया है कि राधा लमाल के रस से पृथ्वी पर कृष्ण का चित्र बनाती है और उसका साक्षात् कर्ण की तरह ही आलिंगन भी करती है—

भगन्त सन्तप्ता विदलिततमालाट्पूररसै-  
रिलिरय अ भङ्गीकृतमदनकोक्कडकदनम् ।  
निध्रास्यन्ती कण्ठे तव निजमुजावटलरिमसौ  
धरण्यामुन्मीलज्जडिमनिविडाङ्गी विलुडति ॥८४॥

इस पद्य में भी मेघदूत के 'त्यामालिरय प्रणयकुपिताम्' इत्यादि प्रसिद्ध पद्य की छाया स्पष्ट विद्यमान है।

श्री रूप गोस्वामी ने उद्भव सन्देश और हसदूत यह दो दूत काव्य लिखे हैं। श्रीकृष्णमाचारियर ने अपने 'फ्लासिकल सस्कृत लिटरेचर के इतिहास' में भी ऐसा ही माना है।<sup>१</sup> श्री एस० एन० दास गुप्त द्वारा मयादिव 'सस्कृत साहित्य का इतिहास, फ्लासिकल पीरियड, भाग प्रथम ( कलकत्ता )' में श्री एस० के० ३ ने भी इन दोनों दूत काव्यों को रूप गोस्वामी का ही लिखा हुआ माना है।<sup>२</sup> अथ प्रश्न यह है कि इन दोनों सन्देशकाव्यों में कौन सा काव्य कवि की प्रथम रचना है। यदि इन दोनों दूत काव्यों की रूप गोस्वामी का ही लिखा हुआ माना जाय, तो हसदूत को उनकी उद्भव सन्देश के बाद की रचना मानना पड़ेगा। हसदूत में कृष्ण के अन्त पुर का वर्णन करते हुए ४४ वें श्लोक में गोपियों द्वारा उद्भव को दिए गए शुभ मिथुन के परस्पर वार्तालाप का उल्लेख किया गया है।<sup>३</sup> इसके अतिरिक्त ६२

१ दे० पृ० २८८ तथा ३६६-३६७।

२ दे० पृ० ३७७ पादटिप्पणी, पृ० ३७३ पा० टि०, पृ० ७४१ भी।

३ त्रिपाद् मा कार्पाट्टं तमप्रितथव्याहृतिरसौ  
समागन्ता राधे घृतनयशिरण्डस्तत्र सप्ता ।  
इति दूत यस्या शुभमिथुनमिन्द्रानुजटत  
यदामीरीष्टन्दैरपस्तमभूदुद्भवकरे ॥४४॥

यें श्लोक में 'ललिता कृष्ण से कहती है कि उद्धव तो तुम्हारे ही मन्त्री हैं, वे राधा की ओर से तुम्हारा अनुगत क्यों करने लगे। इन सब प्रसंगों से यह निश्चय होता है कि गोपियों का उद्धव से पूर्ण परिचय हो चुका है। अतः उद्धव सन्देश को ही कवि की प्रथम रचना मानना चाहिए। श्री डा० जे० वी० चौधरी ने ( वगाल के दूत काव्यों का इतिहास— संस्कृत पृ० २६ ) में अपनी ओर से यही मत प्रकट किया है। लेकिन यह विषय नितान्त निर्विवाद नहीं है। कवि ने उद्धव सन्देश में कहां भी गोपियों द्वारा उद्धव को शुक्रमिथुन के देने का उल्लेख नहीं किया है। श्रीमद्विभागवत में भी गोपियों की ओर से उद्धव को शुक्रमिथुन के देने का कहां भी उल्लेख नहीं मिलता है।<sup>१</sup> समय है कि भागवत के मूल घटान्त के आधार पर तथा मेघदूत के अनुकरण पर पहिले कवि ने उद्धव सन्देश ही लिखा हो और बाद में अपनी कठरना से स्वतन्त्र कथावस्तु का सृजन कर इसदूत लिखा हो। हनदूत का शिखरिणी छंद भी कवि की उत्तर-कालीन स्वतन्त्र प्रतिभा का परिचायक है।

इन दोनों दूत काव्यों के परस्पर उत्कर्ष के विषय में कुछ भी निश्चय देना, दुष्कर ही नहीं, नितान्त असंभव है। कथावस्तु की दृष्टि से दोनों एक दूसरे का पूरक हैं। भाव, भाग और शैली दोनों में एक सी ही है। केवल छन्दभेद से ही कुछ रास्य भेद दोनों में पाया जाता है। इस अरसर पर दोनों काव्यों के परस्पर भाव-सादृश्य का ज्ञान कराने के लिए कतिपय उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। राधा अपने प्रेम का वर्णन करते हुए इसदूत में कहती है—

अमी कुजा पूर्ण भ्रम न दधिरे कामपि मुद  
द्रुमालीय चेन सखि न कतिशो नन्दितरती ।  
इदानीं पश्येते युगपदुपताप विदधते  
प्रभी मुकापेक्षे भजति न हि को वा निमुखताम् ॥६६॥

उद्धवसन्देश में भी एक गोपी अपनी सखी से कहती है—

आशापाशै सखि नरनरै कुर्यती प्राणग्रन्ध  
जात्या मीरु कति पुनरब्ध वासराणि क्षयिष्ये ।

- १ गुरोरन्तेमासी स भजति यदूना सचियता  
सखी कालिन्दीय किल भजति फालस्य भगिनी ।  
भवेदन्य को वा नरपतिपुरे मत्परिचितो  
वशमस्या शसन् यदुतिलक यस्त्रामनुनयेत् ॥६२॥

- २ दे० भागवत, दशमस्कन्ध ६६ या उद्धवप्रतियान अध्याय ।

एते वृन्दाजनविटपिन स्मारयन्तो जिलासान्  
उत्फुल्लास्तान् मम किल बलान्मम निर्मूलयन्ति ॥८३॥

दोनों अन्तरणों का भावसाम्य स्पष्ट ही है ।

दोनों काव्यों में अन्त में भगवद्दर्पण निमित्त जो श्लोक आए हैं, उनमें भी भाव साम्य तथा पदसाम्य पाया जाता है । इसदृष्ट में कहा गया है—

रसानामाधारैरपिचिन्तयोप सहृदये  
मुं गरातिश्रीडानिप्रिडघटनारूप-सहित ।  
प्रमथोऽय धन्धोरलितजगता तम्य ( कपे ) सरसा  
प्रभोरन्तमान्द्रा प्रमदलहर्यो पल्लवपतु ॥१४७॥

उद्धवसन्देश में भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए गए हैं—(दे० श्लोक सं० १३०, इसी पुस्तक के पृष्ठ ३७५ पर उल्लिखित) ।

दोनों पद्यों में भावसाम्य और पदसाम्य तो है ही । 'रूप' शब्द के उल्लेख से दोनों प्रबंधों के एक ही लेखक द्वारा लिखे जाने का भी प्रमाण मिलता है ।

साहित्यिक दृष्टिकोण से दोनों काव्य बड़े ही मधुर और सरस हैं । वैदर्भी रीति तथा माधुर्य गुण दोनों में ही समान रूप से पाए जाते हैं । शृंगारकार और अर्था लकार दोनों ही दोनों काव्यों में उबिन अश्मर पर प्रयोग किए गए हैं । दोनों काव्यों से कवि की गम्भीर कृष्ण भक्ति का भक्त जन सहज ही अनुमान कर सकते हैं । कवि ने केवल कृष्णभक्त ही है, बरिक्त गोकुल और वृन्दाजन भी उसके लिए अत्यन्त प्रिय हैं । उद्धवसन्देश में कृष्ण के 'भूरन्या मे हृदि सुखकरी गोष्ठन' का वि नास्ति ॥८॥' इस पद्यन में कवि की आत्मा प्रतिध्वनित हो रही है । दोनों काव्यों में कवि ने भक्ति की जो पवित्र धारा बहाई है, उसमें मग्नजन कर कौन अपने को हनार्थ न समझेगा । अपने को सर्वथा नारी मानत हुए कवि जन गोपी मुख से कहता है—

न निर्जस्तु दामोदरपदमणिष्ठाङ्गुलिनख-  
घूर्तिना लायस्य भवति चतुरास्योऽपि चतुर ।  
तथापि स्त्रीप्रवासुलभतरलत्याददमसौ  
प्रवृत्ता तन्मूर्तिस्त्वरतिमदासादसरसे ॥ इसदृष्ट ॥४७॥

तभी पाठक भक्तकवि की गम्भीर भगवद्भक्ति का अनुमान कर सकते हैं ।

इस प्रकार दूत काव्यों की परम्परा में भाव तथा रस का नया दृष्टिकोण उपस्थित करने में इन दोनों काव्यों का बड़ा महत्त्व है । शृंगार रस में भक्ति का पुष्ट देकर कवि ने अपनी रचनाओं को रसिक तथा भक्तजन दोनों के ही हृदय का द्वार बना दिया है । दोनों काव्य कृष्ण भक्ति व अमर सन्देश को पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं ।

## माधव कवीन्द्र का उद्धवदूत ( वि० सप्तदश शतक )

उद्धवदूत के रचयिता श्री माधव-कवीन्द्र भट्टाचार्य के सम्बन्ध में विशेष कुछ बात नहीं है। काव्य के अन्तर्लेख से केवल इतना निश्चित होता है कि यह कवि किसी तालितनगर नामक स्थान का रहने वाला था<sup>१</sup>। श्री कृष्णमाचारियर ने इस कवि को ई० १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ का माना है<sup>२</sup> और श्री एस० वें० दे इस कवि को ई० १७वीं शताब्दी का मानते हैं<sup>३</sup>। काव्य के भाग्य प्रवाह से कवि की प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति का परिचय मिलता है। कवि ने अपने ग्रन्थ को श्रीकृष्ण के लिए भेंट करते हुए लिखा है—

नानाराम प्रणयि सुमन सङ्गसौभाग्यभाजा  
जाङ्ग्यापाये सुरभिसमयस्यापिना माधवेन ।  
राधाबन्धोरुपहनमिति प्रेममाध्वीकमेतन्—  
निर्यिज्जेन श्रवणपुटकै पुण्यवन्त पिरन्तु ॥१४०॥

इस उद्धरण से माधव नामक किसी कवि के उद्धवदूत का लेखक होने तथा उसके उत्कट कृष्णभक्त होने का दृढ़ प्रमाण मिलता है।

मध्यकाल में बंगाल के कृष्णभक्त कवियों द्वारा लिखे गये संस्कृत के दूत काव्यों में इस दूत काव्य का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

उद्धवदूत काव्य का लेखक तालितनगरनिवासी यह माधव कवीन्द्र, पद्यावली में उल्लिखित माधव और माधवपुरी, सुभद्राहरण, श्रीगदित और प्रणयिमाधवचम्पू का लेखक माधव, दानलीलाकाव्य का लेखक तथा लक्ष्मण का पुत्र माधव और श्रीधरदास के सदुक्तिकर्णामृत में उल्लिखित माधवसेन यह सब भिन्नभिन्न व्यक्ति हैं<sup>४</sup>।

### काव्य की कथा

जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इस काव्य में उद्धव को दूत बनाया गया है। श्री कृष्ण गोपियों के लिये अपना सन्देश देकर उद्धव को मथुरा से गोकुल

१ दे० अन्तर्लेख इति तालितनगरनिवासि श्रीमाधवकवीन्द्र भट्टाचार्यविरचित-  
मुद्धवदूत खण्डकाव्य सम्पूर्णम् ।

२ दे० हिस्ट्री आफ फ्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० २६६, पा० टि० ।

३ दे० ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, फ्लासिकल पीरियड, प्रथम भाग,  
कलकत्ता पृ० ७५२ ।

४ दे० कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० २१७, पा० टि० ।

भेजता है। उद्धव क गोकुल में पहुँचते ही राधा उन्हें कृष्ण का भेजा हुआ दूत समझ कर अपनी तथा अन्य गोपियों की निरहव्यथा उन्हें सुनाना प्रारम्भ कर देती है और कृष्ण को उपासना भी देने लगती है। तदनन्तर उद्धव को कृष्ण के लिये अपना सम्देश सुनाती है।

सन्देश में सर्वप्रथम यशोदा, नन्द, गोपालगृहों, गायों, बैलों, कैलिन्दम्ब, मयूर, कदम्बवृक्ष, वृन्दावन व अन्य वृक्ष, गालगाल और गोपियों की कृष्ण विरहजन्य दुःखमयी प्रणित की गई है। तदनन्तर राधा ने अपनी निरहव्यथा ने वर्णन के साथ साथ कृष्ण को गोपियों क मूल जाने पर विविध आक्षेप भी दिये हैं। कृष्ण के कु-ज्ञाप्रेम की भी स्थान स्थान पर मर्सना की गई है, अकूर को भी करारी फटकार पनाई गई है। विविध भाव भगिमाश्रों के साथ कृष्ण को तरह तरह के आक्षेप किए भी दिये गये हैं। राजा अपने मानसिक खोम तथा आगा और निगारा का बड़ा रुढ़ण वर्णन करती है। निरिह गोपियों क सनान में कृष्ण के कठोर चरित्र की निन्दा भी करती है। कृष्ण के द्वारा भुला दिये जाने पर अपनी अमहान्तर अस्थिर तथा अन्य गोपियों क विविध उपासनाओं का वर्णन करने के बाद राधा कृष्ण से कहती है कि मे या तो शायद ही वृन्दावन आजायें या वहाँ ही लाचों उर्व रहूँ। वह चाहे स्वर्ग जाये या नरक, मरे या जिये, उसका तो कृष्ण क अतिरिक्त और कोई प्रिय नहीं है। अन्त में यह कहती है कि यदि प्रियोग में उसके प्राण निमग्न जात हैं, तो कृष्ण को अपने हावों से ही उसे जनदान देना चाहिये। यह फिर कहती है कि प्रियोग में उसका शरीर गँदा जा रहा है, हृदय फटा जा रहा है और उसके मर जाने का पाप कृष्ण पर ही पड़ेगा। इतना कहते कहते 'हा हा हा हरि हरि हरि' पुकारती हुई मूर्च्छित होकर वह जमीन पर गिर पड़ती है।

श्रीमद् ही श्रीमद् जन तथा अपने उत्तरीय के पवन से उद्धव उसका उपचार करने लगता है। वोही वर बाद ही राधा को कुछ द्रोह में आता हुआ देखकर उद्धव उसका कान में अपना परिचय न्त है। कृष्ण का नाम सुनते ही राधा उठ बैठती है। उद्धव को इस बात का पश्चात्ताप भा होता है कि उन्होंने पूर्व ही अपने आने का उद्देश्य राधा को क्यों न बताया। बाद में वे फिर राधा को कृष्ण का सम्देश सुनाते हैं।

कृष्ण ने सन्देश में उनके मनस्ताप तथा राधा की सनत स्मृति इत्यादि का वर्णन किया गया है। अन्त में राधा को मिलने की आशा बधाई गई है।

सन्देश सुनाने के बाद उद्धव क्या देखते हैं कि राधा क नेत्रों से आसुओं की झड़ी लगी हुई है। उसका अनन्य कृष्ण प्रेम को दर्शन कर धडा और भक्ति से पुलकित होकर उद्धव उसका चरणों में प्रणाम करते हैं और श्रीकृष्ण का उत्तरीय उनके प्रेम के प्रतीकस्वरूप राधा को भेंट में देते हैं। राधा की मदिरा

गाते हुए बार बार उसके चरणों में फिर भी प्रणाम करते हैं। जब वे गोकुल से जाने लगते हैं तो उनके तथा राधा दोनों के नेत्रों में आसू आ जाते हैं, कण्ठ गदगद हो जाता है और किसी के भी मुख से कोई बात ठीक नहीं निकलने पाती है। अन्त में गोकुल की सारी जनता स विदाई लेकर व मथुरा के लिए चल पड़ते हैं। इधर राधा भी कृष्ण के प्रेम सन्देश का ध्यान करती हुई आनन्दमग्न हो जाती है।

बस, इस प्रकार काव्य की कथा भी यहाँ पर ही समाप्त हो जाती है।

## काव्यसमीक्षा

धर्मवृत्त-भाष्य के प्रसिद्ध कथानक का आधार लेकर यह काव्य लिखा गया है। गोकुल की गोपियों को सान्त्वना देने के लिए कृष्ण का मथुरा से उद्भव को अपने सन्देश के साथ गोकुल भेजना सर्व विदित ही है। कृष्ण के द्वारा भेजे हुए उद्भव को ही इस काव्य में अपना दूत बनाकर राधा कृष्ण के पास भेजती है। अतः इस काव्य में उद्भव दोनों तरफ से ही दूत का कार्य करते हैं। काव्य का नाम 'उद्भवदूत' सार्थक ही है। कवि ने मेघदूत के अनुकरण पर इस काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया है। कबल अन्त का एक श्लोक ही अनुष्टुप् छन्द में है। काव्य में कुल १४१ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा कथावस्तु का विभाजन भी नहीं किया गया है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कवि ने कृष्ण के पास से आये हुए उद्भव को ही राधा का दूत बनाकर मथुरा भेजा है, इसलिए इस काव्य में मार्गदर्शन का नितान्त अभाव है। फिर भी कवि ने राधा के सन्देश को इतना विस्तृत रूप दिया है कि यह दूत-काव्य भी अन्य सर्वांगपूर्ण दूत काव्यों की तरह ही विस्तृत और भावपूर्ण हो गया है। कवि ने स्थान स्थान पर वड़े कोमल भाव व्यक्त किए हैं और राधा तथा अन्य गोपियों की निरहवेदना का बड़ा सजीव चित्र उपस्थित किया है। गोपियों की निरहावस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—

सिंहच्याग्रभृतिभिरपि प्रेक्ष्यमाणं प्रजापै-

गान्धेयु प्रखरकुररीसद शिष्यन्त्य ।

एकाकिन्यस्तरणतिमिरास्तपदस्पर्शपुण्यं

चन्दारण्ये कति युवतयो यामिनीर्वापयन्ति ॥२॥

कृष्ण विरह में गोपियों को लगातार रोता हुआ देखकर हिंस्रपशु भी डरीभूत हो जाते हैं और कुररी ( टिटिहरी ) जैसा छोटा पक्षी भी डरती और रोती रह जाता है। गोपियों के कष्ट-रुन्दन का इससे बढ़कर और क्या निदर्शन हो सकता है।



कृष्ण के विरह में न केवल गोपियों ही व्यथित हैं बल्कि गोकुल का सारा जीवन ही अस्तव्यस्त हो गया है। राधा गोपालों के प्रेयों का वर्णन करती हुई कहती है—

दोह प्रायो न भवति गरा दोहन जेन पारु  
क्षीराणा स्यात् स भवति यदा दुर्लभ तदधित्वम् ।  
दध्न सिद्धौ न स खलु मधन मन्यते कपोपयोग-  
स्तकादीनामिति गतिरभूदथ गोधुग्गृहेषु ॥२७॥

किसी भी प्रिय के वियोग में लोगों की अपने काम में अरुचि हो जाना स्वाभाविक ही है ।

न केवल स्त्री पुरुष ही कृष्ण के विरह में व्याकुल हैं, बल्कि गाए भी कृष्ण की खोज करती रहती हैं और अपने डाल के ही व्याप हुए बछड़ों तक को दूध नहीं पिनाती हैं—

वत्सालोकस्मरण सुलभप्रसन्नप्लावनीयम्  
भ्रूलीजाल मत्तसलिलैरधस्तु प्लावयन्त्य ।  
स्यामन्विष्य मजपुरसरिक्तीरभूपु भ्रमन्त्य  
सधोज्ञातानपि सुरभयो नार्भजान् पावयन्ति ॥२८॥

जिन गावों की कृष्ण स्तन परिचर्या किया करते थे, वे अब घास खाने में गिरकुल नि स्पृह हैं और हर तरफ कृष्ण की खोज में उनकी आँखें भगी रहती हैं। जिस कदम्ब के वृक्ष के नीचे कृष्णजी बैठ कर रहे थे, उसको ही वे सूँघती रहती हैं और अपने आसुओं से उसको सींचती रहती हैं—

नि प्रेमाणा ललितपथसश्यामसीमन्परप्ये  
न्यस्य न्यस्य त्रदनुसृतये चक्षुषी दिक्षु दिक्षु ।  
आजिघ्रन्ति व्यथितमनस किं च सिचन्ति पाप्मै  
म्रीडानीप तथ यदुपते वत्सला वत्सतय्य ॥३०॥

कवि ने कृष्ण प्रेम का कैसा अद्वितीय प्रभाव दिखलाया है। पशु भी उनके विरह को अनुभव करते हैं।

उन के विरह में न केवल चेतन प्राणी ही बल्कि वृन्दावन के वृक्ष भी दुःखित हैं। उनका स्वरूप से ऐसा लगता है मानों वे योगी हो गए हों। राधा कहती है—

पाण्डुच्छाया कुसुमरजसा भृगमालाजटाला  
सर्षीताङ्गा किशलयदचा पाटलेनाम्बरेण ।

भोगाभावादपगतश्च पात्रनाभ्यासभाज  
सर्वे वृन्दावनविटपिना योगिचर्या चरन्ति ॥३४॥

कवि ने वृक्षों को योगियों का रूपक कितनी सुन्दर रीति से दिया है।  
वियोगिनी गोपिया भी एक स्थान पर योगिनों की तरह वर्णित की गई हैं—

धीतासङ्गा शयनवसनस्नानपानाशनान्दो  
गायन्त्यमृतचरितगुणिता सन्तत गीतगाथा ।  
ओदासीन्य किमपि सकला बन्धुवृन्दे बहन्त्यो  
गोप्यो लीलाक्षितिषु भगवतो योगिनीयस् भ्रमन्ति ॥३७॥

उपर्युक्त पद्य में कवि ने गोपियों की गिरहकालीन स्मृति, गुणकथन, उद्वेग  
और चिन्ता इत्यादि दशाओं का एक साथ बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

आगे चल कर गद्या कहती है—

कूलकोडे तपनदुहितु श्यानपङ्के निमग्न  
यन्नादुन्ध्यापितमथ कतोपस्क्रिय कौशलेन ।  
न्यस्त पीठे तत्र चरणायोरचम्यचिह्न पद तत्  
शालग्रामोपलमित्र सदा मद्विधा पूजयन्ति ॥४०॥

यमुना के तट पर सूर्योदय एक में से कृष्ण के चरणा-चिह्नों को निकाल कर  
तथा उन्हें सिंहासन पर रखकर शालग्राम की तरह उनकी पूजा करना गोपियों के  
परिण प्रेम का बड़ा ही प्रमाण-पूर्ण उदाहरण कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया  
है। धन्य है कवि की करपना।

राधा फिर कृष्ण के लिये कुछ उपालम्भ भी देती है—

भक्तिप्रीतिप्रणयसहित भानदम्भाद्यपेत  
चेतोऽस्माक गुणरश्मिगुण मोदुद्वा देहमेतत् ।  
विक्रीत ते युगपदुभय स्वीकृत च त्वयाद्यो  
हृदयहृणासि त्यजसि च वपुर्नाथ कोऽयं विचार ॥४८॥

जब दो वस्तुओं का एक साथ विक्रय किया जाये और उन्हें कोई स्वीकार  
भी करले, तो उनमें से फिर किसी एक मङ्गलपूर्ण वस्तु का तो रखना तथा अन्य  
तुच्छ वस्तु का छोड़ देना बड़ा तर्क उचित हो सकता है। फिर गोपियों को एकदम  
छोड़ देने तथा उनकी कुछ भी सुध न लेने की बात पर राधा कृष्ण को बड़ा लज्जित  
भी करती है—

स त्व दोषेऽप्यसति कुरुपे किंकरीणाममद्र  
यस्य नास्ते जा इति न भो वक्षु मेव युनक्ति ॥५०॥

कथा के बश, पिता माता और चरित्र की प्रशंसा करने के बाद राधा कृष्ण पूछती है—

एकैकन्ते जयति जगदानन्दि चित्र चरित्रम्  
कस्मादेव विरहदहने देव ! दासीर्जु होषि ॥२३॥

इस तरह विभिन्न उपालम्भ देने के बाद राधा कृष्ण को अपना सन्देश मत हुये कहती है—

तत्प्रज्ञानं कथय शतधा प्रेम्ण प्रेम्णलक्षम्  
चिन्तारत्न नितरं कुर्व वा सानुतापप्रसङ्गान् ।  
या-दोर्ध्वा तव नवयनश्यामल धाम गाढम्  
नाशिलप्यामि मुटति न हि मे तापदेवैव ताप ॥२६॥

राधा की विरह-ज्यप्रता का पाठक उसके इन वचनों से सहज ही अनुमान लगा सकते हैं ।

इसके बाद यह कहती है कि कोई तो तुम्हें लक्ष्मीकान्त कहता है, कोई चिदानन्द कहता है और कोई साधक तुम्हें सिद्धिस्वरूप बतलाता है, लेकिन मैं तो तुम्हारे उसी मुरलीधर श्यामरूप की ही दासी हूँ और सब रूप तो मेरे लिए व्यर्थ हैं—

यो याऽन्यो वा भव नवयनश्याम तस्यैव धाम्नो  
दासीभूता वयमिति पदे बन्ध्यकरपा विकरपा ॥३०॥

राधा फिर कृष्ण से कहती है—

नायासि त्व न च नयसि मामात्मन पादमूलम्  
नो वा दूत त्रिस्तुजसि न वा लेखलेश ददासि ।  
नि श्यासाग्निनियतति न ते काचिदाश्यासरात्रां  
कस्मिन्नास्यामुपहितग्री जीरित धारयामि ॥३१॥

राधा की विरहभावनाओं का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण इस पद्य में प्रस्तुत किया गया है । अपनी विरहता का वर्णन करते हुए राधा कहती है—

यान्नि प्राणा नहि बहिर्गमी नुद्यमानाश्च गाढ  
सत्यं गत्यन्तर्गमपि न मे किञ्चिद्भक्ति प्रसत्या ।  
मग्न चेत् कुलिशकटिने त्वय्यनुदायमेतत्  
तेनैवाहं भयदनुगतिं सञ्चिता किं करोमि ॥३६॥

जिस राधा को कृष्ण निमेषमात्र के लिये भी अपनी आँखों से दूर नहीं करते थे, वह राधा युग युगान्तरो से कृष्ण का वियोग सह रही है—

दत्तो यस्यै न धनु निमिषो दृष्टिप्रिञ्जोऽपि तस्ये  
दूरस्थित्यै वितरसि रिमो । योगपद्याद् युगानि ॥१०॥

राधा को कृष्ण के विरह में समय कितना भारी जान पड़ता है । कुछ पक्ष या मास युग जैसे मालूम पड़ते हैं । कृष्ण के द्वारा भुला दिये जाने पर अपनी निरुपाय अवस्था का वर्णन करती हुई फिर वह कहती है—

रुक्ता लोका कटुकञ्चस ह्यलये सर्व एष  
क्षीणासि त्व कथमिति बहिर्भाष्ययाचोदहन्ति ।  
ग्रामस्थान्ते तपनतनयाकूलमुद्यानमूल  
शून्य लीलाशरणमपि ते कुत्र तन्निवृत्तौमि ॥१६॥

वैमुरय ते किमपि मदनो माद्यति करकर्मा  
नर्मालापेऽपि कुञ्चने र्धाक्षते बन्धुवर्ग ।  
चेतो नाथ त्वयि विनिहित धाचमुलट्ठ्य यासा  
। १६। मुक्ति शिखितफलुपिता कहपते किं करोमि ॥१००॥

उपर्युक्त पद्यों में राधा की मानसिक व्यथा का बड़ा भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है ।

सन्देश के अन्त में राधा कहती है—

अन्नागच्छ त्वरितमथवा तिष्ठ तत्राप्सलक्षम्  
शृण्वन्तेते जनपदजना मुक्तकण्ठा प्रसीमि ।  
यामि ह्यग निरयमथवा प्राणिमीदृ म्रिये वा  
श्यामादन्धो नहि नहि नहि प्राणनाथो ममास्ते ॥१०४॥

राधा के इस सन्देश में कवि ने उसके प्रेम की कैसी गूढ़ व्यञ्जना की है । इस प्रकार अपना सन्देश पतते २ फिर राधा एक साथ कह उठती है—

श्याम श्याम स्मर सहचरौ मन्दकारीकृत मे  
वेनाकस्माद् भ्रमति भुवन मज्जति घोरवन्ध्याम् ।  
काहं कथाहं क्व मम दयित कुत्र तस्यैव दासो  
हा हा हा हा । हरि हरि हरि । क्षीणमप्य प्रसीद ॥१०८॥

कवि ने राधा की प्रिय वियोग जन्य उन्माद अवस्था का बड़ा भावपूर्ण वर्णन

यहाँ पर किया है। ज्योंही राधा अपना सन्देश समाप्त करती है, त्योंही यह मूर्छित हो जाती है—

इत्युद्राहुर्मिलपुलका कम्पनासन्नकण्ठी  
छिन्ना मूले पतनि भुवि सा हेममल्लीर यावत् ॥१०६॥

कवि ने राधा के अमीन पर गिरने की बड़ी ही उपयुक्त उपमा यहाँ पर दी है।

उद्धव जब राधा के मूर्च्छित हो जाने पर गीतोपहार के द्वारा उसे कुछ कुछ होश में आता हुआ देखते है, तब उसके कान में कृष्ण के दूत होने का प्रपन्ना परिचय बड़े जोर से देते हैं। इन शब्दों को सुनकर राधा एक दम उठ बैठती है। कवि ने इस दृश्य का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

सातिस्त्रादुर्द्वेषधुदमनी तुरयपीयूषवाणी—  
वर्णधेणि धनपुष्टेनान्तरस्या शिशन्ती।  
को जानीते किमहं पर सत्वर सापि तप्री  
किङ्कि किङ्कि कथय कथयेत्युत्थिता कोतुकेन ॥११४॥

कृष्ण का नाम सुनते ही राधा की उत्सुकता का बड़ जाना स्वाभाविक ही है। कवि ने इस पद्य में राधा के औत्सुक्य का किनने अनुरूप शब्दों में वर्णन किया है। भावों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया गया है।

राधा के होश में आते ही उद्धव उसे कृष्ण का सन्देश सुनाना प्रारम्भ कर देते हैं ताकि राधा फिर बेहोश न हो जाय। सर्व प्रथम राधा को कृष्ण के शीघ्र ही अपने मिलने का आश्वासन दिया गया है—

साक्षादीक्षा न भवतु विर धिनिता तेन माम्—  
देवाधीनो गमयति जन कोऽपि कुत्रापि कालम् ।  
वन्दीभूत मयि तव मनस्त्वग्यपीद ममेति  
क्षाम्यामाम्या मिलनमचिरादाय्यो साधनीयम् ॥११५॥

इसके बाद कृष्ण गोपियों के अपूर्व प्रेम तथा साहस का वर्णन करत हुए अपने राजा होने की निन्दा भी करत हैं—

उद्रा बन्धुमण्यपदवी लङ्घिता लोचलज्वा  
मूर्ध्नि न्यस्तं पदप्रपशम शङ्कितो नापमृत्यु ।  
मामारादुधु किमिव न वर्तं दुस्कर द्वादर्शमि—  
त्यक्त्या युष्मान् मम यदुपतरय राज्यं धिगस्तु ॥११६॥

मथुरा में कृष्ण के लिए भले ही सब सुगु हा, लेकिन गोपियों के साथ रहने का आनन्द कदा मिल सकता है। इसी बात को लेकर कृष्णजी कहते हैं—

रम्या हर्म्यात्रलिरियमभी बन्धव सानुगन्धा  
नियरेय जयति नगरी गुम्फिता नागरीमि ।  
एषा सम्पत् किमिह न सुरा किन्तु कान्तारकुक्षी  
युष्माभिर्य समजनि स मे दुर्लभो हृदिनोद ॥१२४॥

कृष्ण के लिए सारी सृष्टि ही राधामय जान पड़ती है—

सर्वत्रैव स्फुरति मम तु त्वन्मयी सृष्टिरेव ॥१२५॥

कृष्ण ने इन प्रसंगों से कृष्ण का भी गोपियों के प्रति अनन्य प्रेम दर्शाया है। आगे चलकर कृष्णजी राधा से कहते हैं कि मैंने तुम्हारे प्रेम को छिपाने के लिये अपनी एक सारिका का नाम 'राधा' रख छोड़ा है लेकिन प्रसंग के बिना ही मैं उससे—हे राधे ! क्या तुमने मेरी मुरली ली है—बार बार पृष्ठ बैठना है। इस तरह तुम्हारा नाम छिपाने का मेरा प्रयास व्यर्थ ही चला जाता है और मेरे साथी भी मुझ पर हसते हैं—

उद्यद्गोत्रस्थलनमनिश गोपि । ते गोपविष्यन्  
राधानाम्भीमकरवमह सारिकामन्तिकस्थाम् ।  
नीता राधे मम मुरलितेत्यवमादीभ्यकाण्डे  
यक्तु सम्पस्मितजनयितुस्तन्ममासीत् वृथैव ॥१२८॥

कृष्ण ने इस पद्य में कृष्ण के हमेशा राधा को स्मरण करते रहने का वैसी भाव भनिमा के साथ वर्णन किया है।

अपने सन्देश के अन्त में कृष्ण राधा को पुन शीघ्र ही मिलने की आशा दते हैं—

जाने प्राणेश्वरि । मम यथा निर्जित्वा तथा ते  
सन्तप्ताया युगपद्भियान्त्वयतन्यो रज्ज्यम् ।  
यास्यन्त्येता दिनकतिपयैरङ्ग । पत्यङ्गमाजो  
सत्यं सत्य निमिषनिभृता आयवो मुस्थिता स्या ॥१३०॥

जिस प्रकार राधा ने कृष्ण विरह में अपनी व्याकुलता बतलाई है, उसी प्रकार कृष्ण भी राधा के विरह में उतने ही व्याकुल हैं। कृष्ण ने दोनों की मनोव्यथा का समान रूप से वर्णन कर राधा और कृष्ण के प्रेम को आदर्श रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

उद्धर कृष्ण के सन्देश को समाप्त करते ही हैं कि उन्हें राधा के नेत्रों से तीव्र अध्वारा प्रसहित होती हुई टिखलाई देती है। राधा के तीव्र प्रेम को देखकर श्रद्धा और भक्ति से पुलकित हो वे फिर उसे सान्त्वना देते हैं तथा कृष्ण के उत्तरीय को उनकी स्मृतिस्वरूप उसे भेंट करते हैं—

इत्याचख्यो विरमनु पर निष्फलो देवि खेद ।  
एतद्वासो नयति । हरे श्रीमदगाधिरूढम्  
चेतो मूढ न कुर्व कर्णसागरे सङ्गताऽसि ॥१३४॥

उद्धर के उपर्युक्त वचनों में यही आत्म यता भरी हुई है। अन्त में उद्धर राधा की प्रार्थना करते हैं—

मातर्मातर्जय जय जगन्मोहन मोहयन्त्या  
कस्ते तस्य कलयतु न यद्देगमोऽपि वेद ।  
मन्योऽसौ परिजनतया वरलभस्येति तस्यै  
वार वार तदनु दधिरे तेन वृद्धमलामा ॥१३५॥

उद्धर की इस श्रद्धा और भक्ति का ही यह परिणाम था कि गोकुल से उनके जाते समय दोनों ( राधा और उद्धर ) की यही ही भावपूर्ण स्थिति थी। कवि ने इस द्दिवि का यदा ही सजीव चित्र उपस्थित किया है—

सर्वाङ्गीन पुलकमुद्भूद्धुमने च दृष्टी  
कण्ठो भग्नस्वर इव वच पर्यस्थानशून्यम् ।  
तस्यास्तम्भाप्यजनि युगपद्यानकाले तदानीम्  
मुग्धा मूर्धन्यभरदुभयोरदुभुता पुष्पवृद्धि ॥१३६॥

इस तरह मारे गोकुल को अपने मुँह भाषण तथा सद् व्यवहार से धरीभू। कर उद्धवर्जी कृष्ण के पास लौट आते हैं—

आमन्यैकस्तदनु सकल धोषमुक्कलमान  
सद्यो राधारमणचरणमेक्षणाय प्रतस्थे ॥१३६॥

काव्य के इस प्रिस्तुत अनुशीलन से पाठक जान सकते हैं कि कवि की वर्णन शैली यही ही रमणीय है। काव्य में दो सन्देशों का समावेश कर कवि ने अपनी रिलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। नायक तथा नायिका दोनों की विरहभाव नाओं और चेष्टाओं का सर्वांगपूर्ण चित्रण इस काव्य में पाया जाना दे। नायक की ओर से आये हुए दूत से उसका सन्देश सुनने से पहिन्न ही नायिका इस काव्य में अपना सन्देश कदना प्रारम्भ करती है। यद्यपि यह वान कुछ विषम सी मालूम पड़ती है, लेकिन कवि ने इस तरह गोपियों की भावप्रयत्ना का परिचय दिया है।

प्रिय के पास से आये हुए दूत को देखकर ही गोपियों के हृदय का बाध टूट जाता है और बरबस ही उनके मुख से निरह तथा उपालम्भ के वचन निकलने लगते हैं। सभ्य है कि कवि ने जान बूझ कर अपने काव्य में यह वैषम्य उपस्थित किया हो क्योंकि कृष्ण की तरफ से कुञ्जा के सम्बन्ध में निम्न पद्य में दी गई सफाई—

कुञ्जामृज्वीमकरमुरीकृत्य यन्निर्घृणत्व  
तत्तात्पर्य निपुलमतयो नापयन्ति क्षति का ।  
हित्वा वेश कुलपदशा वेशमक्षिभ्रुव वा  
क्षन्तव्य मे नहि कुटिलतरेतेदुष्प्रापक तत् ॥१०६॥

राधा के—सङ्कोचो यस्तव गुह्यजने यच्च पौराङ्गनासु  
व्यक्तीभूत तदुभयमभूत् कुञ्जिकोपग्रहेण ॥१०७॥

इत्यादि व्यंग्य के वाद ही सगत हो सकती है। इसके अतिरिक्त—

रद्धा यन्पुष्पप्रणयपदवी लट्ठिघता लोक्कलज्जा  
मूर्ध्नि न्यस्त पद्मपशस शकितो नापमृत्यु ।  
मामाराद्ध किमिदं न कृत दुष्कर त्वादृशीभि-  
स्त्यक्त्या युष्मान् मम यदुपतेरथ राज्य धिगस्तु ॥१०८॥

इत्यादि कृष्ण के प्रेमपूर्ण वचनों को सुनकर प्रणयिनी राधा का मन स्वत ही क्षोभरहित हो जाता, तदनन्तर—

स्वच्छेदानां नगरतरङ्गी सार्धसर्पसभूत—  
स्ता अप्येव तव निमित्तरास्तुभ्यमथ स्वदन्ते ।  
अस्तीत्सुन्यास्तदपि भवत समुखी वा यदि स्या  
किं स्यादेतन्न खलु निपुण भाग्यन्त्यप्ययमि ॥१०९॥

इस प्रकार के ईर्ष्या युक्त वचन राधा के मुख से निकलते ही नहीं तथा पाठकों को अच्छे भी नहीं लगते। स्थान-स्थान पर गोपियों ने कृष्ण को जो उपालम्भ दिये हैं, वे कृष्ण के सन्देश के सुनने से पूर्व ही अच्छे लगते हैं। कृष्ण के प्रेमपूर्ण तथा आश्रयसन् युक्त सन्देश को सुनकर गोपियों के मन में ईर्ष्या तथा क्रोध ठहर ही कैसे सकते हैं। राधा के मूर्च्छित होने का जो दृश्य पाठ्य में उपस्थित किया गया है, वह कृष्ण के सन्देश को उद्भव द्वारा पहिले न सुनाये जाने के कारण से ही उपस्थित हो सका है। अतः दोनों सन्देशों को कवि ने अपने पूर्व निश्चय से ही इस क्रम से रखा है।

काव्य की क्या वा आधार तो धीमदुभागवत की कथावस्तु है ही। कवि ने प्रायः भागवत के भावों को ही प्रकारान्तर से अपने काव्य में उपनिबद्ध किया है।



भाग्यत से कथारम्भ को लेकर फिर उसके भागों से करि दूर ही कैसे गइ सकता है । भाग्यत में उद्धर से कृष्ण के सम्प्रेष को सुनने के बाद यशोदा का वर्णन करते हुए कहा गया है—

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रम्य चरिणानि च  
भृशन्त्यश्रूयन्नास्त्राक्षीत् स्नेहस्तुतपयोधरा ॥१०॥४६॥२८॥

इसी प्रकार इस काव्य में भी प्रसंगान्तर में यशोदा के सम्बन्ध में—

नीति नामन्यपि च भरत (कृष्णस्य) प्रस्तुयाना म्मनाभ्याम् ॥२५॥

कहा गया है । भाग्यत में गोपियों उद्धर से कृष्ण का वृत्तान्त पूछती हुई कहती हैं—

अपि स्मरति न साधो गोविन्द प्रस्तुते कश्चित् ।  
गोष्ठोमधे पुरस्त्रीणा प्राग्या स्मैरुवाचान्तरे ॥१०॥४७॥४९॥

इसी से मिलते जुलते भाग—

हन्तभीरी स्मरतु स कथ सवृतो नागरीभि ॥१६॥

इत्यादि पद्य में पाए जाते हैं ।

कहीं कहीं भाषा साम्य भी स्पष्ट ही दिखलाई देता है । भाग्यत में गोपियों के प्रगाढ़ कृष्ण प्रेम को देखकर उद्धर परमप्रसन्न हो जाते हैं । उनके मुख से बरबस गोपियों की प्रशंसा में यह वचन निकल पड़ते हैं—

कथमा स्त्रियो धनचरीर्यभिचारदुष्टा,<sup>१</sup>  
कृष्णे क्व खैव परमात्मनि रुद्धमार ॥१०॥४७॥४६॥ इत्यादि

उद्धरदूत में राधा उद्धर को दूत बनाते समय कहती है—

कैवा योषित् प्रकृतिचपला पामरी कातरा च  
ज्यायान् यातो यदुङ्गलपतेर्वत्नमत्वं क्व च त्वम् ॥१५॥

यद्यपि दोनों स्थलों में प्रसंग भिन्न है, फिर भी भाषासाध्य तो स्पष्ट ही है ।

१ 'धनचरी' के स्थान में 'धनचर्य' होना चाहिये । आर्यप्रयोग होने से ठीक माना जा सकता है ।

उपर्युक्त कतिपय अन्तरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि ने श्रीमद्भागवत के गम्भीर अनुशीलन के बाद यह काव्य लिखा है। भागवत के अतिरिक्त मेघदूत से भी कवि ने इस दूत काव्य के लिखने की प्रेरणा अवश्य ली होगी। तभी तो इस काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग पाया जाता है। लेकिन भाव तथा भाषा दोनों में ही यह काव्य मेघदूत से वित्कुल प्रभावित नहीं है। मार्गदर्शन को दूतकाव्य में स्थान न देकर कवि ने दूतकाव्य के परम्परागत शिल्पपरिधान की उपेक्षा की है। लेकिन नायक और नायिका दोनों के ही सन्देश को काव्य में प्रथम दूर कवि ने काव्य की साहित्यिक महत्ता और भी बढ़ा दी है। मार्गदर्शन के न होने से काव्य की समाहित नीरसता को कवि ने राधा और कृष्ण के विरह की विविधभासपूर्ण व्यञ्जना द्वारा वित्कुल तिरोहित कर दिया है। प्रायः दूतकाव्यों में अभिज्ञानस्यरूप कोई व्यक्तिगत घटना बताई जाती है, लेकिन इस काव्य में कृष्ण का उत्तरीय ही राधा को अभिज्ञानस्यरूप दिया गया है। यह भी कवि की अपनी मौलिकता है।

रूपगोस्वामी का उद्भवसन्देश तथा यह उद्भवदूत दोनों ही यद्यपि समान-विषयक रचनाएँ हैं और दोनों ही लेखक उच्चकोटि के हैं, फिर भी दोनों काव्यों में महान् भेद है। उद्भवसन्देश में कवि ने उद्भव को एकान्तरूप से कृष्ण का ही दूत बनाकर गोपियों के पास भेजा है। दूत का गोपियों के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं दिखलाया गया है। इतना सब कुछ होते हुए भी विरही कृष्ण के मुख से ही विरहिणी गोपियों की तत्तत् अग्रस्थाओं का वहाँ करण चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। समझ है कि गोपियाँ भी अपनी मनोव्यथा को ऐसे प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं कह पातीं। इसके विपरीत उद्भवदूत में विरही नायक तथा विरहिणी नायिका दोनों के ही दूत कार्य में उद्भव को नियुक्त किया गया है। भाषा, भाव और शैली के दृष्टिकोण से दोनों ही काव्य उच्चकोटि के हैं। दोनों काव्यों में तारतम्य का निश्चय करना सहृदय पाठकों के लिए अतीव दुष्कर है। दोनों ही काव्यों में कृष्णभक्ति का पुट भी समान रूप से पाया जाता है। अतः यह दोनों दूत काव्य समान रूप से साहित्यिक तथा कृष्णभक्त पाठकों की प्रशंसा तथा भज्जा के पात्र हैं।

काव्य में त्रिप्रलम्भ शृंगार का मुख्य रूप से चित्रण किया गया है। तदनुसार माधुर्यगुण और वैदर्भी रीति यह दोनों ही काव्य में भरपूर पाए जाते हैं।

बंगाल के मध्यकालीन भक्तिपरक सस्कृतसाहित्य में इस काव्य का प्रमुख स्थान है।

## रुद्र न्यायपञ्चानन का अमरदूत ( वि० सप्तदश शतक का उत्तरार्ध )

रुद्र न्यायपञ्चानन नवद्वीप ( बंगाल ) निवासी श्री रत्नाकर विद्यानाथस्वपति<sup>१</sup> का पोत्र तथा काशीनाथ त्रिधानिवास<sup>२</sup> का पुत्र था। ईसा की सत्रहवीं शताब्दी

१। रत्नाकर विद्यानाथस्वपति को कहीं-कहीं भागानन्द पंडित या भागानन्द सिद्धान्तशास्त्री भी कहा गया है। इन्होंने कारकाचर्यनिर्णय नामक एक व्याकरण ग्रन्थ भी लिखा, जिस पर कि बाद में उनके पोत्र रुद्र ने अपनी टीका लिखी। जयानन्द के चैतन्य-मठ के नवद्वीप-खण्ड में ( १, २, पृ० १२, नगेन्द्रनाथ बसु तथा फालिदास नाथ, फलकता संस्करण, बंगीय-साहित्य परिषद् व० सं० १३१२ अर्थात् १९०४-१९०६ ई० ) रत्नाकर विद्यानाथस्वपति के सन्ध में यह कहा गया है कि मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के अन्त्यन्त सताये जाने पर भी यह बंगाल में ही रहे जब कि रुद्र के प्रपितामह नरहरि गिरारद वहा से भागकर बनारस चले गये और रत्नाकर के भाई बालुदेव सारंगभूम उड़ीसा चले गये थे।

२ यह काशीनाथ सुमतिष्ठित राष्ट्रीय आखण्डल परिवार से ही सम्बन्ध था। इसका मूल निवास-स्थान मध्यम-ग्राम ( भाभेरगाम ) था, फिर भी नवद्वीप में इसकी चतुष्पाटी थी। कविवन्द नामक काव्य इसका लिपि कर्ता था और लक्ष्मीधर के कृत्य करपतर ( हस्तलिखित प्रति आजकल इण्डिया आफिस लायब्रेरी में है ) के कुछ भाग की सं० १४८८ ई० में उसने इसके लिये नकल की। काशीनाथ ने ही योपदेव के मुग्धबोध को बंगाल में लोकप्रिय बनाया जैसा कि मुग्धबोध की विभिन्न टीकाओं में उनके नाम तथा कार्यों के उल्लेख से प्रतीत होता है ( राम तर्कशास्त्री की मुग्धबोध की टीका — पारंगत पाणिनीयज्ञा केचित् कालापकोविदा । एके विद्यानिवासा स्युरग्ये सक्षिप्तसारका )। मुग्धबोध पर काशीनाथ के भी टीका लिखने की खबर है ( देखिये, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय हस्तलिखित पुस्तकें १७४४ में दुर्गादास का उद्धरण )। रामचन्द्र शर्मा ने मध्य कौमुदी पर मध्यमनोरमा नामक टीका में विद्यानिवास के सन्ध में लिखा है—कण्ठे विद्यानिवासस्य स्थिता मध्य मनोरमा। सिद्धान्तकौमुदी पर प्रौढमनोरमा नामक टीका लिखने वाले श्रीर विद्या निवास के समकालीन श्री भट्टोजी दीक्षित ने अपनी टीका में मुग्धबोध के तर्कों का खण्डन किया है। इस तरह योपदेव के विचारों का समर्थक होने के कारण विद्यानिवास भट्टोजी का प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। भारतवर्ष के पंडितों की विभिन्न समाधियों में विद्यानिवास वृत्ते सम्मान के साथ बुलाया जाता था। रामकृष्ण के पोत्र तथा नारायणभट्ट के पुत्र शंकर भट्ट ने अपरा गाधिवंशानुचरित में लिखा है कि दिल्ली में बुलाई गई ऐसी दो समाधियों में यह विद्यानिवास उपस्थित था। विद्यानिवास ने जगन्नाथजी की प्रतिमा को भूमे में रखने की कथा लेकर दोलारोद्दणपद्धति (राजेन्द्र लाल मिश्र का सूचीपत्र सं० ४१३ देखिये) और जगन्नाथजी की पूजाविधि पर द्वादश

इसका कार्य काल है। यह भाषा परिच्छेद, तत्त्वचिन्तामणिदीधिति इत्यादि के रचयिता श्री विश्वनाथ न्यायपचानन भट्टाचार्य<sup>१</sup> का बड़ा भाई था। रट्टनाथ न्यायपचानन के पितामह श्री विद्यानाथस्वपति बगाल के प्रसिद्ध नैयायिक, तत्त्वचिन्तामणि व्याख्या, समासवाद और सार्वभौमनिरुक्ति के रचयिता श्री वासुदेव सार्वभौम<sup>२</sup> के छोटे भाई थे। रट्ट न्यायपचानन, जैसा कि उसके नाम से प्रकट होता है, एक प्रसिद्ध नैयायिक तथा महान् लेखक था। इनके लिखे हुये निम्नलिखित ग्रन्थ बताये जाते हैं —

- |                     |                                |                             |
|---------------------|--------------------------------|-----------------------------|
| १ अधिकरण-चन्द्रिका, | ५ उदाहरण लक्षण टीका,           | ६ न्यायसिद्धान्त मुक्तावली  |
| २ कारक-परिच्छेद,    | ६ उपाधिपूर्वपक्ष ग्रन्थ टीका,  | टीका,                       |
| ३ कारक चक्र,        | ७ केरलान्यायटीका,              | १० व्याख्याननुगमटीका,       |
| ४ विधिरूप निरूपण,   | ८ पक्षता पूर्वपक्षग्रन्थ टीका, | ११ कारकाद्यर्थ निर्णय टीका, |

यात्रा पद्धति ( श्री हरप्रसाद शास्त्री की सूची दूसरा भाग ) यह दो ग्रन्थ और भी लिखे हैं। ईसा की सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक यह साहित्यिक क्षेत्र में कार्य करते रहे। ईसवी सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सुप्रसिद्ध मानसिंह ( जो कि स० १६०५ ई० तक शासन करने वाले सम्राट् अकबर का समकालीन था ) के पुत्र भागसिंह के कहने से इन्होंने भागजिलास नामक ग्रन्थ लिखा ( दे० कायगला, द्वितीय गुच्छक, द्वि० संस्करण, १८३२ पृ० १११-१२८ )।

१ विश्वनाथ न्याय पचानन ने स० १६३४ ई० में न्यायसूत्रवृत्ति की रचना की। सिद्धान्त मुक्तावली में अन्त में इन्होंने लिखा है — इति महामहोपाध्याय विद्यानिवास भट्टाचार्य सुत श्रीविश्वनाथपचाननभट्टाचार्यनिरचितायाम् सिद्धान्तमुक्तावत्याम् ( देखिये० कु अविहारिन् तर्क सिद्धान्त, गोरधन प्रेस, फलकता संस्करण १६१३-१४ ई० पृ० २३६ )। विश्वनाथ की और दूसरी रचनाये ( प्रायः हस्तलिखित रूप में ही उपलब्ध ) इस प्रकार हैं — अहेतु-सम्प्रकरण, न्याय तथ्यबोधिनी अथवा न्याय बोधिनी, न्यायसूत्रवृत्ति, पदार्थतत्त्वालोक ( रघुनाथ के पदार्थ-खण्डन पर टीका ), उपपत्ति सम्प्रकरण, कारकवाद, जातिशतकप्रकरण, तत्त्वज्ञान विवृतिप्रकरण, पिङ्गलमतप्रकाश, सुवर्थतत्त्वालोक, तर्कभाषा, नन्यादटीका, पदार्थ निरूपण, प्राप्त्यप्राप्तिसमजातिचयप्रकरण, बाह्यार्थभग निराकरण, सञ्चय-सम-प्रकरण, सप्रतिपक्षदेशनाभासप्रकरण और अलकार-परिष्कार।

२ ऐसी जनश्रुति है कि इनके पिता श्री महेश्वर विशारद भट्टाचार्य स्मृतियों के प्रवाहक विद्वान् थे। अपने पिता से काव्य और अलकार शास्त्र इत्यादि पढ़ने के बाद यह मिथिला गये और वहा पक्षधर मिश्र के शिष्य हो गये। मिश्रजी ने ही इन्हें सार्वभौम की पदवी दी।

१० मयमिचार-सिद्धा- न्त टीका, }	२२ प्रतिज्ञा लक्षण-टीका,	३३ कुसुमाञ्जलि- कारिका-व्याख्या }
१३ भाग्यप्रकाशिका,	२३ सप्तप्रतिपक्ष-पूर्वपक्ष ग्रन्थ-टीका }	३४ प्रथमचक्रवर्ति लक्षणटीका, }
१४ भाग्यविलासकाव्य ।	२४ सामान्यनिरुक्ति-टीका	३५ विशेषवाद टीका,
१५ अनुमिति टीका,	२५ परामर्श पूर्वपक्ष ग्रन्थ टीका }	३६ सयमिचार-पूर्वपक्ष ग्रन्थ-टीका, }
१६ कारक-वाद,	२६ आख्या-वाद-व्याख्या	३७ द्रव्य-किरणायली परीक्षा, }
१७ तत्त्वचिन्तामणि- दीधिति-टीका, }	२७ कारक-ध्वज,	३८ गुणप्रकाश विवृति,
१८ द्वितीयलक्षण टीका,	२८ वाद-परिच्छेद,	३९ चन्द्राग्रनिमोद काव्य इत्यादि ।
१९ विरह-पूर्वपक्षग्रन्थ टीका, }	२९ शब्द-परिच्छेद,	
२० तर्कग्रन्थ टीका,	३० उपनय-लक्षण-टीका	
२१ पक्षता-सिद्धान्त- ग्रन्थ टीका, }	३१ विरह-सिद्धान्त- ग्रन्थ-टीका }	
	३२ द्वितीयचक्रवर्ति- लक्षण-टीका, }	

बंगाल के एक प्रमुख नैयायिक तथा कवि के रूप में रुद्रन्यायपञ्चानन ने ई० सप्तदश शतक के संस्कृत साहित्य को बड़ा समृद्ध बनाया है। कवि ने भ्रमर-दूत के अन्त में अपना थोड़ा सा परिचय भी दिया है—

योऽभूद् गोडक्षितिपतिशिक्षारत्नधृष्टादिप्ररेणु  
विद्यागजचरितिरिति जगद्गीतकीर्तिप्रपञ्च ।  
तस्मादासीद् भुवनप्रदित श्रील विद्यानिवास-  
स्तपुत्रेण त्रिभुवन गुरो प्रीतये राघवस्य ॥१०८॥

रुद्रेणैषा समरच्चि मया कापि वाचा प्रतरिल-  
र्घातप्लेशा रसिकहृदयाहलादिनी कल्पयतिल ।  
शश्वत्पूर्याद् व्यसन अनित्यशेषपापोपशान्ति  
तन्मे कुर्वान्तिजगुणकचाराधितो रामचन्द्र ॥१०९॥

रुद्र न्यायपञ्चानन महर्षिचर्य का पुत्र गोविन्द महर्षिचर्य बनारस में ही रहता था। उसने स० १६५७ ई० में एक व्यवस्थापत्र पर हस्ताक्षर किए ( इन्डियन हिस्टोरिकल स्मार्टर्ली, २१, पृ० ६४ ६५ )। स० १६८०-२६ ई० के आस पास उसने न्यायरहस्य नामक ग्रन्थ भी लिखा। डा० जे० बी० चौधरी ( कलकत्ता ) द्वारा भ्रमरदूतकाव्य प्रकाशित किया जा चुका है। उन्होंने काशीनाथ विद्यानिवास के पुत्र रुद्र न्यायपञ्चानन को ही इस काव्य का लेखक माना है। लेकिन प्रो० डी० सी० महर्षिचर्य अपनी 'बंगेर न्यायचर्चा' में ( पृ० २७४, पाद टिप्पणी ) इस रुद्रन्याय

पचानन को भ्रमरदूत काव्य का लेखक नहीं मानते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि न्याय सिद्धान्त मुक्तानली की टीका इस रत्नन्यायपचानन ने मढ़ा लिखी है, वरिक्त नवद्वीप के डी रुद्र शर्मावागीश ने लिखी है। सम्भव है कि दोनों सिद्धान्तों के नामसाम्य से कहीं ० मतिभ्रम हो गया है।

### काव्य की/कथा

इस काव्य की कथा रामायण की कथा से सम्बद्ध है। कवि ने अपनी कल्पना से मूल कथा में एक और घटना बढ़ा दी है। रायण जब सीताजी को हर कर लका से जाता है तब सीताजी की खोज करते ० रामचन्द्रजी मात्स्यवान् पर्यंत पर पहुचते हैं। वहा से सीताजी की खोज के लिए हनुमान्जी को लका भेजते हैं। लका से सीताजी का पूरा पता लगाकर तथा उनकी चूड़ामणि लेकर हनुमान्जी एक दिन वापिस आ जाते हैं। इधर रामचन्द्रजी सीताजी के विरह में व्याकुल हो रहते ही हैं कि निकट के एक सरोवर में एक भ्रमर मिथुन उन्हें दिखलाई पड जाता है। यस वे भ्रमर को ही दूत बनाकर लका में अशोक वाटिका में स्थित सीताजी के पास अपना प्रेम सन्देश देकर भेज देते हैं।

सर्वप्रथम उन्होंने भ्रमर को अपना परिचय, अपने दुःख का कारण तथा अपनी व्यनीय दशा बतलाई है। तदनन्तर मात्स्यवान् पर्यंत से लका तक मार्ग बत-साया गया है। मात्स्यवान् पर्यंत से लका तक के सीधे मार्ग में चित्रकूट, नर्मदा और विन्ध्याचल इत्यादि स्थान बिल्कुल नहीं पडते हैं, फिर भी भ्रमर को इन सुन्दर और महत्त्वपूर्ण स्थानों की यात्रा कराने के लिए चक्करदार रास्ते से लका जाने का निर्देश किया गया है। इस प्रकार मात्स्यवान् पर्यंत स चित्रकूट और फिर वहा से नर्मदा तथा विन्ध्याचल को पार कर कर्णाट ( कर्नाटक ) देश जाने का भ्रमर को परामर्श दिया गया है। वहा पर करल एक रात्रि ठहरने के बाद कावेरी नदी तथा उसके तट प्रदेश को पार कर आगे बढ़ने पर भ्रमर के काञ्चीनगरी पहुचने का वर्णन किया गया है। पहिले शिवकाञ्ची का वर्णन किया गया है। वहा पर शिवजी के मन्दिर में शिवजी की स्तुति करने के बाद विष्णु काञ्ची जाने का भ्रमर को परामर्श दिया गया है। वहा विष्णु भगवान् के दर्शन करने के बाद मार्ग में विभिन्न नद नदी और पर्वतों को पार करते हुए समुद्र तट पर स्थित किम्बी विन्ध्य पर्वत-श्रेणी पर भ्रमर के पहुचने का वर्णन किया गया है। इस विन्ध्य-श्रेणी से थोडी दूर पर ही समुद्र बताया गया है। समुद्र को पार करने के बाद लका नगरी तथा वही पर अशोक वाटिका में सीताजी के मिलने का उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार सीताजी के पास भ्रमर के पहुँच जाने की संभावना करते हुए रामचन्द्रजी ने प्रथम तो सीताजी की कष्टमय अवस्था का वर्णन किया है।

तदनन्तर भ्रमर से सीताजी के प्रति अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। सन्देश कथन के बाद अन्त में भ्रमर के प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त की गई हैं।

वस, काव्य में यही कथा है।

## साहित्यिक समीक्षा

- वगाल के संस्कृत दूत काव्यों में यह काव्य एक सरस तथा सुन्दर रचना है। कवि ने मेघदूत से ही प्रेरणा लेकर यह काव्य लिखा है। यद्यपि विषय, भाव तथा भाषा और शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत का अनुकरण ही है, फिर भी काव्य में अनेक स्वतन्त्र करणार्थ पाई जाती हैं और विप्रलम्भ शृंगार का तो बड़ा ही भावपूर्ण चित्रण किया गया है। काव्य की भाषा बड़ी मधुर तथा प्रसादपूर्ण है। समग्र काव्य में १२३ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन काव्य का नहीं किया गया है। अन्त में दो श्लोकों में कवि ने अपना परिचय भी दे दिया है। समग्र काव्य मन्दाकारन्ता छन्द में ही लिखा हुआ है।

मार्गवर्णन के प्रसंग में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों, नगरों तथा नगरनिसियों का बड़ा भावपूर्ण और सरस चित्र प्रस्तुत किया है। नर्मदा नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तस्मादारात् सुभग भवता द्रक्ष्यते प्रेक्षणीया  
रेवा विन्ध्याचलपरिसरे भर्तुं रङ्गे प्रियेव ।  
याऽसौ मन्दानिलपरिषयादुच्छलद्गीचिरेखा  
पश्यन्तीय प्रियमनिभृतभ्रूलता सन्नतञ्च ॥१८॥

नर्मदा और विन्ध्याचल को प्रियसी और प्रिय के रूप में बड़ी सुन्दर रीति से वर्णित किया गया है। नर्मदा में स्नान करती हुई रमणियों का भी कवि ने बड़ा सुन्दर शब्दचित्र अंकित किया है—

तस्या प्रस्यद्वनमृगदृशो दर्शितार्द्रन्ननान्ता  
तोपक्षेपस्त्रणितनलय पाणिमम्युत्क्षिपन्त्य ।  
लीलापत्यो रतिपतिधनुर्विभ्रमैर्धू विमदगै  
लोलापाङ्गे पथिकतद्वलानन्तरा तापयन्ति ॥१९॥

इस प्रकार की लीलापत्नी रमणियों को देखकर तदनुपपत्तियों का हृदय अग्रश्य ही विचलित और सन्तप्त होजाता होगा। इसी प्रकार विन्ध्यपर्वत के वर्णन में भी शृंगार रस की छटा पाई जाती है। भ्रमर को विन्ध्यपर्वत आने का परामर्श दते हुए कहा गया है—

याया" प्रवर्तनयनसुभगान् नर्मदाशीचि भिन्नान्  
 दानाम्भोभि सुरमितशिलान् गन्धनागेन्द्रयूथै ।  
 स्वस्तापीडै सुरतपिशुनान् किन्नरी केलितरपान्  
 पश्यन् पश्यन् वनचरवधूवान्धरान् विन्ध्यपादान् ॥२४॥

विन्ध्य पर्वत के बाद कर्णाट देश ( कर्नाटक ) का वर्णन किया गया है । यहाँ की स्त्रियों को अत्यन्त सुन्दर, विलासमय तथा आकर्षक बताया गया है । ऐसे ही एक स्थल पर भ्रमर को सरोधन करके कहा गया है—

कुशाणानां किमपि कुतुक मन्दमन्दास्त्रमासाम्  
 सौधे सौधे मद्परिचयसस्त-चीनाशुकानाम्  
 स्तिग्धस्तिग्धान् प्रणयमधुरान् मन्मथोन्मादिनीनां  
 कर्णाटीनां रहसि रहसि द्रष्टव्यसि त्वं विलासान् ॥२५॥

इसके बाद कावेरी नदी तथा उसके तटवर्ती स्थानों का वर्णन किया गया है । यहाँ की विरहिणी स्त्रियों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

त्वं कावेरीतटपरिस्तरे पान्थसीमन्तिनीनां  
 मम्भोराहस्तनित जनितामोदलुप्त स्मृतीनाम् ।  
 उद्यद्वाष्पापिहित नयनाभ्याकुलप्राणकामि  
 प्रातश्चन्द्रप्रतिभजदनाम्यमरादेन पश्ये ॥२६॥

मेघ के गर्जन को सुनकर प्रोदितमर्लकाओं की स्मृति का लुप्त हो जाना, नेत्रों से निरन्तर आसुओं का बहना तथा उनके मुख का प्रिय हो जाना श्यामरिक ही है ।

कावेरी के तटप्रदेश के बाद शिवकाची नगरी का बड़ा उत्स और सरस वर्णन कवि ने किया है । काचीनगरी की स्त्रियों के सम्बन्ध में कवि कहता है कि वे शिव जी तक को मुग्ध करती हैं और वहाँ की लहराती हुई पताकाएँ तो सुरपुरी तक का भी उपहास करती हुई बतलाए गई हैं—

कान्चीं काञ्चीमणिमित्रभुयो यत्र लारव्यवत्यो  
 लोलापाङ्गैरपि पशुपते मृदिसुत्पादयन्ति ।  
 स्वकीक्षेथा प्रलपयनोत्कम्पिताप्रा पताका  
 पस्या पुष्पन्धय सुरपुरीसम्पद तर्जयन्ति ॥२७॥

फिर मार्ग चलते चलते भ्रमर के थक जाने की समावना कर उसके मनो विनोद का भी बड़ा सरस साधन बताया गया है—



स्थाने स्थाने नखत्रिलिखितैर्यच्चन्द्रावतसान्  
 अस्तस्योभाम्मृगमदरसस्निग्धपीतस्तनान्तान् ।  
 मन्दस्मेरान् परिमलभुव कामिनीना मुखेन्दून्  
 पश्यन् पश्यन् स्मरसि न पुरा दुर्वहानघ्वसेदान् ॥६२॥

ऐसे सुन्दर दृश्यों को देखकर किस अधिक की आन्ति दूर नहीं होगी । वहाँ की स्त्रियों का वर्णन करते हुए आगे फिर कहा गया है—

काश्चित्तस्या सरसघचनै सारिका पाठयन्त्यस-  
 तालैरन्यास्तरलवलय नर्तयन्त्यो मयूरम् ।  
 काश्चित् कीर करकिशलयैर्दाडिमी-बीजदानै-  
 रापुष्यन्त्य सुभग नयने मन्दयिष्यन्ति भूय ॥६४॥

मयूरचर्चनों से सारिका को पढाती हुई, सुन्दर ताल के साथ मयूर को नचाती हुई तथा अपने कोमल कर्णों से तोते को अंगार के बीज खिलाती हुई किया किसके मन को मुग्ध न करेगी । स्त्रियों के कोमल स्वभाव तथा सहृदयता का इन क्रियाओं से बढकर और कौन सा उत्कृष्ट उदाहरण हो सकता है ।

शिवकाची के गढ़ विष्णुकाची नगरी का वर्णन किया गया है । इस नगरी की अट्टालिकाएँ इतनी ऊँची बतलाई गई हैं कि उनके पास से निकलते हुए बादल स्त्रियों के घु घराले केशों के समान दीप्त पड़ते हैं तथा अट्टालिका से बुतूहलयश गिराए हुए पुष्प को भी देखकर स्त्रियों को उरकापात का भ्रम हो जाता है—

यत्र स्त्रीणा कुटिलकरीमारलक्ष्मी प्रपेदे  
 सौधप्रान्ते प्रतियिचरता नूतनेनाम्बुदत ।  
 यस्या सौधान् कमलउदना केलिकोतूहलिन्या  
 क्षिप्वात् पुष्पादपि विदधते तारकापातशकाम् ॥६६॥

विष्णु मगधान् की प्रतिमा का माहात्म्य वर्णित करते हुए कवि कहता है—

तस्या किञ्चित् तरुणतिमिराकारमालोकयेत्स्थ  
 ज्योतीरूपं परिणमति यद् योगिना मानसेषु ।  
 ध्यायन्तो यत् कश्चन गहने कन्दरे भूधराणाम्  
 युक्तात्मानस्तृणमिव जगन्नीरधि निस्तरन्ति ॥७०॥

ऐसे स्थान पर विना, आराधना किए कोई आगे कैसे बढ़ सकता है । इसीलिए भ्रमर को निम्न आदेश दिया गया है—

आराध्य त्वं दनुजदयितावर्गवैधव्य दीक्षा-  
 तत्तथावाचय तमुपसि ततो वर्त्म-सीमामुपेया ॥७६॥

विष्णु काची नगरी से आगे बढ़कर विभिन्न नद-तटी और पर्वतों को पार कर समुद्र-तट पर स्थित किसी विन्ध्यपर्वतमाला पर भ्रमर के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। इस पर्वत से ज्ञाने चल कर समुद्र पार करने के बाद लका नगरी आती है। वहाँ पर अशोक वाटिका में सीताजी के मिलने की संभावना की गई है। सन्देश बताने से पहिले रामचन्द्रजी ने सीताजी का वर्णन किया है। सीताजी की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए रामचन्द्रजी भ्रमर से कहते हैं—

स्निग्धाशोकद्रुमपरिसरे तत्र त्रिचिञ्चरीभि  
व्यग्रायेन प्रकृतिकृपणा मिथ जाया प्रपश्ये ।  
बाष्पासारस्नपिनयना, पाणिलीनाननेन्दु  
यूथभ्रष्टामिव मृगवधू मदगतप्रोद्वराणाम् ॥८६॥

शार्दूलीनामभिमुखगता यूथहीनामिवैषीं  
राहुभासादिर निपतितामम्वरादिन्दुलेखाम् ।  
नागेनाऽरादिष कमलिनीमुदधुतमुग्मदेत  
स्वकीक्षेत्रा प्रणयनगदीं प्राणभूता प्रिया मे ॥८७॥

कवि ने उपर्युक्त उपमाएँ देकर सीताजी की दयनीय अवस्था का पाठकों के समक्ष चित्र सा उपस्थित कर दिया है। रामचन्द्रजी के 'प्रणयनगदीं प्राणभूता प्रिया मे' इन शब्दों में कितना प्रेम छिपा हुआ है। आगे चलकर सीताजी की विभिन्न विरहावस्थाएँ बखित की गई हैं। उनकी विरह-जन्म पाण्डुता का वर्णन करते हुए कहा गया है—

यस्याश्छायामित्र तुलयितु मानसारभोनिवासै-  
श्लान्श्लाने कनक कमलैस्तप्तमुच्चैस्त्वपोऽपि ।  
नून तस्या स्मरपरिभवश्लानमङ्ग प्रियाया  
काले काले जरठलेपलीपाण्डमानन्दधाति ॥८८॥

विरह में नितान्त रोते रहने का कवि ने कौसी भाव भगिमा के साथ निम्न पद्य में वर्णन किया है—

याऽसौ पूर्वं कनककमलवृन्दमीभाग्यभाजो-  
मुं का जाले स्तनकलशयोर्निममे निमलश्रीम् ।  
मुकास्पृशा कुचलेपदयो मूरिशो वाष्पलेखास्  
तामेवास्या सुभग सुषमामघ सन्धुजयन्ति ॥८९॥

सीताजी की विरहावस्थाओं के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने भ्रमर को सीताजी के प्रति दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। सन्देश में सर्वप्रथम

उन्होंने अपनी दशा वर्णित की है । वे कहते हैं—हे मैथिलि ! हमिष्णु का शिकार करने के बाद जब मैं कुटी पर लौटा, तब दूर से ही कुटी को खाली देखकर मेरा धीरज जाता रहा और घबराहट से मुझे कापता हुआ देख कर किसी तरह लक्ष्मण ने मुझे जग सहारा दिया तब मैं कुटी में पहुँचा—

यातस्तम्भ प्रचलितधृति सम्भ्रमोत्पन्नकम्पो  
दत्तालम्भ कथमपि तदा देवि त देवरेण ।  
स्मार स्मार स्मरपरिमलोद्गारगर्भा गिरस्ते  
यध्दयेवान्ध प्रणयिनि जन प्राप दीन कुटीरम् ॥६६॥

सीताजी के विरह में एकदम रामचन्द्रजी के मन तथा शरीर का निश्चेष्ट हो जाना उनके प्रेम की तीव्रता व्यक्त करता है । आगे चलकर वे फिर कहते हैं—

आर्द्ररेश प्रणयिनि भवत्पादपाधोज्झिह्वं—  
ह्यारोपान्ते पुनरधिकया चिन्तया दूयमान ।  
लोलापाङ्गप्रणयमधुरैर्जरिपनैर्जीवयैन  
जल्पमित्य त्वगितमविश दयि मुग्ध कुटीरम् ॥१०१॥

इस श्लोक में प्रेयसी के विरह में उनको प्रलाप करता हुआ भी बताया गया है । कुटी में फिर आधी गुथी हुई यकुलमाला, कान से गिरा हुआ कर्ण पुष्प तथा मौन धारण किए हुए सारिका की देखकर रामचन्द्रजी के एकदम रो पड़ने का भी उल्लेख किया गया है—

तश्मिन्नर्धप्रथितवकुल दाम धामोद पदपद्  
दृष्ट्वा कर्णच्युतमपि च ते कर्णिकारणिक्कारम् ।  
निर्ध्वोपारा सपदि सुमग सारिका चात्रलोक्य  
म्रीडेनाऽऽन प्रणयिनि तदा धाप्पपूरेण पूर्ण ॥१०२॥

सीताजी के विरह में कदम्ब के वृक्ष तक को रोता हुआ बताया गया है—

योऽसौ लीलापति चिरदिनैर्धितो बारिसेकै  
फाले फाले निजकरतलनैव दत्तालयात ।  
जातोन्मेष प्रथमरसितरेष धाराधराणाम्  
नीप स स्वा नमधुलरच्छुभ्रमना रोदित्वीर ॥१०३॥

इसी तरह पालित मयूर और हिरन को भी उन्ने विरह में व्याकुल और निश्चेष्ट वर्णित किया गया है—

सोऽयं ( मयूर ) नाद्य प्रियसद्वचरि व्याधुनीते कलापम् ॥१०४॥

सोऽय ( हरिण ) दर्माङ्कुरकवलने नि स्पृहो रङ्कुशा-  
स्तत्पादाङ्गे त्रिलुठतितरा कणल कुञ्जगर्भे ॥१०६॥

उह भ्रमर जो पहिले सीताजी के कर्ण पुष्पों का रस ग्रहण किया करता था,  
अब उस सौरभ की याद में डूबा हुआ मालती पुष्पों के रस को भी ग्रहण नहीं  
करता है—

भूय स त्वन्मुखपरिमलानायतानायताक्षि  
स्मार स्मार न यलु भजते मालतीना मधूनि ॥१०७॥

सीताजी के वियोग में बेचारी हसिनी की भी उड़ी दयनीय अवस्था बतलाई  
गई है। वह भी सीताजी की खोजकर रह गई है तथा कुछ खाती पीती नहीं है—

सेय मुग्धे विकलहृदया त्वाभिहान्वेपयन्ती  
कूले कूले चरति सरसो हन्त लीलामराली ॥१०८॥  
नोपादत्ते विसकिसलय किन्तु चचूपुटेन  
त्यद्विश्लेषव्यथितहृदया केवल रोदितीय ॥१०९॥

<sup>1</sup> इस तरह सीताजी के वियोग में अपनी तथा अन्य आश्रमवासियों की चिन्ता  
और व्याकुलता का वर्णन करने के बाद रामचन्द्रजी फिर अपने सन्ध में कहते हैं  
कि सीताजी की स्मृति में बन की एक एक कुञ्ज 'जानकी जानकी' चिल्लाते हुए  
उन्होंने खोज डाली है। परंतों की ऐसी कोई भी गुफा नहीं बची जिसको उन्होंने  
देखा न हो तथा हर रात्रि रोत हुए और प्रलाप करते हुए ही बीती है और ऐसा  
कोई भी कुल न बचा जो उन्होंने अब तक न उठाया हो—

कुञ्जे कुञ्जे गलितगरिमा जानकी जानकीति  
क्षामक्षामस्तत्र सहचरो दुर्भरो रोरवीति ॥११०॥

कस्मिन्न त्व गृहिणि गहने भूरिशो मार्गिताऽसि  
तत्पत्सन्नेहान्न खलु त्रिचिता का दरी वा गिरीणाम् ।  
का वा रात्रिर्न परिगमिता वाष्पगम प्रलापै  
किं वा तन्नि ह्यसनमपि तद् यन्मया नान्वभावि ॥११३॥

आगे चलकर फिर रामचन्द्रजी कहते हैं —

को नारण्य विशति मृगयाकोतुको कार्मुकस्य  
को वा रङ्कोरनुसरति नो वर्त्म रिस्फारितज्य ।  
आहन्तुं वा यत मृगयते क प्रियं न प्रियाया  
को जानीते यदिह विधिना राघवो यञ्जनीय ॥११६॥



३ यक्तः पन्था यदपि भवत' प्रस्थितस्योत्तराशाम्  
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म मूर्खजयिन्या ॥ मेघ०

द्रष्टु देशानतिशयगुरुनं श्रोत्र नेत्राभिरामान्  
न तत्र भ्रातर्भ्रमर गणयेरध्वनो जित्प्रभावम् ।  
आसन्नच्छो क्षणमतिथयो यस्य ते ते न देशा  
सृष्टा दृष्टि सुमग विधिनो तस्य मन्ये मुधैव ॥१७॥ भ्रमर०

४ नीता रात्रि' क्षणमिदं मया सार्धमिच्छार्त्तयो  
तमेवोष्णै विरहमदतीमश्रुभि र्यापयन्तीम् ॥२॥२८॥ मेघ०

मघश्यामा स्फुरिततंडितो यामिनीयो निमेवात्तु  
पूने रामो गृहिणि गृह्णे त्यत्संनार्थो निनाय ।  
ता एवाद्य प्रलेपजलेदं ध्वानधारतेर्मरिा'  
कल्पयेन्ते कमलवदमे दीर्घयोमा रंजन्य ॥११॥ भ्रमर०

५ श्यामारुढ परनपदधीमुद्गृहीतालकान्ता  
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिता प्रस्रयादाश्वसस्य ॥१॥३०॥ मेघ०

त्वामुधान्ते धियति विकसन्नेत्रोलालकाग्रो  
प्रेक्षिष्यन्ते विरहवनिता कोपरक्तेरंपाङ्गे ॥३१॥ भ्रमर०

६ नूनं तस्या स्मरपरिभवग्लानमङ्ग प्रियाया  
काले काले जरठलवलीपाणिदमानन्दधाति ॥२॥३१॥ भ्रमर०

नूनं तस्या प्रयलददितोच्छूननेत्र प्रियाया ( मुखम् )  
इन्दोर्दयं त्यदनुसरणफिलष्ट कान्ते विभर्ति ॥२॥३४॥ मेघ०

इस तरह दोनों काव्यों में समानान्तर भाव तथा पद अनेक स्थलों पर पाए जाते हैं ।<sup>१</sup>

कवि ने काव्य में यथास्थान अलंकारों का भी उचित प्रयोग किया है । काव्य लिंग, अर्थान्तरन्यास और भाविक इत्यादि अर्थालंकार स्थान २ पर पाए जाते हैं । अवतरण देकर ध्यर्थ में ग्रन्थ का क्लेशर बढ़ाना अनुचित ही होया । शब्दालंकारों के एक दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

१ दे० काव्य की भूमिका, पृष्ठ २०-२१ । डा० जे० बी० चौधरी ने ऐसे अन्य स्थलों का भी निर्देश किया है ।

१ लीलोद्यान ललितलवलीलमिरोलम्भमाल  
मन्दोन्मीलद्वकुलमुकुलामोदमेदसि पश्य ॥८०॥ (चुस्वनुप्रास)

२ अग्रेकृत्य प्रियसख दयादक्षिणो दक्षिणशाम् ॥८६॥ (यमक)

कहीं-कहीं कवि ने बड़ी सुन्दर सूक्तिया भी पाठकों के सामने रखी हैं। यथा-

१ प्राय प्राणाधिकयुजतयो न मृतञ्चा युजान् ॥१४॥

२ काव्य केया न खलु युजतीपाणिसस्पर्शहर्ष ॥११॥ इत्यादि

इस तरह मेघदूत के अनुकरण पर लिखे जाने पर भी यह काव्य स्वतन्त्र उद्भासनाओं तथा सुन्दर कल्पनाओं से परिपूर्ण है। मारयमान् परंत से लजातक का जो मार्ग इस काव्य में वर्णित किया गया है, भौगोलिक दृष्टि से वह असंगत ही है। लेकिन जब हमें यह मालूम होता है कि कवि ने जान बूझ कर यह मार्ग अपनाया है, तब हमारा भ्रम दूर हो जाता है। सभ्य है कि रमणीयस्थलों के वर्णन के प्रलोभन को कवि सरण नहीं कर सका हो। अतः ऐसा खूबकरदार मार्ग इस काव्य में वर्णित किया गया है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि ईसा की सत्रहवीं शताब्दी (चि० सप्तदश शतक का उत्तरार्ध) में बंगाल में लिखी गई संस्कृत कविता का यह काव्य एक उत्कृष्ट निदर्शन है तथा सुन्दर और ललित भाषा में लिखा गया एक सरस सन्देशकाव्य है।

### रुद्रन्याय-ज्ञानन का रूपिदूत

यह रूपिदूत एक बहुत छोटा सा दूत काव्य है। प्राच्ययात्री मन्दिर, बलकृष्ण की पत्रिका प्राच्ययात्री, जिल्द २, अंक ३-४, १९४५ में मूलमंत्र यह काव्य प्रकाशित हुआ है। इस दूत काव्य की एक हस्तलिखित प्रति बलकृष्ण व प्रो० चिन्ता हरण चक्रवर्ती, एम० ए० के निजी पुस्तकालय में है। एक प्रति ढाका विश्वविद्यालय व पुस्तकालय में भी पाई गई है। ढाका विश्वविद्यालय की हस्त लिखित प्रति का अन्त में 'इति श्री रुद्रनाथ ( ? न्याय ) पञ्चाननभट्टाचार्य विरचित रूपिदूत नाम काव्य समाप्तम्।' ऐसा लिखा हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस लघु सन्देश काव्य का रचयिता तथा भ्रमरदूत का रचयिता दोनों एक ही व्यक्ति हैं। श्री कृष्णमाधव ने

अपने सस्कृत साहित्य के इतिहास में पृष्ठ ३६८ पर इस काव्य को किसी अनिज्ञात लेखक का बताया है। उनके लिए सभ्यत ढाका विश्वविद्यालय की हस्तलिखित पुस्तक का ज्ञान नहीं रहा होगा। भ्रमर-दूत काव्य के प्रसंग में श्री रुद्रन्यायपञ्चानन का समय तथा यश इत्यादि विशद रूप से वर्णित किया जा चुका है। तदनुसार इस काव्य को भी प्रिक्रम सप्तदश शतक के उत्तरार्ध में ही लिखा हुआ मानना चाहिए।

## काव्यसार

इस काव्य में मथुरा में स्थित श्रीकृष्णजी के पास राजा ने नृन्दावन से पिक को अपना दूत बना कर भेजा है। कृष्ण के विरह में व्याकुल राधा वन में इधर उधर घूमती होती है कि उसे एक कोकिल दिखलाई पड़ती है। अपनी उन्मत्त अवस्था में वह कोकिल से श्रीकृष्ण के पास अपना सन्देश ले जाने की प्रार्थना करती है। अन्य सन्देशग्राहकों की अपेक्षा कोकिल की उत्कृष्टता जनाकर उसकी यात्रा के लिए उपयुक्त धान, अश्व और सागधि इत्यादि का भी वर्णन किया गया है। वृन्दावन से मथुरा निकट ही है, अतः काव्य में मार्गवर्णन विरहूल ही नहीं है। मथुरा में श्रीकृष्णजी के पास कोकिल के पहुँचने की सभायना कर राधा ने उसे अपना सन्देश बताया है। सन्देश कथन के बाद काव्य समाप्त हो जाता है।

## साहित्यिक समीक्षा

जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है, यह काव्य अत्यन्त ही छोटा है। इस काव्य में केवल ३१ श्लोक हैं। मेघदूत से प्रेरणा लेकर तो यह काव्य लिखा ही गया होगा, लेकिन इसमें और मेघदूत में विप्रलम्भ ऋगार की समानता के अतिरिक्त और कोई समानता नहीं है। मेघदूत में नायक अपनी नायिका के पास दूत भेजता है, इसमें नायिका ने नायक के पास दूत भेजा है। काव्य में छन्द भी भिन्न ही है। शार्दूल विक्रीडित छन्द में यह काव्य लिखा गया है। काव्य में मार्गवर्णन विरहूल ही नहीं है तथा पूर्व भाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन भी काव्य का नहीं किया गया है।

अत्यन्त छोटा होते हुए भी यह काव्य सरस और सुन्दर है। कवि ने घरी सुन्दर उद्भाषनाएँ काव्य में प्रस्तुत की हैं। कोकिल की दूत बनाने का कारण बताते हुए राधा कहती है—

सर्वाख्येय सभासु कोकिल भगान् यता यतस्त्र्यद्वय  
श्रुत्या सर्वनृणा मनोऽपि रमते त्वं चापि लोकप्रिय ॥४॥

अन्य द्विरेफ इत्यादिकों के दूत न बनाने का भी कारण सुनिए—



तिष्ठन्त्येव हि दीप्तकर्मणि रता अन्ये द्विरेकादयः  
किन्त्वस्माभिरिमे हरेर्निवृत्तो न प्रेयणीया ववचित् ।  
ते यस्मान्मधुलोभिर्नो मधुरिपो प्राप्याद्दिघ्नपद्मं ततो  
नो चेत्तन्मधुलोमतो मधुपुरादायासुस्मिन् पुन ॥१॥

अपने मन को दूत बनावे के प्रश्न का राधा ने कितना सुन्दर उत्तर निम्न श्लोक में दिया है—

चेतस्तत्र समीरित यदुपतेरासाद्य पादाभ्युज्जम्  
तस्मिन्नेव विद्यजत पिकं मुदा तस्मात् पुनर्नागतम् ॥६॥

इसलिए किसी और को दूत न बनाकर पिक को ही राधा ने अपना दूत बनाया है और उस के सम्बन्ध में कहा भी है—

युक्त सर्वगुणान्वितस्य विदुषो दूतस्य समेरणम् ॥४॥

तत् क वच्मि हि गच्छ गच्छ मधुरामन्यं मुहुस्त्वा विना  
को वाऽस्ति मृज्योपिता मनसिञ्चा शङ्खा समापूरयेत् ॥६॥

इस प्रकार पिक को दूत-कार्य में नियुक्त कर मार्ग में उसके कष्ट का ध्यान रखते हुए यान इत्यादि की भी वही सुन्दर व्यवस्था की गई है—

चित्त मत्समतङ्गमाशु पिक मे प्रारब्ध नाथान्तिकम्  
हे कृष्णेति श्रवोऽहं शेषं गमयन् गच्छानित्यं (१) मुदा ।  
एतेनापि तस्मात्तेन जनित दुःखं न भूयात् सखे  
तावत् कृष्णपद तथापि च पुनर्गोपाङ्गना प्रपद्यतु ॥१३॥

चित्त को मत्समतङ्ग तथा 'हे कृष्ण' इस वचन को अकुश का कितना सुन्दर रूपक दिया गया है । इसके अतिरिक्त एक और यान बताते हुए फिर राधा कहती है—

अस्माकं च मनोरथोपरचित यानं समारुह्य वा  
तस्मिन् सत्यरगं नियोज्य महसा तावन्मनोवाजिनम् ।  
यन्तारं परिकृत्य कृष्णविरह मत्प्राणनाथान्तिकम्  
गच्छानेत तदेव ते न भविता कष्टं महन्ताग्रेणम् ॥१४॥

इस श्लोक में मनोरथ को रथ वा, मन को अश्व वा तथा कृष्णविरह को सारथि का रूपक देकर कवि ने अपनी प्रीति काटना शक्ति का परिचय दिया है ।

आगे चल कर फिर कोकिल से कहा गया है कि यदि उसे धूप लगे, तो वृक्षों की छाया में उसे विश्राम कर लेना चाहिये, व्यास लगे, तो ही कृष्ण के नाम-

मृत को पी लेना चाहिए और यदि मूख लगे, तो श्रीकृष्ण के दर्शन करने का फल तो उसका लिए मिल ही जायगा—

सन्तर्णोऽसि यदातपैरिदृषिणो मूल समासाद्य वा  
विश्राम रचयन् मुहुर्मधुपुरी गन्ताऽसि मारप्रिय ।  
कृष्ण त्वा यदि राधते मधुरिपोर्नामामृतं सपियन्  
भुक्त्वा दर्शनपुण्यजं फलमहो त्व चेत् चुधापीडित ॥१५॥

इस प्रकार यात्रा पूर्ण करने के बाद कोकिल को राधा ने कृष्णजी के लिए दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। राधा कोकिल को कृष्णजी के प्रति अपना सन्देश बताते हुए सर्वप्रथम कहती है—

राधा माधव ते त्रियोगकलिना सदशिता तद्विपै-  
राब्जन्ना तत्र सन्निधौ त्रिधुमुषी मा प्रेरयन्ती क्षणात् ।  
मुग्धाऽमूढधुना किमस्ति नहि वा तन्नैव जाने सखे  
गत्वा तत्र समुत्पतामिति मुहुर्गापीश्वनारायणे ॥१८॥

आगे चलकर वह फिर कोकिल से कहती है कि तू कृष्ण से इस प्रकार कहना—

यात्रत् त्वत्पदसन्निधे पुनरह यास्यामि वृन्दावनं  
सा तावन्न जहाति माधव तनु ते दर्शनाकाटिच्छणी ।  
मत्तस्थद्वन्द्वम निशम्य च शुभं किं वाशुभं तत्क्षणात्  
कर्त्ता यदि हितं तदेव सुतरामित्युच्यता कोकिल ॥१६॥

इन पद्यों में कृष्णरिरह में राधा की अचेतनावस्था और कृष्णदर्शन की उत्सुकता का कवि ने बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है।

राधा ने फिर कोकिल से कहा है कि तू जरा कृष्ण से यह तो पूछना कि जिसने अपना पति, मान, गुरुओं के वचन, धर्म, कर्म और कुल की लाज को छोड़ कर तुम्हारे लिए अपना जीवन अर्पित किया तथा जो तुम्हारी धरी के स्वर को सुनकर पागल की तरह अपने पति के घर से निकल पड़ती थी, उसे किसने ह्रास सौंप कर तुम यहाँ मथुरा में रहने लगे हो। अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुए राधा फिर कहती है—

भीरी कोकिल मे परा तनुरियं कृष्णेन कृष्णीकृता  
सुस्थ शुद्धमुदारमेव परमं चित्तञ्च मत्तं कृतम् ।  
किञ्चास्यामपथादिनी परिहृता गोपालपुण्यामहम्  
नो तद्वेष्टिम तथापि यन्मम मनस्तं चैव सचिन्तयेत् ॥२८॥

कृष्ण के प्रेम में राधा के शरीर का कृष्णमय हो जाना तथा उसके चित्त का

मत्त हो जाना उसके प्रेम की अनन्यता का परिचायक है। अपनी मनोव्यथा को पुनः प्रकट करते हुए राधा कहती है—

मद्यं यानि समर्पितानि हरिणा दुःखान्यसह्यानि वै  
सहान्ते खलु तानि कोकिल हरे नमि स्मरन्त्या मया ।  
किन्त्वस्मिन् व्रजमण्डले भवति यो लोकापवादो महान् ।  
हित्वा मामिति माधवो मधुपुरे यात स नो सहते ॥२६॥

किसी के प्रेम में कोई कितना भी दुःख उठा सकता है, लेकिन अपने प्रेम की अवहेलना यही कठिनाई से सही जानी है। इसी प्रकार राधा फिर कहती है कि कृष्ण के मधुरा चले जाने पर वृन्दावन में रहने वाली किस स्त्री ने कृष्ण के गुणों का स्मरण नहीं किया, कौन उनके विरह में दुःखित नहीं हुई तथा 'कृष्ण कहा गए' ऐसा शिलष २ कर कौन नहीं रोई, लेकिन फिर भी लोग न जाने मुझे ही क्यों कृष्ण विरहिणी कहते हैं। अन्त में वह कहती है कि श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल मेरे प्राण ठहरना भी नहीं चाहते हैं और उनके आने की आशा से निकलना भी नहीं चाहते हैं। हे पिक ! तू ही बता मैं कैसे मरू और कैसे जिऊ। तुझे मैं अपना दुःख क्या बताऊँ—

तिष्ठासन्ति न मेऽसौ मधुरिपोरिच्छेददुःखार्विता  
नाथस्यागमनाशया पुनरमी नो वा विद्यासन्ति वै ।  
तस्मान्मम मृतिजीवने पिक कथं स्याता तदेवोच्यताम्  
किन्ते दुःखमनन्तमच्युतहृत सवन्धि वेतोऽधिकम् ॥२७॥

इस प्रकार श्रीकृष्णजी के लिए सम्यक् बातें बताकर कुछ ऐसी बातें भी कोकिल से कही गई हैं जिनको कि कृष्णजी से कहने के लिए स्पष्ट रूप से कोकिल को मना कर दिया गया है। इस प्रसंग में राधा कोकिल से कहती है—

नाथे गच्छति पटपदा सुमधुर नादं न कुर्वन्त्यहो  
नो मृत्यन्ति धनागमेऽपि शिखिनो नो वान्ति धाता शुभाः ।  
नो पुण्यन्ति कदम्ब-चम्पक जरा-सप्तच्छदादीनि च  
श्रेष्ठ्य नैव जनार्दनान्तिक इदं रे चक्रपाणिमिय ॥२८॥

संभव है कि इन बातों को सुनकर कृष्णजी का हृदय और अधिक दुःखी हो जाये और वे यहाँ आने का विचार ही छोड़ दें। इसी प्रसंग में राधा ने फिर कहा है—

श्री वृन्दावन इन्दुरय नलिनीनाथायते यामिनी  
सायत् पालनिशायतेऽपि च मन्दुबहनीयते सूरजा ।  
तदा यैतरलीयते पिक सदा मालाऽपि सर्पायने  
यद्यप्य ॥ कदापि नाथ इदमप्यस्मन्मनोऽभीष्टके ॥२९॥

इस पद्य में प्रकारान्तर से राधा की विरहावस्था ही वर्णित की गई है। प्रिय ससर्ग में जो वस्तुये रमणीय और सुखकर होती हैं, प्रियरिह में वे ही दुःपद प्रतीत होने लगती हैं। लेकिन इन सब बातों को राधा अपने कृष्ण से छिपाना चाहती है ताकि उसकी विरहव्यथा से उन्हें कोई कष्ट न हो।

इस प्रकार इस सन्देश काव्य में राधा का विरह-वर्णन तथा कृष्ण के लिये उसका प्रेमसन्देश पाया जाता है। यद्यपि सन्देश भेजने के समय का उल्लेख नहीं किया गया है, फिर भी कोकिल के सादृश्य से वसन्त ऋतु का अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि अन्य ऋतु में कोकिल पाई ही नहीं जाती है। यदि मिल भी जाये, तो उसका कण्ठ बन्द रहता है। इसके अतिरिक्त कवि ने प्रथम श्लोक में स्वयं ही लिखा है—

शुभावेन्दुमुखी वनप्रियरव राधा कुरङ्गेक्षणा ॥१॥

अतः सन्देश भेजने का समय वसन्त ऋतु ही है।

भ्रमर-दूत और पिक दूत यह दोनों ही काव्य श्री रुद्र न्याय-पञ्चानन के लिये हुये हैं। इन दोनों में कौन पहिले लिखा गया है और कौन बाद में—यह निर्णय करना कुछ कठिन ही है। पिकदूत की कविता उतनी सरस तथा प्रसाद-पूर्ण नहीं है जितनी कि भ्रमरदूत की। कहीं-कहीं पिकदूत में कुछ क्लिष्ट कल्पना भी पाई जाती है। दूसरे इस काव्य में मार्गवर्णन तो है ही नहीं और सन्देश के अन्त में कोकिल को आशीर्वाद इत्यादि भी नहीं दिया गया है। इस दृष्टि से यह काव्य कुछ अपूर्ण सा ही लगता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रथम यही सन्देशकाव्य कवि ने लिखा होगा। यदि भ्रमर-दूत के बाद इस काव्य की रचना हुई होती, तो यह काव्य आकार तथा प्रकार दोनों में ही भ्रमरदूत से उत्कृष्ट होता।

कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि कवि ने इस काव्य में ( श्लोक सं० ५, इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ४२४ पर उल्लिखित ) भ्रमर को दूत बनाने में अपनी उदासीनता प्रकट की है। ऐसा तभी हो सकता है जब कि भ्रमरदूत को लिखने के बाद यह काव्य लिखा गया हो। कृष्ण के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में भी भ्रमर को दूत बनाया गया है, अतः इस काव्य में भ्रमर के दूत बनाये जाने का प्रश्न स्वभावतः ही उठता था, उसी का कवि ने उचित अग्रसर पाकर समाधान कर दिया है। इसलिये यह पिकदूत भ्रमर-दूत के बाद की ही रचना है।

लेकिन यह विचार भी नितान्त सत्य नहीं है। इस काव्य में भ्रमर के प्रति जो उदासीनता व्यक्त की गई है, वह कवि की स्वाभाविक उदासीनता नहीं है, बल्कि कार्यवश ही भ्रमर को दूत नहीं बनाया गया है। अतः भ्रमरदूत को कवि की उत्तरकालीन रचना मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

काव्य में अप्रत्यक्ष रूप से देया और सत्य इत्यादि गुणों की प्रशंसा भी कवि ने की है। कोकिल से दूत कार्य करने की प्रार्थना करते हुये राधा कहती है—

सन्तो यद्वितरन्ति कोकिल कृपा दीनातिर्दाने जने  
नो तत् कारणं सतामिदमहो शीलं च तेषां पुनः ।  
किं कुर्यान्नलिन रवेरपि निधो किं वा सखे कैरव  
सूर्यं पद्ममपीन्दुरत्पलमल सफुरलयेदेव यत् ॥१८॥

इसी तरह सज्जनों के सत्यभावण की भी प्रशंसा निम्न पंक्ति में पाई जाती है—

प्राणान्तेऽपि यदन्ति सत्यरचन सन्त पुनर्नामृतम् ॥२७॥

यह काव्य एक लघुतम सन्देशकाव्य होते हुए भी राधा और कृष्ण के अनन्य प्रेम की अनुपम भावों की पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। सन्देश काव्यों की शिल्प योजना में शाबू लनिकीटित छन्द का प्रयोग कर कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। मेघदूत के अनुकरण का इस काव्य में कहीं भी कोई प्रभाव नहीं पाया जाता है। निरह-वर्णन में तीव्रता होते हुये भी धृगारिक्ता सयत रूप में ही काव्य में पाई जाती है। अपनी निरहव्यथा का वर्णन करते हुए राधा ने कोकिल के समक्ष यह गम्भीर विचार व्यक्त किये हैं। यथा—

दैत्यारोर्विरहानल परतरो दावानलो वाऽभनत्  
गोपीना नयनाभ्रुपत्तिरधुना नो वृष्टिरेषाभनत् ।  
कालोऽयं मम दुर्विपाकघणत वरपान्तकालोऽभनत्  
मन्ये सहस्राय कोकिल हरिर्ना दद्रुष्योऽभवत् ॥७॥

इस पद्य से निरह की उग्रता तथा राधा की व्यग्रता का पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। भाव तथा रस के अनुकूल काव्य में माधुर्य गुण और पैदर्भी रीति सर्वत्र पाई जाती है। राधा और कृष्ण के अर्थों के लिये यह काव्य सर्वथा उपादेय है।

शतावधानकवि श्रीकृष्णदेव का भृंगदूत ( वि० अष्टादश शतक )

— यह 'गणेश विश्वविद्यालय पत्रिका' सं० ३ दिसम्बर, १९३७ में प्रकाशित हुआ है। मैसपुरी ( उत्तर प्रदेश ) के पं० सुरजमल चतुर्वेदी से इस काव्य की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। 'काव्य के अन्त में 'इति श्रीशतावधान कवि

कलित भ्रमरसन्देश समाप्तम्' ऐसा लेख है। इससे ज्ञात होता है कि इस काव्य का नाम 'भ्रमरसन्देश' है और उसके लेखक का नाम शताग्रधान कवि। लेकिन 'शताग्रधान कवि' यह नाम वास्तविक नामसा नहीं लगता। समग्र है कि एक साथ सौ विषयों पर ध्यान देने की शक्ति रखने के कारण कवि की यह उपाधि पड़ गई हो। काव्य का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है—

श्रीकृष्णदेवस्मरणाभिधानं शताग्रधानं परमाभिधानम् ।

श्रीभृङ्गदूत श्रुतिसारभूत व्यधादतिप्रेमकथानुभूतम् ॥

इस श्लोक से ऐसा ज्ञात होता है कि कवि का नाम कृष्णदेव है। 'श्री' शब्द केवल आदर-सूचक है। यद्यपि इस नाम के मानने में समान की कठिनाई ही रहती है, क्योंकि 'श्रीकृष्णदेवस्मरणाभिधान' में श्रीकृष्णदेव इति स्मरण योग्यम् अभिधानम् यस्य रु — इस प्रकार मध्यमपदलोपिसमास अथवा 'श्रीकृष्णदेवस्य स्मरणे अभिधान यस्य स — इस प्रकार व्यधिकरण बहुव्रीहि समास ही बनता है, फिर भी यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होती चाहिये कि कवि का नाम शताग्रधान श्रीकृष्णदेव है। यद्यपि इस काव्य के अन्त में 'भ्रमर सन्देश' यह नाम दिया हुआ है, लेकिन काव्य के अन्तिम श्लोक में 'भृगदूत' शब्द के आने से इस रचना का नाम 'भृगदूत' ही समझना चाहिये। लिपिकार के इस कथन—

- • अलेखि रामकृष्णो न सूकरक्षेत्रासिना  
पुस्तक भृ गदूतस्य धर्मकामार्थसिद्धये ॥

में 'भृ गदूत' शब्द के उल्लेख से भी इस रचना का नाम भृ गदूत ही उचिन प्रतीत होता है।

शताब्दान कथि श्रीकृष्णदेव के समय के सग्रन्थ में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। केवल इतना निश्चित है कि यह स० १७५० वि० (स० १६६६ ई०) से पूर्व के है। क्योंकि लिपिकार ने अपनी लिपि का समय 'स० १७५० वर्षे कारगुण यदि अष्टम्या रविवासरै' ऐसा दिया है। पूर्णिमान्त मास की पद्धति से यह तिथि १६ फरवरी स० १६६६ ई० रविवार निकलती है। प्रो० वि० वि० मिश्रा (नागपुर) इस गणना की पुष्टि भी कर चुके हैं। अतः वि० अष्टादश शतक का प्रथम भाग ही कथि का समय निश्चित होता है।

यह पुस्तक सुकराक्षेत्र ( सोरो, उत्तरप्रदेश ) में लिखी गई है तथा राजभूमि के अनेक विवरण इस काव्य में पाये जाते हैं और हस्तलिखित प्रति का स्वामी अपने को लेखक ( कवि ) का वंशधर बताता है । इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि इस काव्य का रचयिता सोरो या मैनपुरी का निवासी है । इसके अतिरिक्त इस कवि के सन्दर्भ में और कुछ ज्ञात नहीं है ।

## काव्य की कथा

पूर्णानन्द, परमपुरष, कमलनयन श्रीकृष्ण भगवान् के विरह में एक गोपी अत्यन्त व्याकुल रहती है। सादनी रात भी करप के समान उसे प्रतीत होती है। एक दिन सूर्यादय होने पर मधुरमधुर गुञ्जा हुआ एक भौरा उसे दिसलाई पड़ जाता है। बस, कृष्ण के पास अपना सन्देश भेजने के लिए वह उसे ही दूत बनाती है और उससे वृन्दावन जाने की प्रार्थना करती है। इस प्रसंग में वृन्दावन, नन्द-गृह, नन्द के उद्यान, यशोदा के पुत्रप्रेम और वृन्दावन की राजवीथियों में होने वाली गोपियों की विलासप्रपञ्चों में बड़े सरस ढंग से वर्णित की गई हैं। स्थान-स्थान पर नृत्य और गीत का प्रदर्शन करती हुई गोपिकाओं के देखने का भी भ्रमर को परामर्श दिया गया है। यमुना के मार्ग में आने वाले सरस्वती और शिवजी के मन्दिर का भी वर्णन पाया जाता है। मार्गस्थित कदम्ब वृक्ष पर गोपिकाओं के वस्त्रों को छीन कर बैठे हुये कृष्ण की लीलाओं के भी बड़े सरस चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। यमुना के बाद फिर वृन्दावन जाने का भ्रमर को परामर्श दिया गया है। वृन्दावन के द्वार और अन्तर्वाथियों इत्यादि के वर्णन के बाद गोवर्धन पर्वत का वर्णन किया गया है। इस पर्वत की ही किसी ऊँची चोटी पर चढ़ कर कृष्णजी की क्रीडाभूमि देखने का भ्रमर को आदेश दिया गया है। क्रीडाभूमि में गोपिकाओं और गोपालों के बीच में ही कहीं पर कृष्णजी के मिल जाने पर उन्हें प्रसन्नचित्त तथा उपयुक्त अप्रसर देखकर अपना सन्देश सुनाने के लिये गोपिका ने भृगु से अनुरोध किया है। सर्व प्रथम भृगु से कृष्ण की स्तुति करने के लिये कहा गया है। तदनन्तर भृगु से कृष्ण को निम्नलिखित सन्देश सुनाने की प्रार्थना की गई है।

‘हे कृष्णासागर, अनन्तशक्ते, गोपीरमण, वासुदेव भगवन् ! एक गोपी इस समय आपके विरह में यही व्याकुल है। अपनी विरहव्यथा आपको सुनाने के लिए उसने मुझे दूत रूप से आपके पास भेजा है। हे देव ! आपके विरह में चन्द्रिका उसके लिये अग्नि के समान है, पत्रों की शय्या अगार तुल्य है, पुष्पों का द्वार भार सा लगता है, कमल के पत्ते शालों की तरह चुमते हैं, मन्दिर विष के समान है और यशो का स्वर तो उसे मूर्च्छित सा करता है। हे देव ! तुम्हारे ध्यान में उसका एक २ दिन करप के समान बीतता है। हे माधव ! दाय जोड़, कर उसने तुम्हारे लिये यह सन्देश भेजा है कि तुम सर्वदा चित्त में रहते हो। अनेक भावों से बाह्य जगत् में तुम्हारा प्रकाश हो रहा है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें तुम्हारा विज्ञान न हो। सारे प्राणी तुम्हारी माया के वश में हैं। मैंने लहजा, कुल, शील और मान मर्यादा छोड़ दी है। मुझे किसी का डर नहीं है। धर्मधन्य को मैंने दूर कर दिया है। जो जो प्रिय था, वह सब मैंने छोड़ दिया है। अब निर्वाण हेतु केवल तुम ही मेरे रक्तक हो। मेरी केवल यही प्रार्थना है कि तुम्हारे चरणकमलों को अपने हृदय में सर्वदा धारण किये रहें तथा मेरी वाणी, मन और काया अन्य विषयों से

विरत होकर तुम्हारे ही ध्यान में लगी रहे । हे कृपायास ! मुझ पर कृपा करो । यदि मेरा कोई अपराध हो, तो उसे क्षमा करो ।'

भृगु को इतना सन्देश बताने के बाद गोपी उसे वृन्दावन में ही पुष्पसमूह में विहार करने तथा कृष्ण भगवान् की वैजयन्ती माला में निवास प्राप्त करने का आशीर्वाद देती है ।

सन्देश के समाप्त होते होते ही दीनों के रक्तक, विश्वात्मा, आनन्द मूर्ति कृष्ण भगवान् साक्षात् प्रकट हो जाते हैं और उस गोपी को अपने धाम ले जाते हैं ।

यस, यही काव्य की कथा है ।

### साहित्यिक समीक्षा

यह काव्य पूर्णतया मेघदूत की शैली पर ही लिखा गया है । मन्दारान्ता छन्द का ही काव्य में प्रयोग हुआ है । काव्य में कुल १२६ श्लोक हैं । पूर्व भाग और उत्तर-भाग जैसा काव्य में कोई विभाजन नहीं किया गया है । प्रायः विचार-तारतम्य मेघदूत जैसा ही है । कहीं-कहीं पर तो मेघदूत की पदावली का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है । निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है—

(१) कश्चित्कान्ताविरहशुक्ला स्याधिकाराप्रमत्त ( मे० दू० १ )

(१) एता प्रीत्या निशमय निशासकुचर्तपंकजान्तस्  
ताम्यत्कान्ताविरहशुक्ताभिश्च विज्ञापना मे । ( भृ० दू० ६ )

(२) सतप्ताना त्वमसि शरणं तत् पयोद प्रियाया । ( मे० दू० ७ )

(२) सतप्ताया मयि कण्ठया दाहि तूर्णं तथापि । ( भृ० दू० २२ )

मेघदूत में सन्देशकथन के बाद यक्ष भृगु को आशीर्वाद देता है । इसी प्रकार गोपी भी भृगु को अन्त में आशीर्वाद देती है—

एतत्कृत्वा मधुकर भवानीप्सितं मे दयावान्  
धृन्दे वृन्दावनसुमनसा नित्यमानन्दमेतु ।  
अप्यामोदप्रसरसुभगामच्युतस्थानुवेलं  
यत्तद्भृङ्गीरक्षितमुखरा वैजयन्तीमुपास्ताम् ॥१२५॥

अपनी विरहायस्था का वर्णन करते हुये यक्ष अपनी प्रेयसी के प्रति कहता है—

श्यामास्थनं चकितहरिणीप्रेक्षिते दृष्टिपातम्  
ययत्रच्छाया शशिनि शिखिना बर्हभारेषु वेशान् । इत्यादि



भृगुदूत में भी गोपिका अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये कृष्ण से कहती है—

शोणाब्जानां ततिषु चरणाकारमिन्दीमरेषु  
छायामागीमधरसुषमा म्बुजीवावलीषु ।  
नेत्रालोकश्रियमपि च ते पुरन्दरीकेषु बाला  
निधायन्ती कथमपि बलाज्जीवित सा विमर्ति ॥११३॥

काव्य की भाषा भी प्रसाद गुणयुक्त है। केवल प्रजमूमि के ही वर्णन होने से भौगोलिक ज्ञान की बातें इस काव्य में बहुत कम पाई जाती हैं। मेघदूत में प्रधान रस विमलम्भ शृंगार है। लेकिन इस काव्य में प्रेम अपने दिव्य स्वरूप में प्रतिष्ठित है। गोपिका के प्रेम का आलम्बन स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् हैं और उ हैं परमपुरुष तथा विश्वात्मा के रूप में ही माना गया है। वैष्णवों के भक्ति साहित्य में भी इस काव्य का विशिष्ट स्थान है।

यद्यपि मेघदूत के अनुकरण पर ही इसकी रचना हुई है, फिर भी इन काव्य में मौलिकता की कमी नहीं है। मेघदूत में एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के पास सन्देश भेजता है। इस काव्य में एक भक्त स्त्री ने अपने भगवान् के पास सन्देश भेजा है। सरलभाषा में सरस वर्णनों की भी काव्य में कमी नहीं है। बुन्दावन की राजरीखी में चलती हुई स्त्रियों का घाड़ा ही सरस वर्णन कवि ने किया है।

हैमन्कुम्भानुरसिजभरैर्दर्पणालि कपोलै  
भृगान्पुष्पप्रकरमुखान्पादभूषानिनादै ।  
तन्त्रीनादान्मुद्रुभिरुचितै कुकुमान्यगकान्या  
कर्पूर च स्मितरचनया यत्र नायों हसन्ति ॥१६॥

यमुना के वर्णन में भी कवि ने बड़ी उपयुक्त उपमाएँ प्रयुक्त की हैं—

आनन्दैत द्रुत इव हरेरगलाग्रशर-  
दृष्णस्पर्शान्न इव भुवो रोमराज्जीविलास ।  
दानस्यन्दोदय इव कलिन्दाडिदन्तागलस्य  
स्त्रीतोमार सुभगसलिल शोभते साधु यस्या ॥१७॥

यमुना की चढ़ती हुई लहरों को लेकर भी कवि ने बड़ी सरस वर्णना की है—

आश्रमन्त पुलककलिकाशालिनीमूर्धसिमां  
मारोदन्तस्त्रियलिपद्वीं नाभिमास्फलयन्त ।  
आलिगन्त कुचकलशकार्णमनाना प्रिदार  
यत्कल्लोला विलस मुग्धजित् कुर्वते क्षीयितासान् ॥१८॥

इसके बाद गोवर्धन पर्वत का कवि ने बड़ा सजीव चित्र अंकित किया है—

शङ्खायन्ते समदगतयः शाकराः ( = वृषभाः ) यत्र धीर  
वत्सा स्तन्यस्तवकितमुखा स्त्रैरमुत्पुच्छयन्ते ।  
आह्वयन्ते मुहुर्नुगिरः घेनयो नामधेयै  
श्रूयन्ते च श्रुतिसुखकरा क्षीरधाराभिनादा ॥८६॥

गोवर्धन पर्वत पर किन्नरिया गान करती रहती हैं और हिरनिया वहे अचल-  
भाज से उसे सुनती हैं—

उदयदुःशर्पैर्गलितकयलैरनुपैरुर्ध्वरुणं-  
रेणीयैरचलतनुभिः श्रूयमाणं समन्तात् ।  
कुञ्जे कुञ्जे कृतयसतिभिः कोमल किन्नरीभिः-  
स्तन्त्रीतालध्वनिसहचरं तापते यत्र गानम् ॥८७॥

कण्वजी के स्वरूप का भी कवि ने बड़ा ही वास्तविक चित्र अंकित किया है—

यस्तन्मध्ये त्रिलसति युवा गोकुलाम्भोधिरत्नम्  
त्रिस्तीर्णारं स्थलकृतस्त्रि वैजयन्तीं दधानः ।  
पिच्छापीडं पृथुभुजयुगं पीतकौशेययासाः  
कम्बुभीजं कमलनयनं कान्तिसीमान्तरेखा ॥८८॥

कृष्णजी के गोपालन प्रेम का निम्न श्लोक में कवि ने बड़ा ही स्पष्ट परिचय  
दिया है—

काले तस्मिन्स तत्र भविता नूनमालोकमार्गं  
माहेयीना मुदितमनसा दोहनं कारयित्वा ।  
यत्सना या कुलमनुकुलं यत्गुता यत्गुं पश्यन्  
कुर्वन्नुदणा गुह्यतरं ककुत्कूटं कण्डूयनं वा ॥८९॥

कृष्ण के विरह में गोपिका की दशा का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया  
गया है—

ज्योत्स्ना यद्दिनं किञ्चलयमयं तत्पमगार-कूटम्  
हारो भरं कुञ्जलयदलत्रैस्तु यः कुर्यात् ।  
हाला हालाहलत्रिपरसो मूर्च्छितं वल्लकीना  
मूर्च्छामन्त्रस्तत्र हि विरहे साम्प्रतं देयं तस्या ॥९०॥

गोपिका के प्रेम की तीव्रता, सरलता और सात्विकता का भी कवि ने यहाँ  
ही उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। गोपिका कहती है—

सज्जा तूना कुलमगणितं लघिता मानमुद्रा  
मग्न शील मयमपहत धिरूक्तो धर्मसेतु । -  
यदुयद् दृष्ट प्रियमिति मया तत्तदत्याजि सर्व  
त्वामेवैक शरणमधुना यामि निर्वाणहेतुम् ॥१८०॥

धिरह विह्वल गोपी भगवान् से प्रार्थना करती है—

कामं कल्पद्रुम इव भवानाश्रिताना जनाना  
कामा नेरे फलतु मम तु प्रार्थनेय निसर्गात् ।  
अभान्त ते चरणमदण्डमोजसोभाग्यचौर  
नित्यासगे हृदि पुलकिते निर्भर धारयेयम् ॥१२१॥

एतावन्मे कुतुकमतसीसूनमासि त्वदगे  
कुर्वा नित्य विषयविरता वाङ्मन कायवृत्ती ॥१२२॥

इस प्रकार इस काव्य में अनेक भावपूर्ण स्थल देवने में आते हैं । कहीं कहीं पर अनुप्रास की भी छुटा दर्शनीय है—

- १ मार्गस्थाने मलयमरुता मन्दमान्दोलितासु  
माकन्दाना मधुप विहरन्मजरीषु प्रकामम् ॥३६॥
- २ कुञ्जे कुञ्जे कलितकुसुमे करपयन्नगरागम् ॥३४॥

कवि ने कहीं कहीं पर यही मार्मिक उक्तिया भी काव्य में दी हैं—

- १ अत्युत्कण्ठाकलितप्रतपं कर्तुं मयं परेषा-  
मुदयच्छन्ति स्वकसुकमनादृत्य नित्य महान्त ॥२६॥
- २ अत्यौत्सुक्यादग्निधरसानगनाना विशेषा-  
नन्त श्लाघो न तु भवति यस्त्यक्तमोग स एव ॥३८॥
- ३ ससारिऽस्मिन् विकसति सुख यत्सजातीयसगा—  
सस्यापश्यं न सत्तु सदृशं जन्यते कैश्चिदन्यै ॥४८॥

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य के परिशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह काव्य किसी सहृदय भक्त कवि की यही ही सरस रचना है । भावों की कोमलता के साथ साथ भाषा भी यही कोमल और मधुर है । स्थान २ पर कोकिल, शुक और भौरों के मधुर रव तथा संगीत की मधुर धारा का प्रवाह सा काव्य में छूटा हुआ देखा पड़ता है । साथ में भक्ति भाव की प्रधानता होने के कारण काव्य में पूत-मायनाओं की सरिता सी उमड़ती आन पड़ती है । साहित्य प्रेमियों तथा कृष्ण-भक्तों दोनों के लिये ही समान रूप से यह सन्देश काव्य उपाध्य है ।

## कृष्णसार्वभौम का पदाङ्कदूत ( वि० सं० १७८० )

वगाल के संस्कृत दूत-काव्यों में पदाङ्कदूत एक छोटा सा महत्त्वपूर्ण दूत काव्य है। यह महाभारत-प्राध्याय श्रीकृष्णसार्वभौम का लिखा हुआ है। ग्रन्थकार ने काव्य के अन्त में लिखा है—

शाके सायक-वेद पौडशमिते श्रीकृष्णशर्मोर्षयन्  
आनन्दप्रदमन्दनन्दनपदद्वन्द्वारविन्द हृदि ।  
चक्रे कृष्णपदाङ्क-दूतमखिल प्रीतिप्रदं शृण्वता  
धीरश्रीरघुरामरायनृपतेराज्ञा गुहीत्यादरात् ॥४६॥

इस पद्य से इतना तो निश्चित हो ही जाता है कि ग्रन्थकार न १६४५ शक सत्रसर में इस काव्य की रचना की। शक सत्रत् १६४५ वि० सं० १७८० से मिलता है। अतः ग्रन्थनिर्माण का समय तो निश्चित ही है।

यह श्रीकृष्णसार्वभौम वगाल के शान्तिपुर नामक किसी स्थान के निवासी थे। बाद में इन्होंने नवद्वीप में अपनी एक पाठशाला स्थापित कर ली थी और वहीं रहने लगे थे। नवद्वीप के राजा श्री रघुरामराय के कहने से इनका यह दूत-काव्य लिखना स्वाभाविक ही था। द्वितीयराजशाली नामक ग्रन्थ के अध्ययन से पता चलता है कि यह रघुरामराय नामक राजा शक सत्रत् १६३७ से शक सत्रत् १६५० तक राज्य करता रहा था। अतः रघुरामराय नृपति के शासन काल में यह ग्रन्थ लिखा गया— इसमें ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ भी असंगति नहीं है।

लेकिन कहीं कहीं कुछ ऐसा पाठभेद पाया जाता है जिससे समय के सम्बन्ध में सन्देह न होते हुये भी कवि के आश्रयदाता राजा के सम्बन्ध में मतभेद अवश्य उत्पन्न हो जाता है। किसी किसी पुस्तक में पूर्वोक्त श्लोक का उत्तरार्ध इस तरह है—

चक्रे कृष्णपदाङ्कदूतरचनं त्रिदशमनोरञ्जनम्  
श्रीलक्ष्मीयुत रामजीवन महाराजाधिराजादृत ॥

यह रामजीवन नामक राजा रघुरामराय का पिता था। शक सं० १६३७ में इसका स्वर्गपास हो गया था। श्रीकृष्ण सार्वभौम के राजा रामजीवन के आदरपात्र होने में क ई सन्देह नहीं हो सकता। इसलिये इन दोनों पाठों में वस्तुतः कोई विरोध नहीं है।

प्रश्न यह है कि यह पाठभेद हो कैसे गया? इसका उत्तर यही समय में आता है कि यह कवि पहिले से ही राजसभा में प्रतिष्ठित रहा होगा और वृद्ध राजा के स्वर्गपास के बाद उसके पुत्र के आदेश से उसने यह काव्य लिखा होगा। अपने आश्रयदाता जीवित नृपति रघुरामराय के आदेश की तरह अपने पूर्वनृपति रामजीवन

के प्रेम का भी सम्मान करते हुए कवि ने स्वयं ही पाठ रेखयुक्त यह पत्र लिखा है । पिता का नामोल्लेख करना रघुरामराय के लिये भी प्रसन्नता का कारण बन सकता है ।

अथवा ऐसी भी सम्भावना हो सकती है कि पहिले कवि ने 'धीर श्री रघुराम रायनृपतेराज्ञा शृद्धात्वादरात्' ऐसा ही केवल एक पाठ रक्खा हो । तदनन्तर रघुरामराय ने काव्य की विशेष उपाययता देखकर और स्थिरता समझ कर पिता के नाम को भी चिरस्थिर बनाने की दृष्ट्या से कवि के द्वारा मध्य पाठान्तर करा दिया हो ।

इसके अतिरिक्त यह बात भी यहाँ विशेष रूप से विचारणीय है कि शक संवत् १६४५ में बंगाल के 'राजसाहि' मण्डल के अन्तर्गत 'नाटोर' नामक स्थान में भी रामजीवन नामक कोई राजा राज्य करता था । यहाँ पर ऐसी किम्वदन्ती है कि इस नाटोर के राजा रामजीवन के आदेश से ही कवि ने इस काव्य की रचना की । नाटोर में उपलब्ध पुस्तक में 'रामजीवन' नाम से युक्त एक ही पाठ पाया जाता है न कि दो ।

नाटोर निवासी ऐसा भी कहते हैं कि नाटोरपति ही राजाधिराज था न कि नरहीपति भी । लेकिन यह जनश्रुति निराधार ही मालूम पड़ती है । किसी भी मूल पुस्तक में 'धीरश्रीयुतरामजीवन महाराजाधिराजाज्ञया' ऐसा लिखा हुआ नहीं मिलता है । लेकिन इस जनश्रुति के निर्मूल होने पर भी यह बात असंभव नहीं हो सकती कि नरहीप के राजा की सभा का परिदृष्ट होत हुए भी यह कवि नाटोर के राजा का भी सम्मान का पात्र रहा हो और नाटोरनृपति को प्रसन्न करने के लिये कवि ने अन्तिम श्लोक कुछ पाठान्तर के साथ उसकी सभा में पढ़ दिया हो ( इस विषय पर विस्तृत विचार के लिये डा० जे० बी० ओधरी का चङ्गीय दूत काव्येतिहास (संस्कृत) पृ० ४६-५० देखिये ) ।

काव्य के अनुशीलन से कवि के कृष्ण भक्त होन का तो परिचय मिलता ही है, उसके नयन्याय सगन्धी गम्भीर ज्ञान का भी हमें पूर्ण विश्वास करना पड़ता है । स्थान स्थान पर कवि ने नयन्याय के सिद्धान्तों का काव्य में उल्लेख किया है । यथा—

- (१) प्राय सत्यं मतमिदमहो कारणं कार्यमेव ॥७॥
- (२) अप्रामाण्यं जनयति सदा नन्दसुनोर्वियोगो  
व्याप्यज्ञातात् प्रजकुलमुपा व्यापकस्यापि सिद्धौ ॥२१॥
- (३) सामग्री चेन्न फलविरहो व्याप्तिरेवेति तत्त्वम् ॥३१॥
- (४) नाप्रत्यक्षम् प्रमितिकरणं वाक्यमेतन्न युक्तम् ॥४३॥ इत्यादि ।

इस प्रकार यह दूत काव्य एक परमनैयायिक तथा कृष्ण भक्त कवि की रही सुन्दर रचना है।

### काव्य की कथा

कृष्ण के विरह में व्याकुल तथा उन्मत्त हो घूमती हुई कोई गोपी अपने घर से यमुना के तट पर स्थित किसी कुँज में जाती है। वहाँ कृष्ण को न पाकर उसे मूर्च्छा आ जाती है। मूर्च्छा के चले जाने पर कुँज के निकट ही कुलिश, कमल, और रथ इत्यादि के बिह्न से युक्त श्रीकृष्ण के चरण का बिह्न उसे दिखल ई पड़ जाता है। उसी समय मेघों के घोर गर्जन को सुनकर विरह वेदना से यह उन्मत्त हो जाती है और श्रीकृष्ण के चरणचिह्न से दूत के रूप में कृष्ण के पास मधुरा जाने की प्रार्थना करती है।

इस प्रसंग में कृष्ण के चरणचिह्न की विविध प्रकार से प्रशंसा की गई है ताकि यह गोपी का सन्देश कृष्ण के पास लेजाने के लिये उद्यत हो जाये। यमुना के तट से मधुरा तक के मार्ग की रमणीयता, स्थान-स्थान पर जनता द्वारा चरणचिह्न का स्वागत करना, सुगन्धित और शीतल वायु द्वारा मार्ग में उसकी सेवा करना, उसकी निर्भीकता तथा सामर्थ्य का विविध भारभंगिमाओं के साथ गोपी द्वारा वर्णन किया गया है। कोस भर चलने के बाद यमुना में चरणों को धोकर किसी वृक्ष के नीचे विधाम करने का भी चरणचिह्न को परामर्श दिया गया है। यदि पैदल जाने में कोई-कष्ट हो, तो अपना मनरूपी अश्व भी देने के लिये गोपी प्रस्तुत हो जाती है।

इस प्रकार विविध प्रलोभनों से चरणचिह्न को मधुरा जाने के लिये प्रोत्साहित कर गोपी उससे अपनी विरहव्यथा का बड़ा भारपूर्ण निवेदन करती है। अन्त में कृष्ण के पास उसके पहुँचने की संभावना करते हुए उसे अपना सन्देश सुनाती है।

सन्देश में कृष्ण को केवल वृन्दावन की स्मृति ही दिलाई गई है तथा कुँज प्रेम पर उन्हें उपालम्भ भी दिया गया है। अन्त में कृष्ण विरह से उत्पन्न अपनी मनोव्यथा का निवेदन कर गोपी सन्तुष्ट हो जाती है।

यस, काव्य की कथास्तु केवल इतनी सी ही है।

### काव्य-समीक्षा

जैसा कि काव्य की कथा से स्पष्ट है, इस में कृष्ण के पदाङ्ग को गोपियों द्वारा दूत बनाया गया है। अतः काव्य का पदाङ्गदूत नाम उपयुक्त ही है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के तीसरे अध्याय के २४, २५ और २६ वें श्लोक के आधार पर इस

दूतकाव्य की रचना की गई है। रासक्रीड़ा के प्रसंग में भगवान् कृष्ण के प्रेम को पाकर गोपियों को कुछ अभिमान होने लगता है। उनके अभिमान को दूर करने की भावना से कृष्णजी यमुना के तट पर ही कहीं अन्तर्धान हो जाते हैं। यकायक अपने मध्य में कृष्ण को न पाकर गोपियां बड़ी दुःखी होनी हैं और उन्मत्त की तरह अश्रुत प्लव, न्यग्रोध, तुलसी, मल्लिका, यूथिका और आम्र इत्यादि वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती फिरती हैं। इसी प्रसंग को लेकर तीसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। इस अध्याय के निम्न श्लोकों में—

एवं कृष्ण पृच्छमाना वृन्दावनलतास्ततः ।

व्यवक्षत यतोद्देशे पदानि परमात्मन ॥२४॥

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसुनोर्महात्मनः ।

लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभि ॥२५॥

तैस्तै पदैस्तत्पदरीमन्विच्छन्त्योऽप्रतोऽवला

भया पदै सुपृक्तानि विलोक्यार्ता समनुवन् ॥२६॥

कृष्ण तथा किसी गोपी के पदचिह्नों का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। इसी प्रसंग से कवि ने कृष्ण के पदाङ्क को गोपी का दूत बनाकर पदाङ्कदूत लिखने की प्रेरणा प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त मेरूदूत से भी कवि को इस काव्य के लिखने में प्रेरणा प्राप्त हुई है। काव्य में कुल ४६ श्लोक हैं। जिनमें अन्त का एक श्लोक ही शार्ङ्गलनिकीडित छन्द में है। अवशिष्ट सब मन्दाक्रान्ता छन्द में ही हैं। छन्द तथा शैली में ही मेघदूत का प्रभाव दीखता है। अन्य अर्थों में तो कवि ने अपनी स्वतन्त्र कल्पना शक्ति से ही काम लिया है। मार्गवर्णन तो काव्य में है ही नहीं तथा कथा यस्तु भी बड़ी अल्प ही है। पूर्व-भाग और उत्तर-भाग जैसा विभाजन भी काव्य में नहीं किया गया है। मार्गवर्णन के न होने से प्राकृतिक दृश्यों का मनोमुग्धकारी वर्णन यद्यपि काव्य में नहीं है, फिर भी यह काव्य बड़ा सरस और मोहनीय है। कवि ने अपने कल्पना-चातुर्य से गोपियों की भक्तिभावना का बड़ा प्रभावपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। मन या आकाङ्क्षा को ही दूत बनाकर क्यों नहीं भेजा जाए, इस बात का उत्तर गोपी कितनी प्रबल युक्ति के साथ देती है—

चेत प्रस्थापितमण्डनया दीप्यन्मणिपुत्तम्

तत्रैवास्ते मुरहरपदस्पर्शमासाद्य मुग्धम् ।

आकाङ्क्षेय तनुगुरुतया नैव गन्तु समर्था

कोऽन्यो गच्छेद्भद मधुपुरीं गोपिकानां दिताय ॥६॥

मन को कृष्ण के पास पहिले से ही गया हुआ तथा आकाङ्क्षा को अत्यन्त भारी घटाकर कवि ने गोपियों के गम्भीर कृष्ण प्रेम का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। कृष्ण के पदाङ्क की विशिष्टता का वर्णन करते हुए गोपी कहती है—

पस्यासद्वादलमत तनु मानुषीं गोतमस्त्री  
ध्यानेनैव प्रथितमहिमा श्रीपते नारदादि ।  
तस्माज्जाते त्वयि मधुरिपोरद्भिर्घपद्माद्विचित्र  
किं दीनानामुपरि करुणालिंगितो दृष्टिपात ॥१६॥

अब पिता दयालु हो, तो पुत्र का दबाव होना कोई आश्चर्य की बात नहीं । गोपी के इन शब्दों में कनि की भक्ति-भावना भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्फुटित हो रही है । इसी प्रसंग में आगे कहा गया है—

एक चिह्न हरिपदभरं पन्नमस्योत्तमाद्भगे  
तादृक्शोभामपि खगपतेर्निर्भयस्य चकार ।  
पिएडेनान्यस्तरणिरभनद् घोरससारसिन्धौ  
ध्यात तादृक् स्वमपि महता जन्म निश्वोपवृत्त्यै ॥१७॥

इसी प्रकार कृष्ण के पदाक की निर्भीकता का वर्णन करते हुए गोपी कहती है—

उक्तप्राय तरणितनयानागयोस्तत्कथायाम्  
आस्ते को वा जगति भजता भीतिहेतु कमङ्ग ।  
किं च स्वान्ते क्षणमपि भजत्सगमे याति दूरम्  
भीतिमृत्योरपि किमशनिं लोकरीत्या दधासि ॥२२॥

उत्पन्नस्य प्रियतमपदा तेन भीतिस्तवास्ते  
को वा भूयादिति हि सदृश कारणेनैव कार्यम् ॥२३॥

इस प्रकार के वचनों से न केवल गोपियों की ही भक्ति प्रवणता गरिब कनि के भी परम कृष्णभक्त होने का परिचय मिलता है ।

कृष्ण के पदाक को मधुरा जाने के लिए प्रोत्साहित करने के बाद गोपी अपनी विरहव्यथा का निवेदन प्रारम्भ करते हुए कहती है—

स्त्रीभि प्रेम प्रियतमकृत नैव शक्य विहातुम्  
याचेऽतस्तया किल मधुपुरीं चङ्कमाय क्रमाक ।  
दग्धेनापि व्यथितहृदया पञ्चषाणेन याणे  
क्रूरैरुच्छैर्मन्दनरमणी तत्कृते रोदिति स्म ॥३४॥

उपर्युक्त पद्य में 'स्त्रीभि प्रेम प्रियतमकृत नैव शक्य विहातुम्' इस कथन द्वारा गोपी के प्रेम की सरलता और पवित्रता व्यक्त की गई है । आगे चल कर यज्ञ रघुओं के विरह-सन्ताप का वर्णन करते हुए गोपी कहती है—



आस्ते चिन्ते किल कलयितुं रासना शम्भारे-  
रेकैकेन यज कुलवधूप्राणमेकैकप्रदत्त ।  
वाणेनात सततमनुर्जातकोपादितुरयं  
कूरैस्मान् दहति कुसुमै शयिकै पञ्चसख्यै ॥३१॥

कामदेव के पाच वाण तो प्रसिद्ध हैं ही<sup>१</sup> । शरीर में प्राण भी पाच बतलाये गये हैं<sup>२</sup> । अपने एक एक वाण से गोपियों के एक एक प्राण को नष्ट करने की कामदेव की इच्छा है । इसलिये कामदेव भी कुपित सर्प की तरह पाचों वाण एक साथ ही गोपियों पर चलाता है । सम्मोहन इत्यादि पाच वाणों में से प्रत्येक का एक एक प्राण पर आघात करना कवि की निजी कल्पना का ही चमत्कार है ।

अन्त में अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये गोपी कहती है—

उत्तापोऽयं मदनजनितो वर्धते नित्यमुच्चै-  
वृन्दारण्ये घसतिरधुना केवलं दुःपठेतु  
किञ्चास्माकं नयनसलिलैर्वर्धते चेन्नदीय  
केन स्थेयं द्रुतगतिजलैराविते कुञ्जमध्ये ॥३२॥

गोपिका के इस विरह वर्णन में उसकी मनो-पथा साकार हो उठी है । वृन्दावन की लतायें और कुञ्जों को देखकर कृष्ण की स्मृति आ ही जाती है । अतः विरहिली गोपियों के लिये वृन्दावन दुःख का ही कारण बन गया है ।

अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद गोपी ने पदाङ्क को अपना सन्देश सुनाया है । काव्य के आकार के अनुसार सन्देश यार्ता बहुत ही कम है । लेकिन सन्देश-रूप से जो कुछ भी कहा गया है, यह हृदय के अन्तरतम की पुकार है । अपने सन्देश को प्रारम्भ करत हुये गोपी कहती है—

यत्कथं च स्फुटमिति यदा निर्जनस्थो मुकुन्द  
पद्माय करतिसुललितैरङ्गितं तत् पदाङ्गे ।  
वृन्दारण्ये स्मरसि न कथं शीघ्रतः । मञ्जुकृष्णम्  
घातं घातं यदिह न परीरम्भणं कुञ्जिकाया ॥३३॥

- १ अरविन्दमशोकं च सहकारं नयमल्लिके ।  
रत्नोत्पलं च पञ्चैतं पुष्पशालम्प सायका ॥  
सम्मोहनो-मोहनो च शोषणस्तापनस्तथा ।  
स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्च वाणाः प्रकीर्तिताः ॥

- २ प्राणोऽपानं समानश्चोदानव्यानी च वायव ।

वृन्दावन के नाम से गोपी ने कृष्ण को अपनी ही याद दिलाई है। अन्त में कृष्ण पर व्यङ्ग्य करना भी वह नहीं भूली है।

गोपी पद्माकर को कृष्ण के लिये अपना सन्देश इस तरह सुनाने का परामर्श देती है कि सन्देश के सुनने के बाद कृष्णजी अग्रश्य ही मथुरा से वृन्दावन चले आवें—

आकाङ्क्षा या ग्लपयति मनो मादृशा वासना सा  
शाब्दे धर्मे सति न भविता हानिरेव क्रमादृक् ।  
साकाङ्क्षोऽन्या सुगहरपदे सर्वमेव निषेधम्  
नोचेत्तस्य प्रमितिजनने केन हेतुस्तजोकि ॥४७॥

गोपी का कहना है कि उसकी कृष्ण से मिलने की आकाङ्क्षा मानसिक है, कोई शाब्दी नहीं है। यदि केवल शाब्दिक होती, तो उसे कोई कष्ट न होता, क्योंकि शाब्दी आकाङ्क्षा तो केवल कृष्ण शब्द से भी पूर्ण हो सकती है। अतः पद्माक को चाहिये कि शाब्दिक और मानसिक दोनों आकाङ्क्षाओं को ध्यान में रखकर कृष्ण को सन्देश सुनाये ताकि सन्देश को सुनने के बाद कृष्णजी अग्रश्य आ जायें—

आगन्तव्य सरसिजदशा बोधितेन त्वदुक्त्या ॥४३॥

गोपी की भावनाओं को कवि ने दार्शनिकता के आवरण में यही सुन्दर रीति से अभिव्यक्त किया है।

अपने सन्देश का उपसंहार करते हुए गोपी कहती है—

मूर्खा एव क्षणिकमनिश विश्रमाहर्न धीरा  
तापोऽस्माक हरिविरहज सर्वदेवास्ति चित्ते ।  
नान्य शब्दो वचनमपि यत्तादृश तस्य किन्तु  
प्रेमेवाम्भत्प्रियतमकृत तद्वच गोपाङ्गनासु ॥४२॥

संसार को क्षणिक यताने वाले लोग धास्तव में मूर्ख ही हैं। कोई धीर पुरुष कभी भी संसार को क्षणिक नहीं बतलायगा, क्योंकि कृष्णविरह का दुःख तो हमेशा ही हमारे चित्त में बना रहता है। शब्द को भी नाशवान् बताना मिथ्या ही है, क्योंकि कृष्ण के वचन अथवा भी हमारे मन में बसे हुए हैं। यदि संसार में कोई वस्तु क्षणिक है, तो कृष्ण का प्रेम ही क्षणिक समझो और वह भी उनका गोपिकाओं के प्रति है, तो कृष्ण का प्रेम ही क्षणिक समझो और वह भी उनका गोपिकाओं के प्रति किया गया न कि कुम्भा और रुक्मिणी के प्रति। गोपिका ने इस पद्य में अपने दुःख की गम्भीरता तथा हमेशा कृष्ण को याद करते रहने का बड़े भावपूर्ण ढंग से वर्णन किया है। अन्त में वह कृष्ण को उपास्य देना भी नहीं भूलती है। कवि ने इस पद्य में भी दार्शनिकता का सहारा लिया है। बोद्धों के क्षणिकवाद तथा शब्द की

नश्यता के सिद्धान्त का कितने कोमल और अकाट्य तर्क से खण्डन किया गया है ।

यद्यपि यह काव्य बहुत छोटा सा है, फिर भी कवि की कल्पना कहीं कहीं घड़ी सुखर हो उठी है । गोपिका पदाङ्क को सम्बोधन करते हुए कहती है—

कर्पूरादे सलिलममय वैतरण्यवुत्तरयम्  
वाङ्मयागम्य नदति कठिन कोकिल पट्पदोऽपि ।  
बुन्दारण्ये किरति गरल दु सह शीतरश्मि-  
नैतद् वाच्य सरुदपि सखे ! सन्निधौ केशवस्य ॥२०॥

कृष्ण को बुन्दारान की बदली हुई स्थिति इसीलिये नहीं बताई जा रही है कि कहीं वे इस स्थान को कलेश जनक समझ कर यहाँ फिर आब ही नहीं । वास्तव में दखा जाये, तो बुन्दारान नहीं बदला है, बरिक्त कृष्णरिह में गोपिका के लिये पड़िले सुख देने वाली वस्तुयें ही अब दु रक्षायक प्रतीत हो रही हैं । कवि ने भावभगिना के साथ गोपिका के रिह जन्य ताप तथा उद्देग का ही यहाँ पर वर्णन किया है ।

कृष्ण के पदका अरु कृष्ण का पुत्र ही हुआ । समय है कि पुत्र को देण कर पिता का मन आनन्द मग्न हो जाये और फिर सन्देशशर्ता की ओर ध्यान ही न रहे, इसलिये गोपी कहती है—

यक्तव्य धम्मदनऊनित दु णमस्माकमेतद्  
भूयोभूय प्रियतमपदे गोपयित्वा स्वदेहम् ।  
दृष्टे तेन स्थयि नयनयोनिस्तुलप्रीतिहेतो  
यास्यत्येन क्षणमपि मनस्सजकथाया न तस्य ॥४०॥

पदाक को अपनी देह के छिपाने का परामर्श उचित ही दिया गया है ।

मैघदूत का यद्यपि काव्य में पूर्णतया अनुकरण नहीं किया गया है, फिर भी भाव और शैली में कहीं कहीं परस्परसादृश्य दृष्टि गोचर होता ही है । उदाहरणार्थ दोनों काव्यों से कुछ स्थल उद्धृत किये जा रहे हैं—

१ । पश्चित्कान्तारिहगुह्या स्वाधिकाराग्रमत्त  
यक्षचक्रे जनकतनयास्नान पुण्योदकेषु  
स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥१॥ मे०  
गोपीमर्तु विरहविधुरा काचिदिन्दीवराक्षी  
उग्नत्तेश स्वलितकजरी नि श्वसन्ती रिशालम् ।  
अग्नेवास्त मुररिपुरिति भ्रान्तिदूतीसहाया  
त्यक्त्वा गंदे भटिति यमुनामन्जुदुग्धं जगाम ॥१॥ पदाक०

२ धूमज्योति सलिलमहता सन्निपात फर मेघ  
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥५॥ मेघ०

तस्मिन्नुद्यन्तजलधरध्यानमाकर्ण्य भूय  
कन्दर्पेण व्यथितहृदयोन्मत्ततुरया ययात्वे ।  
प्रक्षाहीन वचनरहित निश्चल श्रोत्रहीनम्  
दौत्य कर्तुं मुग्धरपदो लदमण पद्मलाक्ष्मी ॥३॥ पदाक०

३ I सेरिप्यन्ते नयनसुभग खे भयन्त वलाका ॥१॥१०॥ मेघ०  
II सपत्स्यन्ते नभसि भयतो राजहसा सहाया ॥१॥११॥ मेघ०

उत्फुल्लानामतिसुरभय सौरभैरम्बुजानाम्  
अम्भोलेशैर्भरणिदुहितु शीतलै शीतलाश्च ।  
अद्यापश्य सततगतय, स्वैरमाधूतवर्हा  
वर्तिप्यन्ते भयद्भिमतप्रीतये लाज्जुनाम् ॥१८॥ पदाक०

४ I प्राशुघात कथमपि भयान् गन्तुमाशु न्यस्येत् ॥१॥२३ मे०  
II मन्दाप्यन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या ॥१॥४१॥ मेघ०

सम्पर्कात्ते तरणितनयातीरसोपानवृन्दम्  
राक्ष पन्थास्तलमपि तरोराचित पदुमरागै ।  
शोभा यास्यत्यखिरमनुला स्वीयकार्यानुरोधात्  
उकैरैतैर्मुं हरयि सरो तत्र न स्येपमेव ॥१४॥ पदाक०

कहीं कहीं कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के विचारों का अपनी नयीन करपना  
से खण्डन भी किया है । श्रीरूपगोस्वामी ने अपने हंसदूत में लिखा है—

शीर्णां गोकुलमण्डली पशुकुल शृण्वाय न स्पन्दते  
मूका कोकिलपक्तय शिखिकुल न व्याकुल नृत्यति ।  
सर्पे त्वद्विरहानलेनत्रिकला गोविन्द दैन्य गता  
किन्त्येका यमुना कुरङ्गनयनानेत्राम्मुभिर्वर्धते ॥

कृष्ण के विरह में गोकुल के नरनारी और पशुपक्षी सब दीन दशा में पताये  
गये हैं । लेकिन यमुना गोपियों के नेत्रगारि से बड़ी हुई बतलाई गई है । इस कथन  
का खण्डन करते हुए पदावदूत में कहा गया है—

अदिमस्ताभिस्तरणितनया पीनता नैव लब्धा  
गोपीमर्तुर्विरहदहने प्रत्युत क्षीणता च ॥२६॥

शीलैरास्ते तरणिनया वस्तुतस्तद्विभो  
 का वा पीना भवति वचन कस्यचिन्नेति युक्तम् ।  
 गोपस्त्रीणां नयन सलिलैर्धृत सा विशीर्षा  
 अन्ये नन्दमजपुरजना नूनमत्यर्थक यत् ॥२०॥

जिस तरह गोकुल के अन्य नरनारी और पशुपक्षी दीन हैं, उसी तरह यमुना भी दीन और क्षीण होनी चाहिये, क्योंकि यमुना के लिये भी तो कृष्ण उतने ही प्रिय हैं जितने कि औरों के लिये ।

काव्य के इस अनुशीलन से मर्मज्ञ पाठक इस जान सकते हैं कि सरस करपना, सुमधुर भावप्रवाह, ललित भाषा और कृष्णभक्ति से युक्त यह काव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है । यद्यपि कृष्ण के पदांक का धीमदभागवत में कुछ उर्ध्व आता है, लेकिन इस को दूत बनाने का विचार करि की अपनी मौलिक करपना है । काव्य का मुख्य रस विमलम्भ श्रृंगार है । माधुर्यगुण और वैदर्भी रीति का काव्य में व्यवहार पाया जाता है काव्य की नायिका तो निरदोरकण्ठता कोई गोपी है ही । करि ने अपनी भक्तिभावना को भी गोपी द्वारा स्थान-स्थान पर काव्य में व्यक्त किया है । कृष्ण और उनके पदांक के सम्बन्ध में कवि के—

(I) (कृष्णस्य) यस्य ध्यान जनयति सुख यादश्च तादृश न  
 ह्यल्लोकादावपि किमपर ग्रहसाक्षात्कृतौ च ॥२१॥

(II) (पदांकस्य) ससारार्थं तरति सहसा यत् क्षणं चिन्तयित्वा ।  
 तस्यासाध्यं भवति किमहो पारयान तद्विन्या ( यमुनाया ) ॥२२॥

इत्यादि विचार उसकी अनन्य कृष्ण भक्ति का परिचय देते हैं । स्थान स्थान पर दार्शनिक प्रसंगों की सहायता से कवि ने गोपियाँ के कथन को और भी प्रभावपूर्ण बना दिया है । इस प्रकार साहित्य, भक्ति और दर्शन इन तीनों धाराओं का काव्य में अपूर्व संगम हो रहा है । योग्य दर्शन का पण्डित भी करि ने खूब ही किया है (दे० श्लोक सं० ४४-४) । करि ने अन्तिम श्लोक में अपने काव्य को 'विद्वन्मनो रञ्जनम्' यतलाया है । उसकी यह उक्ति कोई गवाँकि नहीं है । वस्तुतः भक्त और विद्वान् दोनों ही प्रकार के पाठकों के लिये यह काव्य आदर का वस्तु है ।

### तैलग व्रजनाथ का मनोदूत ( वि० सं० १८१४ )

इस काव्य का लेखक तैलग वंश के श्री मूधर भट्ट का पौत्र तथा श्री रामकृष्ण का पुत्र है और पचनद का रहने वाला है । धृन्दावन में यमुना के तट पर निवास करते हुये वि० सं० १८१४ ( सं० १७५८ ई० ) में कवि ने यह काव्य लिखा है ।

लेखक ने अपने गुरु का नाम श्री हरिदत्त बनाया है। पाठकों के परिचय के लिये काव्य के अन्त से निम्न उद्धरण दिये जाते हैं—

स्थिताद् वृन्दारण्ये तरलितनयातीरलहरी-  
परीरम्भादम्भ पृथग्युजि वशीवद्वतले ।  
सकान्तान्छ्रीकान्तादधिगतती सगमनया  
मतिर्मे प्रासूत ध्रुवमिह मनोदूततनयम् ॥२०॥

वेनेनुवसुशीताशु ( १८१४ ) मितेऽदे मार्गशीर्षके ।  
सिताष्टम्यामिदं काव्यमर्पितं हरिदादयो ॥  
नराणां धीरेषां सकलविदुषां शेषरमणि-  
वद्भाग्यानामग्रेसर ढह महाभाग्यसुभग ।  
कलानां सार्वासां सदनमतिस्तीजमललितो  
गुणानामागारो जयति हरिदत्त प्रभुरसौ ॥

तदीयाया निष्काण्य शुभदयाया परिणमत्  
प्रहृष्टोदकाया जगति विदितं पात्रमिदं य ।  
ततो योगक्षेमावधिगतउतस्तस्य स्व कवे  
कृतिर्निदुषद्गुणद्वयान् सुलयतु दयान्न मयि जडे ।

इति श्रीमत्सैलगात्रय श्री भुधर भट्टात्मज श्रीरामकृष्णतनय पञ्चनदान्य ग्रज  
नाथधिरचित मनोदूताभिध सहृदयहृदयाह्लादानापरनामधेय काव्य स्वकृतमनुभा-  
षिण्या टीकया समेत समाप्तम् ।

सकाव्य का दूसरा नाम 'सहृदय हृदया ह्लादन' है और कवि ने स्वयं इस  
काव्य पर अपनी टीका भी लिखी है। निर्णयमागर प्रेस, बम्बई से काव्य माला के  
प्रयोदश गुच्छक में यह काव्य प्रकाशित हुआ है।

## कथा-सार

इस काव्य की कथा महाभारत की द्रौपदीचीमन्त्रण घटना पर आधारित है।  
दिग्विजय के बाद पाण्डव राजसूय यज्ञ करते हैं। इस यज्ञ में पाण्डवों की अतुल  
सम्पत्ति तथा यज्ञसभा की अलौकिक शोभा देखकर दुर्योधन को बड़ी ईर्ष्या होती  
है। मणियों की कान्ति से अमवश द्वार को यह भित्ति समझ बैठता है तथा अन्यत्र  
रत्नों की ज्योति से भित्ति को यह द्वार समझ बैठता है। इसी प्रकार गहड़मणियों  
से निर्मित स्थल को अमवश जल समझकर यह अपने घरों को समेटने लगता है  
तथा कमल इत्यादि से युक्त जल-सहित सरोवर को स्फटिक शिलाओं से निर्मित  
स्थल समझ कर यह वहाँ पानी में गिर पड़ता है। वहाँ स्फटिक निर्मित प्रदेश में

भ्रम यश द्वार समझ कर उसे खोलने की चेष्टा करता हुआ वह गिर पड़ता है। दुर्योधन की इन भ्रान्तिपूर्ण चेष्टाओं को देखकर भीम उसका उपहास करने लगता है तथा द्रौपदी उसे 'अन्धपुत्र' कहती है। इस प्रकार यक्षसभा से तिरस्कृत हो और मन में ईर्ष्या का भाव लिये दुर्योधन अपने घर लौटता है तथा शकुनि को यक्ष का सारा वृत्तान्त और अपने तिरस्कार की घटना सुनाता है। शकुनि दुर्योधन को भी एक महान् यक्ष द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का परामर्श देता है। दुर्योधन द्वारा पाण्डवों की पराजय के किसी सरल उपाय के पूर्वे जाने पर शकुनि कहता है कि यदि धर्मराज युधिष्ठिर किसी प्रकार धृतराष्ट्र के लिये तैयार हो जायें तो वह उनका राज्य, कोश, गज और भयशक्ति सब अपहरण कर सकता है। शकुनि के इस प्रस्ताव को सुन कर दुर्योधन अपने पिता धृतराष्ट्र के पास जाता है और उन्हें पाण्डवों के राजसूय यक्ष तथा अपने तिरस्कार और उपहास का सारा वृत्तान्त सुनाता है। धृतराष्ट्र सुन दुःख तथा आदर निरादर को दैव तथा कर्मों का फल बता कर दुर्योधन को शान्त करने की चेष्टा करता है और उसे भी एक विशाल यक्ष करने का परामर्श देता है। दुर्योधन के विशेष आग्रह से धृतराष्ट्र धृतराष्ट्र के आयोजित करने तथा उसमें पाण्डवों के निमन्त्रित करने की भी अनुमति दे देता है।

दुर्योधन के आग्रह से विदुर पाण्डवों के पास धृतराष्ट्र का निमन्त्रण लेकर आते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर पड़े विचार निमर्श के बाद निमन्त्रण स्वीकार कर लेते हैं और सपरिवार हस्तिनापुर आ जाते हैं। उचित स्वागत सम्कार के बाद दूसरे दिन धृतराष्ट्र प्रारम्भ होती है। उसमें युधिष्ठिर धीरे-२ अपनी सब सम्पत्ति हार जाते हैं। फिर अपने भाइयों और अपने को भी हार जाते हैं। अन्त में शकुनि के कहने से वे द्रौपदी को दाव पर लगाते हैं और उसे भी हार जाते हैं। इस पर दुर्योधन अपनी दासी बनाने के विचार से द्रौपदी को सभा में लाये जान की आज्ञा देता है। महाराज विदुर दुर्योधन को बहुत फटकारते हैं, लेकिन फिर भी कर्ण इत्यादि के अनुरोध से दुर्योधन अपने दूत को द्रौपदी के पास भेजता ही है। दूत द्रौपदी को सारा वृत्तान्त सुनाता है। 'स्वयं तुव मे हार जाने पर धर्मराज का मुँह पर कुछ भी स्वयं नहीं रहता है, अतः मैं नहीं जा सकती—पेसा कहकर द्रौपदी दूत को वापिस कर देती है। दूत के लौट आने पर दुर्योधन दुःशासन को भेजता है। वह कर्ण पकड़ कर द्रौपदी को वलपूर्वक अन्त पुर से राजसभा में खींच लाता है। वहाँ कर्ण उसका यक्ष तिरस्कार करता है और दुःशासन को उसके वस्त्र उतारने का आदेश देता है।

इस असहाय अवस्था में द्रौपदी भगवान् कृष्ण को याद करती है तथा किसी और को अपने समीप न पाकर अपने मन की ही दूत बनाकर कृष्णजी के पास द्वारिका भेजती है। जिस प्रकार अन्य सन्देश वाह्यों में किसी को सन्देशवाहक नियुक्त करत समय उसकी शक्ति और महत्ता का वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार इस काव्य में भी मन की बड़ी प्रशंसा की गई है। तदनन्तर द्वारिका नगरी का वर्णन किया गया है। द्वारिका पहुँच कर वहाँ भगवान् कृष्ण के चरणों में प्रणाम

कर और अपने प्रेम की मेंट देकर फिर अपना सन्देश सुनाने के लिये द्रौपदी ने मन से कहा है। मन को अपना सन्देश बताते हुए द्रौपदी कृष्ण के प्रति कहती है— दया के सागर, समग्र ससार के रक्षक, दैत्यों और राक्षसों के सहारक, हे कृष्ण, मैं इन दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन जैसे दुर्यों के द्वारा सताई जा रही हूँ। मैं अगाध दुःसागर में पड़ी हुई हूँ। हे दुष्टदलन, क्या तुम मेरा उद्धार नहीं कर सकते ? हे दयालो, तुम्हें छोड़कर मैं किसकी शरण में जाऊँ ? तुम सर्वज्ञ हो। मुझ पर महान् सकट आया हुआ है। मुझ पर दया करो। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई मेरा रक्षक नहीं है।

द्रौपदी के इस सन्देश को लेकर मन ज्यों ही द्वारिका की ओर चलने को उद्यत होता है, त्यों ही उधर द्वारिका में कृष्णजी भी चिन्तित होने लगते हैं और द्रौपदी के सकट का ध्यान आते ही शीघ्र ही गवड़ पर आरुढ़ हो हस्तिनापुर आते हैं। इधर दुःशासन द्रौपदी के वस्त्र उतारना प्रारम्भ करता ही है कि भगवान् कृष्ण या पहुँच जाते हैं और अपनी अनन्त शक्ति के द्वारा नाना धर्ण तथा नाना प्रकार के वस्त्रों से द्रौपदी को ढकते जाते हैं। अन्त में दुःशासन वस्त्र खींचते २ हार जाता है और घबड़ा कर वहीं सभा में गिर पड़ता है। इस तरह भगवान् कृष्ण द्रौपदी के शरीर की रक्षा करते हैं। पाण्डवों पर भी कृष्णजी की अनन्त शक्ति का प्रभाव पड़ता है।

यस, काव्य की मुरय कथा बढ ही है।

## समीक्षा

यों तो मेघदूत के अनुकरण पर ही यह सन्देश काव्य लिखा गया है, फिर भी कवि की यह मौलिक रचना है। सम्पूर्ण काव्य में कुल २०० शिखरिणी छन्द हैं। सन्देश काव्यों की परम्परा में छन्द की दृष्टि से यह सर्वथा नवीन प्रयोग है। साथ ही काव्य का विषय भी नवीन है। काव्य में समस्त पद प्रायः नहीं ही हैं। रचना प्रसादगुणयुक्त है। भाषा में सर्वत्र प्रवाह पाया जाता है। सन्देशकाव्यों में प्रायः मगलाचरण नहीं होता है, लेकिन इस काव्य में मगलाचरण में ही कई श्लोक लिखे गये हैं। कृष्णभक्ति का पवित्र स्रोत इस काव्य में सर्वत्र उमड़ रहा है। कवि ने मनोदूत नाम के अतिरिक्त इस काव्य का 'सहृदय हृदयाह्लादान' नाम भी रक्खा है। परन्तु तब यह रचना वही ही सुन्दर और सरस है। साहित्य प्रेमियों तथा कृष्ण भक्त दोनों ही के लिये यह काव्य समान रूप से उपादेय है।

द्यत सभा मे लार्ई हुई तथा दुष्टों से घिरी हुई द्रौपदी का कवि ने यज्ञा ही कदण चित्र अंकित किया है—

अधामी दुःखार्ता द्रुपदतनया धीक्ष्य दयिता-  
न्परिप्रातु योग्यान्पि समवषट्धान् विधियथात् ।



समायामानीता शङ्खरहिता जालपतिता  
 कुरगीर वासाद्भृगवतरमसो कम्पममज्जत् ॥१८०॥

द्रौपदी के लिए ' जाल में फँसी हुई दिग्गनी ' की उपमा बड़ी ही उपयुक्त है।  
 द्रौपदी भागवत् कृष्ण से अपने दुःख का निवेदन करते हुए फिर कहती है—

उदासीना दीना मृदुदसितदीना नतमुषी  
 निलीना स्नेहगोप्यहृद सुखहीना यदुपत ।  
 निहीना कीनाशाविक्रमयकरैरन्धतनयै  
 समायामासीना द्रुपदतनया पीडयत इह ॥१८०॥

अब मैं अनुप्रासयुक्त पदारत्नी के साथ बड़े ही भावपूर्ण ढंग से द्रौपदी की  
 दशा इस पद्यमें चित्रित की है। इसी प्रकार कृष्णजी द्वारा रुक्मिणी को जो द्रौपदी  
 की दुरवस्था बताई जाती है, तब—

समानीता भीता दशवदननीना परबशा  
 यथा सीता तद्वत्परिममसुख साऽद्य गमिता ॥१८१॥

इन पत्निया में दुर्वाधन द्वारा सताई हुई द्रौपदी के लिये रावण द्वारा सताई हुई  
 सीताजी की बड़ी ही सार्वक उपमा दी गई है।

दुःशासन द्वारा चीरहरण किये जाने पर भागवत् कृष्ण ने विविध प्रकार के  
 यन्त्रों द्वारा जो द्रौपदी की रक्षा की, उसका वर्णन करते हुए भी करि ने द्रौपदी  
 के लिये बड़ी ही सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है—

समाच्छन्नानन्तरपि विविधधासोविरचिता  
 तदा पाञ्चालीरध्रुवमज्जनि पाञ्चालतनया ॥१८२॥

कहाँ ० करि ने यमक और अनुप्रास का बड़ा चमत्कार दिखाया है। द्रौपदी  
 भागवत् कृष्ण से प्रार्थना करते द्रुपे कहती है—

अगाधापद्गधाकुलहमसाधारणरुता-  
 पराधा गान्धारापिमहितराधासुनवशाम् ।  
 तुदन्ती मे धाराधर तुलिन कान्त दय धरा-  
 धराद्राधार प्लवधरण राधारमण माम् ॥१८३॥

कहाँ ० अलंकार व अभाव में भी लययुक्त मधुर शब्द विन्यास द्वारा कवि ने  
 सुन्दर पद्यों की सृष्टि की है। यथा—

प्रिना दीनोद्धार भयजलधिनार मज्जधू-  
 ददो हार रूपत्रयिणजितमार नरवरम् ।

कृपापारागारं क इह दयिता रक्षितुमल  
पृथगुन्नरेव मनसि नियत तर्कितमभूत् ॥१६१॥

द्रौपदी ने मन के द्वारा कृष्ण के पास अपना जो सन्देश भेजा है, उसमें आर्त भक्त की वरण पुकार साकार हो उठी है। इस प्रकार द्रौपदी के इन वचनों को-

अगाधे दुःखान्धी यत निरवलम्बेऽस्मि पतिता  
मगम्मोघेरुद्धारक कथमुदासोऽसि भगवन् ।  
विलम्ब नाकार्पायघहर गजाजामिलकृते  
मदुद्धारे शक किमसि न विभो दुष्टदलन ॥१७३॥

दयालो त्या हित्वा कतममुपयामीह शरणम् ॥१७७॥  
अये सर्वशस्त्य इयसनमिदमरपेतरमहो  
विदिम्याऽपि स्पामिन्मयि कथमुदासोऽसि भगवन् ।  
भृशार्ताऽहं रोदिस्यतिशयितदुःखाम्धिपतिता-  
ऽविता श्रीमन्तान्यस्तवमिह मृदुभारं भज मयि ॥१७८॥

हम किसी भी आर्त भक्त की विनम्र प्रार्थना कह सकते हैं। इस काव्य में द्रौपदी ने ही कृष्ण के पास सन्देश भेजा हो, केवल यह बात नहीं है, प्रत्युत कवि ने यह भी उपदेश दिया है कि हर एक को अपना मन कृष्ण के पास भेजना चाहिये। इसी भाव को लेकर कवि ने लिखा है-

इति स्मारं स्मारं तव गुणगणान्यादयपते  
मनोदृत योऽन्यस्त्वयि निजहृते प्रेययति चेत् ।  
न मुञ्चस्येनं तत्प्रणयरशनाधृष्टललितह-  
द्विभो भक्ताधीन धृतिशिखरमृग्योऽपि भगवन् ॥१६५॥

कहण उस के साथ-साथ इस काव्य में कृष्णभक्ति की भावना सर्वत्र ओत प्रोत है। मगलान्तरण में तो कृष्णजी की स्तुति की ही गई है। काव्य के अन्त में भी कृष्ण भक्ति की महिमा प्रतिपादित की गई है। कृष्णभक्ति की महिमा बताते हुये कवि कहता है-

अविधेयं विद्या भवति भगवद्भक्तिरहिता  
न चेद्विषणो प्रेमप्रसूतममदानन्दमहिता ।  
॥ तावच्चाञ्चल्यं त्यजति च मनोवृत्तिविहगी  
न यावच्छ्रीकृष्णस्मरणरससिन्धी निपतति ॥१६४॥  
स कोऽपि श्रीगोपीजनहृदयद्वारी प्रतिदिनं  
सदा ध्येयो नान्य प्लव इह भगम्मोहितरणे ।

यदीय नामेद् अगदधमिदादीक्षितमहो

स्मरन्भव प्रेमाभूतस्सनिमनो विजयते ॥८६॥

इस प्रकार विभिन्न रूप में कवि ने कृष्ण भक्ति का सन्देश अपने पाठकों को दिया है। पाण्डवों की राजसभा में उपस्थित तत्तद् विषय के विद्वानों का वर्णन करते हुये कवि ने वेद, व्याकरण, मीमांसा, ज्योतिष, तर्कशास्त्र, स्मृति, सांख्य, योग, सर्गान और वेदान्त इन सब विषयों का उल्लेख कर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है।

संदेशकाव्यों की परम्परा में यह सङ्ग काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। विषय, भाव, भाषा और छन्द इन सब की दृष्टि से यह काव्य एक नयी रचना है। जेमैन्ड ने सुबुत्तलिक में भगवृत्ति के शिखरिणी वृत्त की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

भवभूत शिखरिणी निर्मलतरङ्गिणी ।

चकिता घनसन्धमें या मयूरीव वृत्तति ॥

यही उक्ति इस काव्य के शिखरिणी छन्द के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। भवभूति की रचनाओं व समान शिखरिणी छन्द व साथ-२ इस काव्य में भी कवण रस प्रधान है। जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इस काव्य में मन को दूत बनाया गया है और मन के लिये हस्तिनापुर से हारिका कुछ भी दूर नहीं है, अतः इस काव्य में मार्ग-वर्णन विरहूल नहीं है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि एक भक्त कवि का कवण रसपूर्ण कृष्ण-भक्तिपरक यह सरस सन्देशकाव्य है। इसका 'सहृदय हृदयाद्भावन' अपर नाम सार्यक ही है। कृष्णभक्ति साहित्य में भी यह काव्य विशिष्ट स्थान पाने का अधिकारी है।

श्री कृष्णनाथ न्याय-पञ्चानन का जातदूत ( वि० सं० १९०० )

महामहोपाध्याय श्री कृष्णनाथ न्यायपञ्चानन महाराजों का आधुनिक काल के बंगाली सम्प्रति विद्वानों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। काव्य, नाटक, धर्मशास्त्र, पण्यन्त, व्याकरण, मीमांसा तथा न्याय इत्यादि सभी शास्त्रों में व्यापारगत थे।

अभिज्ञानशाकुन्तल तथा रत्नावली, मलमासतत्त्व और दायभाग, वटान्त परिभाषा, मुग्धलोचन व्याकरण, अर्यसप्तदश, तथा न्यायप्रकाश इत्यादि विभिन्न विषयों के ग्रन्थों पर इन्होंने टीकाएँ लिखी हैं। कर्पूरसिद्धिस्तोत्र, श्यामासतोष और श्यामापूजाकाल निर्णय पत्र उनकी धार्मिक रचनाएँ हैं। जातकूत नामक सन्देश काव्य इनकी मूल-रचना है। इस पर इन्होंने अपनी टीका भी लिख दी है। टीका के अन्त में इन्होंने लिखा है—

सप्ताष्टसप्तशुभ्राशुप्रमाणे शाकहायने ।  
 आपादशुक्लसप्तमी टीकेय पूर्णता गता ॥  
 नवद्वीपासन्नभूमौ श्रीमदुभागीरथीतटे ।  
 ग्राम पूर्वस्थलां नाम विद्धि यासस्थलीं मम ॥

इससे ज्ञात होता है कि सप्ताष्ट सप्त शुभ्राशु प्रमाणे = १७८७ शकसंवत् की आपाद शुक्ल सप्तमी को यह टीका पूर्ण हुई। शकसंवत् १७८७ वि० सं० १६२२ से मिलता है। अतः वि० सं० १६०० या इससे कुछ पूर्व का समय ग्रन्थ का रचना काल हो सकता है। पुस्तक के मुद्रणपर मुद्रणकाल शकम्बा १८२२ लिखा हुआ है। समग्र है ग्रन्थकार ने बहुत दिनों के बाद अपनी रचना प्रकाशित कराई हो।

काव्य की भूमिका में कवि ने महारानी त्रिफ्टोरिया के विद्याप्रेम, प्रजापालन, अनन्त शक्ति तथा शासनकुशलता इत्यादि गुणों की प्रशंसा की है तथा उनके शासन में सदृष्ट त्रिधा की उन्नति होने का भी उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित ही है कि महारानी त्रिफ्टोरिया के हिन्दुस्तान का शासन सभालने के बाद यह काव्य लिखा गया है। अतः शक संवत् १७८७ = वि० सं० १६२२ = ई० सं० १८६५ ही काव्य का रचनानाल है।

बंगाल में भागीरथी के तट पर नवद्वीप के पास पूर्वस्थली नामक किसी ग्राम में कवि का निवास स्थान था। ग्रन्थ के अन्त में कवि के स्वयं यह बात लिखी है।

## कथा सार

इस काव्य की कथा रामायण से सम्यक् है। दण्डकारण्य में पञ्चवटी से सीताजी को हर कर जब रावण लका ले जाता है, तब यह उन्हें पदा अशोक वाटिका में उतरा देता है। पतिप्रियोग में सीताजी का हृदय व्याकुल तो रहता ही है, उधर राक्षसों का भय भी उन्हें चिन्तित किये रहता है। इसी परिस्थिति में धीरे धीरे वसन्त ऋतु आ जाती है और दक्षिण से उत्तर की ओर वायु चलने लगती है। शीतल वायु का सुखद स्पर्श से कुछ शान्ति का अनुभव करते हुए सीताजी उस वायु को ही दूत बनाकर उससे साथ श्री रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी के पास अपना विरह सन्देश भेजती हैं।

इस प्रसंग में अशोक वाटिका से पञ्चवटी तक के मार्ग का वर्णन किया गया है। अशोक वाटिका से समुद्र के तट पर स्थित सुवेल (त्रिकूट) पर्वत और वहा से फिर उत्तर की ओर समुद्र पार करने के बाद जंगलों में से होते हुए तथा आस पास के पर्वतों पर भ्रमण और उनकी स्त्रियों को देखते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर वायु के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। ऋष्यमूक पर्वत से उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर पम्पा सरोवर तदनन्तर दण्डकारण्य और वहा से पूर्व की ओर थोड़ी दूर चलने पर जनस्थान में पास ही कुछ दूर पर पञ्चवटी और फिर गोदावरी नदी के तट पर ही सीताजी ने अपना आश्रम बतलाया है।

इस तरह अपने आश्रम तक के मार्ग का वर्णन करने के बाद आश्रम में ही रामचन्द्रजी के मिल जाने की सम्भावना की गई है। सर्व प्रथम उनके प्रवृत्तस्वरूप का वर्णन किया गया है। तदनन्तर उनकी सम्भावित विरहावस्थाएँ वर्णित की गई हैं।

समय है कि विरह में व्याकुल होने के कारण वे आश्रम में न मिलें तथा इधर उधर घूम रहे हों। इसलिये वायु को और भी कई स्थानों में उनकी खोज करने का परामर्श दिया गया है। इसके बाद उसी प्रदेश में स्थित वन देशता से भी वार्तालाप करने तथा उसे सीताजी का समाचार देने के बाद खोज करते करते जीमूत पर्वत के आस पास कहीं पर अपने छोटे भाई के साथ दृप्त होएँ रामचन्द्रजी के मिल जाने की सम्भावना की गई है। तदनन्तर अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद सीताजी ने वायु से रामचन्द्रजी के लिये अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। कुछ सन्देश बेल लक्ष्मणजी के लिये भी दिया गया है तथा रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी दोनों के लिये सर्वसाधारण रूप से दिया जाने वाला भी कुछ सन्देश है। इसके अतिरिक्त दोनों भाईयों द्वारा अपनी बहिनों के लिये भी उन्होंने कुछ सन्देश कहलाया है।

अन्त में कुछ प्रत्यभिज्ञान देकर मंगलकामना के साथ वायु को विदा कर दिया गया है।

## काव्य समीक्षा

मेघदूत से प्रेरणा लेकर ही यह सन्देश काव्य लिखा गया है। समग्र काव्य में केवल १०० श्लोक हैं और सभी मन्दावान्ता छन्द में हैं। काव्य में प्रथम भाग और उत्तर भाग जैसा कोई विभाजन नहीं किया गया है, लेकिन ३७ व श्लोक पर ग्रन्थकार ने ही टीका में 'इतिपूर्वगतटीका समाप्ता' ऐसा लिखा है। इससे यह प्रतीत होता है कि कवि ने अपने मन में काव्य को विषय की दृष्टि से दो भागों में अवश्य विभक्त कर रखा होगा। छन्द, मार्गवर्णन तथा नायक और नायिका की विरहावस्थाओं का चित्रण इत्यादि बातों में समानता होते हुए भी काव्य में मेघदूत का किसी और पाठ में अनुपारण नहीं पाया जाता है। मेघदूत और इस काव्य में एक प्रमुख भेद

यह तो है ही कि इसमें प्रेयसी की ओर से प्रिय के लिए प्रेम-सन्देश भेजा गया है। इसके अतिरिक्त इस काव्य के पात्र भी ( नायिका और नायक ) बड़े धीर और उदात्त हैं।

यदि पवनपुत्र हनुमान् रामचन्द्रजी का सन्देश लेकर सीताजी के पास लका जा सकते हैं, तो सीताजी का सन्देश लेकर वायु का रामचन्द्रजी के पास आना और भी स्वाभाविक है। जिस कार्य को पुत्र कर सके, उसको पिता तो अवश्य ही कर सकता है। रामायण में भी हनुमान्जी का वर्णन करते हुए कहा गया है—'मारुतस्यो रस पुत्रो गमने चापि तत्सम'। अतः हम यह कह सकते हैं कि वायु को दूत बनाने में कवि ने यात्मीकि रामायण से ही प्रेरणा प्राप्त की है। दूतकार्य में वायु की उपयुक्तता का वर्णन करते हुये सीताजी कहती हैं—

चन्द्राकांक्षा नियतगतयो नेतराशा भयन्ते  
निश्चिन्तवारा अपि जलधरा नुद्यमानास्तपैव  
इत्युज्ज्वला निरलसगते तानह त्वा प्रपन्ता ॥६॥

चन्द्र, सूर्य और मेघ इत्यादि की अपेक्षा वायु के सब निशाओं में जा सकने के कारण वायु को दूत बनाना उचित ही है।

अशोक वाटिका से पञ्चवटी तक के मार्ग वर्णन में किसी नगरी अथवा ग्राम इत्यादि का कोई प्रसंग नहीं आया है। अतः मार्ग वर्णन में सरस स्थल कम ही हैं। फिर भी कवि ने स्थान-स्थान पर सरस करपना द्वारा मार्ग वर्णन नीरस नहीं होने दिया है। सर्वप्रथम वायु को यात्रा के लिये उत्साहित करते हुए कहा गया है—

त्यत्सम्पर्काच्चलति रुचिरे धारिजाना कद्रव्ये  
शुञ्जन्मत्तभ्रमरमुपरे दीर्घिका धीक्षमाणा ।  
मोदिष्यन्ते रसिकपुरुषा नृत्यगीताभिरामे-  
मंशा नूनं नटशिशुबुले सकुला रगभूमिम् ॥१०॥

कवि ने यहा पर यही चमत्कारपूर्ण कल्पना प्रस्तुत की है। फिर पम्पा सरोवर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

पम्पा नाम प्रथितसरसी नातिदूरेऽथ याया  
स्वच्छ साधोर्मन इव पयो बिभ्रती निश्चलञ्च ॥२२॥

स्तपुरुष के प्रसन्न और निश्चल मन की उपमा द्वारा सरोवर के जल की स्वच्छता और शान्तता का कवि ने बड़ा सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। कवि ने जनस्थान बन की धर्मारण्य कहा है, क्योंकि यहा वृक्षों पर बैठे हुये शुक भी निरन्तर सुनते रहने से वेदों के स्वरों के ऐसे विशेषण हो गये हैं कि वृक्षों के नीचे वेदपाठ करने वाल प्रह्मचारियों को भी वे उनकी अशुद्धिया बतलाते रहते हैं—

प्रभास्यासाकुलवद्वदून् अस्तरेऽधस्तकणा  
स कीरणाभुपरि वसना व्यक्ततत्तत्सहोक्ति ।  
यस्मिन् शस्ति म्बलितमसकृदुधयन्ती स्त्रगणा  
क्षुटान् वृद्धप्रचलितशुणा गापनान् वरलकीय ॥२७॥

रुना वहीं रुनि ने उही सुन्दर उद्मानायें पाठकों के समक्ष रखी हैं । सीताजी अपने आश्रम के रक्ताशोक वृक्षों को लेकर कहती हैं—

रक्तधालम्बैर्धनुरिषुधिभी रक्षिमिलग्धसाग्ने  
रक्ताशोकैर्दशशतकर प्रागनाद्वारयदग्नि ।  
यन्मातारि द्विदशकरभुक्तेऽद्य नार्हन्ति गर्हाम्  
पादाघातान्मम विटपिनस्ते हि सञ्जातरागा ॥३६॥

रक्ताशोक वृक्ष आश्रम में प्रहरी का कार्य करते थे । सहस्र-कर वाला सूर्य भी उनके शरण से आश्रम के प्राण से प्रवेश नहीं कर पाता था । फिर बीस भुजाओं वाले रावण को उन्होंने क्यों नहीं रोका । इस पर सीताजी कहती हैं कि मेरे पाद प्रहार करते रहने से उन्हें मुक्त से छेप हो गया होगा ।

रामचन्द्रजी के स्वरूप का वर्णन तो कवि ने ऐसा किया है कि पाठकों के हृदय में उनका चित्र भा लिख जाता है । अटाधारी और तपस्वी राम का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वे अटायें इस तरह प्रसन्नता से धारण किये हुये हैं मानों पिता की जनवास की आज्ञा को शिरोधार्य कर रहे हों—

तस्मिन्नङ्गं मरकत मणिच्छायमाच्छादयद्भि  
सम्बद्धात् तरणिजकुल तेजसा द्योतयन्तम् ।  
यस्या वृत्ति सपदि ददतो दित्सिते राज्यभारे  
शीर्षेणापि पितुरिदं अटा मुक्तरोद्बहन्तम् ॥३७॥

इसी तरह उनके वक्ष स्थल तथा मध्यभाग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि उनका मध्यभाग यदा क्षीण तथा वक्ष स्थल यदा विस्तीर्ण है । समझ लीजिए कि प्रह्ला ने उनके शरीर को मध्यभाग से पकड़ कर उनके अग प्रत्यग के सौन्दर्य को समझा हो । ऐसे सुन्दर और सुडौल शरीर पर वक्षस्थल वस्त्र धारण किये हुये व यों सुन्दर लगते होंग—

प्रत्यगाना विरचनविधौ वेधसा याममुष्टी  
मध्यनेत्र दृष्टतत्तयेवाससस्तीक्ष्णभावे ।  
विस्तीर्णाद्वर्ध्याप्रिययवदनाग्रान्तनादयन्त्यारे  
यस्याकरपोचितनियसनं वरवल सधयन्तम् ॥४०॥

आगे चलकर कवि ने रामचन्द्रजी की विरहायस्थाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है। सीताजी कहती हैं कि मेरे वियोग में रामचन्द्रजी को निद्रा नहीं आती होगी, उनके नयनों से निरन्तर अश्रुधारा बहती होगी तथा मेरी अनुपस्थिति में भी वे मुझ से पूछते होंगे कि कहा चली गई हो—

तीजोत्तापद्रुततरुमनोद्वारवदशयन्तम्  
हृद्युग्म वा निमिषत्रिमुल सान्द्रवाष्पायमाणम् ।  
मा मुमन्थान्त करणमिष धी प्रस्थिता कजसि बाल  
सौलीकितुं श्रितमतितरामित्यल वा उदन्तम् ॥४३॥

इस श्लोक में चिन्ता, उन्माद और प्रलाप अयस्थाओं का वर्णन किया गया है। इसके बाद सीताजी के वियोग में रामचन्द्रजी के मूर्च्छित हो जाने तथा इस दृश्य को देखकर विरह की अन्तिम दशा समझ कर लक्ष्मणजी के रोने का वर्णन किया गया है—

दाधिक पुत्रेध्वनपरगत शोकजिह्वस्त्रमेतत्  
ज्येष्ठस्नेहात् किमिह गुरुणा शिक्षितो राम पय ।  
इत्यस्त्रीधैरुपरि रुदता शान्तमोहीकृत वा  
शेषानस्थाभ्रमशुद्धा लक्ष्मणोनानुजेन ॥४४॥

विरह से व्याकुल होने के कारण, संभव है, रामचन्द्रजी आश्रम में स्थिर रूप से न बैठने दें, अतः सीताजी प्रसन्नगिरि ( सुरचिरगिरि ) की विस्तृत अधित्यका में उनकी खोज करने के लिये कहती हैं —

तत्रालम्ब कथमपि भवत् । सानुजो राघवेन्द्र  
सोऽन्वेष्टुं सुरचिरगिरेरायताधित्यकायाम् ।  
गोदायार्या प्रचलपयसा शीकरध्यानरम्या  
या सायाह्नप्रचरणनिधौ भूमिरासीत् प्रिया न ॥४५॥

विरहायस्था में प्रेमीजन प्रेयसियों द्वारा संकेत स्थानों में घूमते फिरते हैं। इससे उनके मन की व्यथा कुछ शान्त हो जाती है।

रामचन्द्रजी की खोज के प्रसंग में वन दशता से भी वायु के मिलने का उल्लेख किया गया है। वनदेयता के वर्णन में कवि ने उसकी सहृदयता और भावुकता का वडा सुन्दर चित्र अंकित किया है। ऐसे ही एक स्थल पर कहा गया है—

यं सोमन्तीतदरगणितस्वागमगमयोभि  
स्नेहादुधस्तार्जित इति मया प्रागणु वदितोऽस्ति ।



सा पश्यन्ती गतरसतया शुष्कपुष्पाणि नूनं  
वाष्पोत्सेकैश्चरति मदनुष्ठेयकमव तस्मिन् ॥१२॥

सीताजी ने अपने आधम के प्राणण में सेमन्ती (सेउती) का वृक्ष लगा रक्खा था और अपने कष्ट की परवाह न करके स्वयं अपने हाथों से ही उसे सींचती थीं। वे कहती हैं कि उनकी अनुपस्थिति में जल न मिलने से उस वृक्ष के सूखे हुए फूलों की देखकर वनदेवता अवश्य ही अपने आसुओं से उसको सींचती होगी। मित्रता का कैसा सुन्दर आदर्श कवि ने यहाँ पर उपस्थित किया है।

आगे चल कर सीताजी कहती हैं कि मेरी अनुपस्थिति में कातर होते हुए तथा वीणा के स्वर को सुनकर एक दम पास आये हुए मेरे पालतू हिरण पर वन देवता वीणा छोड़कर हाथ फिराती हुई तुम्हें ( वायु को ) दिखाई पड़ेगी—

वीणातन्त्रीमधुररणिताहृतशरणा यूया—  
दायान्त वा नयपशुसभासहृमिर्धेदीनम् ।  
मुस्त्या वीणामशियिलगुणामञ्जसोपेत्य गात्रे  
सस्नेह मत्कृतकतनय पाणिना व्यामृशन्तीम् ॥१३॥

वीणा बजाती हुई वनदेवता का सीताजी के पाले हुये हिरन के पास आने पर नारों को ढीला किये बिना ही वीणा का रख देना तथा हिरन पर अपना हाथ फेरना उसके भावुक हृदय का सजीव निदर्शन है। सखी के कृतक पुत्र को अपने पुत्रवत् समझना उसका स्नेहातिरेक प्रकट करता है।

वायु के द्वारा वनदेवता के लिये जो सन्देश कहलाया गया है उसमें सीताजी के हृदय के सच्चे भाव छिपे हुए हैं। वायु वनदेवता से सीताजी के सन्देश को सुनाते हुये कहता है—

भर्तुं प्राणैरनणु भजता सन्धिमात्मासमाणाम्  
भ्यप्राणाना बलपदगिण्णवर्षणुमर्तुपीडाम् ।  
सम्भाव्यपा वदति ददती त्वा परिष्वगपूर्वम्  
तत्कार्यं ते लघु लघु यथा राक्षसान् सोऽमियाति ॥१४॥

राण व द्वारा सीताजी व प्राणों को कष्ट दिये जाने पर रामचन्द्रजी व भी प्राणों व कष्ट की समायना कर सीताजी का रोना नितान्त स्थायीकृत है। भारतीय दाम्पत्यसम्बन्ध में पति-पत्नी की अनन्यता तो बतलाई ही गई है। इसके अतिरिक्त इस सन्देश में वे ही बातें कही गई हैं, जिन्हें सीताजी रामचन्द्रजी से कहना तो चाहती, लेकिन सकोचवश शायद कह नहीं पाती।

आगे चल कर वन और पर्वतों में कहीं ही रामचन्द्रजी के मिल जाने पर उन्हें

सन्देश सुनाने की वायु से प्रार्थना की गई है। सन्देश में सर्वप्रथम सीताजी की दशा का वर्णन किया गया है—

लज्जामग्नीनिधिपरिगता राक्षसेशेन नीता  
जीरत्येषा तत्र सहचरी विप्रयोगाज्ज्वलन्ती ।  
पातित्रय प्रवृत्ति च दशाशेषतान्प्रस्थ नून  
स्पर्शान्प्रत्यहं पयसस्मन्तुङ्गणाहीपिकेन ॥७३॥

राक्षस के स्पर्श से ही सीताजी के निधन की समाचना में उनके दृढ़ पातित्रय की गूढ़ व्यञ्जना की गई है। 'जीरत्येषा तत्र सहचरी विप्रयोगाज्ज्वलन्ती' इस पंक्ति में सीताजी के प्रेम तथा विप्रयोग-दुःख को एक साथ दही सुन्दरता से व्यक्त किया गया है। उनकी विरहावस्थाओं का वर्णन करते हुए आगे फिर कहा गया है—

सा सिञ्चन्ती मयनसलिलैर्गन्धुमूल वदचिन्त  
त्वा पश्यन्ती नगरलिपित वद्विचिद्रभूमिपृष्ठे ।  
जगु व्यस्त खलसद इषादृष्टोप लपन्ती  
दुःस्था बाल नयति रजसि द्यालुडन्ती वरचिन्त ॥७४॥

इस पद्य में प्रिय गिरह में सीताजी के रोने, प्रिय का चित्र बनाने, असबद्ध प्रलाप करने तथा धूल में लोटने इत्यादि गिरह-क्षेत्राओं का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

इसके बाद सीताजी का मुख्य सन्देश प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम सीताजी ने रामचन्द्रजी के पाद-पद्म को प्रणाम किया है—

तसे नाथाद्भुतविलसित पादपद्म नमामि ॥७५॥

पातित्रता स्त्री का अपने पति के चरणों को नमस्कार करना उचित ही है। फिर सीताजी ने अपने प्रार्थना दश प्रभावपूर्ण ढंग से रामचन्द्रजी के सामने रखी है। वे कहती हैं—

रज्जु कृपादुघटमिव भुज दुर्गतेर्दुर्गतीनम्  
मार्गद्वार मनुजमिव च स्त्रीयसत्कर्मधर्म ।  
उदुघृत त्या नयतु भट्टिति स्नेहमारोऽतिरुद्ध  
दुःखाम्मोघैर्जननिमित प्रार्थनेषा इताया ॥७६॥

प्रार्थना को सरल बनाने के लिये कवि ने कौसी उपयुक्त उपमाएँ दी हैं। 'जगो चल' पर अपने चित्त की दशा का वर्णन करते हुये सीताजी कहती हैं—

विन्यद्विभ्यत् वरचिन्तित मृत गूढमास्ते वदचिद्  
यानि स्थैर्य न रक्षरणाद्विस्मयञ्चन एतत् ।

तीर्त्नाम्मोधि कश्चिदपि निजोदन्तमावेदयिष्यत्  
त्वत्पादान्तं द्रुतमदह मे याति किंकार्यमूढम् ॥२४॥

प्रिय के प्रियोग में चित्त का डरते रहना, व्याकुल होना, अधिर रहना तथा बार बार प्रिय के चरणों में पहुँचने की इच्छा करना स्वाभाविक ही है ।

स्वप्नावस्था में कभी कभी प्रिय के दर्शन हो जाते हैं, इसलिये सीताजी सोने की बहुत चेष्टा करती हैं, लेकिन राक्षसों के भय से उन्हें नींद नहीं आती है—

निद्रामरपामपि शुरुतरोदुष्टायत्येव भीति  
स्वप्नोपायं कथमपि भवत्सङ्गमापादयित्रीम् ॥२६॥

रामचन्द्रजी से सन्देश सुनाने के बाद लक्ष्मणजी के लिये भी कुछ सन्देश दिया गया है । इस सन्देश में लक्ष्मणजी को यही आशपूर्ण प्रार्थना और प्रशंसा की गई है । सीताजी लक्ष्मणजी से कहती हैं—

हा नारण्यामृतजलनित्रे हा महारण्यबन्धो  
रक्षिन् हा सुविनयरसामृष्टगह्वान्तराम्बुम् ।  
हा मत्कमात्रिगणिततनूपात हा पक्षपातिन्-  
क्वेदानीं ते मनुपरि दयास्नेहदाक्षिण्यवत् ॥२८॥

अपने हृदय के भागों को सीताजी ने इस पद्य में यही भावप्रवणता के साथ व्यक्त किया है ।

सीताजी लक्ष्मणजी से फिर कहती हैं कि तुम पहिल तो मुझ पर यही दया करते थे, लेकिन आश्चर्य है आजकल तुम्हारा मन न जाने क्यों व्याकुल नहीं होता है—

सन्तप्ताया मयि पयि भृश मन्धरत्य तथासीदु  
यापोद्रेकस्तत्र मयि धने पाक्धूमाकुलायाम् ।  
स्थैर्यं चेतोऽलभत रजनी मत्सुषुप्ती तत्रैत-  
च्चित्रन्त्यस्या त्रिपदि मम यत्तन्मनो नाकुलं स्यात् ॥२९॥

अन्त में सीताजी लक्ष्मणजी से कहती हैं—

मामुदतुं कुरु परिकर वेमुनीं मा स्म यासी ॥३१॥

फिर दोनों भाइयों को सम्बोधन करके कहा गया है—

सप्रत्यया पुनरपगमे जीयितं धारयन्त्याम्  
परोक्षान्तं मयि तत्र युया नि सपूहो तन्न शोभ्यम् ।

चेत्त लङ्गानलमिदं समुत्सृज्य सद्व्योऽग्निहाम्  
सजातपद्मयतिकरमिदं जीवितं निर्मुक्ता स्याम् ॥६३॥

इस कथन में सीताजी के विवाद और नैराश्य की पराकाष्ठा छिपी हुई है। अग्रिम श्लोक में सीताजी फिर कहती हैं कि इस जन्म में यदि तुम न मिलो तो अगले जन्म में ही तुम्हारा साथ हो जाये। वस, मेरी यही प्रार्थना है—

एष तावत् खलु हितकरीमाशिव सम्प्रशाले  
लभ्येऽन्यस्मिन् अनुपि न भवद्वन्द्वमात्रे लभेय ।  
देह लब्ध्वा पुनरपि यथा पद्मिनी शैशिराते  
तत् सौहादं दिनमिद्विरयो पोर्यमेकान्तमेति ॥६४॥

जिस तरह पद्मिनी शिशिर ऋतु के बाद सूर्य और दिन के अपने पूर्ण प्रेम को पुनः पा जाती है, इसी तरह सीताजी को भी यह आशा है कि इस जन्म के बाद अगश्य ही इन्हें राम और लक्ष्मण का पूर्ण प्रेम प्राप्त हो जाये। सीताजी की इस आशा में भारतीय नारी के चिरन्तन और शायतः पति-प्रेम का आदर्श छिपा हुआ है।

रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी के सीताजी को छोड़ कर अपोभ्या चले जाने की सम्भारना लेकर अपनी यद्दिनों के प्रति भी सीताजी ने निम्नलिखित सन्देश उनके द्वारा दिया है—

आसीमार जनकमरुते यौगने भर्तृगेहेऽ  
प्यस्तक्रोधप्रसरविधिना लम्बितकाररोधा ।  
सर्वा एव क्षणमपि वयं नान्यभूमाक्षिदुःखम्  
आर्त्तपाद्यमभृति खलु व स्वप्नमात्राः लोक्ष्या ॥६५॥

अपनी यद्दिनों के लिये द्रिये गये इस सन्देश में सीताजी के भगिनी प्रेम की कौसी अद्भुत स्मृति छिपी हुई है।

सन्देश सुनाने के बाद सशयनिवारण के लिये सीताजी ने वायु को एक प्रत्य-  
भिज्ञान भी दिया है—

पेशन्यस्तातिसुरभिरजोगन्धमीशमिनन्दयम्  
गन्धोद्वाहिन् ! धर च परमप्रत्यभिज्ञानमेहि ॥६७॥

गन्धोद्वाही वायु के लिये प्रत्यभिज्ञानस्वरूप सुगन्ध का ले जाना कोई दुष्कर कार्य नहीं है। अन्त में वायु के प्रति—

पन्थानोऽमी प्रतिगति शिवा सन्धितो गच्छन्तस्ते  
मूर्तावस्था त्यपि कृतसदासन्निधानोऽष्टमूर्ति ।

अध्वान्ति तत्र परिहरेत्—इत्यादि ॥१००॥

मगन-कायना से काय समाप्त हो जाता है ।

काय के एतादृश्यन्त अनुशीलन से प्रत्यक्ष है कि यह काय एक सुन्दर सन्देश काय है । विप्रलम्भ शृंगार होते हुये भी काय में समयमये काम लिया गया है । सीता और राम जैसे धीर और उत्तम नायकों के प्रसंग में होना भी यही चाहिये था । मेघदूत के अनुकरण पर लिखे होने पर भी मेघदूत की पदावली अथवा भावों का प्रभाव काय में प्रायः नहीं ही है । केवल प्रक्रिया का साम्य ही दृष्टिगोचर होता है । भाषा की दृष्टि से काय कृत्रिम बुरा ही है । माधुर्य तथा प्रसाद गुण की काय में न्यूनता है और गौड़ी रीति का ही काय में अनुसरण किया गया है । उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोक पयास होगा—

चञ्चलचञ्चुत्ततशतगलद्रुक्धाराकुलङ्ग  
पक्षक्षेपप्रखरनखरारुपर्णैर्लुप्तस्रज ।  
मदुभाषयान्तामृतपदपि स ( राग ) प्राप्तधी शौर्यचण्ड  
खड्गैः पिङ्गो दलितगव्यं तत्र त समिगाय ॥२६॥

राग और जटायु के युद्ध का इस श्लोक में वर्णन किया गया है ।

कवि ने कहीं कहीं काय में नैतिकता तथा सबवाई स भरे हुए सुन्दर वाक्यों का भी समावेश कर दिया है । यथा—

(१) स्वार्थेऽन्य रुजति त्वन्तु य प्राकृतो ह्येव लोक ॥४॥

(२) नोपकृष्ट हयवृत्तमृषिभिर्नागसा जीरमूलम् ॥१७॥

(३) प्रायो धर्मात् स्वलति हि जन सर्वसम्पद् यपाये ॥२४॥

(४) नातिर्णीति भटिति हि जनो यानि वैमुख्यमर्थं  
नापत्पात प्रशमयति वा साइसै पौरपाद्वथ ॥६६॥

कहीं-कहीं यही सुन्दर और प्रभावपूर्ण उपमाये भी कवि ने दी हैं । येन ही एक स्थल पर राक्षसों से घिरी हुई सीताजी के लिए—श्रयनाक्रान्तामित्र कलरवीम् ॥२८॥ कहा गया है । वनदेवता के वर्णन में दी गई उपमाये भी दर्शनीय हैं—

तत्रोद्देशे वसति नियतं देवता तद्वनाना  
मूमेदन्वडागत इव मणिर्देहिनीयानुक्म्पा ।  
यद्वायुष्मन् स्थितिमविदिता तत्त्वतो आनुकाम-  
स्ता मीमासा बुध इव तयोद्दयो संश्रयेथा ॥४०॥

इस प्रकार काव्य के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि यह काव्य सस्कृत के सन्देश काव्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। रामायण की कथा-रसु को अपनी कल्पना से कवि ने और भी अधिक उत्कृष्ट बना दिया है। प्रसंगान्तर में आई हुई काव्य की यह पक्तियाँ—

नोपेक्षेथा कुरु परिचय गगया सङ्गमात् किम्  
नो माहात्म्य समधिकतर पावनोऽप्यविवरेति ॥३३॥

यदि काव्य के सम्बन्ध में मान ली जाये तो अनुचित न होगा। रामायण रूपी समुद्र में यह काव्य गंगा की तरह ही मिल रहा है। साहित्यिक अभिव्यक्ति के पाठकों के साथ-साथ भक्ति प्रणु पाठकों के लिये भी यह काव्य सर्वथा उपादेय है।

### भोलानाथ का पान्थदूत (आधुनिक काल)

इस सन्देश काव्य की कल एक ही हस्तलिखित प्रति (सं० ३८६०) इण्डिया आफिस लायप्रेरी, लन्दन में सुरक्षित है। उसी के आधार पर डा० जे० बी० चौधरी, फलरुत्ता ने यह काव्य अंग्रेजी में सक्षिप्त भूमिका के साथ मूल मात्र प्रकाशित किया है। प्रस्तुत सम्करण में वहीं-वहीं यही अशुद्धियाँ हैं और बहुत सी पक्तियों का तो अर्थ ही कुछ समझ में नहीं आता है। काव्य के अन्त में कवि ने लिखा है—

श्री सीतापतिसेनयेन टिफरीयासेन काव्य मुदा  
भोलानाथधरामरेण रचितं यत् पान्थदूताह्वयम् ।  
राधारुष्णपदारविन्दविगलन्मध्यादरा सादरा  
सन्तस्तत् परिशीलयन्तु सत्तन सन्तोषसंप्राप्तये ॥१०५॥

इससे यह प्रतीत होता है कि यगल में गंगा के तट पर स्थित टिफरी ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न भोलानाथ नामक किसी आधुनिक कवि ने यह काव्य लिखा है। इस कवि का एक अन्य दूत काव्य-पदावदूत भी इण्डिया आफिस लायप्रेरी लन्दन (सूची सं० ७, १४६७) में सुरक्षित है। भोलानाथ (टिफरी) ने मुग्ध-बोध पर सन्दर्भामृत तोषिणी नामक टीका भी लिखी है। इसकी भी हस्त लिखित प्रति (सं० ८७१) इण्डिया आफिस, लायप्रेरी, लन्दन में सुरक्षित है।

## काव्य-सार

इस काव्य की कथाप्रस्तुति श्रीमदुभागवत से सज्ज है। कृष्ण और गोपियों के प्रेम को ही लेकर यह काव्य लिखा गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। यमुना के किनारे कोई गोपी कृष्ण को याद करते करते मूर्छित हो कर गिर पड़ती है। उसकी सेविकायें जल इत्यादि से उसे होश में ले आती हैं। इसी अवसर पर मथुरा की ओर जाता हुआ एक पयिक दिखलाई पड़ जाता है। वस, गोपिया उसी को अपना दूत बना कर कृष्ण के पास अपना प्रेम सन्देश भेजती हैं। सर्वप्रथम पयिक का वर्णन किया गया है। कण्ठ में तुलसी की माला धारण किये हुये, शिष्ट, सदा चारी और दक्ष इत्यादि प्रकार से पयिक का परिचय दिया गया है। वृत्ति वृन्दाजन से मथुरा निकट ही है, अतः काव्य में मार्ग वर्णन बिलकुल नहीं है। सर्वप्रथम एक गोपी अपना सन्देश पयिक को सुनाती है। अपना सन्देश कहते कहते जब यह मूर्छित होकर गिर पड़ती है, तब दूसरी गोपी अपना सन्देश प्रारम्भ कर देती है। इस दूसरी गोपी के सन्देश की समाप्ति के साथ साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

## समीक्षा

इस काव्य में गोपियों के सन्देश में प्रेम और गिरह का वर्णन तो थोड़ा ही है, स्थान स्थान पर कृष्ण को तरह तरह के उपालम्भ दिये गये हैं। पहिली गोपी कृष्ण की इसी बात पर निन्दा करती है कि यह मथुरा जाकर ब्रज की सारी गोपियों को भूल गये हैं। मथुरा की सुन्दर रमणियों का सम्पर्क कितना ही आनन्ददायक क्यों न हो, ब्रज की गोपियों को छोड़ा देना कृष्ण के लिये जरा भी शोभायमान नहीं है। कृष्ण के विषय में ब्रज की गोपियों ने जो कुछ भी दुर उठाये हैं, उनमें साक्षी रूप से कात्यायनी अथवा दुर्गा का प्रमाण दिया गया है। गोपी कहती है—

राम हृदयनिर्गमा निरपमास्तास्तापशेषा मृता  
प्रेमाय प्रणाय नो यदि पुरा ज्ञात कथं स्वीकृत ।  
यच्छिन्नं पुलशीलं ललमल यदुपरि ३ इतम्  
तस्मिन् परमणि मर्मकतिनि पुन कात्यायनी साक्षिणी ॥८॥

आग चलकर गोपी कहती है कि कृष्ण को प्रेम करना आता ही नहीं है। इस विषय में उन्हें अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—

ता सोदा ययमाक्षिपाम न पर सीमन्तिर्नामोत्थम्  
न त्वं धेस्मि तयास्ति चेद्विविदिषा तं चार्धनारीश्वरम् ।  
गंगाधारिण्येत्य विद्मि नगरीनारीमनोश्च त्वया  
शुद्धा धूर्तं वय पर परिचिता नानञ्चिता वञ्चिता ॥९॥

कृष्णजी की वर्या क स्वर को सुनकर ही तो गोपिया अपने घरों से लोक

लज्जा इत्यादि का भय छोड़कर कृष्णजी के पास आ जाया करती थीं। इसी बात का, सम्भवतः उन्हें यह फल मिला है कि कृष्णजी ने उन्हें इस तरह भुला दिया है—

पूर्वं यदुभयता वनेऽपि अनिताशसी स्वयशीस्वन—  
श्चक्रे चक्रपते तदा निजपते पीडा स्वपित्रीस्त्रया ।  
स्वासा लोककलकिता नृपभय तच्छापदाच्चापद—  
स्तुच्छ्रीकृत्य सकाशमैव भवता दत्त पुनस्तत्फलम् ॥२५॥

इसी प्रकार कृष्ण की वशी तथा उसके गीत को भी उपालम्ब दिया गया है। गोपी कहती है—

क मन्त्र ध्रुवणे निधाय हृदय याऽचूचुरलीलया  
पश्चादेयमभूमुदत् कुलपतीरस्मानकस्मात् सती ।  
तत्सग विपिनेऽप्यचीकरद्दि नाजिहपत् सैव ता  
यशीगीतिरपाकृती कृतवती द्वीप से दुश्कृते ॥२६॥

आगे चलकर यह गोपी कहती है कि कृष्ण तो प्रेम की अपनी सय पुगानी बातें भूल गये हैं—

स्यात् प्रेमेदमकृत्रिम तदुभयो सान्निध्यमास्ता सदा  
यावज्जीवमिदं यदन्तु वचनं प्रत्यर्धिनो मे मुदा ।  
अद्य स्यात् समय परस्परपरप्रेमार्द्रयोरवयो—  
स्य मेऽहं तव धेति निश्चितमिदं यत्तत्त्वया विस्मृतम् ॥२७॥

अन्त में अपनी विरहव्यथा का वर्णन करते हुये यह गोपी कहती है—

ता सर्वा स्मर शर्नरी क्षणनिभा नीतास्वया त्या रिना  
दग्दार्धं कतिकोटिकोटि युगवज्जात पर वा सागसा ।  
नाम्नाकं हृदि तापशान्तिलयवृत्ताटोरपायोरय  
सन्ततायसपिण्डकोपरि यत कीलाललशोषम् ॥२८॥

इस प्रकार अपनी विरहव्यथा बतात बताते यह गोपी मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है। तदनन्तर दूसरी गोपी इसी कथासूत्र को लेकर आग पड़ती है और मथुरा में कुंजा के साथ कृष्ण के सम्पर्क को लेकर उनकी निन्दा करने लगती है। यह कहती है—

सा कुंजा परमा तत्रैव सविधे ख्याता प्रियवामिधा  
विरयातस्त्यमपि प्रियक इति ससक्तोऽसि यस्या सदा ।  
इत्थं योग्यसमागमो विधिहित स्यादेव विन्तुसमा  
राधायास्तुलनाविधौ जलनिधे कन्या न धन्यापते ॥२९॥



मथुरा में जाकर कृष्ण को मते ही कुम्भा का माथ धन्य हो लगे, लेकिन राधा और कुम्भा की तुलना ही स्या। राधा के समग्र शरीर की कामित का तो कहना ही क्या, उनके पैर की एक अंगुली की भी उपमा ससार में नहा मिल सकती—

आम्ना सर्वशरीरकान्तिनलना यत्पादपद्मागु ली—

लेशस्यापि जगत्त्रयेऽस्ति न तुलति स्यादतं किन्तु यत् ॥३५॥

तदनन्तर यह गोपी कहती है कि जिस राधा का पदों को कृष्ण अमृत के समान समझते थे, जिसके मार्ग में किसी न किसी बहाने पड़े हो जाते थे तथा जिसके नेत्रों के सामने ससार की भी उन्हें सुध न रहती थी, हाय, उस राधिका को उन्होंने एक मम भुला दिया है—

कामापहनुति यद्वच्च श्रुतिपुटे पीयूषपद्मिर्घृतम्

यद् गत्यामतिपद्धतो कित्तु केनाऽपि चतुर्लेन स्थितम् ।

यन्नेत्रान्तनिरीक्षणापितपरानन्देन तस्मिन् क्षणे

मिश्रं त्रिस्मृतप्रद्य सापि भयता कालेन ॥ त्रिस्मृता ॥३६॥

शामे चलकर यह गोपी कहती है कि कृष्ण केवल गोपालक ही हैं। समस्त मिश्र का पालक गोपालक कैसे हो सकता है। कृष्ण तो केवल चोर हैं। उनकी माता यशोदा ने उन्हें देवता बना दिया है—

नादत्ते हयमीश्वर किमपि तद् गृह्णाति भाग्योदया—

दृमकस्या यत् प्रतिपादितं त्रिजगता पालो न गोपालक ।

भक्ततामीश्वरि प्रभु प्रकुरुते न कदापि श्रीपादिकम्

बौद्ध्यात्र यशोदया तत्र पुनर्देवत्वमाख्यापितम् ॥३७॥

तदनन्तर यह कहती है कि कम की मात्र कर दुर्बल और वृद्ध उग्रसेन को कृष्ण न मथुरा का राजा बना दिया है, ताकि यह मथुरा की सुरंग रमणियों के साथ बिहार करते रहे—

कंस दमयय नयन मतमयो राज्ये च राजा भय—

न्नास्त्राकाग्निमातुर प्रवयस नाम्नोग्रसेन नृपम् ।

कुप्यन्तु शश्वन्य सप्रति सुखी ध्यायन्पुण्यानि ? ता

नारीरयमरीमोऽनारतं दृश्योऽसि कैर्दृश्यसे ॥३८॥

राधा की शिरदायस्था और व्यग्रता का वर्णन करते हुये यह गोपी कहती है कि दुष्टात्मा कृष्ण ने उसके शिरोघ्न में नरकनी हुई राधा को बिरहल ही भुला दिया है—

प्रातः प्रातरियं पुरीषथमनु त्वद्दर्शनाकाक्षिणी  
 प्रेषानेति न वेति पश्यत जलज्याप्तं मदक्षिण्यम् ।  
 द्रष्टुं न क्षममधरीदिति ततो नीनाऽनुसार्यं यज  
 याऽसूनुं नु घतिं ते कृते कितय सा दृष्टा न दुष्टात्मना ॥४४॥

राधा की मूर्च्छा-रक्षा को देखकर लोगों के निरन्तर आसू बहने लगते हैं और वे लोग हा हा करते करते जमीन पर लोट जाते हैं । कृष्ण को इस बात के सुनाने का अधिक के लिये परामर्श देते हुए गोपी कहती है —

अथान्तश्च उदधरो यत गतप्राण्यमित्याकुला  
 जम्बाले किल सकुल क्षितितल कुर्वन्ति के नानिश्चम् ।  
 श्रीराधापदभूलिशालियपुपो दुर्गारहाद्वारधा  
 के वा मेह लुडन्ति चेति सदय एव त शठ आचये ॥४५॥

कृष्ण और गोपियों की आत्मीयता का इसी से पाठक गल्ल अनुमान लगा सकते हैं कि कृष्ण को शठ कहने में भी गोपी जरा नहीं हिचकती है । इस प्रकार कृष्ण की विविध उपालम्भ देने के बाद पक्षिक से कहा गया है—

इष्टो घोरतरत्यदीधिरिहोत्तापक्षयैकक्षमो  
 गंगासागरसगमे प्रम पुन कापयय कामद ।  
 स स्यादिष्टनम सुगय सुतरा तप्तात्मना मदशा  
 नो तापाय कदापि पान्य मयुरानाथस्त्वया कथ्यताम् ॥४६॥

घोरतप से व्याकुल गोपी का गंगासागर के सगम में अपने शरीर को छोड़ देने का विचार करना उसकी निराशा और अघृति को व्यक्त करता है । अन्त में गोपी यह प्रार्थना करती है कि कृष्ण आहो कृपा करे, चाहें छेप करें, उसकी तो यही प्रार्थना है कि जन्म जन्मान्तर में वह गोपाल कृष्ण ही उसका प्राणेश्वर रहें—

धात सकातरमिदं प्रणिपत्य याचे  
 छेप करोतु वरुणमथवा तनोतु ।  
 गोपाल एव पशुपालकपालपाल  
 प्राणेश्वरो भवभवेऽपि स्मैव भूयात् ॥१००॥

इस सम्प्रेष में इस प्रकार उपालम्भ और निन्दा की अधिकता के होते हुए भी कहा ० कि नै बड़ी सुन्दर वर्णनायें की हैं और भावयोजना यही सरस तथा हृदयप्रादिणी है । पान्य, को दग्धकर गोपियों के हृदय में जो आनन्द होता है, उसका निम्नश्लोकों से पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं । गोपिया कहती हैं—

सूर्यम्येव निरस्तदुःखतमसः प्राप्तोदयस्याद्य ते  
 रागः प्रापितया गवा मधुरया सद्यः परामर्षणात् ।  
 पद्मानीव मुखानि नल्लदधिकं पान्थ स्फुटानि स्फुट  
 पद्मारादपि सन्निधातुपट्टतिर्मांसा हि भिन्नेयते ॥८॥

पथिक के रूप, मन, शील, प्रीति, यश और वाणी का यहा सुन्दर वर्णन  
 नमःश्लोक में पाया जाता है—

रूप चन्द्रति मानस द्रवति ते शीलं सुविश्रस्तति  
 प्रीतिः पर्वतति प्रवीतमहिमा श्रोतस्वतीपालति ।  
 प्रेलोकैकैकलक्षनस्त्रति यश पीयूषनि व्याहृतम्  
 यो योऽयं स गुण सुहृदगुणवत्कार्येऽत्र वर्द्धिष्यते ॥९॥

कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से रूप और मन इत्यादि के कैसे सुन्दर उपमान यहा  
 पर दिये हैं ।

सन्देश देते समय प्रथम गोपी कहती है कि विरह ताप के उपचार-स्वरूप  
 काम में आने वाले शौगल, नलिनी दल, चन्दन और केतकी इत्यादि पदार्थ ब्रज में  
 दुर्लभ से हो गये हैं । अतः कृष्ण से कहना कि शीघ्र ही इनको मेरे लिये भेज दें—

शौगल नलिनीदल मलयज अम्बालक शीतलम्  
 नूतन पटलवम्र नो जनपदे शौर्लेभ्यमेतानि यत् ।  
 अधास्तानि पुरातनप्रणयतः समार्थयामो ययम्  
 शीघ्र प्रेषयिता मर्दर्थमिति तः साधो बुध बोधय ॥१०॥

विरहताप की उग्रता के साथ-साथ कृष्ण व गोपियों को भूल जाने की भी  
 इस पद्य में बड़े गूढ़ ढंग से व्यञ्जना की गई है ।

दूसरी गोपी अपने सन्देश में कहती है कि कृष्ण के साथ होने पर जो जो  
 बातें दृष्टिकर लगती थीं, वे सब उनका वियोग हो जाने पर यही दुःखदारी प्रतीत  
 हो रही हैं —

शिष्टो दुष्ट इषाटवीयः सदनयाटीयः सुजाटवी  
 द्वारो भार इव प्रसूनरचिता मालापि जालोपमा ।  
 व्याघ्राद्या परिवारघत् परिजगा व्याघ्रादिर्दिश्लोपमा-  
 सत्यसगे विहिते पुरा मम न किं किं वैपरीय गतम् ॥११॥

आगे चल कर यह गोपी कहती है कि कृष्ण के विरह में उसकी शानेन्द्रियों  
 तथा कर्मेन्द्रियों दोनों ने ही अपना कार्य छोड़ दिया है—

माव्यो नायमसम्मज्जो यदधुना नान्यो दशा दृश्यते  
नीलालोकमिया पर कटुतया घ्राणेन कर्णेन वा ।  
शीतो वायुरपि त्वचा रसनया नैव सुधा गृह्यते  
शैविल्य चलिता क्रिया स्वविरहात् कमेन्द्रियाणामपि ॥५६॥

इस पद्य में गोपी की विरह-फालीन जड़ता का वर्णन किया गया है । इसी प्रसंग में अपनी मन स्थिति का वर्णन करते हुये गोपी फिर कहती है-

चित्त सुस्थयितु र्यदर्थरचितारामे यदा स्थीयते  
हा हा हन्त तदा मदीयनयनद्रोणीस्रवद्धारिभि ।  
यदापूरितमालजालपटल निष्कर्मणाञ्चाच न-  
स्त् किं साहित किं न सेचनमिदं कर्म स्वय सिद्धयति ॥५६॥

अपने चित्त को प्रसन्न करने के लिये गोपी किसी घाटिका में जाती है । यहा भी कृष्ण की स्मृति उसे आ घेरती है और उसके नेत्रों से लगातार आसूँ बहने लगते हैं । इस तरह वृत्त के सँचने का काम अपने आप ही हो जाता है । प्रिय की स्मृति में प्रेमिका के रोने को कौन रोक सकता है ।

कृष्ण के विरह रूपी सागर में भारी मिलन की नौका लेकर किसी तरह अपने प्राणों की रक्षा करती हुई गोपिया कृष्ण ने केवल अपना वृत्तान्त भेजकर नौका सहित बुग दी हैं । इस भाव को कवि ने यही अच्छी तरह निम्न पद्य में व्यक्त किया है । गोपी कहती है-

नाथ त्वद्विरहान्मुधो निरवधो त्वद्भारनासेऽधो  
पूर्णेऽक्षिस्त्रयद्वल निर्भरजलैर्गणपगासगमे ।  
भान्तिरमिलनप्लवा अपि धृतप्राणा कथञ्चिद्वयं  
यात्तमिवैष तत्परेण भवता किं सप्लवा प्लाविता ॥६१॥

अनुप्रसाद की छटा के साथ साथ रूपक का भी चमत्कार इस पद्य में दर्शनीय है । साथ ही भाव योजना भी यही सरस तथा हृदय द्रावक है ।

गोपियों की विभिन्न विरह चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है-

का निन्दन्ति रुदन्ति का दिमज्जन्ते सिञ्चन्ति पापोजिनी-  
पत्रे का मृदु वीजपन्त्यपि परा कुर्वन्ति यातागतम् ।  
काञ्चिन् फगपि यदन्ति गोकुलधभूतृन्द मृतं काश्च नो  
नासान्यस्तफराश्च सशयपरा निधन्ति हाटारयम् ॥६२॥

इस पद्य में गोपियों के रोने, विरहताप, उद्वेग और चिन्ता इत्यादि का कवि ने एक साथ ही चित्र उपस्थित कर दिया है ।

रूप के विरह में डूबी हुई गोपी कहती है कि उसका मन अत्यन्त खिन्न रहता है और थोड़ा सा समय भी कल्प के समान बड़ी कठिनाई से कटता है—

न द्रक्ष्यामि पुनर्हरे तव मुखं काये न गन्धार्पणम्  
कण्ठे माल्यसमर्पणं न च करिष्यामीति खिन्नम् मनः ।  
पौन पुन्यमथो मया कठिनया ससान्वयमानं च तत्  
स्वर्गोऽयं समयोऽपि कल्पमम इत्येव सदा मन्यते ॥६८॥

इस प्रकार गोपियों की विरह-कालीन विभिन्न अनुभूतियां तथा चेष्टाएँ कवि ने बड़ी सुन्दर शैली के साथ काव्य में वर्णित की हैं ।

मेघदूत से प्रेरणा लेकर भी इस काव्य में मेघदूत का अनुकरण नहीं किया गया है । इस काव्य में कुल १०५ श्लोक हैं । जिनमें केवल श्लोक सं० १०० और १०३ घसन्त तिलना छन्द में हैं । अन्य सब शार्ङ्गलरिकीकृत छन्द में हैं । पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा काव्य का विभाज भी नहीं किया गया है और न काव्य में मार्गवर्णन ही दिया गया है । आम तौर से सन्देशकाव्यों में विरही नायक या नायिका का वर्णन प्रारम्भ में दिया जाता है । तदनन्तर किसी के दूत कार्य करने का उल्लेख किया जाता है और मंगलाचरण प्रायः नहीं ही होता है, पर इस काव्य में सर्वप्रथम दो पद्यों में मंगलाचरण किया गया है और प्रसंगानुसार रूप की स्तुति की गई है । इसी प्रकार काव्य के अन्त में भी मन्देश-वाहक को आशीर्वाद या शुभकामनाएँ नहीं दी गई हैं । काव्य में मुख्यतया विप्रलम्भ शृंगार ही है । गोपियों के विरह वर्णन के साथ-साथ रूप की निन्दा तथा उनके लिये अनेक उपालम्भ भी काव्य में दिये गये हैं । विभिन्न उपालम्भों से गोपियों के रूपप्रेम की अनन्यता तथा प्रगाढ़ता का ही परिचय मिलता है, क्योंकि उपालम्भ उसी को दिया जा सकता है जिस पर अपना कुछ अधिकार हो । मातों के अनुकूल करि ने भाया भी सरल और सरस ही प्रयुक्त की है । माधुर्यगुण के साथ साथ वैदर्भी रीति का काव्य में प्रभाव स्पष्ट ही दिसलाई पड़ता है, लेकिन फिर भी काव्य में प्रसाद गुण की कमी है । निम्ना-  
वृत्त श्लोक से पाठक गण काव्य की कुछ कमियों का स्वयं अनुमान लगा सकते हैं—

यो भूपोपरि योमशीति भुवनानुल्लालसीन्वहय—  
स्तत्साधून्मसाधु किं परिमृषन् धारिणि तस्मै तथा ।  
नो रोरोष्ठि न जामर्माणि स यथा योवोद्धि शोभोत्पथो  
नानन्दीनि दरीधरीति च वचद्वर्कति चेन्नतिप्रियम् ॥१०॥

परिच की दूत बनाते समय यह श्लोक आया है । इसका अर्थ जो कुछ हो सकता है, यह पाठक गण स्वयं समझ सकते हैं । इसी तरह के दुर्बल भाव-वाले कई पद्य काव्य में यत्र तत्र दन्तने में आते हैं ।

विप्रलम्भ शृंगार के साथ सौंदर्य-काव्य में राधाकृष्ण के प्रति अपने प्रेम और भक्ति का भी कवि ने परिचय दिया है। समस्त काव्य कवि की धार्मिक भावना से ओतप्रोत है। राधा और कृष्ण को केवल प्रेमी और प्रेयसी के रूप में ही कवि नहीं जानता है, बल्कि उन्हें अतार स्वरूप मान कर ही यह काव्य लिखता है। मंगला चरण में आया हुआ यह श्लोक कवि की कृष्णभक्ति को स्पष्ट रूप से बता रहा है—

अकोद्धारणकारणादवतरिष्यन्त्या स्वशापच्छलात्  
स्वच्छन्द सत्रयस्यवा सकृपया गोलोकतो गोकुले ।  
ह्लादिन्या परकीययेऽसहितो हृष्टोऽवतारीह य  
भी कृष्णोऽवततार य सरसिक् स्थान्त समुल्लासयेत् ॥१॥

इसी प्रकार काव्य के अन्त में भी कवि कहता है—

मालाकृतेऽ कुसुमोत्थमिराक्षमेण  
प्रेम्णा गुणेऽ न मया प्रथित हि हारम् ।  
राधोत्थितप्रमदसारपर परित्रम्  
कुर्वन्ति के सहृदया हृदये न मोदात् ॥१०३॥

जिस तरह कोई माली पुष्पों का हार बनाता है, उसी तरह इस कवि ने भी प्रेम रूपी सूत्र के आधार पर राधा की प्रसन्नता के लिये यह पवित्र काव्य लिखा है। इस प्रकार इस काव्य में कवि की धार्मिक भावना भी अन्तर्निहित है।

सन्देश काव्यों में जितने भी सन्देश याहक कवियों ने अपनी प्रतिमा से कल्पित किये हैं, वे या तो पशु पक्षी हैं या कोई निजीय पदार्थ है। लेकिन इस काव्य में वृन्दावन से मधुरा जाते हुये एक पथिक को गोपियों का दूत कल्पित करके कवि ने काव्य में कुछ वास्तविकता ला दी है और कथायन्तु कल्पित होते हुये भी पक्षी चतुरता के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की गई है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि विषय, शैली और छन्द की दृष्टि से यह काव्य एक अभिनय रचना है। सन्देश-याहक का खुलाव करने में कवि ने वास्तविकता से काम लिया है और काव्य को नितान्त मौलिक बना दिया है।

## नित्यानन्द शास्त्री का हनुमद्भूत ( वि० सं० १६८५ )

आधुनिक सन्शकाव्यों में इस सदेश-काव्य का एक विशिष्ट स्थान है। इस काव्य में मेघदूत के प्रत्येक पद की चतुर्थ पंक्ति को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। जोधपुरनिवासी, दार्धीचकासत्यगोत्रीय, कविराज तथा आशुकरि थी नित्यानन्द शास्त्री द्वारा यह काव्य लिखा गया है। लेखक ने काव्य की प्रस्तावना में आपाद शुक्ल एकादशी वि० सं० १६८५ ( ता० २८-६-७८ ) ग्रन्थ का रचनाकाल दिया है। काव्य के अन्त में ग्रन्थकार ने अपना परिचय देते हुये लिखा है—

आत धीरनुरन्धरात्कविमहेन्द्रान्माधवादु भ्रातृजादु  
राधकृष्ण समाह्वय यमकून श्री वैद्यनाथ सुतम् ।  
सोऽयं योधपुरेन्द्रमाश्रित इम दार्धीच-कासत्यको  
नित्यानन्दकवि र्यधस्त हनुमद्भूत द्विभाषात्मकम् ॥ २॥५८॥

इति थी जोधपुर महाराजाश्रितेन माधुरकरीन्द्रतनुजनुपा ध्यासथी-  
वैद्यनाथनन्दनेन कविपराजशुकविना दार्धीचकासत्योपाख्येन  
श्रीनित्यानन्दशास्त्रिणा रचितं थी हनुमद्भूत तीसराथं समाप्तम् ।

लेखक को जोधपुर का एक विशिष्ट साहित्यिक माना जाता है। चौपासनी हाई स्कूल जोधपुर में अध्यापन कार्य करने के बाद जोधपुर स्टेट लाइब्रेरी के अध्यक्ष के पद पर भी इन्होंने कार्य किया। हिन्दी और संस्कृत में समस्यापूर्ति के साथ बहुत सी कुटुम्बर कवितायें भी इन्होंने लिखी हैं। संस्कृत में गंगाएपदी और लक्ष्मीपदपदी इत्यादि मुकक कवितायें इनकी लिखी हुई हैं। जैन आत्मनिन्द ममा भावनगर में प्रकाशित चेतोदूत और मेघदूत समस्यालेख इत्यादि समस्यापूर्तिपरक कतिपय सन्देश काव्यों का इन्होंने सशोधन तथा संपादन किया है। समग्र है कि इस सशोधन तथा संपादन कार्य से ही इन्हें भी मेघदूत की समस्यापूर्ति का आधार पर इस सदेशकाव्य का लिखने की प्रेरणा मिली हो। अपने काव्य की प्रस्तावना में इन्होंने लिखा है—

प्रणीतयानस्मि शूनि मुक्तकान्वद् समस्यापरिपूर्तिमाश्रयन् ।  
कवीन्द्रवशस्थकर्मिर्मग्नपि पर निबन्ध कृतयान् तादृशम् ॥ ३॥

इत्याकलय किल चेनसि कालिदासजीमूतदूत-वर्णपद्य चतुर्थपादान्  
गिन्पम्य नृपंचरणमथलसधयेषु काव्य नम्रं व्यधिवि रधयद्भूतदूतम् ॥ ५॥

इन पद्यों में कवि ने मेघदूत के पदों के चतुर्थ पाद को लेकर समस्या पूर्ति परक किसी नयीन सन्शकाव्य का लिखने की अपनी ठकट इच्छा व्यक्त की है। उसी के परिणामस्वरूप यह सन्शकाव्य लिखा गया है।

## काव्य की कथा

इस काव्य की कथा वार्त्मीकि रामायण से सम्बद्ध है। रामचन्द्रजी के द्वारा हनुमानजी को सीताजी की खोज में लका भेजने की घटना के आधार पर इस सन्देश काव्य की रचना की गई है। काव्य की कथा इस प्रकार है। प्रसन्नगिरि पर सुग्रीव इत्यादि के सहित रामचन्द्रजी ठहरे हुए हैं। सीताजी की खोज के लिये विभिन्न दिशाओं में वानरों का दल भेजा जा रहा है। लका की ओर भेजे जाते हुए हनुमानजी को विशेष बलशाली तथा कुशल देवकर रामचन्द्रजी उनका विशेष स्वागत करते हैं तथा अभिज्ञान स्वरूप अपनी अंगुली देकर उन्हें सीताजी के प्रति दिया जाने वाला अपना सन्देश भी सुनाते हैं। सन्देश सुनाने से पूर्व लका तक का मार्ग वर्णित किया गया है। सर्वप्रथम प्रसन्नगिरि से विन्ध्यपरंत, यहा से फिर नर्मदा और गोदावरी नदी, तदनन्तर मेघल, उत्कल और दशार्ण देशों में से होते हुये वेप्रवती नदी को पार कर आम्बवन्ती ( आम्बवन्ती ) नगरी और फिर अयन्ति-नगरी पहुचने का हनुमानजी को परामर्श दिया गया है। यहा से फिर त्रिदर्म देश और कुण्डिनपुर तथा अष्टिक ( अष्टिक ), माहिष, मत्स्य और कलिग देशों को देखते हुये कौशिक देश जाने का हनुमानजी को आदेश दिया गया है। तदनन्तर दण्ड कारण्य और गोदावरी नदी को पार कर आन्ध्र, पुण्ड्र, चोल, पाण्ड्य, केरल इत्यादि देशों में से होते हुये मलयपरंत ( अयोमुख ), कावेरी नदी और ताम्रपर्णी नदी पर हनुमानजी के पहुचने का उल्लेख किया गया है। ताम्रपर्णी नदी के बाद महेन्द्र-परंत तथा उसके किसी उच्च शिखर पर चढ़कर वहाँ से समुद्र को लाघ कर लग्न नामक परंत पर उतरने और यहा से फिर हनुमानजी के लका पहुचने का वर्णन किया गया है।

इस प्रसंग में लका नगरी का कुछ वर्णन भी दिया गया है। तदनन्तर नगरी के बाहर ही उद्यान में विशेषतया अशोक या मन्दार वृक्ष के निकट सीताजी की खोज करने का हनुमानजी को परामर्श दिया गया है। उद्यान में एक ओर तडाग, ढीडा गिरि, अशोक और यकुल वृक्ष बसाये गये हैं तथा मध्य में शिशपा वृक्ष पतलाया गया है। इस शिशपा वृक्ष के नीचे अथवा नगरी में कहीं पर सीताजी के मिलने की सम्भावना करते हुये उनकी विभिन्न धिरह खेष्टाओं और अवस्थाओं के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने हनुमानजी को सीताजी के लिये दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। सन्देश सुनने के बाद हनुमानजी निर्दिष्ट मार्ग से लका पहुच कर सीताजी को रामचन्द्रजी का सन्देश सुनाते हैं तथा अभिज्ञान स्वरूप रामचन्द्रजी की अंगुली भेंट करने हैं। इसके बाद लौटते समय सीताजी का सन्देश और चूडामणि लाकर रामचन्द्रजी की सेवा में उपस्थित होते हैं। तदनन्तर रामचन्द्रजी पानर सेना लेकर लका पहुचते हैं और रावण को मार कर सीताजी के साथ अयोध्या पापिस लौट आते हैं।



बस, यहा पर ही काव्य समाप्त हो जाता है ।

## काव्य समीक्षा

यह काव्य गारमीकि रामायण और मेघदूत से प्रेरणा लेकर लिखा गया है । कालिदास ने मेघदूत में हनुमान्जी और सीताजी का मध्य उल्लेख किया है । इसी उद्धरण के आधार पर कवि ने हनुमद्दूत लिखने की प्रेरणा पाई है । इसके अतिरिक्त इस काव्य में मेघदूत के पद्यों के चतुर्थ चरण को लेकर समस्यापूर्ति भी की गई है । अतः मौलिक सन्देश काव्य होने के साथ-साथ मेघदूत की समस्यापूर्ति होने के कारण आधुनिक सन्देश काव्यों में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है । समस्यापूर्ति के कारण, मेघदूतका मन्दाकिन्ता छन्द ही काव्य में प्रयुक्त हुआ है । काव्य दो भागों में बंटा हुआ है । पूर्वभाग में ६८ तथा उत्तरभाग में ५८ श्लोक हैं । पूर्व भाग में मार्गदर्शन तथा दूसरे भाग में लका नगरी का वर्णन, सीताजी की विरह चेष्टायें और विरहाजस्थायें तथा अन्त में सन्देश कथन है । काव्य में त्रिप्रलम्भ शृंगार ही प्रधान है । प्रिय, भाव तथा शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत जैसा ही है । इसमें भी एक प्रेमी का अपनी प्रेयसी के लिये प्रणयमन्त्रण पाया जाता है । मार्गदर्शन इत्यादि सब कुछ मेघदूत जैसा ही है । जिस तरह मेघदूत में प्रत्येक स्थान का शृंगार रस-युक्त वर्णन पाया जाता है, उसी तरह इस काव्य में भी वस्तु स्थानों के वर्णन में शृंगार रस का पुष्ट स्पष्ट दिखलाई पड़ता है । कुण्डिनपुर का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

यथ प्रोचैरतिघनरसाभ्यन्तरं पुष्करिण्या  
मीमन्त्रीडासरसिजवर्नीभारतो माकलीज ।  
रत्यां खेदं हरति सुदृशा द्राम् यथा हयुज्जयिण्या  
सिमाधातं प्रियतम इव मार्यनाचाटुकार ॥३३॥

इसी प्रकार अश्वन्तिनगरी में क्रीडाशील पर हनुमान्जी की विभिन्न क्रीडायें देखकर यहा की स्त्रियों की चेष्टाओं का कवि ने बड़ा प्रभुर वर्णन किया है—

कापेयेभ्य कपि कुलपते । कौतुकात्करिपतेभ्य -  
स्तेभ्यस्त्रस्ता रहसि हसितास्याम्बुजा मानसय ।  
यूनां चित्तं मनविउरणैर्मा कटाक्षैर्दरेयु  
म्रीणामाद्य प्रणययचन विभ्रमो हि त्रियेषु ॥१॥३०॥

जिस प्रकार मेघदूत में अलका नगरी को शृंगार रस का केन्द्र सा वर्णित किया गया है, उसी प्रकार लका नगरी भी शृंगार रस के दृष्टिकोण से ही वर्णित की गई है । लका के वर्णन प्रसंग में कवि लिखता है—

सिप्रक्षिप्रामिच्छुनिवशत धोणिं श्रम्यद्विमं  
काञ्चीधरै स्तनविदलितै रत्नमालीयरत्नै ।

धम्मिल्लाञ्च प्रपतिततरैर्यथ सन्तानपुष्पै—

नशो मार्गं सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥२॥११॥

कैलासाद्राविध सुखरुर रात्र्यापूर्वभक्ति—

वश्योऽऽश्रय बहिरुपपन्ने यत्र तिष्ठत्युमेश ।

तद्भीत्या मा धरतु मदनो धन्य, यत् सत्कटाक्षै—

स्तस्यारम्भश्चतुरधनिताविभ्रमैरेव सिद्ध ॥२॥१२॥

इन पद्यों में मेघदूत का अनुकरण स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा है। मेघदूत में पक्ष के घर में बाफी का वर्णन किया ही गया है। इसी प्रकार इस काव्य में भी लका नगरी के बाहर उपवन में एक तटाक का उल्लेख किया गया है—

तत्रैकोऽस्ति स्फटिकरचिताखण्डसोपानपङ्क्ति

सफुरलाम्भोरुहसुरभितस्त्रच्छेनीरस्तटाक ।

यदुवास्तव्या इदमपि सखे । मानस मानसौको

नाध्यास्यन्ति व्यपगनशुचस्त्यामपि प्रेक्ष्य हस । ॥२॥१५॥

समस्यापूर्ति के साथ-साथ कवि ने मूल श्लोक के भाव को भी वहाँ सुन्दर रीति से सुरक्षित रखा है।

सीताजी की विरह चेष्टाओं के वर्णन में कवि ने अपनी भावुकता और संवेदनशीलता का अद्भुत परिचय दिया है। रामचन्द्रजी सीताजी का वर्णन करते हुये कहते हैं—

ता मे प्राणान् परिचिनु बहिश्चारिणो माम्कौन—

ध्यानेकाप्रां कमपि न पर प्रेक्षमाणा मृगाक्षान् ।

मद्विश्लेषामयत्रिपुरिता प्राणलीमाशयेन

जाता मन्ये शिशिरमधिता पविनीं वाऽन्यकूपाम् ॥२॥२०॥

सीताजी को रामचन्द्रजी के 'बहिश्चारिणो प्राणान्' बताकर कवि ने इन दोनों के प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त कर दी है। सीताजी की चिन्ता और उत्कण्ठा को कवि ने एक साथ ही इस श्लोक में बटा ही सश्लिष्ट वर्णन किया है। प्रिय विरह में सीताजी किस प्रकार अपने दिन काटती हैं। तनिक इसका भी वर्णन देखिये—

संख्याती-याऽङ्गलिमिरलिलान् धीतविश्लेषमासा—

नाकारं मे घटजपयसा याऽलिखन्त्यजपत्रे ।

ध्यायन्ती वर्त्यमिहप्रहित शनोऽध वा दूतं पपात्

प्रायेणैतं रमणविरहेष्वगनानां विनोदा ॥२॥२६॥

घट के दूध से कमल के पत्र पर चित्र बनाने का विचार बड़ा ही सुन्दर है। आगे चल कर सीताजी की विरहावस्था का वर्णन आता है। इस प्रसंग में रामचन्द्रजी कहते हैं—

क्षाम काय खलु तत इत स्थण्डिले लोटयन्ती  
दीना हर्षामित्र मितजले पञ्चशेषे तडागे ।  
मेमालापैरजनि रजनि प्राक् समाप्ता मयाया  
तामेवोष्णैरिरहमहतीमश्रुमिर्यापयन्तीम् ॥२॥२८॥

सीताजी को 'दीना हर्षामित्र' उपमा देकर कवि ने उनकी सुकुमारता और कृपाता की यही सूक्ष्म व्यञ्जना की है। एक अन्य स्थल पर सीताजी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—

सा तन्वगी कुसुमभृदुल स्वर्णगौर शरीर  
भूपाद्मीन धरणिशयनाद्भूषित धारयन्ती ।  
त्वामस्य स्नाक् सदयहृदय । आशयिष्यत्यवश्य  
प्राय सर्जो भवति करुणकुत्सिराद्रान्तरात्मा ॥२॥३२॥

कुसुम-समान कोमल तथा स्वर्ण ममान गौरि शरीर को घूली घूसरित देखकर किस सहृदय के नेत्रों में अश्रुधारा प्रवाहित न होगी।

सीताजी की विरहावस्था के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने हनुमान्जी को अपना सम्पन्न सुनाया है। यज्ञ की तरह रामचन्द्रजी भी सीताजी के आगों की छटा विभिन्न सुन्दर वस्तुओं में देखने की चेष्टा करते हैं, लेकिन खेद है कि कहीं भी उन्हें सीता जैसा सौन्दर्य नहीं दिखलाई देता। वे कहते हैं—

स्वर्णाभिजन्वा सहचरि । वपुर्वक्त्रलक्ष्मीं दिवाशी  
ध्रुसौन्दर्यं धनुषि समरीवेशमारेषु वेशान् ।  
उर्व्वेक्षेऽहं करटिगमने किञ्च गत्या विलासान्  
दन्तैकस्मिन् पञ्चिदपि न से क्षणिक सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

मेघदूत से प्रेरणा लेने पर भी कवि ने यहाँ पर कुछ नवीन मायों का समावेश किया है।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्थान में रामचन्द्रजी सीताजी को देखते ही हैं कि मुगों के उज्ज्वल स्वर से उनकी निद्रा भग हो जाती है और उन की भौंलें खुल जाती हैं। इस तरह स्थान में भी वे सीताजी के दर्शन नहीं कर पाते—

यावद् यामे रमणि । रज्ज्वरन्तिमेवा कचचिन्  
निद्राया त्वन्मिजितमुद्यद् स्थान आशति तावत् ।

उच्चैरुमीलति सपदि दृक् कुम्कुटाना विराजै-  
कूरस्तस्मिन्नपि न सद्यते सगम नो कृतान्त ॥२॥४४॥

इस श्लोक में प्रिय की विधवता और असहायता कितने सुन्दर ढंग से चित्रित की गई है। प्रायः रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही म्यज्ज दिव्यारं दते हैं और सुर्गा भी तब ही बोलता है। इस तरह भुगें के शब्द से म्यज्ज का भग हो जाना स्वाभाविक ही है।

सीताजी के विरह में रामचन्द्रजी कहते हैं कि उनका चित्त बिलकुल निराश्रय हो गया है। किसी भी बात में उसकी रुचि नहीं रह गई है—

स्मरद् नो त्वग्, न निशमयितु श्रोत्रकं, नेक्षितु दग्  
धातु नासा नदि, रसयितु नेक्षुतीष्ट च जिह्वा।  
यस्मै चित्त सुमुखि मदभिन्नान्तरात्मस्तवेष  
गदोष्माभि कृतमशरणं त्यक्षियोगव्यथाभि ॥२॥४५॥

विरह में मनुष्य तत्तद् विषयों से विरक्त हो ही जाता है। इस प्रकार सन्देश में अपनी मनोव्यथा घतलाकर अन्त में सीताजी को आश्लासन भी दिया गया है—

नित्यो दूयेव प्रकृतिनियमोऽनित्यता नैति नित्यं  
दुःखस्यान्ते सुखमिति सुनिर्धार्य धैर्यं धरेऽहम्।  
तस्मान्मा भूस्त्वमपि नितरा कातरा कातराक्षि  
नीचैर्गन्धुत्युपरि च दशा चक्रनेमिकमेण ॥२॥४६॥

आगे चल कर फिर कहा गया है—

मीनाकषे किल कृतयता रक्षसोप्ते विरोध-  
धीत्रे नामक्षयमपगते मत्पतगातिघृष्ट्या।  
कामं कामान्पुनरपि शचीन्द्राधियावा मृगाति।  
निर्वेद्याथ परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥४७॥

इस तरह सीताजी को पुनर्मिलन का आश्लासन देकर सन्देश समाप्त कर दिया गया है।

समग्र काव्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह काव्य भी एक सुन्दर सन्देश काव्य है। मेघदूत की समस्यापूर्ति होते द्रुपे भी काव्य में दुरुद्धता बहुत ही कम है। इसका मुख्य कारण यही है कि इसमें मेघदूत की पवि के मूल भाव को तोड़ा मरोड़ा बहुत कम गया है। दूसरे भावों तथा रस की समानता ने भी काव्य को दुरुद्ध नहीं बनने दिया है। समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते द्रुपे भी

कवि ने अपनी प्रतिभा का स्थान-स्थान पर पूर्ण चमत्कार दिखाया है। मेघदूत में निरिन्ध्या नदी के सम्बन्ध में मेघ से कहा गया है—

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धु  
काश्य येन त्यजति विधिना स त्रयैरोपपाद्य ॥१॥३०॥ इत्यादि

मेघदूत के इस पद्य की चतुर्थपंक्ति को लेकर कवि ने क्या ही सुन्दर समस्या पूर्ति की है। रामचन्द्रजी मार्गदर्शन करते हुये हनुमान्जी से कहते हैं—

भूयोऽयन्त्या ललितमिति पुरान्तर्मर्त्यैर्मर्त्यै  
कलतातिथ्य कथमपि पुरो द्राक् प्रयातु यतेषा ।  
यस्मात् सीता चिरचिरद्वज प्रत्यद्वर्धमान । -  
काश्य येन त्यजति विधिना स त्रयैरोपपाद्य ॥१॥३१॥

नदी के सम्बन्ध में कहे गये वचन को कवि ने कितनी कुशलता से सीताजी के सम्बन्ध में जमा दिया है।

अलका नगरी का वर्णन करते हुये मेघदूत में मेघ से कहा गया है—

प्रिद्युत्यन्त ललितजनिता सेन्द्रचाप सन्निभा  
प्रासादास्तत्र तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ॥१॥३२॥ इत्यादि

इस पद्य के चतुर्थ, चरण को लेकर समस्यापूर्ति के साथ साथ इस काव्य में भी हनुमान्जी और लका में परस्पर तुलना की गई है—

हैमाकारा कनकपुष्प साधुकापेयशोभा  
सत्कापेय विमलममला सोमिक सोमिकाश्च  
सत्कीर्तिनाशुक्परिचिताश्चावकीर्तिवर्धन  
प्रासादास्तत्र तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ॥२॥३३॥

उपसृत पद्य में लका के प्रासादों और हनुमान्जी की परस्पर जो तुलना की गई है, यह मेघदूत के अनुकरण का ही परिणाम है। समस्यापूर्ति के साथ साथ कवि ने अपनी कल्पना से एक सुन्दर चित्र यदा उपस्थित कर दिया है।

साधुका रमणीया अतएव आपेया शोभा येषां ते इति प्रासादपदे ।  
सद् विद्यमानं कापेयं कपिर्मयस्येति हनुमत्पदे । सोमिकं सप्रकाशं इति प्रासादपदे ।  
सोमिकं सामिश्रानाङ्गुलीपङ्क्तम् इति हनुमत्पदे । सत्या प्रशमनाया को  
भूमौ पीना विपुला ये अशुका किरणा ते परिचिता इति प्रासादपदे ॥

मेघदूत में यक्ष ने अपने घर की पहिचान बताने के बाद कहा है—

क्षामच्छाय भजनमधुना मद्वियोगेन नूनम्  
सूर्यापाये न खलु कमल पुष्पति स्वामभित्याम् ॥२॥१६॥

इस पंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुये कवि ने निम्न पद्य लिखा है—

तस्या नीचैर्युधतिषु समाशास्महे भाग्यशालिन्  
सीता चिन्तामणिमिव मणिष्वानुयास्ता सचिन्ताम् ।  
यस्या धत्ते वदनमधुना म्लानता मद्वियोगे  
सूर्यापाये न खलु कमल पुष्पति स्वामभित्याम् ॥२॥१६॥

समस्यापूर्ति तो इस पद्य में की ही गई है, बरिक्त मूल पंक्ति को और भी सुन्दर प्रसंग में जमा दिया गया है। मुरा और कमल का सादृश्य तो सर्वविदित ही है, अतः पद्य दृष्टान्तालकार और भी चमत्कार उत्पन्न करता है।

मेघदूत में यक्ष हिमालय से आती हुई हवाओं का आलिङ्गन करता है। इसी के अनुकरण पर इस काव्य में भी रामचन्द्रजी के सगंध में लिखा गया है—

कृत्वा पूर्वं कमलमुद्रि । ये ताम्रपल्लव्यधिसग—  
तीर्थस्तान विदधति चिर चन्दनारण्यप्राप्ताम् ।  
आलिङ्ग्यन्ते सुरभितपनास्तेऽनिला दाक्षिणात्या  
पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेद्गमेभिस्तथेति ॥२॥४६॥

उत्तर दिशा में स्थित रामचन्द्रजी का दक्षिण में स्थित सीताजी की ओर से आने वाली दक्षिण हवाओं का आलिङ्गन करना उचित ही है। समस्या-पूर्ति के साथ साथ कवि ने हवाओं में भी परिवर्तन कर दिया है।

इस तरह समस्यापूर्ति के दृष्टिकोण से भी यह काव्य बड़ा ही सफल और भावपूर्ण है। कहीं-० मेघदूत व भाव में ही समस्यापूर्ति की गई है और कहीं-कहीं कवि ने अपनी प्रतिमा से भावान्तर का भी समावेश कर दिया है।

समस्यापूर्ति के साथ-साथ कवि ने कहीं-कहीं यही सुन्दर करणायें भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं। अथन्तिनगरी में क्रीडाक्षेत्र पर क्रीडा करते हुये दनुमानजी को देखकर यहा की स्त्रियों के मन में क्या भाव उठते हैं। जरा इसका भी ध्यान कीजिये—

म्यर्दन्तीन्द्र किमयमथंश जंगम परंतो या  
पुन्यतुन्दोच्छलितलसितोऽलौकिकोऽयं कपीन्द्र ।

पश्यन्तीनामविचकितमिन्नुहनेरहगनाना  
लोलापागेयदि न रमसे लोचनैर्नञ्चितोऽसि ॥१॥२६॥

मेघदूत में मार्ग वर्णन करते समय कहा गया है कि मेघ के गर्जन को सुनकर मानसरोवर की ओर जाने वाले राज इस उसके सहायक हो जायेंगे। इसी प्रकार इस काव्य में भी राजदूतों का हनुमान्जी का सहायक होना बताया गया है। लेकिन यहाँ वे मानसरोवर की ओर नहीं जा रहे हैं, बल्कि शरदुष्कृत के आजाने के कारण उल्टे मानसरोवर से दक्षिण की ओर आ रहे हैं—

कीशधीश इतगतिरिसायुर्मिकाहीरकाशु-  
माला चक्षुरा विसकिसलयध्रान्वित सलिलहन्त ।  
प्रत्यायान्त शरदुपगमे मानसादक्षिणस्या  
सम्पत्स्यन्ते नमसि भजतो राजदूता सहाया ॥२॥११॥

अगूठी से निकलती हुई किरणमाला को कमलनाल समझकर अपनी खोंखों से घाटते हुये इसी का हनुमान्जी के साथ चलते जाना लेश मात्र भी अरुचि-  
कर नहीं हो सफता। कवि की फरपना यहाँ दम्बते ही बनती है।

जैसा कि पहिले कहा गया है कि यह काव्य धार्मीक रामायण से भी प्रेरणा लेकर लिखा गया है, तदनुसार इस काव्य में मार्गवर्णन धार्मीक रामायण से बिलकुल मिलता जुलता है (दे० पा० रा० किष्किन्धा काण्ड ४१ वा सर्ग)। काव्य का कथानक तो रामायण की कथा पर आश्रित है ही। इसके अतिरिक्त कवि ने हनुमान्जी द्वारा सीताजी को अपना परिचय देने व राज सीताजी की उत्सुकता का वर्णन करते हुये कहा है—

इत्युक्तं सा भगिति दमयन्तीर विप्र पुरोक्ता  
सा मान्य त्या मुदितमनसा वाचिकं श्रोतुकामा ॥२॥३६॥

इस पद्य में दमयन्ती और ब्राह्मण के उल्लेख से यह भी प्रतीत होता है कि इस काव्य को लिखते समय कवि के ध्यान में नल दमयन्ती की कथा भी आगूठ थी।

उपर्युक्त विवेचन से पाठक गण को इस काव्य की विशिष्टताओं का परिचय मिल गया होगा। हनुमद्भूत लिपिकर कवि ने सदेशकाव्यों की आदिश्रोत रामायण की कथा के प्रति सदेशकाव्यों के रचयिताओं के ध्यान को पुरा दिया है। सदेश-काव्य के शिल्पविधान के दृष्टिकोण से भी यह काव्य ठीक ही है। हनुमान्जी की देपना, उन्हें दूतकार्य में नियुक्त करना, मार्ग बनाना, लका नगरी तथा आवश्यक स्थानों का परिचय देना, सीताजी का वर्णन और सन्देश-वचन सब यथा स्थान इस काव्य में पाया जाता है। विप्रलम्भ शृंगार इस काव्य का मुख्य रस है। राम जैसे

धीरोदात्त नायक तथा मीना जैसी उत्तम नायिका और हनुमान् जैसे कुशलदूत—इन सब ने काव्य को और भी मनोहर बना दिया है। मेघदूत की सम्म्या पूर्ति यों तो और भी सदेशकाव्यों में पाई जाती है, लेकिन वे प्रायः जैनपरम्परा में आते हैं। अतः उनका विषय विप्रलम्भ शृंगार के क्षेत्र से बाहर है। इसीलिये उनकी सम्म्यापूर्ति यही जटिल हो गई है। विप्रलम्भ शृंगार के प्रसंग में आये हुए काव्य को यथार्थचित्त तोड़ मरोड़ कर उन्होंने शान्त रस में घेँटालने की चेष्टा की है। लेकिन इस सदेश काव्य में सम्म्यापूर्ति करते समय ऐसी कोई क्लिष्टकल्पना नहीं की गई है। भाव तथा रस दोनों काव्यों में समानान्तर ही हैं। अतः सन्देश काव्य तथा सम्म्यापूर्ति इन दोनों के दृष्टिकोण से यह काव्य एक सफल रचना है और पाठकों के हृदय पर कवि की सहृदयता और शिक्षता का प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। कवि ने अपनी भूमिका में लिखा है—

कृतिरमरनदीय कालिदासी परमहिमालयसमगऽमला क्व ।

मम तु भणितिरदृष्टतेऽ कुर्या क्व घनरसातिशयेन हन्त हीना ॥५॥

भवतु सुरसरित्तथापि कुल्या सुरसरिता सह सगता क्वचित् ।

इति मम कविताऽपि कालिदास सुकवितया मिलिता पवित्रिता स्यात् ॥६॥

कवि के इन वचनों को हम उसकी नम्रोक्ति ही कहेंगे। मेघदूत की सम्म्या पूर्ति होने के कारण जैनतर सदेशकाव्यों में इस काव्य का एक विशिष्ट सन्देशकाव्यों के ऐतिहासिक विवेचन में इस काव्य के महत्त्व को उक्त किया जा सकता।

बमल चौधरी द्वारा  
तपादित तथा ।

वक्रपत्नी  
आर, क

—: इति शम् :—



## परिशिष्ट १

## प्रस्तुत ग्रन्थ के आधारभूत सन्देश काव्य

- १ इन्दु दूतम् — ले० श्री विनय विजय गणि । मुनि श्री धुरन्धर विजय द्वारा प्रणीत प्रकाश व्याख्या सहित श्री जैन साहित्य-वर्धक-सभा, शिरपुर ( पश्चिम खान देश ) से स० १९४६ ई० में प्रकाशित ।
- २ उद्धव-दूतम् — ले० श्री माधव कर्नीन्द्र भट्टाचार्य । श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य समग्र प्रथम भाग, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ५३१—५६५ पर स० १८८८ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित । डा० जोन हेयर्लिन द्वारा अपने काव्यसमग्र में कलकत्ते से स० १८४७ ई० में प्रकाशित ।
- ३ उद्धव सन्देश — ले० श्री रूपगोस्वामिन् । श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य समग्र, तृतीय भाग, तृतीय संस्करण, पृष्ठ २१५—२७५ पर स० १८८८ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित ।
- ४ कोक सन्देश — ले० विष्णु घात । त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से ग्रन्थांक १२४ के रूप में स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- ५ कोकिल-सन्देश — ले० उद्दण्ड कवि । श्री पी० एस० अनन्त नारायण शास्त्री की टिप्पणी सहित मंगलोदयम् प्रेस, बिचूर से स० १९३६ ई० में द्वितीय संस्करण प्रकाशित ।
- ६ घट कर्पूर यमक काव्यम् — ले० घट कर्पूर कवि । सर्वत्र प्रकाशित ।
- ७ धेतो दूतम् — ले० ( अक्षय ) । जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से वि० सं० १९७० में प्रकाशित ।
- ८ जैन मेघदूतम् — ले० आचार्य मेरुतुंग । श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से वि० सं० १९८० में प्रकाशित ।
- ९ नेमि-दूतम् — ले० विव्रम कवि । जैन प्रेस, कोटा से प्रकाशित ।
- १० पयन-दूतम् — ले० धोयि कवि । श्री चिन्ता हरण चक्रवर्ती द्वारा संपादित तथा संहृत-साहित्य-परिषद्, श्याम बाजार, कलकत्ता द्वारा स० १९२६ ई० में प्रकाशित ।
- ११ पयन-दूतम् — ले० पादि चन्द्रसूरि । हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, यम्यई से स० १९१४ ई० में प्रकाशित ।

- १० पदाक-दूतम् —ले० कृष्णनाथ सार्वभौम । श्री जीवानन्द विद्यासागर के काव्य-संग्रह, प्रथम भाग, तृतीय संस्करण में पृष्ठ ५०७-५३० पर कलकत्ता से स० १८८८ ई० में प्रकाशित ।
- १३ पान्थ दूतम् —ले० टिकुरी ( बंगाल ) निवासि श्री मोलानाथ कवि । प्राच्यवाणी पत्रिका, कलकत्ता, भाग ६ जनवरी-दिसम्बर, १९४६ में मूलमात्र प्रकाशित ।
- १४ पादार्थमुदय काव्यम् —ले० श्री आचार्य जिनसेन । श्री के० बी० पाठक द्वारा पूना तथा श्री योगिराट् पण्डित-चार्य, अणु-बेल गोल-निवासी की टीका के साथ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से स० १९०६ ई० में प्रकाशित ।
- १५ पिक दूतम् —ले० रुद्र न्यायपञ्चानन । श्री अनन्तलाल ठाकुर द्वारा प्राच्यवाणी पत्रिका, कलकत्ता, भाग ७ स० १९४५ में प्रकाशित ।
- १६ भृगु-दूतम् —ले० शतावधान कवि श्री कृष्ण देव । नागपुर विश्व विद्यालय पत्रिका, स० ३ दिसम्बर स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- १७ भृगु सन्देश —ले० वासुदेव कवि । त्रिवेन्द्रम् संहृत सीरीज से स० १२८ के रूप में स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- १८ अमर दूतम् —ले० रुद्रन्याय पञ्चानन । डा० जतीन्द्र विमल चौधरी द्वारा स० १९४० ई० में कलकत्ते से प्रथम बार संपादित तथा प्रकाशित ।
- १९ मनो-दूतम् —ले० विष्णुदास । श्री चिन्ता हरण चक्रवर्ती द्वारा संपादित तथा संहृत-साहित्य परिषद्, श्याम बाजार, कलकत्ता से स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- २० मनो-दूतम् —ले० तैलंग व्रजनाथ । निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से काव्य माला  
: ' त्रयोदश गुच्छक में प्रकाशित ।
- २१ मयूर-संदेश —ले० उदय कवि । डा० सी० कुन्दन राजा द्वारा संपादित तथा ओ० बी० ए० पूना में स० १९४८ ई० में प्रकाशित ।
- २२ मेघ-दूतम् —ले० कालिदास । विभिन्न स्थानों से प्रकाशित ।
- २३ मेघ प्रतिसंदेश —ले० मन्दिफल राम शास्त्री कविरत्न । गवर्नमेंट प्रेस, मैसूर से स० १९२३ ई० में प्रकाशित ।

- २४ मेघदूत-समस्यालेख — ले० आचार्य मेघविजय । श्री जैन आत्मानन्द-सभा, भाय नगर से वि० सं० १९७० में प्रकाशित ।
- २५ पक्ष मिलनकाव्यम् — ले० महामहोपाध्याय श्री परमेश्वर झा । रामेश्वर प्रेस, वरभगा से शाके १८१७ में प्रकाशित ।
- २६ वात-दूतम् — ले० कृष्णनाथ न्यायपञ्चानन । इल्लिशियम प्रेस, न० ६ काशी घोष मार्ग कलकत्ता से स० १८८६ ई० में प्रकाशित ।
- २७ शीत दूतम् — ले० श्री चारित्र्यसुन्दरगणि । यशोविजय ग्रन्थमाला, बनारस से प्रकाशित ।
- २८ शुक्र सन्देश — ले० लक्ष्मीदास । श्री पी० एस० अनन्त नारायण शास्त्री द्वारा प्रणीत टिप्पणी सहित मंगलौदयम् प्रेस, ब्रिचूर से प्रकाशित ।
- २९ हस दूतम् — ले० श्री धामन मह याण । डा० जे वी० चौधरी द्वारा कलकत्ते से स० १९४७ ई० में प्रकाशित ।
- ३० हस दूतम् — ले० श्री रूप गोस्वामिन् । श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य संग्रह, प्रथम भाग, तृतीयसंस्करण, पृ० ४४१-५६७ पर कलकत्ते से स० १८८८ ई० में प्रकाशित ।
- ३१ हस सन्देश — ले० श्री वेदान्तदेशिक । वी० रामस्वामी शास्त्रुलु पण्ड सप्त मद्रास से स० १९३७ ई० में प्रकाशित । गरनेमेट प्रेस, मैसूर से स० १९१७ ई० में प्रकाशित ।
- ३२ हस-सन्देश — श्री पूर्ण सारस्वत । त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से स० १२६ के रूप में स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- ३३ हस-सन्देश — ले० अज्ञात । त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से स० १०३ के रूप में स० १९३० ई० में प्रकाशित ।
- ३४ हनुमद् दूतम् — ले० श्री नित्यानन्द शास्त्री, जोधपुर । रोमराज धीरूपाश्रय प्रात बम्बई से वि० स० १९८५ में प्रकाशित ।

## परिशिष्ट =

## अन्य उपलब्ध सन्देश काव्य

- १ अनिल-दूतम् — ले० रामदयालु तर्करत्न । हस्तलिखित प्रति के कुछ अंश ही उपलब्ध । संस्कृत दूत काव्य माला, १४० (१), प्राच्यवाणी-मन्दिर कलकत्ता का हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह देयना चाहिये ।
- २ अमर-सन्देश — श्री गुस्टव आपर्ट (Gustav Oppert) द्वारा संकलित दक्षिण-भारत के निजी पुस्तकालयों के संस्कृत-हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग ५ सं० ७२०५ मद्रास देयना चाहिये ।
- ३ इन्दु-दूतम् (चन्द्रदूतम्) — ले० श्री जगन्मणि कवि । डा० जे० बी० चौधरी, कलकत्ता द्वारा प्रथम बार सं० १९४१ ई० में सम्पादित तथा प्रकाशित ।
- ४ फाक-दूतम् — (क) सहस्रद्वयम्, संस्कृत मासिक पत्र, मद्रास, भाग २३, पृष्ठ १७३ देयिये तथा (ख) पञ्चयुषी, कलकत्ते के श्री गंगाधर ठाकुर के पंथञ्ज और दीनबन्धु मुख्योपाध्याय के पुत्र गौरगोपाल शिरोमणि का भी एक काफ़ी दूत उपलब्ध है । सदर्भ के लिये 'धर्मपद-काव्येतिहास' पृष्ठ ६७ देयिये ।
- ५ कीर दूतम् — (क) ले० राम गोपाल । लखक सभयत नदिया के राजा रामचन्द्र का सभा कवि था । श्री हर प्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की सूची भाग १ पृ० ३६ सं० ६७ देखनी चाहिये । यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है । (घ) एक अन्य कीरदूतम् श्री वेदान्त दशिक के पुत्र श्री परदाचार्य का भी लिखा हुआ है । मैसूर की गुरु परम्परा में ऐसा उल्लेख पाया जाता है ।
- ६ कृष्ण-दूतम् — ले० भुविन्द कवि । अद्वयार पुस्तकालय का हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, भाग २, सं० ४ देखिये ।
- ७ कोकिल सन्देश — (क) ले० आचार्य वेदान्त दशिक के पुत्र श्री परदाचार्य । इन्फो० एफ० गुणवर्धन, न्यूयार्क द्वारा सम्पादित । इस काव्य का मैसूर की गुरु परम्परा में उल्लेख पाया जाता है । (घ) शतक्रतु तालार्य के पुत्र चैकटाचार्य द्वारा प्रणीत । श्री पी० पी० एस० शास्त्री द्वारा संकलित तंजौर पैलेस लाइब्रेरी की हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, भाग ७, सं० २६३ देखिये । (ग) गुणवर्धन द्वारा

प्रणीत। सीलोन पेन्टिक्वेरी, भाग ४, १११ पृष्ठ देखिये। (घ) नरसिंह करि द्वारा प्रणीत। अदुयार पुस्तकालय का हस्त लिखित पुस्तकों का सूचीपत्र भाग २, सं० ४ देखिये।

३ कोकिल-दूतम् —ले० हरिदास। कालिदास सेन द्वारा प्रणीत मणिमाला व्याख्या सहित सुधामय प्रामाणिक द्वारा कलकत्ते से वग सं० १३११ में प्रकाशित।

६ गदड संदेश —(क) ले० बेंगलकॉड रामराय। श्री कृष्णभाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३३३ देखिये (ख) एक अन्य गदड संदेश श्री बेंगल नरसिंहाचार्य, तिरुपति का भी लिखा हुआ है।

१० धनदूत —ले० कोरडू रामचन्द्र। इस काव्य में मेघदूत की उत्तर कथा करिपत की गई है। श्री के० डी० नागेश्वर द्वारा मसूलीपट्टम् से सं० १६०८ ई० में प्रकाशित। श्री एम० अच्युत राम शास्त्री, एलोर द्वारा सं० १९१७ ई० में प्रकाशित। यह दोनों संस्करण तेलुगु लिपि में मुद्रित हैं।

११ चकोर-संदेश —(क) ले० श्री पेरुसुरि। लेखक द्वारा प्रणीत वसुमगल-नाटक (ओरियन्टल मैनेस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास का हस्तलिखित पुस्तकों का वर्णनात्मक सूचीपत्र, २१, सं० ८४६७ तथा तजीर पैलेस लाइब्रेरी का हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, भाग ७, सं० २८६६) की प्रस्तावना में इस काव्य का उल्लेख मिलता है। लेखक की 'नवीन पर्नजलि' यह उपाधि भी थी। (ख) ले० वासु देव कवि। शिवोदय इत्यादि काव्य भी इसने लिखे हैं। (ग) ले० श्री वेंकट कवि। ओरियन्टल मैनेस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी मैसूर का संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र सं० २४६ देखिये।

१२ घातक-संदेश —ले० (अज्ञात)। जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक-सोसायटी (१८८१ पृष्ठ ४४१ देखिये)। इस काव्य में कवि ने मालाबार के राजा रामयर्मन् के सरक्षण के लिये प्रार्थना की है।

१३ चन्द्र-दूतम् —(क) ले० कृष्ण तर्कालकार। केवल हस्तलिखित प्रति उपलब्ध। (ख) श्री हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग २, पृ० ५०, ग्रन्थ संख्या, ६१ देखिये। (ग) इस काव्य में राम द्वारा सीता के पास चन्द्रमा की वृत्त बना कर भेजा गया है। ग्रन्थ का रचना काल अज्ञात है।

(ख) ले० विनयप्रम । रम्यई क्षेत्र में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की पीटर्सन द्वारा की गई खोज का विवरण, भाग ३, स० २६० देखिये । अन्य यमक के साथ मालिनी छन्द में यह काव्य लिखा गया है । श्री आर० जी० भाण्डारकर द्वारा रम्यई प्रदेश में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के विवरण (१९०७) में ग्रन्थ का रचनाकाल स० १३४२ दिया हुआ है ।

(ग) ले० श्री प्रेमल कीर्ति गणि । यह एक जैन सम्देशकाव्य है मेघदूत की समस्यापूर्ति भी इसमें की गई है । श्री जिनदत्त सुरि-शान भाण्डारकर द्वारा स० २००६ में प्रकाशित ।

१४ तुलसी दूतम् — (क) ले० प्रिलोचन शर्मन् । (ख) वैद्यनाथ द्विज । संस्कृत साहित्य परिषत् लाइब्रेरी, कलकत्ता में इन काव्यों की हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हैं । प्राच्यपार्ष्णी मन्दिर, कलकत्ता का ग्रन्थ संग्रह स० १३७ देखिये ।

१५ दारयूह-संदेश — ले० श्री भाराधरा कवि । ज्ञानकोर का संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, ग्रन्थ स० १६५ देखिये ।

१६ पद्म-दूतम् — ले० श्री सिद्धनाथ विद्यावागीश । कूच विहार के अन्तर्गत रामप्रथी के निवासी । स० १९२५ में कलकत्ते से प्रकाशित । इण्डिया आफिस लाइब्रेरी कैंटालाग पृ० १८२६ (१८६८) देखिये ।

१७ पदाक दूतम् — ले० भोलानाथ । इण्डिया आफिस लाइब्रेरी कैंटालाग, भाग ७, ग्रन्थ सन्ख्या १४६७ देखिये ।

१८ पवन-दूतम् — (क) ले० श्री जी० श्री पद्मनाभ । श्री कृष्णमाचारिणर का संस्कृत साहित्य का इतिहास, पैरा २००, पृ० २७५ देखिये ।

१९ पादप-दूतम् — ले० गोपेन्द्र नाथ गोस्वामिन् । नवद्वीप कान्ति प्रेस, नवद्वीप से प्रकाशित । इस ग्रन्थ का दूसरा नाम गौर विष्णुप्रियासंवाद है । (स० १९३४-३५ में प्रकाशित) ।

२० पिक-दूतम् — (क) ले० (अज्ञात) । श्री विन्ताहरण चक्रवर्ती, कलकत्ता के निजी पुस्तकालय में इस काव्य की पाण्डुलिपि सुरक्षित है । (ख) ले० अम्बिका चरण देशरमन् । प्राच्यपार्ष्णी मन्दिर, कलकत्ता में ग्रन्थ के कुछ अंश उपलब्ध हैं ।

- २१ पिके-सन्देश — (क) ले० रंगनाथाचार्य । धीरगम् से प्रकाशित । (ख) ले० कोच  
(क) नरसिंहाचार्य । लेखक तिरुपति निवासी श्री निगासाचार्य का  
(ख) पुत्र है । ग्रन्थ तिरुपति से प्रकाशित हुआ है ।
- २२ बुद्धि-सन्देश — ले० श्री सुब्रह्मण्य मूर्ति । यह एक आधुनिक अप्रकाशित  
रचना है । विशेष विवरण के लिए श्री कृष्णप्रचारियर का  
संस्कृत साहित्य का इतिहास, पैरा ३५२, पृष्ठ ३८० देखिए ।
- २३ भक्ति दूत — ले० श्री कालिप्रसाद शर्मा । श्री आर० एल० मित्र के संस्कृत  
के हस्त लिखित ग्रन्थों के नोटिस, भाग ३, पृ० २७, स १०५१  
देखिए ।
- २४ भृगुदूत — ले० श्री गगनानन्द । यह कवि बीकानेर के महाराजा कर्णसिंह  
का समाकवि था । ग्रन्थ अप्रकाशित है । रचनाकाल स० १५-  
०६-१५२७ ई० के मध्य में होना चाहिए । ऑफ़ेट के कैटालो  
गस कैटालोगोरम भाग ३, स० ३० पर इसका उल्लेख पाया  
जाता है ।
- २५ भृगु सन्देश — ले० श्री पेदुमुदूर के प्रतिपादि भय कर वेंकटाचार्य की धर्मपरमी  
श्री त्रिवेणी । रचना काल स० १८४० से १८८३ ई० का मध्य ।  
ग्रन्थ अप्रकाशित ।
- २६ भ्रमर-सन्देश — ले० श्री महालिंग शास्त्री एम० ए०, बी० एल, वकील, मद्रास ।  
साहित्य चन्द्रशाला, तिरुवालयगु (तमिल) से स० १६५४ में  
प्रकाशित । इस काव्य में इन्द्र द्वारा भ्रमर को दूत बनाकर  
इन्द्राणी के पास भेजा गया है ।
- २७ मधुकर दूतम् — ले० केंतडि पट्टि (दक्षिण भारत) के चक्रवर्ति श्री राजगोपाल ।  
लेखक सेन्ट्रल कालेज, बंगलौर में स० १९२० से १९३४ तक  
संस्कृत विभाग का अध्यक्ष रहा । लेखक ने संस्कृत में अनेक  
ग्रन्थ लिखे हैं । वे प्रायः अप्रकाशित ही हैं ।
- २८ मधुरोष्ठ-सन्देश — विशेष ध्यान के लिए ओरियण्टल लाइब्रेरी, मैसूर का संस्कृत  
के हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, ग्रन्थ संख्या २५१ देखना  
चाहिए ।
- २९ मनोदूतम् — (क) ले० श्री रामराम शर्मा । यह काव्य शिवरिणी छन्द में  
(क) है । पंथीय साहित्य परिषत्, कलकत्ता के पुस्तकालय में ग्रन्थ  
(ख) संख्या १०८२ के रूप में इसकी पाण्डुलिपि सुरक्षित है । प्राच्य

- (ग) वाली मन्दिर, कलकत्ता के सप्रहालय में भी ग्रन्थ संख्या ११ के रूप में इस की एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है। (घ) जैन ग्रन्थावलि सं ३३२ देखिए। (ग) काश्मीर के हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, स १७० और २८७ देखिए। (घ) श्री इन्दिरेश भट्ट। यह काव्य श्री हरिहर भट्ट के हृदयदूत के साथ प्रकाशित हो चुका है। चुन्नीलाल युक्त सेनार, बहा मन्दिर, भूलेश्वर, धर्मार्थ से उपलब्ध है।

३० मयूर-सन्देश — (क) ले० (अज्ञात)। ओरिएण्टल लाइब्रेरी मद्रास का संहृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का त्रिवर्षीय सूचीपत्र, भाग ४, ग्रन्थ संख्या ४२८८ देखिए। (ख) ले० श्री रमाचार्य। अद्वयार लाइब्रेरी का हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, भाग २, ग्रन्थ संख्या ८ देखिए। (ग) ले० श्री निवासिाचार्य। यह काव्य मद्रास से मुद्रित हुआ है।

३१ मयूर दूतम् — ले० मुनि श्री घुस्न्धर यिजय। वि० सं० २००० में अहमदाबाद से प्रकाशित। यह एक जैन सन्देश काव्य है।

३२ मानस-सन्देश — (क) ले० श्री विश्वसुरि वीरराघवाचार्य। ओरिएण्टल मैनेस्त्रिप्स लाइब्रेरी, मद्रास का ग्रन्थसंख्या २६६४ देखिए। लेखक का कार्यकाल सं० १८५५ से १९०० तक है। यह काव्य आधुनिक कृति है। (घ) ले० श्री लक्ष्मण सुरि। लेखक पचयप्पा कालेज, मद्रास में संहृत प्रोफेसर रहा। महामहोपाध्याय की उपाधि भी इन्हें प्राप्त हुई थी। सं० १८५६ से १९१६ तक इनका जीवन काल रहा। मानससन्देश के अतिरिक्त और भी अनेक रचनाएँ इनकी प्राप्त होती हैं। इनके कुछ ग्रन्थ मद्रास से मुद्रित भी हो चुके हैं।

३३ मारुत सन्देश — ले० (अज्ञात)। मद्रास से मुद्रित।

३४ रथागदूतम् — अद्वयार लाइब्रेरी का हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, भाग २ ग्रन्थ संख्या १६ देखिए। मैसूर से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

३५ एकदूतम् — ले० महामहोपाध्याय अजितनाथ न्यायरत्न। यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है। प्राच्य वाली मन्दिर, कलकत्ते में हस्त लिखित ग्रन्थ संग्रह, सं० १४३ देखिए। मूलप्रति लेखक के सुपुत्र श्री शैलेन्द्र नाथ महाचार्य के पास सुरक्षित है।



२६ बाह्मण्डन गुण-दूतम्—ले० श्री वीरेश्वर । डा० जे० बी० चौधरी द्वारा प्रथम बार कलकत्ते से स० १९४१ में प्रकाशित । इस काव्य में कवि ने अपने सूक्त गुण को दूत बनाकर एक राजा के पास उसका आशय पाने के लिए भेजा है ।

३७ रिट-दूतम् — इस ग्रन्थ की एक प्रति आर्य लाइब्रेरी विजगापट्टम् में उपलब्ध है ।

३८ विप्र सन्देश — (क) ले० कोचुम्नि तंवरिन कौंगनो निरासी । इस काव्य के (क) अतिरिक्त गोप्त्री चरित, बाणायुधचम्पू यह दो काव्य ग्रन्थ तथा (ख) अनंग विजय और विटराजविजय यह दो भाष्य ग्रन्थ भी इनके लिखे हुए हैं । दे० कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पैरा १८० पृष्ठ २५८ । जर्नेल आफ दि रायल एशियाटिक (१९००) ७६३ भी देखिए । (ख) महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मणसूरि मद्रास । लेखक का जीवनकाल १८५६-१९१६ है । इसमें कश्मिणी ने कैसे एक वृद्ध विप्र को अपना दूत बनाकर कृष्ण जी के पास भेजा, इसका वर्णन किया गया है । पूर्णचन्द्रोदय प्रेस तञ्जौर से स० १९०६ में प्रकाशित

३९ शिवदूतम् — ले० तञ्जौर मण्डलान्तर्गत नदुफायेरी निरासी श्री नारायण शास्त्री । इस कवि ने ६२ नाटक विभिन्न पौराणिक तथा काल्पनिक विषयों पर लिखे हैं । विभिन्न काव्य तथा गद्यात्मक जीवन चरित भी लिखे हैं । इस दूतकाव्य के अतिरिक्त एक श्येत दूत भी इन्होंने लिखा है । ( दे० श्री० कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पैरा ७२७, पृ० ६६८-९ ) ।

४० शुक्र-सन्देश — (क) ले० आचार्य वेदान्त देशिक का सुपुत्र परदाचार्य । गुरु-परम्परा प्रमाण, मैसूर (१९६) देखिए । (ख) करिक्कम्पल्लि नम्बूद्रि । (श्री) गुस्टय आप्टे द्वारा संकलित दक्षिण भारत के निजी पुस्तकालयों के संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, मद्रास, ग्रन्थसंख्या २७२१, ६२४१ देखिए । (ग) श्री रंगाचार्य । (दे० श्री लेयिस राइस द्वारा संकलित मैसूर और कुर्ग के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, बंगलौर, ग्रन्थ संख्या २२४०) । (ग) श्री प्रतिपादि भयंकर बेंकटाचार्य की पत्नी त्रिवेणी देवी । अप्रकाशित ।

४१ श्येतदूतम् — ले० नारायण शास्त्री । दे० उपनिर्दिष्ट शिवदूत सं० ३६ ।

४२ सिद्धदूत —ले० अवधूत राम। इसमें मेघदूत की-समस्यापूर्ति की गई है। पाटन से सं० १६१७ में प्रकाशित।

४३ सुभग सन्देश —ले० नारायण कवि। १३० श्लोकों में यह काव्य पूर्ण है। दे० जर्नेल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १८८४ पृ० ४४६। जयसिंहनाद के राजा राम वर्मा ( १५४१-१५४७ ई० ) के दरबार में यह कवि था।

४४ सुरभि-सन्देश —ले० श्री वीरवल्लि विजयराघवाचार्य, तिरुपति। आधुनिक संस्कृत कवि और लेखक। इस काव्य में आधुनिक नगरों का वर्णन है।

४५ हनुमत्सन्देश —ले० पश्चिम गोदावरी जिले के तानुडु तालुके में दोन्तायरम् क निवासी श्री विष्णुमूर्ति वीरराघवाचार्य ( १८५५-१९०० ई० )। यह संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इस काव्य के अतिरिक्त रामानुजश्लोकत्रयी, मानससन्देश, पातक नरसिंहस्तोत्र, रघुवीर गद्य-व्याख्या और चतु श्लोकी व्याख्या भी इनके लिये हुए ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

४६ कपिदूतम् ( हनुमद्दूतम् ) —डाका यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, दस्तलिखित ग्रन्थ सं० ६७५ बी (सफिडत)।

४७ हरिण-सन्देश —ले० आचार्य नेदान्तदेशिक के सुपुत्र श्री परदाचार्य। मैसूर की गुरुपरम्परा में इसका उल्लेख मिलता है।

४८ हंस-दूतम् —(क) ले० श्री रघुनाथदास। यह काव्य मूलरूप में उपलब्ध नहीं है। सप्रदयीं शताब्दी क नरसिंहदास क बंगला पद्यानुवाद में यह पाया जाता है। रूपगोस्वामी के हंसदूत जैसा ही काव्य का कथानक इत्यादि है। विशेष विवरण के लिये डी० सी० सेन का बंग साहित्यपरिचय, पृ० ८५० देखिये। (ख) ले० विद्या विधान कर्णान्ध्याचार्य सरस्वती। श्री ए० सी० घनैल, लन्दन द्वारा संकलित तञ्जोर राजमहल के संस्कृत दस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, पृ० १६३ में इसका उल्लेख है। लेकिन यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। (ग) ओफ्रोटे का बेटालोगस बेटालोगोरम्, भाग १, सं० ७५३ पर इसका उल्लेख है और किसी बेंचटेश का लिखा हुआ है।

४९ हंस सन्देश —(अज्ञात)। गणनमेन्ट ओरियण्टल मैनेस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास में इसकी एक प्रति उपलब्ध है। इसमें एक हंस को एक

वियुक्त प्रेमी द्वारा दूत बनाकर अपनी प्रेमिका के पास भेजा गया है ।

५० हृदय-दूतम् —ले० श्री भट्ट हरिहर । वसन्त तिलका चन्द्र में यह काव्य लिखा गया है ( वैर, १, स० ५४१ ) । चुन्नीलाल धुरुसेलर, यहा मन्दिर, मूलेश्वर, वगैरह से प्रकाशित । इस काव्य के साथ में श्री इन्दिरेश भट्ट का मनोदूत भी प्रकाशित हुआ है ।

नोट—इस प्रकार प्रकाशित तथा अप्रकाशित ७४ अन्य सन्देश काव्य भी वेश के विभिन्न भागों में उपलब्ध हैं ।

### परिशिष्ट ३

#### विशिष्ट सन्दर्भ ग्रन्थ

- १ ऋग्वेद
- २ पाश्क का निरुक्त तथा वैदिक निघण्टु
- ३ अमर कोष
- ४ श्री वारमीनि रामायण
- ५ महाभारत
- ६ धीमदुभाषित
- ७ रौद्र ज्ञानक
- ८ भामह का काव्यालकार
- ९ दण्डिन् का काव्यादर्श
- १० अग्नि पुराण
- ११ रुद्रट का काव्यालकार
- १२ वक्रोक्ति जीवित
- १३ मम्मट का काव्य प्रकाश
- १४ हेमचन्द्र का काव्यानुशासन
- १५ प्रताप रुद्र पराभूषण
- १६ वाग्भट्ट का काव्यालकार सूत्र
- १७ राजशेखर की काव्य प्रीमास्ता
- १८ पदितराज जगन्नाथ का रस गंगाधर
- १९ विश्वनाथ का साहित्यदर्पण

- २० मनुस्मृति  
 २१ मालतीमाधव  
 २२ विक्रमोर्वशीयम्  
 २३ रघुनशम्  
 २४ कुमार सभयम्  
 २५ गीतगोविन्दम्  
 २६ भास का स्वप्नवासवदत्तम्  
 २७ कथा सरित्सागर  
 २८ डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का 'मिथदूत एक अध्ययन'  
 २९ बृहत्कथा  
 ३० अभिज्ञान शाकुन्तलम्  
 ३१ श्री सुधीर कुमार गुप्त का 'मिथदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और उसका सांस्कृतिक सन्देह'  
 ३२ सौन्दरनन्द काव्य  
 ३३ मोनियर विलियम्स का इण्डियन रिज्डम।  
 ३४ श्री एस० एन० दास गुप्त द्वारा संपादित 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' क्लासिकल पीरियड, भाग १।  
 ३५ श्री कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास  
 ३६ श्री ए० पी० कीथ का संस्कृत ड्रामा और संस्कृत साहित्य का इतिहास  
 ३७ श्री आर० एन० आप्टे का 'द्रेट आफ कालिदास'  
 ३८ जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग, २, किरण २, तथा भाग ३, किरण १ आरा।  
 ३९ डा० जे० पी० चौधरी का धर्मीयदूतकाव्येतिहास।  
 ४० सिद्ध भारती भाग १ और २ दोशियारपुत्र।  
 ४१ जर्नल आफ ओरिएण्टल रिसर्च मद्रास, भाग १० स० ३, पृष्ठ २६६-७४ (१९३६) पर श्री० ई० पी० राधाकृष्णन का दूत काव्य सन्दर्धी लेख।  
 ४२ इण्डियन हिस्टारिकल फ्यार्टली, भाग ३, स० २, पृष्ठ २७३-६७, १९२७ में श्री सी० चक्रवर्ती का दूत काव्य सन्दर्धी लेख।